

अग्नि-पुराण

(प्रथम खण्ड)

सम्पादक—

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट् दर्शन
२० स्मृतियाँ और अठारह पुराणों के,
प्रसिद्ध भाष्यकार ।



प्रकाशक—

संस्कृति-संस्थान,

ख्वाजाकुतुब (वेदनगर) बरेली

(उत्तर-प्रदेश)

प्रथम संस्करण)

१९६८

(मूल्य ७ रु०)

-भूमिका-

अठारह महापुराणों में 'अग्नि पुराण' का एक विशिष्ट स्थान है। यद्यपि इसको इलोक संख्या अधिकांश पुराणों से कम हो है पर उतने में ही इसमें जो ज्ञान भण्डार भर दिया गया है, वह आज भी बड़े-बड़े विद्वानों के लिये आश्चर्य का विषय बना हुआ है। पुराणों का विषय सामान्यतः सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय, मन्वन्तर, राजवंशों का इतिहास आदि माना गया है। साथ ही जो पुराण जिस देवता को अधिक मान्यता देता है उसके माहात्म्य और उपासना प्रणाली पर भी विशेष रूप से प्रकाश डाला जाता है। 'अग्निपुराण' में भी इन विषयों को स्थान दिया गया है, पर सबका वर्णन बहुत संक्षेप में ही किया गया है। बाराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, इन चार अवतारों का वर्णन १६ अध्यायों में पूरा कर दिया है जबकि इन पर एक-एक पुराण की रचना की गई है। सूर्यवंश, चन्द्रवंश, यदुवंश आदि का वर्णन भी सौ श्लोकों से कम में समाप्त कर दिया है।

इस पुराण का मुख्य उद्देश्य है मनुष्यों के दैनिक व्यवहार और अन्य सामाजिक विषयों से सम्बन्धित जानकारी करा देना है। इस दृष्टि से अनेक विद्वानों ने इसे 'भारतीय-जीवन का विश्वकोष' कहा है। प्राचीन समय में इस देश का जन-जीवन जिन बातों पर आधारित था और यहाँ के समाज में जिन कार्यों का महत्त्व समझा जाता था उन सबका ज्ञान इस पुराण में संग्रहीत कर दिया गया है। शिल्प कला, मूर्ति निर्माण, गृह निर्माण, ज्योतिषशास्त्र, आयुर्वेद पशु वैद्यक, स्वप्न फल, शकुन विचार, रत्न परीक्षा, मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, सर्प, चिकित्सा, पूजा, उपासना, व्रत, शान्ति, श्राद्ध, काव्य, भाटके, व्याकरण, राजनीति, धनुर्वेद, युद्धविद्या आदि कोई भी जीवनोपयोगी विषय इससे अछूता नहीं

वचा है। रामायण, भागवत, महाभारत, हर्गिवंश, भगवद् गीता जंगे ग्रन्थों का सारासः भी इसमें दिया गया है। स्वयं इस पुराण में ही इसकी विशेषताओं का जो विवरण दिया गया है, उसमें इसका महत्त्व बतलाते हुए कहा है—

“वेदन्त का विषय इसमें इतनी उत्तम रीति में वर्णित है कि उसमें बढ़कर अन्यत्र कहीं नहीं है। पुराणों में भी यह सर्वोत्तम है। यह इनना उत्कृष्ट है कि इससे दुर्लभ वस्तु संसार में अन्य कोई नहीं है। इस ‘ग्राम्नेय महापुराण’ में सब विद्यार्थे बतलाई गई हैं। मत्स्यावतार से प्रारम्भ करके सभी अवतारों का वर्णन इसमें है। गीता, रामायण, हर्गिवंश, महाभारत आदि का परिचय दे दिया गया है। वैष्णव-प्रागम का इसमें पूर्णरूप से विवेचन किया गया है, उसकी पूजा पद्धति, दीक्षा, विधान, प्रतिष्ठाविधि, पवित्रारोहण का क्रम और प्रतिमा के लक्षण आदि सब वृत्त-इसमें दी गई हैं। मोक्ष और मोक्ष देने वाले मन्त्र भी इसमें बतलाये हैं। इसी प्रकार शैवगम में शिव की अर्चना पद्धति, शक्ति-प्रागम में देवी की उपासना, सौर-प्रागम में सूर्य की पूजा का विषय प्रकट किया गया है। प्रतिसर्ग निरूपण में ब्रह्माण्ड का रूप दर्शाया गया है, समस्त भुवनों, दीपों, व्योम, नदियों, तीर्थों आदि का वर्णन किया गया है। ज्योति चक्र, ज्योतिष विद्या, युद्ध में जय प्राप्त करने का शास्त्र, मन्वन्तर चारों वर्गों के धर्म, अशौच, द्रव्यसुद्धि, प्रायश्चित्त, राजधर्म, दान-धर्म, व्रत, व्यवहार, चारों वेदों का विधान, सूर्यवंश, सोमवंश, धनुर्वेद, वैद्यक शास्त्र गान्धर्व-वेद, अर्थशास्त्र, भीमांसा, न्याय, छन्द, व्यकरण, अलङ्कार, निघण्टु शिक्षा, काव्य आदि सब कुछ इसमें मौजूद है।”

इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन समय में जब कि ग्रन्थ बहुत कम मिलते थे, अधिकांश पुस्तकें लोग याद ही कर लिया करते थे और जो जिस विषय को जानना था वह उसे दूसरों को बहुत कठिनाई से बतलाता था, उस समय इतने विषयों का ज्ञान एकत्रित कर सकना एक बहुत बड़ी सफलता और लोकहित का कार्य था। किसी एक ग्रन्थ में समस्त उपयोगी विषयों की जानकारी या सूचनाएँ मिल जाना कम महत्त्व की बात नहीं थी।

ब्रह्मज्ञान का विवेचन—

जैसा इस पुराण के माहात्म्य में कहा गया है इसमें वेदान्त संबंधी विवेचन विस्तार के माय किया गया है, जिससे सामान्य ज्ञानवाला पाठक भी उसका तत्त्व ग्रहण कर सकता है। शरीर और आत्मा की पृथक्ता पर विचार करते हुए बताया है कि—“बस्तु आदि इन्द्रियाँ आत्मा नहीं हो सकती क्योंकि ये कारण (यन्त्र) के समान हैं। मन और बुद्धि भी आत्मा नहीं है क्योंकि ये दीपक की तरह मार्ग-दर्शन के साधन हैं। प्राण भी आत्मा नहीं हो सकता, क्योंकि स्वभावस्था में उसे नहीं जाना जाता। इसलिये इन्द्रिय आदि आत्मा नहीं है बल्कि यह कहना चाहिए कि ये सब आत्मा के हैं। जिस प्रकार यह देह आत्मा नहीं हो सकता उसी प्रकार भट्टाकार भी आत्मा नहीं कहा जा सकता। इन समस्त देह, इन्द्रिय आदि से पृथक् यह आत्मा सबके हृदय में स्थित होती है। मननशील मुनि को समाधि के भारम्भिक-काल में इसी प्रकार चिन्तन करना चाहिए, क्योंकि ब्रह्म से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी होती है। इसके पश्चान् सूक्ष्म शरीर होता है। अपञ्चीकृत से पञ्चीकृत भूत हुए (जो स्थूल शरीर के कारण हैं)। इससे स्थूल शरीर का ध्यान करके ब्रह्म में लय होने का चिन्तन करे।”

इस प्रकार पुराणकार ने सूक्ष्म और स्थूल प्रकृति के विकास का प्रति संक्षेप में जो क्रम बताया है वह सभी प्राचीन स्रोतों और आधुनिक विज्ञान के अनुकूल है। सभी ने पञ्चतत्त्वों की उत्पत्ति आकाश से पृथ्वी-तत्त्व तक मानी है और चैतन्य (आत्मा) को उससे पृथक् स्वीकार किया है। यह जीवात्मा, परमात्मा का ही अंश है और मुनि, ऋषि, सन्धक, ज्ञानी व्यक्ति जो कुछ जप, ध्यान समाधि आदि करते हैं उसका उद्देश्य स्थूल और सूक्ष्म जगत् दोनों के बन्धन से छुटकारा पाकर अपने वास्तविक स्वरूप—ब्रह्म को प्राप्त कर लेना होता है। इसके लिये ‘पद्मिपुष्पाय’ ज्ञान-मार्ग को ही सत्य बताया है। उसने स्पष्ट कह दिया है कि—“ब्रह्म, विज्ञान (सत्य ज्ञान) द्वारा ही प्राप्त होता है, कर्म (कर्मकारण) द्वारा प्राप्त नहीं होता।” यही सिद्धान्त ‘भगवद् गीता’ में भी बताया गया है—

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।

जन्मबन्ध विनिमुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥

(२-५-१)

“बुद्धियोग (ज्ञान-योग) पर आरुढ़ ज्ञानीजन बर्षों से सम्बन्धित फल को त्याग कर, जन्म-मरण रूप बन्धन से छुटकारा पाकर, निर्दोष (प्रमृत-मय) को प्राप्त होते हैं ।”

इससे आगे चल कर उम ध्यान, चिन्तन को बतलाया गया है जिसको भावना जगत् में दृढ़ कर लेने से मनुष्य शरीर-भाव से हटकर आत्म-भाव में स्थित हो सकता है । उसका उद्देश्य यही है कि साधक प्रत्येक स्थूल और सूक्ष्म अवस्था से आत्मस्वरूप को पृथक् समझ कर सासारिक प्रपञ्चो का त्याग करे । इस प्रकार के चिन्तन का एक नमूना देखिये—

‘मैं ब्रह्म परज्योति हूँ जो श्रोत्र, त्वक् और चक्षु से रहित हूँ । मैं ब्रह्म-परज्योति हूँ जो सब प्रकार गन्ध, स्पर्श और शब्द से विवर्जित हूँ । मैं ब्रह्मपरज्योति हूँ जो प्रण, अपान, व्यान, उदान, समान—पाँचों प्राणों से वर्जित हूँ । मैं ब्रह्म परज्योति हूँ जो मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार से वर्जित हूँ । मैं ब्रह्मपरज्योति हूँ जो जरा, मरण, शोक, मोह, भूख प्यास, स्वप्न, सुषुप्ति आदि समस्त अवस्थाओं से रहित हूँ । मैं ब्रह्म परज्योति हूँ जो कार्य कारण से विवर्जित हूँ । मैं केवल नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य, आनन्द, अद्वय ब्रह्म हूँ ।”

पर इस प्रकार की भावना केवल कथन मात्र से दृढ़ नहीं होती न वह किसी के उपदेश में एकाएक प्राप्त हो सकती है । पूर्व जन्मों के साधक और योग सम्प्रदाय प्रपवाद स्वरूप थोड़े से व्यक्तिओं को छोड़ कर शेष सबको इस अवस्था तक पहुँचाने के लिये क्रमशः ही अभ्यास करना पड़ता है । इसीलिये धर्मशास्त्रों में देवाराधन, पूजा, उपासना, व्रत, उपवास, जप, तप, वैराग्य, संन्यास आदि की अनेक विधियाँ बतलाई गई हैं जिनमें से प्रत्येक मनुष्य अपने स्तर के अनुसूच साधन को ग्रहण करके आत्मोत्कर्ष के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है अन्त में प्रद्वैत-स्थिति को प्राप्त कर सकता है । ‘अग्नि-पुराण ने

अर्थों में प्रयुक्त हुआ है और 'ग' का प्रयोग 'गमयिता' नेता-सृजन करने वाला के अर्थ में किया गया है। इस प्रकार 'भग' शब्द का अर्थ पूर्ण ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य होता है। इस प्रकार 'भगवान्' शब्द हरि या विष्णु को ही प्रकट करता है, क्योंकि उपर्युक्त छः ऐश्वर्य उन्हीं में होते हैं। प्राणियों की उत्पत्ति, प्रलय, अगति, गति, विद्या, अविद्या को जो जानता है वही 'भगवान्' कहा जा सकता है। ज्ञान की शक्ति, परमेश्वर्य, वीर्य और तेज वहाँ पूर्ण मात्रा में होते हैं उसी के लिये 'भगवान्' शब्द का प्रयोग किया जाता है।"

इस प्रकार 'ब्रह्म भूत हरि' का ध्यान करने से भी मन सांसारिक विषयो से हट जाता है और मनुष्य निष्काम भाव से संसार के व्यवहारों को करता हुआ भी उससे निर्लिप्त रहता है। इस स्थिति का अभ्यास करने के लिये 'योग-मार्ग' का आविष्कार किया गया है। इन सम्बन्ध में कहा गया है—

"मन की गति का ब्रह्म में जो संयोग होता है वही योग कहा जाता है। जो स्थिर होकर समाधि में स्थित हो जाता है वह परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। इसके लिये यम-नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार द्वारा इन्द्रियों को वश में करके ब्रह्मभूत हरि में चित्त को लगाना चाहिए। वह ब्रह्म, मूर्त (साकार) और अमूर्त (निराकार) दो तरह का होता है। जैसे सनक, सनन्दन आदि निराकार ब्रह्म की भावना से युक्त थे और दूसरे देवादि कर्म की भावना वाले थे। पर आरम्भ में रूप रहित ब्रह्म का ध्यान नहीं किया जा सकता, निराकार पर मन टिक नहीं पाता इन लिये मूर्त ब्रह्मनाम ही सर्व प्रथम चिन्तन करना चाहिए। 'मदभाव' को प्राप्त हो जाने पर मनुष्य परमात्मा के साथ भेद रहित हो जाता है। जो भी भेद होना है वह तो अज्ञान के द्वारा ही हुआ करता है। जब ज्ञान हो जाता है तब कोई भी भेद नहीं रहता।"

चाहे मनुष्य ज्ञान-मार्ग का आश्रय ले और चाहे कर्म मार्ग का, चाहे निराकार ब्रह्म का ध्यान करे चाहे साकार की उपासना, उसका अन्तिम उद्देश्य आत्मा और परमात्मा का संयोग ही होना चाहिए। जब सीवीर नरेश ने जड़ भक्त से आत्मा के योग का मार्ग पूछा तो उसने यही कहा—

'आप मुझमें 'श्रेय' न पूछ कर परमार्थ क्यों नहीं पूछते ? सच्चा श्रेय तो सदा परमार्थ में ही निहित रहता है । हे नृप ! देवों की आराधना करके जो धन-सम्पत्ति की इच्छा किया करता है, पुत्र की चाह करता है, राज्य की कामना करता है, उससे क्या मनुष्य का श्रेय होना है ? लोक दृष्टि से तो वह इन्हीं बातों को श्रेय समझता है, पर विवेकशील व्यक्ति केवल परमात्मा के साथ संयोग होने को ही श्रेय कहते हैं । यज्ञ आदि की क्रिया भी श्रेय नहीं है और बहुत-सा धन इकट्ठा कर लेना भी श्रेय नहीं कहा जा सकता । परमार्थ की दृष्टि से तो आत्मा और परमात्मा का संयोग ही श्रेय है । वह आत्मा एक-व्यग्री, सम, शुद्ध, निर्गुण प्रकृति से पर, जन्म-वृद्धि आदि से रहित, सर्वगत, अश्रय, पर, ज्ञानमय, गुणजाति आदि से असङ्कर और विभु होता है ।"

वर्णाश्रम धर्म--

समाज में रहने वाले सब मनुष्यों को अपने-अपने वर्णों और आश्रम के नियमों का पालन करना आवश्यक है । इसी से व्यक्ति और समष्टि का कल्याण सम्भव है । यद्यपि आज परिस्थितियों के बदल जाने से हमको चार वर्णों का विभाजन हानिकारक जान पड़ने लगा है और आश्रम-धर्म का पालन तो असंभव या अभ्यावहारिक हो ही चुका है, पर एक समय था कि इन्हीं के आधार पर हमारा देश संसार में सर्वोच्च पदवी पर विराजमान था और विद्या, कला, दौलत, उदारता आदि सभी गुणों में आदर्श माना जाता था । 'अग्नि पुराण' में चारों वर्ण और चारों आश्रमों के धर्म का जो परिचय दिया गया है उसमें कितनी ही महत्त्वपूर्ण बातें ऐसी हैं जिनका अनुकरण वर्तमान समय में भी समाज को उच्च बनाने वाला सिद्ध हो सकता है । वैसे तो इस समय यन्त्रों के प्रचार और बड़े-बड़े कारखानों में अनौद्योगिकी सामग्री का निर्माण होने की प्रणाली से समाज की काया पलट हो ही गई है, और अब प्राचीन 'सामाजिक संस्थाओं' का पुनर्जीवित हो सकना सम्भव नहीं रहा । तो भी उनमें से जितनी बातें यत्किञ्चिन् परिवर्तन करके समायोज्य बन सकें तो उनसे लाभ उठाना हमारा कर्तव्य है । इनमें सबसे मुख्य ब्रह्मचर्य-आश्रम ही है जो व्यक्ति और

समाज के लिये 'नींव के पत्थर' की तरह था और आज जिसकी बड़ी दुर्दशा हो रही है। ब्रह्मचर्य के नियमों की कुछ विशेष बातें ये हैं—

“ब्राह्मण का उपनयन और ब्रह्मचर्य तथा आश्रम-प्रवेश आठवें वर्ष में, क्षत्रिय का ग्यारहवें में तथा वैश्य का बारहवें वर्ष में होना चाहिए। गुरु का कर्तव्य है कि शिष्य को सर्वप्रथम शौच (स्वच्छता) और आचार की शिक्षा दे। प्रातःकाल और सायंकाल संध्योपासन तथा हवन आदि नित्य कर्म करे और कभी अपवित्र न रहे। किसी प्राणी की हिंसा (मारना या शारीरिक अथवा मानसिक कष्ट पहुँचाना) अथवा दूसरों की बुराई करना, विशेष रूप से अपलील शब्द मुख से निकालना निषिद्ध है।”

इस प्रकार की शिक्षा का परिणाम यह होता था कि विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् एक सुयोग्य और सभ्य नागरिक बनने के योग्य हो जाता था। उस समय किताबी शिक्षा का स्थान गौण था, और अधिक ध्यान इस पर दिया जाता था कि विद्यार्थी कर्मठ और जीवन में धीरता-वीरता प्रदर्शित करने वाला बने। संभव है उस समय शिक्षा का क्षेत्र वर्तमान समय की अपेक्षा संकुचित रहा हो और अधिकांश विद्यार्थी साधारण धर्म-कर्म की शिक्षा तथा व्यावहारिक-जीवन के लायक लिखना-पढ़ना, हिसाब आदि सीख कर ही सत्तार में प्रविष्ट हो जाते हों, पर वे जो कुछ सीखते थे वह ठोस और आजीवन साथ देने लायक होता था। जब कि वर्तमान समय में कहने के लिये तो दस बारह वर्ष के बच्चे को भी साहित्य, गणित, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि अनेक विषयों का ज्ञाता बना दिया जाता है, पर वह उनमें से अधिकांश विषयों को स्कूल से निकलते ही भूल जाता है और जीवन-सघर्ष में सफल होने की दिशा में उसे बहुत ही कम उपयोगी ज्ञान आधुनिक स्कूलों और कालेजों से मिल सकती है। इतना ही नहीं आज कल की ये शिक्षा संस्थाएँ तो अनेक दुष्टगुणों और बुराचारों का 'शिक्षण' देने का स्वल्प वन गई हैं जिनका विषमय परिणाम हम आजकल के नवयुवक विद्यार्थियों के रहन-सहन में प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

गृहस्थ के सम्बन्ध में विचार करने पर उसमें भी पूर्वापेक्षा क्रियाएँ ही अधिक दिखाई देती हैं। उस समय गृहस्थ सामान्यतया ऐसे नियमों पर चलते थे जिनसे समाज में सुख, शान्ति और सुव्यवस्था का समावेश होता था। यद्यपि उस समय राज की तरह कानूनों, अदालतों और पुलिस आदि की इतनी विशाल व्यवस्था नहीं थी, तो भी लोग अपने सामाजिक-धर्म का पालन करके राज की अपेक्षा कहीं अधिक सुखी और सन्तुष्ट जीवन व्यतीत करते थे। इस प्रकार के धार्मिक-जीवन का विवेचन करते हुए पुराणकार ने कहा है—

“धर्म वही है जिससे भोग और मोक्ष—इहलोक और परलोक दोनों का सुख प्राप्त हो सके। वैदिक धर्म दो प्रकार का है—एक प्रवृत्ति प्रधान और दूसरा निवृत्ति प्रधान। जो कर्म किसी कामना (इच्छा) के हृदय में रखकर कर्म किया जाता है वह ‘प्रवृत्ति’ वाला कहा जाता है और ज्ञान के माध्यम से कर्म किया जाता है वह निवृत्ति वाला माना गया है। वैसे वेदों का अभ्यास तपश्चर्या, ज्ञान की प्राप्ति, इन्द्रियों को काबू में रखना, हिंसा न करना, गुरुजनों की सेवा करना आदि कर्म सदैव कल्याणकारी माने गये हैं। इन समस्त कर्मों में आत्म-ज्ञान प्राप्त करना सर्वश्रेष्ठ है। वह सम्पूर्ण विद्याओं में शिरोमणि है और अमृतत्व प्रदान करने वाला है। संसार के समस्त प्राणियों में अपने आपको देखना, अर्थात् सबको आत्मीय की तरह समझना और उनके सुख-दुःख को अपने ही सुख-दुःख की भाँति अनुभव करना मनुष्यत्व की सर्वोत्कृष्ट स्थिति है और यह सर्वोच्च पारलौकिक गति प्राप्त कराने वाला मार्ग है।”

समाज में रहने वाले प्रत्येक गृहस्थ को अपना दैनिक कार्यक्रम जिस प्रकार रखना चाहिए इसका उल्लेख करते हुए कहा है कि—“ब्रह्ममुहूर्त में गीसा से उठकर इष्टदेव का स्मरण करना चाहिए। मन-भूत का त्याग दिन के समय उत्तर दिशा की तरफ मुँह करके करे और रात्रि के समय दक्षिण दिशा की तरफ मुँह करके। मार्ग, जलाशय के समीप, चरागाह आदि में कभी मल त्याग न करे। मिट्टी से शुद्धि करके कुत्ता-दानु न करे। प्रातःकाल स्नान करना आवश्यक है। उस समय गायत्री आदि मन्त्र का जप करना भी उत्तम है। कोई बीमार पड़ा न हो या रहा हो, गर्भवती स्त्री या रही हो मद्यवादी गुरुजन या

रहा हो तो मार्ग छोड़कर उन्हे प्रथम जाने की रास्ता देना चाहिए। स्नानादि के समय किसी नग्न स्त्री को कदापि न देखे। सर्वदा मुख से 'भद्र-भद्र' प्रशस्ति मङ्गलकारी शब्द ही उच्चारण करना चाहिए। अनिष्ट या अशुभ वचन मुख से नहीं निकालना चाहिए। जो कोई भी हीन अङ्ग वाले हों या हीन स्थिति वाले हों उनकी हँसी नहीं करनी चाहिए। मल मूत्र आदि के वेग को रोकना तथा स्वास्थ्य के सम्बन्ध में अन्य प्रकार से लापरवाही करना अनुचित है।

गृहस्थ-आश्रम सर्व प्रधान, और समाज को उन्नत बनाने वाली समस्त प्रवृत्तियों का आधार है। आजकल तो समाज-कल्याण की अधिकांश प्रवृत्तियाँ सरकार ने अपने हाथ में ले रखी हैं, पर उनमें वेतन भोगी कर्मचारी वस्तु-निश्चय का कितना कम पालन करते हैं यह हम सबको विदित है। पर प्राचीन काल में ये कार्य प्रायः सम्पन्न गृहस्थों द्वारा या उनके सहयोग से किये जाते थे और उनमें प्रायः सच्ची सेवा-भावना का परिचय मिलता था। इसीलिये मानव-धर्म के आदि व्याख्याता भगवान् मनु ने भी गृहस्थ आश्रम की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है—

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ।
 तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्वे आश्रमाः ॥
 यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्तेन चान्वहम् ।
 गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥
 स संघार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ।
 सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रिये ॥

प्रशस्ति—“जिस प्रकार समस्त प्राणी प्राण-वायु के आश्रय से जीवित रहते हैं, उसी प्रकार गृहस्थ आश्रम के आश्रय से अन्य सब आश्रमों का निर्वाह होता है। ये तीनों आश्रम गृहस्थियों की सहायता से अपना जीवन-निर्वाह करने में समर्थ होते हैं इसलिये यही आश्रम सबसे बड़ा माना जाना चाहिए। जो व्यक्ति पारलौकिक कल्याण की इच्छा रखते हैं और इस संसार में भी सुखोगोग चाहते हैं उनको सदा प्रयत्न पूर्वक गृहस्थ-धर्म को धारण करना

चाहिए, दुर्बल-इन्द्रिय अर्थात् जो इन्द्रियों को बशीभूत करने में असमर्थ हैं, इस आश्रम के कर्तव्यों का पालन नहीं कर सकते ।”

गृहस्थ आश्रम का यह एक श्रेष्ठ आदर्श है और जिस देश तथा समाज में ऐसे कर्तव्यपरायण मद्गृहस्थों की बहुतायत होगी वह अवश्य उन्नति के पथ पर अग्रसर होगा । वर्तमान समय में यद्यपि धन तथा साधनों की बहुत अधिक वृद्धि हो गई है, पर आजकल साधन-सम्पन्न लोग समाज के प्रति अपने उत्तर-दायित्व का बहुत कम अनुभव करते हैं । वे अपनी शक्ति और साधनों को अपने और अपने परिवार के ही सुखोपभोग में ही अधिक से अधिक काम में लाते हैं और यदि समाज-कल्याण के कार्यों में कुछ भाग लेते भी हैं तो उसमें अपना कोई प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष स्वार्थ अवश्य रखते हैं । यही कारण है कि इस समय समाज में असंतोष और अशान्ति की निरन्तर वृद्धि होती जाती है । यदि हम अपने व्यवहार में प्राचीन आदर्शों को भी स्थान देते रहें तो इससे वर्तमान स्थिति में बहुत कुछ सुधार हो सकता है ।

यह भी कहा गया है कि जब “गृहस्थ आश्रम में रहते हुए पुत्र के भी पुत्र (अर्थात् नाती) का जन्म हो जाय तब मनुष्य को घर का बन्धन त्याग कर वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर लेना चाहिए ।” प्राचीन काल में जब देश में जङ्गल और वनों की अधिकता थी और उनमें प्राप्त सामग्री से व्यक्ति अपना निर्वाह करके स्वतन्त्रतापूर्वक लोकोपकार के कार्य कर सकते थे, तब वंसा ही विधान बनाया गया था । पर वर्तमान समय में वनों का अभाव हो गया है और जनसंख्या की प्रतिवृद्धि के कारण तरह-तरह के उपायों से प्रत्येक घटिया-बढ़िया भूमि जोती-बोई जा रही है, इसलिये अब वानप्रस्थों के लिये वनवासी होना सम्भव नहीं रहा ।

फिर भी इस आश्रम का मूल स्वरूप और उसका उद्देश्य बहुत उत्तम और श्लाघ्य है । गृहस्थ-आश्रम में साधारण स्थिति के व्यक्तियों को अपनी अधिक शक्ति अपने परिवार और निकट सम्बन्धियों के भरण-पोषण में ही लगानी पड़ती है और समाज-सेवा का अवसर उसको बहुत कम मिल पाता है, इसलिये घर में पुत्रों के सब तरह समर्थ हो जाने पर मनुष्य को अवश्य

अपनी कार्य-प्रणाली बदल देनी चाहिए और गृहस्थी का भार पुत्रों को देकर स्वयं समाज की निःस्वार्थ और निःशुल्क सेवा प्रारम्भ कर देनी चाहिए । इसी प्रकार जन हितकारी कार्यों में सहयोग देने से मनुष्य समाज के भ्रष्टाण से उन्नत हो सकता है ।

अध्यात्म का सार—

अन्त में सब धर्मों के सार में यही बतलाया गया है कि 'जो प्रभु हृदय में दीपक की भाँति आत्मा के रूप में निहित है उसी का ध्यान करना चाहिए और मन तथा इन्द्रियों को सासारिक विषयों से हटा कर परमार्थ में लगाना चाहिए । अपने मन को विभिन्न प्रकार की स्वार्थ युक्त वृत्तियों से ग्रहित करके आत्मा को परमात्मा के ध्यान में लगाना ही उत्तम योग है । जो इन्द्रियाँ बहिर्मुखी होती हैं अर्थात् सासारिक विषयों की ओर प्रवृत्त हुआ करती हैं, उन इन्द्रियों को अन्तर्मुखी करके मन में ही लगादेवे और फिर उस मन को आत्मा में योजित कर देना चाहिए । इस प्रकार सब विषयों से छुटकारा पाकर परम सत्त्व का ध्यान करना यही सबसे बड़ा लक्ष्य है, दोष सब बातें तो ग्रन्थों का विस्तार करने वाली हैं । इस प्रकार जिस ब्राह्मण ने डम कतव्य (परमार्थ-धर्म) का पूर्ण पालन किया है उसने उपवास, व्रत, स्नान, तीर्थ, तप—इन सबका फल प्राप्त कर लिया ऐसा समझो । एकाक्षर अर्थात् 'ॐ' परम ब्रह्म है और प्राणायाम परम तप होता है । ब्राह्मण के लिये गायत्री से बढ़कर कुछ नहीं है, वह पवित्रता प्रदान करने में सर्वश्रेष्ठ है ।'

अध्यात्मका अर्थ लोक सम्पर्क का त्याग कर किसी निर्जन स्थान में जा बैठना कदापि नहीं है । वहाँ सिवाय पत्थर, मिट्टी के परमात्मा कहाँ दिखाई पड़ेगा ? उसका निवास तो विवेक-युक्त मानवों के भीतर ही है और उन्हीं के सम्पर्क में रह कर उसका साभिध्य प्राप्त किया जा सकता है । कहा गया है कि परमात्मा प्रेम-स्वरूप, करुणा-स्वरूप है । तो प्रेम और करुणा का भाव तो हृदय में तभी उत्पन्न होगा जब उसका कोई पात्र सम्मुख उपस्थित होगा । इसलिये अध्यात्मवाद का प्रयोग और उसकी वृद्धि जन-समाज में रह

कर ही सम्भव है और प्राचीन ऋषि तथा मध्यकालीन सन्त इसी आदर्श को समाज के सामने उपस्थित करते आये हैं। पुराण आदि सभी धर्म ग्रन्थ भी यही उपदेश देते हैं। कष्ट पीड़ित, अभाव ग्रस्त प्राणियों का उपकार करना ही सच्चा धर्म और आध्यात्मिकता का परिचायक है।

उदारता का दृष्टिकोण—

कई साम्प्रदायिक पुराणों में धर्म विषयक प्रश्नों पर बहुत सखीरांता और कट्टरता का परिचय दिया गया है, पर यह पुराण इस दृष्टि से काफी उदार है। इसमें किसी सम्प्रदाय और उसके इष्टदेव को न तो बहुत अधिक बढ़ाया गया है और न गिराया गया है। विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य, गणेश सब की पूजा, उपासना का इसमें समता के भाव से वर्णन किया गया है। इसमें सबसे बड़ा नाम परमात्मा—परब्रह्म का ही माना गया है, जिससे कोई समझदार इनकार नहीं कर सकता।

यही बात इसकी प्रायश्चित्त तथा विभिन्न व्रतियों के परिमार्जन के सम्बन्ध में दिखाई पड़ती है। इसमें विभिन्न दोषों के जो प्रायश्चित्त दिये गये हैं वे अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा बहुत सरल हैं और अन्त में यह भी कह दिया गया है—

“परदारा, पराया घन और जीवहिंसा का कोई पाप बन पड़े तो मनुष्य की शुद्धि का मुख्य प्रायश्चित्त भगवान् की स्तुति होता है। “विष्णवे-विष्णवे-विष्णवे नित्यं नमः” यह वहे, अर्थात् भगवान् विष्णु के लिये मेरा नित्य ही नमस्कार है। चित्त में स्थित रहने वाले विष्णु को मैं नमस्कार करता हूँ और अहंकार में रहने वाले हरि को प्रणाम करता हूँ। चित्त में रहने वाले ईश को, जो अव्यक्त हैं, अनन्त है, अपराजित हैं उनको मेरा नमस्कार है। पूर्णतया पूजनीय विष्णु को नमस्कार करता हूँ। अनादि निघन और विभु भगवान् को मेरा नमस्कार है। वह भगवान् विष्णु ध्यान किये जाने पर पाप का हरण किया करते हैं। स्वप्न में भी देखे जाने पर भावना मात्र से वे पाप को दूर कर देते हैं। उन उपेन्द्र विष्णु को जो प्रणतों के दुःख को दूर करने वाले हैं,

में प्रणाम करता हूँ। इस निराधार जगत् में जो कि नीचे अन्धकार में डूब रहा है हाथ का अवलम्बन स्वरूप परात्पर विष्णु हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। हे सब ईश्वरो में भी ईश्वर ! हे विभो ! हे परमात्मन् ! हे अधोक्षज ! हे हृषीकेश ! तुम्हारे लिये बाग्भार नमस्कार है। हे नृसिंह ! हे गोविन्द ! हे भूत-भावन ! हे केशव ! जो भी मेरी दोषयुक्त वृत्ति हो या कोई पाप हो, उसको बिना ध्यान किये आप शान्त कर दें। "....." इस स्तोत्र को जो भी कोई पढ़ता है या श्रवण करता है, वह शरीर, मन अथवा वाणी से होने वाले पापों से निश्चय ही मुक्त हो जाता है ॥'

इसी प्रकार अन्य स्थान पर लिखा है कि—“भगवान् हरि का स्मरण करने से चाहे कोई संस्कार किया हुआ हो या असंस्कृत हो सबका मोक्ष होता है और स्वर्ग की प्राप्ति भी होती है।” इसका अर्थ यह नहीं कि इससे लोगों को पाप करने की छुट्टी मिल जाती है या पाप-प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया जा रहा है। बल्कि इसका आशय यही है कि जिस व्यक्ति के विचार शुद्ध हैं, पर किसी परिस्थिति अथवा आकास्मिक घटनावश जिससे कोई दोष हो गया तो उसको स्मृतियों में बतलाई गई बहुत सच्ची और खर्चीली प्रायश्चित्त की प्रक्रिया में डाले बिना हार्दिक पश्चत्ताप से पुनः शुद्ध होने का अवसर दिया जाय, और विचार किया जाय तो वास्तविक प्रायश्चित्त यही है। घन खर्च करके पड़ित, पुरोहितों द्वारा प्रायश्चित्त का विधान कराने में तो दिखावा ही अधिक होता है। फिर प्रायश्चित्त सम्बन्धी निर्णय का दूसरा पहलू विशेष परिस्थितियाँ भी हैं। जैसे युद्ध अथवा उपद्रवों के समय बहुत से स्त्री-पुरुषों के धर्म जबर्दस्ती नष्ट कर दिये जाते हैं। मूल्य और स्वार्थी 'पण्डित' ऐसे अवसरों पर भी 'सब को एक ही लकड़ी से हाँकने' की जिद्द करते हैं यद्यपि इससे देश और समाज का घोर भवल्याण होता है। ऐसी मूर्खता के परिणाम स्वरूप मुसलमानी शासन-काल में लाखों नर नारी हिन्दू-समाज से पृथक् हो गये और आगे चल कर उन्हीं के वधघर हिन्दू-समाज की ऊड़ पर बुरहाड़ा चलाने वाले बने।

इस सम्बन्ध में एक नहीं अनेक उदाहरण हिन्दू-समाज के मौजूद हैं। उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान की सीमा के समीप रहने वाले कई लाख भलखाने

और मेव इसी प्रकार हिन्दू-समाज से पृथक् कर दिये गये थे । उनके कुलों में मुसलमान आक्रमणकारियों ने गोमांष फेंक दिया और भूल से अथवा विवश होकर उनका पानी पी लेने से उन सबको हिन्दू-समाज से बहिष्कृत मान लिया गया । महाकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर के पूर्वजों में से किसी को जबर्दस्ती बादशाह का खाना सुंघाया गया, इस पर लोगों ने उनको समाज-बहिष्कृत मान लिया और ब्रह्म-समाज सम्बन्धी विवाद में ऐसे 'मूर्खों, ने कहा कि 'देवेन्द्रनाथ ठाकुर (रवीन्द्रनाथ के पिता) तो नाम के ही ब्राह्मण हैं ।' ऐसे मूर्ख जो अपने हठ के आगे समस्त हिन्दू जाति की हानि पहुँचाने में सङ्कोच नहीं करते वास्तव में स्वयं सबसे बड़े पापी हैं । 'अग्नि पुराण' में इस प्रकार की घटनाओं को उनके वास्तविक रूप में देखा गया है और उनका प्रायश्चित्त वैसा ही सरल बतनाया है । उसमें एक स्थान पर दूषित स्त्रियों के सम्बन्ध में लिखा है—

बलात्कारोपयुक्ता चेद्दरिहस्तगताऽपि वा ।

स त्यजेद् दूषितां नारी ऋतुकालेन शुध्यति ॥

अर्थात्—“यदि किसी स्त्री को कोई बलपूर्वक भ्रष्ट कर दे अथवा वह शत्रु के हाथ में पड़ जाय तो उस समय उसे त्याग दे । पर ऋतुकाल (मासिक धर्म) हो जाने पर जब वह शुद्ध हो जाय तब उसे ग्रहण करले । इसी प्रकार यदि किसी स्त्री के अन्य वर्ण वाले का गर्भ रह जाय तो प्रसव हो जाने पर रजोधर्म द्वारा वह फिर शुद्ध हो जाती है ।”

यह पुराण पति द्वारा त्यागी हुई और विधवा स्त्रियों के पुनर्विवाह को शास्त्र सम्मत बतलाता है—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतो ।

पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥

मृते तु देवरे देया तदभावे यथेच्छया ॥

अर्थात्—पति के नष्ट हो जाने, मर जाने, सन्यास ग्रहण कर लेने पर, क्लीब (नपुंसक) हो जाने पर और पतित हो जाने पर इन पाँच आनति की अवस्थाओं में स्त्रियों को अन्य पति बनाने का विधान है । पति के मृत हो

“राजा को प्रजा के प्रति सर्वदा ऐसा ही रहना चाहिए जैसे गर्मिणी और सहघमिणी होती है। वह अपने गर्भस्थित बच्चे और पति के सुख का ही सदा ध्यान रखती है। उस राजा के यज्ञों और तपश्चर्या से क्या लाभ जिसकी प्रजा ही रक्षित न रहती हो। जिस राजा की प्रजा मली-भांति रक्षित है उसके लिये गृह स्वर्ग के समान ही होना है। जिस राजा की प्रजा सुरक्षित एवं सुखी नहीं उसका मन्दिर भी नरक तुल्य है। प्रजा के मुक्त और दुष्कृत दोनों का छठा भाग राजा लिया करता है। प्रजा की सुरक्षा करने से राजा धर्म को प्राप्त करता है और प्रजा की रक्षा न करने से पाप की प्राप्ति होती है।

“राजा को अपनी प्रजा के छोटे बालकों की सम्पत्ति की व्यवस्था पूरी ईमानदारी से करनी चाहिए और जब वे बयस्क हो जायें और गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें तब वह उनको दे देनी चाहिए। विधवा और रोगग्रस्त स्त्रियों की सम्पत्ति को यदि उनके सम्बन्धी हरण करें तो उनको चोर के समान दण्ड देना चाहिए। यदि चोर किसी की सम्पत्ति चुरा ले जायें तो उसकी पूर्ति राजा को स्वयं करनी चाहिए और चोरों से रक्षा करने का जो अधिकारी हो उससे करानी चाहिए। जिस तरह पिता अपनी और पुत्र की रक्षा किया करता है उसी प्रकार राजा को अपनी प्रजा की रक्षा करनी चाहिए। राजा से संरक्षित प्रजा धर्म करती है उससे राजा की आयु, धन वैभव की वृद्धि होती है। राजा का जीवन राज्य के लिये ही होता है, इसलिये प्रजा का पूर्ण ध्यान रखने से ही राजा के जीवन की सफलता है। भरण-पोषण किया हुआ बालक जिस तरह बलवान् कर्म के योग्य होता है उसी प्रकार मली-भांति भरण किया हुआ राष्ट्र कर्मशील होता है।”

यद्यपि वर्तमान समय में छत्र धारण करके सिंहासन पर बैठने वाले राजाओं की परम्परा का अन्त हो गया है, फिर भी जो कोई शासन-पद पर नियुक्त किया गया हो उसका उत्तरदायित्व और कर्तव्य राजा की तरह है। इतना ही नहीं पहले राजा अकेला होता था और मन्त्रियों के होने पर भी प्रत्येक विषय का अन्तिम निर्णय वह स्वयं करता था और इसलिये प्रत्येक

अच्छे बुरे परिणाम का वही एक मात्र उत्तरदायी माना जाता था। पर आजकल राज्य का कार्य भार एक के हाथ में रहने के बजाय अनेक मन्त्रियों के हाथों में बँटा रहता है और इसलिये एक की नहीं सबकी समान रूप से जिम्मेदारी होती है। पर खेद है कि आज एक की जगह अनेक 'राजा' होने पर भी प्रजा का जीवन न तो सुखी है न सुरक्षित। वरन् अधिकांश मन्त्री प्रायः निजो स्वार्थ साधन के दोषी भी पाये जाते हैं। ऐसे व्यक्ति जनता के हित को कहाँ तक सुरक्षित रख सकते हैं इस सम्बन्ध में विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। इसलिये यद्यपि हम वर्तमान समय में एक तन्त्र-शासन पूर्णतया त्याग चुके हैं, तो भी न्याय की दृष्टि से स्वीकार करना पड़ता है कि उस युग में जो राजा उपर्युक्त राजधर्म का पालन करते थे, उनका शासन प्रजा के लिये वर्तमान जन-तन्त्र से अनेक गुना सुख-मुविधाजनक होता होगा।

मनुष्यों के लिये सामान्य कल्याणकारी नीति—

ससार में मनुष्यों के लिये सबसे अधिक कल्याणकारी मार्ग धर्मानुकूल आचरण करना ही है, "धर्मो रक्षति रक्षितः" की उक्ति हमारे यहाँ सदैव सत्य और सर्वोत्तम मानी गई है। जो धर्म का पालन करेगा वह कभी आपत्तियों घबरा पतन की प्राप्त नहीं हो सकता। उसे यदि सयोगवश कभी विपरीत परिस्थितियों का सामना भी करना पड़ेगा तो अन्त में वह अधिक श्रेष्ठता और उच्च पदवी की ही प्राप्त होगा। सर्वसाधारण को ऐसे धर्माचरण करने के लिये इसमें जो भगवान् राम के भादेशों का संकुलन किया गया है वह विशेष महत्त्व-पूर्ण और व्यवहारोपयोगी है। भगवान् राम लक्ष्मण की नीति-धर्म की शिक्षा देते हुए कहते हैं—

"न्याय से धन की कमाई करना, उस न्यायाजित धन का बढ़ाना और उत बड़े हुए धन की रक्षा करनी चाहिए। इसके पश्चात् उस धन का प्रयोग तथा दान विभी संशय में करना चाहिए। धन की यही चार गतियाँ हैं। मय (न्याय) का मूल विनय होता है। धात्र के निश्चय से विनय धाता है। रक्षियों का जीवन भी विनय है। सम्पत्ति प्राप्त करने के लिये अनेक गुणों का

होना आवश्यक होता है। शास्त्र का ज्ञान, बुद्धि, धीरज, दक्षता प्रगल्भता, धारणा, उत्साह, वाग्मिता, उदारता, सहृदयीलता, पवित्रता, मंत्रीभाव, त्याग, कृ-ज्ञान, शान्त स्वभाव, इन्द्रिय-संयम—ये सब गुण सम्पत्ति प्राप्ति के हेतु होते हैं। सर्वत्र फैले हुए विषय रूपी जङ्गल में दौड़ लगाते हुए विषयों में मग्न इन्द्रिय रूपी हाथी को ज्ञानरूपी भ्रंशु से बचा में करना चाहिए।

“काम, क्रोध, लोभ, हर्षाद्विरेक, अभिमान, मद इन षड् वगं का त्याग कर देना चाहिए। शासन-कर्त्ता को भ्रान्तिवशिकी और त्रयी विद्याओं अर्थात् धर्म-धर्म, वार्त्ता, दण्ड-नीति, नय-प्रत्यय का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। अहिंसा, मधुर-भाषण, सत्य, शौच, दया, क्षमा ये समस्त चारों दणं वालों का और चारों आश्रमों का सामान्य-धर्म कहा गया है। राजा का कर्त्तव्य है कि प्रजा पर पूर्ण अनुग्रह रखे। साधु पुरुषों और सत्पुरुषों का हित-साधन सज्जनों का प्रधान लक्षण है। राजा को अपना सुख त्याग कर भी प्रजा के सुख के लिये प्रयत्न करना चाहिए। सज्जनों और प्रियजनों से तो सद्ब्यवहार किया जाता है पर साधु व्रतधारी अपने से द्वेष रखने वालों के साथ भी कटु व्यवहार नहीं करता। जो सर्वदा प्रिय वचन ही बोला करते हैं वे देवता के समान माननीय होते हैं। इसके विपरीत क्रूर वचन बोलने वाले साक्षात् पशु ही होते हैं।

गुरुजनों की पूजा देवता की भाँति करनी चाहिए और मित्रजन का सम्मान आत्मवत् करना चाहिए। प्रणिपात द्वारा गुरु को, सद्ब्यवहार द्वारा सेवकों को, सत्कर्मों से देवताओं को, सद्भाव से मित्रों को, आदर सत्कार से बान्धवों को, प्रेम से स्त्री को, दान से निम्न वर्ग वालों को और चातुर्य द्वारा अन्य सब लोगों को अपने अनुकूल बनाये रखना चाहिए। स्वधर्म पालन करते हुए दूसरों की निन्दा से बचे, कृपण लोगों पर कृपा रखे, सबसे मधुर वचन बोले और जो सच्चे विश्वासपात्र मित्र हों उनका प्राणपण से उपकार करे। अपनी समृद्धि की दशा में धमण्ड नहीं करना चाहिए और दूसरों की वृद्धि देख कर कभी द्वेष-भाव न रखे। दोषारोपण किये जाने पर सहिष्णुतापूर्वक व्यवहार करे और बन्धुगणों को सदैव सहयोगी बना कर रखे। महान् आत्मा

में जो नियम बताये गये हैं और जो 'दम' आदि विशेष नियम हैं उनका 'व्रत' के रूप में पालन करना बहुत बड़ा तप होता है। ये इन्द्रियों को वश में रखने में बहुत सहायक होते हैं। जो ब्राह्मण परिस्थितियों वश अग्नि होत्र आदि वैदिक कर्मों को छोड़ चुके हैं उनके लिये ये 'व्रत' ही तपश्चर्या का उद्देश्य पूरा कर देते हैं।

"व्रत के समय परान्न और स्त्री-सहवास त्याग देना चाहिए। उन समय पुनः, अलङ्कार नवीन वस्त्र आदि का भी प्रयोग न करे। बहुत अधिक जल पीना और दिन में सोना नियम विरुद्ध है। धर्म के दश लक्षण ब्रहे गये हैं उनका व्रत काल में ध्यान पूर्वक पालन करना चाहिए। ये दश लक्षण इस प्रकार हैं—क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रिय-संयम, देवपूजा, अग्निहरण, सतोष, अस्तेय। उपवास के दिन पवित्र मन्त्रों का जप करे और मुविधा हो तो हवन भी करे।"

पुराणों में अधिकांश व्रत कामनाओं की पूर्ति करने वाले ही बताये गये हैं। एक पुराण में तो वेश्याओं के लिये 'अनङ्गदान-व्रत' का भी विधान विस्तार पूर्वक दिया गया है। एक अन्य व्रत में विष्णु भगवान् से यह प्रार्थना की गई है कि—“जिस प्रकार आपकी शैल्या सदैव लक्ष्मीजी से अमूल्य (युक्त) रहती है उसी प्रकार मेरी शैल्या भी सदा अमूल्य रहे।” इसका नाम 'अमूल्य शयनम्' व्रत है। इस प्रकार अनेक कामधार्मिक लेखकों ने धर्मशास्त्रों की दुर्गति कर डाली है। पर 'अग्नि पुराण' के व्रत-विधान में ऐसी कोई बात नहीं मिलती। उसमें व्रत के अवसर पर जो प्रार्थना की जानी है वह काफी गम्भीर और धार्मिक भावों की वृद्धि करने वाली है। उसमें कहा गया है—

“हे व्रतपते ! मैं कीर्ति, सत्तान्, विद्या, सौभाग्य, आरोग्य की वृद्धि, निमलता, भोग और मुक्ति के उद्देश्य से यह व्रत करता हूँ। हे जगत्पते ! मैंने यह श्रेष्ठ व्रत आपके सम्मुख ग्रहण किया है। आपके प्रसाद से यह निर्विघ्न समाप्त हो, यही मेरी प्रार्थना है। इस श्रेष्ठ व्रत के ग्रहण करने पर यदि यह अपूर्ण रहे और मेरी मृत्यु हो जाय तो भी आपके प्रसाद से वह पूर्ण हो जाय।

समस्त विद्धि प्राप्त करने के लिये मैं व्रत-मूर्ति और जगत्-मूर्ति का मण्डल में आवाहन करता हूँ। आपके लिये मेरा नमस्कार हो। हे केशव ! आप मेरे सान्निध्य में स्थित रहें। मन के द्वारा कलित और भक्तिपूर्वक समर्पित पञ्चगव्यों से, शुभ जलों से, पञ्चामृतों से मैं आपको स्नान कराता हूँ। आप मेरे पापों के हनन करने वाले हों। उसी प्रकार गन्ध और पुष्पोदक (मानसिक) से यह शुभ अर्घ्य अर्पित किया जाता है। इस अर्घ्य, पाद्य तथा आचमन को आप ग्रहण करें और सर्वदा मुझे अर्घ्य देने योग्य बना दें। हे वस्त्र-पते ! इस परम पवित्र वस्त्र को स्वीकार करें और सर्वदा अच्छे वस्त्र आदि तथा सुन्दर पाशू-यण आदि से मुझे समाहित करें। हे गन्धमूर्ते ! आप इस सुगन्धित और विमल गन्ध की ग्रहण कीजिये और मुझे पापों की गन्ध से विहीन बनाइये। आप इन परम सुगन्धित पुष्पों को स्वीकार करें और मुझे सर्वदा पुष्पादि से परिपूर्ण करने की कृपा करें। इस धूप को ग्रहण करें। हे धूपित ! आप मुझे सुन्दर धूप से सदा धूपित करें। इस ऊपर की शिखा वाले दीप को स्वीकार करें। हे दीपमूर्ते ! आप मुझ प्रकाश से समन्वित और सर्वदा ऊर्ध्वगति करें। हे प्रभो ! मन्त्रों से रहित, क्रिया से हीन और भक्ति से शून्य मैंने जो आपको पूजा की है, वह सब पूर्ण मानी जानी चाहिए।”

“आप मुझे धर्म प्रदान करें, धन दें और सद्गुणों से युक्त संतान दें। कीर्ति, विद्या, धातु, स्वर्ग और मोक्ष मुझे प्रदान करें। हे व्रतो के स्वामिन् ! मेरी समर्पित इस अर्चना को ग्रहण करके आप यहाँ से पधारें। हे प्रभो ! आपको विनम्रित हो करता हूँ, किन्तु पुनः यहाँ पधारेंगे और मुझे वर प्रदान करेंगे इसी भावना को लेकर इस समय आपको विदा कर रहा हूँ।”

इस प्रकार भी भावना से जो भी व्रत किये जायेंगे वे निश्चय ही आत्मिक ज्ञान और धर्म-भाव की दृढ़ करने वाले होंगे।

स्वप्न और शकुन—

मनुष्य की दार्शनिक और मानसिक शिष्याओं में स्वप्न भी बड़ा गूढ़ विषय है। एक स्थान पर पढ़े हुए और बाह्य ज्ञान से शून्य होने पर भी मनुष्य

संसार भर के ऐंने-ऐंने अनूठे दृश्य देख लेता है जिन की जागृत प्रवृत्ति में सम्भावना भी नहीं हो सकती। यद्यपि आधुनिक मनोविज्ञान के ज्ञाताओं ने इस सम्बन्ध में कुछ खोजबीन की है, पर स्वप्न दर्शन की अनेक घटनाएँ ऐसी विचित्र होती हैं कि उनका समाधान वैज्ञानिक सिद्धान्तों द्वारा नहीं होता। उदाहरणार्थ अमरीका के प्रेसीडेंट अब्राहम लिंकन की पत्नी ने स्वप्न में देखा कि उसके पति की हत्या कर दी गई है। एक दिन बाद ही लिंकन को एक आतनायी ने नाटक देखते हुए मार डाला। इसी प्रकार और भी कई स्वप्न इतिहास में प्रसिद्ध हैं जिनमें स्वप्न में देखी हुई बात अग्रे चल कर ठीक निकली।

इस तथ्य के आधार पर भारतीय मनीषियों ने स्वप्न को सूक्ष्म शरीर से सम्बन्धित मान कर विविध प्रकार के स्वप्नों को शुभ और अशुभ स्वप्नों की श्रेणी में बांट दिया है और उनके फल भी लिखे हैं। 'अग्नि-पुराण' में भी स्वप्नों के फल के सम्बन्ध में एक अध्याय है जिसमें शुभाशुभ स्वप्नों का विवेचन किया है। उनमें कहा है कि—“नाभि को छोड़ कर कर शरीर के अन्य भागों में तृण तथा वृक्ष उत्पन्न होना मुण्डित अथवा नग्न होना, मँले वस्त्र धारण करना, शरीर में तैल मर्दन, कीच में लिपटना, ऊँचे से गिरना, विवाह होना गीत-गान होना, भूला पर चढ़कर नूलना, पक्षी-मांस का भक्षण, माता के पेट में प्रवेश करना, चित्ता का दर्शन, साल पुष्पों की माला धारण करना, वाराह, घोड़ा, गधा, ऊँट की सवारी, चन्द्रमा, सूर्य का नीचे गिर जाना, गोबर के पानी से स्नान करना, स्याही से स्नान करना, घर का गिर जाना, गेहूँ वस्त्र धारण करना आदि अशुभ स्वप्न हैं। उनको किसी से कहना नहीं चाहिए। उनको देखने पर फिर सो जाना चाहिए। भगवान् का स्मरण करने, देव स्तुति अथवा पुरुष सूक्त का पाठ आदि करने से उनका दोष मिट जाता है।”

“पहाड़, महल, हाथी, वृषभ पर चढ़ना, श्वेत पुष्पों के पेड़ पर चढ़ना, बाल सफेद हो जाना, बहुत श्वेत वस्त्र धारण करना, सूर्य, चन्द्र का ग्रहण, जुमा या संक्राम में जीत होना, खीर खाना, रक्षिर में स्नान करना, दूध पीना,

रात्रि, हाथी, घोड़ा, सुवर्ण, चैल, गाय आदि का देखना शुभ स्वप्न होते हैं ।”

यह भी कहा गया है कि रात्रि के प्रथम प्रहर में दिखाई पड़ने वाले एक वर्ष में, दूसरे पहर के छः मास में, तीसरे पहर के तीन मास में और चौथे पहर वाले आधे मास में फल देने वाले होते हैं । जो स्वप्न प्रातः होते ही दिखाई दें उनका फल दस दिन में ही प्रकट हो जाता है । पर सब स्वप्न सच्चे नहीं होते और यदि एक रात में दो बार स्वप्न दिखाई पड़ें तो उनमें से पिछला ठीक माना जाता है । जो स्वप्न शरीर की अस्वस्थ दशा में या पेट के भारीपन आदि के कारण दिखाई दें वे भी निरर्थक होते हैं । शुभ या अशुभ घटनाओं की पूर्व सूचना देने वाले स्वप्न कभी-कभी बहुत गम्भीर अवसरों पर ही दिखाई देते हैं । अनेक व्यक्ति सदैव भौत-भौति के स्वप्न देखा करते हैं, जिनमें से अधिवास अगने पर याद भी नहीं रहते, उनको निरर्थक मानना चाहिए । वे एक प्रकार से शारीरिक अस्वस्थता के चिह्न हैं, जिनका यदि यथोचित दृष्टि से उपचार किया जाय तो वे बन्द हो सकते हैं ।

हमारे देश में कोमा से शकुन का सम्बन्ध बहुत अधिक जोड़ा गया है । “जब कोमा घर पर बार-बार आकर बोलता है तो इसे प्रायः किसी के परदेश में जाने की सूचना या शकुन समझना चाहिए । इसी प्रकार यदि वह बायीं तरफ भयभीत होकर रोता-सा बोलना हो तो किसी विशेष दुर्घटना का चिह्न है । उसका दायीं ओर बोलना घन की हानि करने वाला होता है । कोमा यदि बीच में गला हो तो इसे उत्तम कहा गया है । “बुल्ले की भी शकुन का साधन माना गया है । बुल्ले का रोना शहर या गाँव में किसी के मरने या बीमार होने का चिह्न माना जाता है । “यदि कृत्ता गुँह में जूता लिये दिखाई दे तो यह उत्तम है । बिना किसी कारण के गाय का घघातक रँभाना, उसके स्थायी के निवे किसी भय का सूचक होता है, रात्रि में रँभावे तो खोंगें का भय जानना चाहिए ।” इसी प्रकार घोड़ा और हाथियों की चेष्टाओं को देख कर अनेक प्रकार के अनुमान बिग्रे जाते हैं । पर याध्यं है कि किसी के सम्बन्ध में कोई शकुन इन घघात में नहीं दिख गया जैसा ‘माया दाटना’ वाज-

कल एक बहुत प्रसिद्ध शकुन माना जाता है। वायु और वर्षा के चिह्नों में भी शुभ-अशुभ की सूचना मिल सकती है। रत्नों में भी शुभ-अशुभ का ध्यान रखने को कहा गया है। प्राचीन काल में राजा और बड़े लोग रत्नों की मालायें और मय्य आभूषण प्रायः धारण करते थे। अब भी घनी लोग अंगूठी में हीरा, लाल, आदि के तंग जड़ाते हैं। 'रत्न-परीक्षा' के अध्याय में द्वारा, मरकत और मोती को पहिचानने की कई विधियाँ दी गई हैं। उनमें विशेष रूप से उनकी चमक, कामा और रङ्ग देखा जाता है। जो स्वामाधिक और सुश्रुता युक्त होती है वही उत्तम माना गया है। योरोप के बादशाह भी अभी तक अपने मुकुटों में बहुमूल्य हीरे लगायी करते थे। इङ्गलैण्ड के राजमुकुट में लगा कोनूर हीरा तो जगत् प्रसिद्ध है और अनेक व्यक्ति उसे वहाँ के राज्यवंश के लिये बड़ा कल्याणकारी मानते हैं। इसी प्रकार अनेक हीरों को योरोपीय लेखकों ने बहुत अशुभ बताया है।

पुरुष और स्त्रियों के लक्षण—

इस देश में किसी समय शुभाशुभ का विचार इतना अधिक बढ़ा हुआ था कि वह केवल स्वप्न, शकुन आदि जैसी सूक्ष्म क्रियाओं और पशु-पक्षियों तक ही सीमित न था वरन् पुरुष और स्त्रियों के अङ्गों के शुभाशुभ का निर्णय भी भिन्न-भिन्न चिह्नों के आधार पर किया जाता था। इस सम्बन्ध में कुछ बातें बड़ी कोनूहल जनक हैं—

'नेत्रों को छोड़कर जिसके नेत्र और दन्त मुक्ल होते हैं वह 'द्विमुक्लक' होता है। जिसके उदर में तीन बलि होती हैं वह 'त्रिवलीमान्' कहा जाता है। छाती, मस्तक और वस्त्र जिसका चौड़ा होता है, उसे 'त्रिविस्तीर्ण' कहते हैं। अंगुलियाँ, हृदय, पृष्ठभाग और कटि जिसके प्रशस्त हों वह 'चतुःसम्' होता है। जिसकी चार दाढ़ चन्द्र की नीं आभावाली होती हैं वह 'चतुर्दंष्ट्र' होता है। दोनों देशों की तारिकाएँ, भौहें और बाल जिसके काले होते हैं उसे 'चतुःकृष्ण' कहते हैं। रुखा और मांस से रहित देह अशुभ माना जाता है। वह पुरुष धन्य है जिसकी बाएँ मधुर और गति मस्त हाथी के समान होती है। जिसके

एक रोमकूप है एक ही रोम रहता वह भय से रक्षित रहता है ।"

इसी प्रकार स्त्रियों के लिये कहा गया है कि—“सुनील केशों वाली, पतले अङ्गों वाली, बिना लोम वाली, जिसके पैरों के तलवे समान रूप से भूमि को स्पर्श करते हैं, वह स्त्री शुभ होती है । जिसका उदर लम्बायमान हो और रोमों से रूख न हो वह शुभ होती है । जिसकी भृकुटियाँ जुड़ी हुई और कुटिल हों वह शोभन नहीं मानी जाती । जिस स्त्री की वनिष्ठिका उँगुली भूमिना स्पर्श नहीं किया करती वह साक्षात् मृत्यु के समान होती है ।” कुछ विद्वानों ने तो शरीर भङ्गों के लक्षणों को सामुद्रिक शास्त्र (हस्तरेखा शास्त्र) का एक भङ्ग ही बना दिया है ।

स्वास्थ्य रक्षा और चिकित्साशास्त्र—

इस पुराण में चिकित्साशास्त्र का वर्णन भी किया गया है और रोग निवारण के लिये अनेक औपधियों बतलाई गई हैं । स्वास्थ्यरक्षा सम्बन्धी ज्ञान मनुष्य के लिये आवश्यक है और इस दृष्टि से अग्न्य विषयों के साथ इसका वर्णन उचित ही है । इस दृष्टि से ‘गरुड-पुराण’ का नाम भी उल्लेखनीय है । उसमें औपधियों का वर्णन इतने विस्तार के साथ किया गया है जिससे एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही बन सकता है । पर ‘अग्नि पुराण’ में केवल नुस्खे ही नहीं दिये गये हैं बरन् स्वास्थ्य सम्बन्धी सिद्धान्तों और औपधि-तत्व का भी विवेचन किया गया है और रोग निवारण की अग्न्य विधियाँ भी बताई गई हैं । विभिन्न प्रकार की व्याधियों का भेद दर्शाते हुए इसमें कहा गया है—

“समस्त व्याधियाँ मानसिक, शारीरिक, प्रागन्तुक और सहज-चार प्रकार की हुमा करती हैं । ज्वर, खाँसी, कुष्ठ आदि शारीरिक व्याधियाँ हैं । औषध आदि मानसिक हैं । चोट आदि लग जाने से जो व्याधि पैदा हो जाती है । वह आगन्तुक है । भूत और वृद्धना आदि सहज व्याधियाँ हैं और समया-मुगार स्वामाधिक रूप से हुमा करती हैं । शारीरिक और मानसिक व्याधियों के लिये गृह, गुह, मरण आदि दान करना चाहिए । अशुभवार के दिन में विप्र को अशुभ दान करने वाला अमरत गोमों से छुटकारा पा जाता करता है ।

शनिवार के दिन तैल का दान करे। माश्विन में गोरस और भन्न का दान करना चाहिये। त्रिमधुर (दूध, घृत और मधु) से हूवा हुआ कर दूध को गायत्री मन्त्र द्वारा अग्नि में हवन करना चाहिए। जिस नक्षत्र में व्याधि-घात हो उसके शुभ स्थल में बनि (विभिन्न पदार्थों की) देनी चाहिए। जो मानसिक रोग क्रोध, चिन्ता आदि होते हैं उनका निवारण करने के लिये भगवान् के स्तोत्रों का पाठ करना चाहिए। इससे मानसिक व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं।

“अथ वात, पित्त कफ—ये तीन महादोष दौड़ लगाया करते हैं उनके विषय में श्रवण करो। जो भी भन्न खाया जाता है आमाशय में पहुँच कर उसके दो भाग होते हैं। उनका एक अंश तो कटु रूप में हो जाता है और दूसरा रस रूप में। पहले भाग का मल बन जाता है जो विष्टा, मूत्र, पमोना आदि के रूप में बाहर निकलता है। नाक का मूत्र, कान का मूत्र, देह का मूत्र आदि की गणना भी उसी में की जाती है। दूसरे रस भाग से रक्त, मांस, मेद, अस्थि आदि की क्रम से उत्पत्ति होती है। अस्थि से मज्जा और मज्जा से वीर्य की उत्पत्ति होती है, जिससे राग और मोह बनता है। देश, व्यधि बल, शक्ति, बाल और मानव की प्रकृति को जान कर और औषधि की शक्ति को समझ कर वैद्य को चिकित्सा करनी चाहिए। चिकित्सा के आरम्भ में वैद्य को रिक्ता, तिथि, नौम वार, मन्द, दारुण और उग्र नक्षत्र का त्याग कर देना चाहिए। फिर हरि, गो, द्विज, चन्द्र, सूर्य और देवगण आदि की अर्चा करके विद्वान् वैद्य को औषध का प्रयोग आरम्भ करना चाहिए। वैद्य को कहना चाहिए कि—“जब मैं इस औषध को देता हूँ तो ब्रह्मा, दश, अश्विनीकुमार, रुद्र, इन्द्र, भूमि, चन्द्र, सूर्य, वायु, अग्नि, समस्त ऋषिगण औषध समूह और भूत सङ्घ तेरी (रोगी की) रक्षा करें। ऋषियों की रसायन की नाति, देवों के अमृत की तरह, नागों की मुधा की तरह यह औषध तेरे लिये प्रभाव वाली हो।”

वर्तमान समय में इन नियमों का प्रायः लोप हो गया है। खास कर डाक्टरों की चिकित्सा में तो दैवी-शक्ति की तरफ किसी तरह का ध्यान देना

आवश्यक ही नहीं माना जाता । पर यदि मनोविज्ञान की दृष्टि से विचार किया जाय तो ये नियम बहुत कुछ लाभदायक हैं । दैवी शक्तियों का ध्यान करने और उनकी कृपा प्राप्त करने की भावना रखने से किसी प्रकार की हानि तो हो ही नहीं सकती । वरन् मनःक्षेत्र में एक महत्त्व, उत्साह की भावना उत्पन्न होती है जो स्वास्थ्य के सुधारने में सहायक होती है । अनेक व्यक्ति तो मानसिक प्रेरणा से ही अपनी और दूसरों की व्याधियों का निवारण करने में समर्थ होते हैं । इसलिये चिकित्सा काले समय प्रेरणाप्रद मानसिक वातावरण बना लेना हर दृष्टि से उपयोगी है ।

पुराणकार ने यह भी कहा कि—“व्याधि का मूल कारण जान कर उसको मिटाने के लिये ही औषध करनी चाहिए ।” इसके लिये वैद्य को पहले रोगी की प्रकृति का पना लगाना होता है । आयुर्वेद के अनुसार मनुष्य तीन प्रकृतियों के होते हैं—वात, पित्त और कफ । वायु रुक्ष, शीत और मल होता है, पित्त उष्ण और कटु होता है, कफ स्निग्ध और मधुर कहा गया है । इन तीनों के समान रहने पर स्वास्थ्य उत्तम रहता है और देह की वृद्धि होती है और जब ये विपरीत हो जाते हैं तो इससे उल्टा परिणाम दिखाई पड़ने लगता है । मधुर रस वाले पदार्थ कफ की वृद्धि करने वाले होते हैं, कड़वे, चटपटे और बर्फीले वायु के बढ़ाने वाले और बफनाशक होते हैं, कटु, अम्ल, लवण रस पित्त को बढ़ाने वाले होते हैं । तिक्त, मधुर और कसैले पित्त के नाशक होते हैं । यह केवल रस का ही गुण नहीं होता वरन् उसके विपाक का दृष्टा करता है जो पदार्थ बीयोष्ण होते हैं वे कफ और वात के नाशक होते हैं और जो शीतशीघ्र होते हैं वे पित्त के नाशक होते हैं । शिशिर, बसन्त और ग्रीष्म में क्रम में कफ का मलय, प्रश्लेष और उपशम दृष्टा करता है । वर्षा, शरद और हेमन्त में क्रम में पित्त का मलय, प्रक्षोभ और उपशम होता है ।”

यह भी कहा है कि—“अत्यधिक भोजन कर लेने से और विलकुल भोजन न करने से मग्नरोग उत्पन्न हुआ करते हैं । बेमो को रोने से भी रोगों की उत्पत्ति होती है । नाभि के ऊपर और नीचे जो गुद-श्रोणियाँ हैं

उन्हीं को कफ, पित्त, वायु का स्थान बताया गया है तो भी ये समस्त शरीर में घनन करने वाले होते हैं और वायु तो विशेष रूप से देह भर में रहना ही है। सभी मनुष्य वात, पित्त और कफ स्वरूप हुमा करते हैं। मधुन से रक्त-पित्त होता है। बहुत अधिक कार्य करने, बढ़ते भोजन तथा शोक से वायु प्रकुपित हो जाती है। विशेष दाह करने वाले पदार्थ, उत्तम भोजन तथा मार्ग चलने से पित्त प्रकुपित हो जाता करता है। नय से भी पित्त प्रकुपित होता है। अधिक जल पीने वाले, भारी भोजन करने वाले तथा खाकर शयन करने वालों का कफ प्रकुपित हो जाता है। इन प्रकार वायु आदि दोषों के प्रकोप से उत्पन्न होने वाले रोगों को भर्त्ता भानि समझ कर, जो कि लक्षणों द्वारा जाने जाते हैं, शमन करने का प्रयत्न करें।”

आगे चलकर इन तीनों दोषों के कारण उत्पन्न लक्षणों को भी बताया गया है। “दृढ़ी का टूटना, मुख का कर्मना स्वाद, मुख का नूतनपन, जैषा-इशों का आना, रोमहर्ष (रोंगटे खड़ा होना) ये सब कफ जन्य व्याधियों के लक्षण होते हैं। नख, नेत्र, गिराओं का पीतापन, मुख का कडुमा जयका, तप्या (प्यास अधिक लगना), दाह और उष्णता की अधिकता ये सब पित्त-प्रकोप के लक्षण हैं। आलस्य रहना, भारीपन, मुख का मीठा स्वाद रहना, गर्म-गर्म वस्तुओं के सेवन की इच्छा रहना ये सब-प्रकोप वायु ने उत्पन्न रोगों के लक्षण होते हैं। इन लक्षणों का शमन किस प्रकार हो सकता है ? तिग्म और उष्ण भोजन, अम्यङ्ग, तैल मर्दन आदि से वायु शान्त होती है। घृत, दूध और मिथी आदि तथा चन्द्रमा की किरणों का सेवन पित्त के प्रकोप का शमन करने वाले हैं। दाह के नाथ त्रिफला का सेवन, तैल मर्दन और व्यायाम आदि कफ के प्रकोप से होने वाले रोगों का शमन किया करते हैं। अन्त में समस्त रोगों को शान्त करने का उपाय भगवाद् का ध्यान और पूजन होता है।”

तीर्थों की उपयोगिता—

भारतीय-धर्म में तीर्थ-यात्रा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। वर्त-

मान समय में तीर्थों का स्वरूप बहुत विकृत हो गया है जिसे देख कर विचार-शील लोग उनका विरोध करते हैं और किन्ने ही ग्रन्थों में भी उनके धर्म को साधन का सबसे छोटा उपाय माना है। अध्यात्मवादियों का कथन है—

अप्सु देवा बालानां दिवि देवा मनीषिणाम् ।

काष्ठलोष्ठेषु मूर्खाणां युक्तस्यात्मनि देवता ॥

अर्थात्—“सामान्य बुद्धि वाले भगवान् को नदों कुण्डों आदि में सम्भते हैं, विद्वान् उसे दिव्य (सूक्ष्म) शक्तियों के रूप में मानते हैं, बुद्धिहीन काष्ठ पाषाण को ही भगवान् मान लेते हैं, पर अध्यात्म योग का ज्ञाता उसे अपनी अन्तरात्मा में ही अनुभव करता है।”

इस प्रकार प्राचीन और नवीन विद्वान् तीर्थों के महत्त्व की न्यूनता प्रकट करते हैं पर अभी तक भारतीय जनता का बहुत बड़ा भाग उनसे प्रभावित है और उन्हें पुण्य-प्राप्ति का साधन मानता है। ‘अग्नि-पुराण’ में भी भारत के मुख्य तीर्थों का वर्णन किया है, पर साथ ही यह भी कह दिया है कि केवल अध्यात्म से तीर्थ-यात्रा कर जाने वाला कोई विशेष लाभ नहीं पा सकता—

“तीर्थं भोगं और मोक्ष देने वाले हैं। पर जिस व्यक्ति की इन्द्रियाँ तथा मन मत्तो-मोति संघम में रहने वाले होते हैं वही तीर्थों का उत्तम फल प्राप्त किया करता है। जो प्रतिग्रह (किसी का दान) नहीं लेता, लघु आहार करता है और संघम का पालन करता है वह तीर्थ यात्रा द्वारा वही फल प्राप्त कर लेता है जो दण्ड करने से प्राप्त हुआ करता है।”

‘अग्नि-पुराण’ में सबसे पहला स्थान पुष्कर और कुरुक्षेत्र को दिया है। इनके अतिरिक्त जानी, प्रयाग, राजपूत, मठेश्वर, शोण (सोनपुर) कोल्लमिरि, महाद्वि, मनपगिरि, नर्मदा, गोदावरी, तुङ्गभद्रा, कावेरी, सरदा, नासी, रेवा, दण्डवाराणसी, काव्यंवर, मुंजव, चित्रकूट, शृङ्गवेशपुर, भवन्ती, अयोध्या आदि का नाम भी है। पर ध्यातव्य है कि जिन चार पर्वों, यद्रीनारायण, द्वारका, जगन्नाथ, रामेश्वर को आज सबसे बड़ा तीर्थ माना जा रहा है उनका

उल्लेख कही नहीं नहीं है। इसी प्रकार व्रज (मथुरा, वृन्दावन) का नाम भी कहीं नहीं आये हैं। प्रयाग के वर्णन में एक बात सबसे अधिक महत्त्व की यह है कि इसमें 'त्रिवेणी' का नाम नहीं आया है और स्पष्ट रूप से केवल गङ्गा और यमुना का सङ्गम बतलाया गया है। इसमें लिखा है—

“अब मैं परम भुक्ति और मुक्ति को प्रदान करने वाले प्रयाग का माहात्म्य बताऊँगा प्रयागराज में ब्रह्मा, विष्णु आदि समस्त देवगण और मुनि-वर्ग स्थित रहा करते हैं। वहाँ तीन अभिमुख हैं, उनके बीच में जाह्नवी बड़े वेग से बहती है और समस्त तीर्थ उसके साथ रहते हैं। वहाँ सूर्य पुत्री यमुना भी बहती है जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। गङ्गा और यमुना इन दोनों नदियों के मध्य का भाग पृथ्वी की जाँघ कहा गया है। उनके मध्य में प्रयाग की स्थिति है ऐसा ऋषियों का कथन है।”

इसी प्रकार काशी के वर्णन में इतिश्वर, आत्रातेश्वर, ज्येश्वर, श्री पर्वत, महालय, चण्डेश्वर, वेदार आदि का नाम दिया है, पर जो विश्वनाथ, दशभुज, मणिकर्णिका आदि भाजकल सबसे प्रमुख हैं उनका उल्लेख कहीं नहीं है। इससे इस पुराण की प्राचीनता भ्रम या इन तीर्थों की नवीनता का आभास होता है।

दान के विषय में निवेकशीलता —

अन्य पुराणों की भाँति इसमें भी दान का माहात्म्य बतलाया गया है और कई प्रकार के दानों का वर्णन मिलता है, पर तो भी जिस प्रकार अन्य कई पुराणों में सुवर्ण-पर्वत का दान, रत्न पर्वत का दान, समुद्र-दान, पृथ्वीदान आदि जैसे लम्बे-चौड़े दानों का वर्णन किया गया है, वैसा इसमें नहीं किया गया है इसमें आरम्भ में ही कहा गया है कि—जो दान समुचित देश-काल में योग्य पात्र को दिया जाता है वही पूर्ण पुण्य देने वाला होता है।” फिर यद् भी कह दिया है कि—“पुण्यं देयं प्रयत्नेन यत्पुण्यं चाजितं वचचिन्” यर्षान् जो दान अपने परिश्रम और ईमानदारी से संपादित धन में से दिया जाता है वही परम पुण्यदायक है।” ‘पात्रे (जुपा) से प्राप्त, चोरी, ठगी आदि से मिलने वाला

लूट मार से उपाश्रित व्याज अथवा धोखे से उपलब्ध धन का दान भिन्न प्रकार का फल देता है ।”

इम पुराण में दान देने के उपयुक्त समय पर अधिक जोर दिया है कि “अयन में, विपुव में, व्यतीपात में, दिनराय में, युगादि में, संक्रान्ति में, चतुर्दशी-अष्टमी तिथियों में, शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा, सर्वद्वादशी और अष्टकाश्रों में दान दिया जाता है । अयन उत्तरायण और दक्षिणायन दो होते हैं । विपुव दो, षडशीतियाँ चार, विष्णुपदी चार और संक्रान्ति बारह परम उत्तम होती है । वन्या, मिथुन, मीन और धनु राशियों में जब सूर्य की गति होती है वह भी उत्तम समय है । श्रवण, अश्विनी, धनिष्ठा, नक्षत्रों में जब ‘नागद्वैतय मस्तक’ में रविवार होता है तो वह व्यतीपात योग कहा जाता है । श्रव चारों युगों के आदि को बताते है—कार्तिक मास शुक्लपक्ष में नवमी को सत्ययुग की, वैशाख मास में शुक्ल पक्ष की तृतीया को त्रेता की, माघ मास की अमावस्या को द्वापर तथा चैत्र की कृष्ण त्रयोदशी को कलियुग को समाप्ति मानी गई है । इसी प्रकार कार्तिक, फाल्गुन और ज्येष्ठ में अष्टका नाम वाली अष्टमी पर दान करना अक्षय पुण्य देने वाला माना गया है ।

दान घड़ी श्रेष्ठ होता है जो पूर्ण श्रद्धा और बिना किसी प्रकार के स्वार्थ की भावना के दिया जाता है । इम पुराण के कथनानुसार—“धर्म का साधन धन से ही होता है । धन से दिया हुआ जल भी अक्षय पुण्य का कारण होता है ।” ऐसी दशा में हम उन दानियों के लिये क्या कहें जो दान के नाश अपना चित्र और शिलालेख रखे जाने का विचार रखते हैं । वर्तमान समय के धनवान् अपने दान का जिस प्रकार विज्ञापन करते हैं और उसके द्वारा अपना प्रभाव बढ़ा कर आर्थिक लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं, उसका वास्तव में अधिक महत्त्व नहीं समझना चाहिए । इसी प्रकार पुराने ढङ्ग की रुढ़ियाँ भी जो भोख माँगने वाले ब्राह्मणों और पंडा पुत्रियों को दान देकर धर्म प्राप्त करना चाहते हैं वे गलती पर है । कहा गया है कि—“जो द्विज तप से रहित है, अध्ययन नहीं करता किन्तु दान लेने में भक्ति रखता है, उसे दान

“देना ऐसा ही है जैसे पत्थर की नाव में बैठना, जो बैठने वाले को भी ले हूँवती है।” दान की प्रणाली में किस प्रकार धीरे-धीरे कृत्रिमता आती गई इसका एक बड़ा सुन्दर रूपक इसमें दिया गया है—

“सतयुग में दानदाता स्वयं विद्वान् और सत्ताम्य ब्राह्मण के पास जाकर दान दिया करता था। त्रेता युग में ब्राह्मण को घर बुला कर दान दिया जाता था। फिर द्वापर की अवस्था में ब्राह्मण जब याचना करता था तब दान दिया जाता था। पर कलियुग में दान देने की व्यवस्था यह है कि जो बराबर पीछे लगा रहे उसी को दान दिया जाता है।”

इससे ज्ञात होता है कि जिस काल में समाज पूर्ण रूप से संगठित था और सब लोग एक दूसरे के हित का ध्यान रखते थे उस समय दान उन्हीं व्यक्तियों को दिया जाता था, जिनका मुख्य जीवनोद्देश्य समाज-सेवा और परोपकार होता था। वे अपना सम्पूर्ण समय अध्ययन और प्रख्यापन में लगा देते थे, जिससे समस्त समाज में ज्ञान का प्रकाश फैले और सब लोग अपने कर्तव्यों का उचित रूप से पालन करके देश और जाति की उन्नति तथा सुख में सहयोग दे सकें। ऐसे व्यक्ति उस समय ब्राह्मण वर्ग के भीतर समझे जाते थे और लोग उनकी सेवाओं के उपलक्ष्य में उनके भरण पोषण का स्वयं ही पूरा ध्यान रखते थे। यही कारण था कि बिना माली या याचना किये सभी आवश्यक वस्तुएं उनके पास स्वयमेव पहुँचा दी जाती थीं। पर जैसे-जैसे परिस्थितियाँ बदलती गईं और ब्राह्मण दान को कर्त्तव्य-पालन का प्रतिकूल समझने लगे, वैसे-वैसे प्रतिग्रह के रूप में ग्रहण करने लगे, वैसे-वैसे ही उसमें विवृतियों तथा दोषों का समावेश होने लग गया। आज दान-प्रथा की जो दुर्दशा हो रही है उसका कारण उपर्युक्त निदान की भुना देना ही है।

जीवनोपयोगी विषयों की जानकारी—

यद्यपि पुराणों का मुख्य उद्देश्य धार्मिक विषयों का विवेचन करना ही है और अधिकांश पुराणों को इसी दृष्टिकोण से लिखा गया है, पर ‘मन्वि-पुराण’ इस दृष्टि में भ्रष्टाचार स्वरूप है। यद्यपि ‘मरुत-पुराण’ में भी कितने ही जीवनोपयोगी विषयों का—विशेष रूप से ‘भौषधि-शास्त्र’ का बहुत अधिक समावेश किया गया है, पर ‘मन्वि-पुराण’ की बात दूसरी ही है। इसके अध्य-

यन से ऐसा प्रतीत होता है कि जिस समय यह पुराण लिखा गया उस समय देश और समाज में जितनी विद्याओं और समाजोपयोगी पेशों का प्रचलन था उन सबका काम चलाऊ परिचय देने का प्रयत्न पुराणकार ने किया है। यद्यपि समय के बदल जाने से अब उन सब बातों का महत्त्व पहले जितना नहीं रहा है, तो भी उनके द्वारा आवश्यकता पड़ने पर हम बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं इसमें सन्देह नहीं।

इस पुराण में औपधि-शास्त्र का जो वर्णन किया गया है वह मुख्यतः और घन्वन्तरि के सम्वाद रूप में आरम्भ किया गया है। उसमें संक्षेप में चिकित्सा की समस्त मुख्य विधियाँ बतला दी गई हैं। शरीर-शोधन के लिये पट्कर्म का उल्लेख है। ज्वर तथा अन्य रोगों के पथ्य-पदार्थों का भी अच्छा वर्णन किया गया है। अधिकोश जड़ी-बूटियों और वनस्पतियों से ही चिकित्सा बताई है। एक विशेष बात इस अध्याय में यह है कि इसमें 'सूची' (सुई) के इलाज का नाम भी मिलता है, जिसे हम आजकल के इन्जेक्शन के समान मान सकते हैं। इस सम्बन्ध में अध्याय ११६ के ५५ वें श्लोक में कहा है—

तथा सूच्युपचारश्च बलिकर्म विशेषतः।

सूतिका च तथा रक्षा प्राणिनां तु सदा हितम् ॥

अर्थात् "इसी प्रकार सूची का उपचार होता है, विशेषतः बलिकर्म होता है और सूतिका-कर्म भी होता है। इस सबका उद्देश्य मनुष्यों की प्राण-रक्षा ही होनी चाहिये।"

इसमें केवल शारीरिक व्याधियों का ही वर्णन नहीं है बरन् 'मानसिक' 'मागन्तुक' तथा 'सहज' व्याधियों का भी वर्णन किया गया है और उनकी चिकित्सा भी बतलाई गई है। जैसे क्रोध, चिन्ता आदि मानस-रोगों के लिये भगवान् विष्णु के स्तोत्रों का पाठ करना चाहिये। दूध-घी-शहद से गायत्री हवन और धी, गुड़, तेल, अन्न आदि का दान करने से रोगों की शांति का विधान बताया गया है। रोग होने के कारणों का भली प्रकार विवेचन किया गया है। और अन्तमें कह दिया गया है कि अत्यधिक भोजन करनेसे समस्त रोग हुआ करते हैं। इसी प्रकार मल, मूत्र, रस, घात, घात, घात आदि के स्वाभाविक वेगों को रोकने

स्वास्थ्य में दोष उत्पन्न होते हैं। व्याधि के मूल कारण को जान कर उसके विपरीत औषधि देनी चाहिये।

हाथियों के पालन और चिकित्सा के विषय में भी लिखा गया है; क्योंकि प्राचीन काल में जब तोप और बन्दूकों का प्रचार नहीं हुआ था, युद्ध भ्रामने-सामने खड़े होकर ही किया जाता था और उस भवसर, परगज-सेना द्वारा विजय में बहुत सहायता मिलती थी। सिकन्दर को भारत विजय करने में मुख्य बाधा हाथियों की ही जान पड़ी थी और इससे भ्रन्त में वह वापस चला गया था। हाथियों को घी तेल की मालिश करके स्नान कराने को बताया गया है। हाथियों को चावल, जौ, गेहूँ खिलाने को कहा गया है। हाथी के लिये ईश शक्ति-प्रदायक होती है। मंद बहने के कारण जो हाथी खीण हो गया हो उसे दूध पिलाने को कहा गया है। हाथियों के दस्त, सिरदद, मूत्र-मज्जा, त्वचारोग आदि के लिये भी मनुष्यों की तरह औषधि देने की विधियाँ बतलाई गई हैं।

घोड़ा को तो युद्ध करने वालों का सबसे बड़ा सहायक माना गया है। इस लिए उसको ग्रहण करते समय उसकी पूजा करने का विधान है। यहाँ तक कहा गया है कि चढ़ने से पहले भ्रश्च के चित्त में ब्रह्म; बल में विष्णु, पराक्रम में गरुड़, पार्श्व में रुद्र, भर्मा भागों में देवगण; नेत्रों में चन्द्र-सूर्य; कानों में आश्विनीकुमार, पेट में अग्नि, पसीने में स्वधा, जिह्वा में वाग्देवता; वेग में अनिल; पीठ में नाक-पृष्ठ, खुरों में समस्त पर्वत, रोम कूर्पों में तारागण, तेज में अग्नि, श्रोणी में रति, लनाट में जगत्-स्वामी, हिनहिनाने में ग्रहगण; उर-स्थल में वासुकि का ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार भ्रश्च को मित्र की तरह सम्मान कर उसके आराम का सदा ध्यान रखना चाहिये और उसे किसी प्रकार का रोग हो जाय तो बहुत विचारपूर्वक उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। ऐसे श्रेष्ठ व्यवहार द्वारा ही घोड़ा उत्तम गुणों से युक्त वा सका है और युद्ध में तथा अन्य भवसरों पर भी मनुष्य का सच्चा सहायक सिद्ध होता है।

गाय का महत्त्व तो सर्वाधिक माना ही गया है। उस युग में समाज का आधार मुख्यतः गौ पर ही था। शारीरिक विकास और पुष्टता का मुख्य साधन गाय का दूध और घी ही था। उससे उत्पन्न दूधों द्वारा ही खेती का सारा काम किया जाता था और खाने के लिये भ्रश्च उत्पन्न होता था। भावागमन और

से माल के होने के लिये भी बैलगाड़ियों और रथ आदि का प्रयोग किया जाता था । इसलिये गो को यहाँ एक उपयोगी पशु ही नहीं वरन् एक देवी शक्ति मान कर सम्मानित किया गया । इस तथ्य का विवेचन करते हुए 'अग्निपुराण' का कथन है—

“ऋषियों के अग्निहोत्र और होम में गौएँ ही योजित होती हैं । समस्त प्राणियों की गो सर्वोत्तम रक्षक होती है । गो परम पवित्र है तथा परम मङ्गलकारी है । गो स्वर्ग जाने की सीढ़ी है । गो सनातन एवं परम धन्य है । श्रीमती गौओं के लिये नमस्कार है । देव, गो, ब्राह्मण, साधु और साध्वी—इनसे ही यह समस्त जगत् सदा धारण किया जाता है ।” इस प्रकार गो की अपार महिमा बता कर उनकी सुख-सुविधा के लिये पूरा विधान बताया गया है ।

×

×

×

निस्तन्देह 'अग्निपुराण' उपयोगी विद्याओं और कल्याणकारी ज्ञान का भण्डार है । प्राचीन समय में जबकि पुस्तकें दुर्लभ थीं और विद्या प्राप्त करने में बहुत परिश्रम तथा त्याग-तपस्या की आवश्यकता पड़ती थी, एक स्थान पर इतनी अधिक ज्ञान-राशि का एकत्रित कर देना कम महत्त्व और प्रशंसा की बात न थी । इस एक ग्रन्थ से ही उस समय मनुष्य अनेक प्रकार की आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त करके अपने कार्यों का निर्वाह कर सकते थे । इस दृष्टि से इसको 'भारतीय विद्याओं का विश्वकोष' कहना युक्तियुक्त ही है । इसके लेखक ने जिस प्रकार पार्थिक और लौकिक ज्ञान का समन्वय किया है, उससे उनकी सूझ-बूझ की प्रशंसा करनी चाहिये । लोक-कल्याण की भावना से किया गया इनका यह प्रयास निस्तन्देह घादरणीय और स्तुत्य है ।

वसंत पंचमी, २०२४ वि०]

—श्रीराम शर्मा आचार्य



२४. लिङ्गादि लक्षणम्.	...	१३६
२५. स्नपन विध्यादिकथनम्	...	१३६
२६. वामुदेवादि देवताना सामान्य प्रतिष्ठा विधि	...	१४५
२७-२८. कूप-वापी-तडाग प्रतिष्ठा विधि	...	१५०
२९. सभादिस्थान्य विधि	...	१५७
३०. देवता सामान्य प्रतिष्ठा	...	१६१
३१. जीर्णोद्धार-विधि	...	१६५
३२. उत्सव विधि-कथनम्	...	१६६
३३. गण पूजा विधि	...	१७०
३४. सूर्य पूजा विधि कथनम्	...	१७१
३५. शिव पूजा विधि कथनम्	...	१७४
३६. चण्ड पूजा	...	१८७
३७. कपिला पूजनम्	...	१८६
३८. संस्कार दीक्षा विधि	...	१९३
३९. संक्षेपेण प्रतिष्ठा विधि	...	१९७
४०. वास्तु प्रतिष्ठा विधि	...	२०७
४१. नगरादि वास्तु कथनम्	...	२०६
४२. स्वायंभुव सर्ग कथनम्	...	२१३
४३. भुवन कोप कथनम्	...	२१६
४४. तीर्थमाहात्म्यम्	...	२२१
४५. गंगामाहात्म्यम्	...	२२५
४६. प्रयागमाहात्म्यम्	...	२२६
४७. वाराणसीमाहात्म्यम्	...	२२६
४८. नर्मदामाहात्म्यम्	...	२३०
४९. आश्विन्य (आश्व के योग्य ब्राह्मणों को ग्रहण करना)	...	२३५
५०. भारतवर्ष वर्णनम्	...	२४१
५१. महादीपादि वर्णनम्	...	२४२

✓ ५२. ज्योतिःशास्त्रकथनम्	...	२४६
५३. कालगणनम्	...	२६०
५४. युद्धरथार्पणीय ज्योतिःशास्त्रसार	...	२६३
✓ ५५. नक्षत्र निर्णय	...	२६७
५६. मन्वन्तराणि	...	२७३
५७. गृहस्थ-वृत्ति	...	२७७
५८. ब्रह्मचर्याद्याधर्म धर्माः	...	२७९
५९. विवाह	...	२८२
✓ ६०. आचार (नित्य शौच सम्बन्धी नियम)	...	२८५
✓ ६१. द्रव्य शुद्धि (वस्तुओं की अशुद्धि दूर करने की विधि)	...	२९१
६२. शावाशौचादि	...	२९४
६३. असंस्कृतादि शौचम्	...	३००
६४. वानप्रस्थाश्रम	...	३०३
✓ ६५. धर्मशास्त्रकथनम्	...	३०४
६६. श्राद्ध कल कथनम् (विभिन्न श्राद्ध और उनका स्वर्गादि फल)	...	३०७
६७. नाना धर्म (विभिन्न प्रकार के धर्माचारों के नियम)	...	३१४
६८. वर्णाश्रमादिकथनम्	...	३१९
६९. प्रायश्चित्तानि (विभिन्न दोषों से छूटने का विधान)	...	३२२
७०. सर्व पाप प्रायश्चित्तानि	...	३२६
७१. व्रत-परिमाणा	...	३२९
७२. शिवरात्रि व्रतम्	...	३३९
७३. वार व्रतानि	...	३४०
७४. नक्षत्र व्रतानि	...	३४१
७५. दिवस व्रतानि	...	३४५
७६. मास व्रतानि	...	३४८
७७. नाना व्रतानि	...	३५१
७८. दीनदान व्रतम्	...	३५३
७९. पुण्य-व्रगं कथनम् (विभिन्न पुण्यों के धर्मण फल)	...	३५६

८०. नरक स्वरूपम्	...	३६०
८१. दान परिभाषा कथनम्	...	३६५
८२. माङ्गीचक्र कथनम्	...	३७५
८३. गायत्री निर्वाणम्	—	३८२
८४. राजाभिषेक कथनम्	...	३८५
८५. सहाय संपत्ति (पुरोहित, सेनापति, दूत आदि)	...	३९०
८६. दुर्ग-संपत्ति (किष्का, महल, देवालय आदि)	—	३९५
८७. राजधर्म (१)	...	४००
८८. राजधर्म (२)	...	४०६
८९. सामाज्युपाय कथनम् (साम, दाम, दण्ड, भेद)	...	४१२
९०. दण्ड प्रणयनम्	...	४१५
९१. स्वप्नशुभाशुभ-दुःस्वप्न हरण कथनम्	...	४१८
९२. शैकुनानि.	...	४२२
९३. यात्रामण्डल चिन्तादि	...	४२६
९४. रामोक्त नीति	...	४३३
९५. राजधर्म (३)	...	४३७
९६. पुरुष लक्षणम्	—	४४५
९७. स्त्री लक्षणम्	...	४४६
९८. रत्न-परीक्षा	...	४५०
९९. वास्तु लक्षणम् (गृहनिर्माण और प्रवेश आदि)	...	४५३
१००. धनुर्वेद	...	४५७
१०१. धनुर्वेद कथनम्	...	४६३
१०२. व्यवहार कथनम् (१)	...	४६५
१०३. व्यवहार कथनम् (२)	—	४७६
१०४. ऋग्विधानम्	...	४८१
१०५. सामविधानम्	...	४८६
१०६. अपवर्ग विधानम्	...	५००

अग्निपुराणम् ।

१-पुराणारम्भ प्रस्तावश्लोकः

श्रियं सरस्वतीं गौरीं गणेशं स्कन्दमोक्षरम् ।
 ब्रह्माणं बह्मिन्द्वादीन्वासुदेवं नमाम्यहम् ॥१॥
 नैमिषे हरिमीजाना ऋषयः शौनकादयः ।
 तीर्थयात्राप्रसङ्गेन स्वागतं सूतमब्रुवन् ॥२॥
 सूत त्वं पूजितोऽस्माभिः सारात्सारं वदस्व नः ।
 येन विजान्तमालेन सर्वज्ञत्वं प्रजायते ॥३॥
 सारात्सारो हि भगवान्विष्णुः सर्गादिकृत्विभुः ।
 ब्रह्माहमस्मि तं ज्ञात्वा सर्वज्ञत्वं प्रजायते ॥४॥
 द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् ।
 द्वे विद्ये वेदितव्ये हि इति चाऽऽथर्वणी श्रुतिः ॥५॥
 अहं शुक्रश्च पैलाद्या गत्वा वदरिकाश्रमम् ।
 व्यासं नत्वा पृष्ठवन्तः सोऽस्मान्सारमथाब्रवीत् ॥६॥
 शुकाद्यैः शृणु मून त्वं वसिष्ठो मां यथाऽब्रवीत् ।
 ब्रह्म सारं हि पृच्छन्तं मुनिभिश्च परात्परम् ॥७॥
 द्विविधं ब्रह्म वक्ष्यामि शृणु व्यासाखिलात्मगम् ।
 यथाऽग्निर्मां पुरा प्राह मुनिभिर्देवतैः सह ॥८॥

पुराणारम्भ मे देव प्रणाम स्वरूप वाला मङ्गलाचरण शिष्टों के आचार
 के अनुसार किया जाता है । ग्रन्थकार कहता है — मैं लक्ष्मी-सरस्वती-गौरी-
 गणेश-स्वामि कार्तिकेय-शिव-ब्रह्मा-अग्नि-इन्द्र आदि देव और वासुदेव
 सब को नमस्कार करता हूँ ॥१॥ नैमिषारण्य में हरि भगवान् का मनन करने
 वाले शौनकादि ऋषिगण ने तीर्थाटन के प्रसङ्गवश समागत हुए श्री सूतजी

से कहा ॥२॥ ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आप हमारे सबके पूज्य हैं और बड़े हैं इसलिये हमारे आगे सार से भी सार जो वस्तु हो उसे बतलाने की कृपा करें जिसके जानने से ही सर्वज्ञत्व अर्थात् सब का ज्ञान उत्पन्न हो जाय करता है ॥३॥ श्री सूत जी ने कहा—समस्त सारों का भी सार सर्व आदि के करने वाले व्यापक भगवान् विष्णु हैं । उनको जानकर अर्थात् उनका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके 'मैं ही ब्रह्म हूँ'—इस तरह सर्वज्ञत्व उत्पन्न हो जाता है ॥४॥ जानने के योग्य ब्रह्म दो हुआ करते हैं एक तो शब्द ब्रह्म होता है और दूसरा पर-ब्रह्म होता है । दो विद्याएँ जाननी चाहिए यह श्री आकर्षणी श्रुति दूसरी विद्या है ॥५॥ मैं—शुकदेव और पैल आदि सब बदरिकाश्रम में गए और वहाँ जाकर हम सबने श्री व्यास मुनि को प्रणाम किया और उन से पूछा था । तब उन ने हमको सार वस्तु बतलाई थी ॥६॥ व्यास जी ने कहा—हे शुक आदि के सहित आये हुए सूत ! तुम श्रवण करो—एक बार मुनियों के साथ मैंने पर-से-पर सारस्वरूप ब्रह्म के विषय में वसिष्ठ जी से पूछा था तब उन्होंने पूछने वाले मुझको जिस प्रकार से बतलाया था वह तुम सुन लो ॥७॥ वसिष्ठ जी बोले थे हे व्यास ! समस्त आत्माओं में निवास करने वाले ब्रह्म दो प्रकार के होते हैं उनको मैं बतलाऊँगा उसका तुम श्रवण करो—पहिले अग्नि देव ने मुनिगण और देव वृन्द के सहित मुझ से जैसा कहा था वही मैं तुमको कहता हूँ ॥८॥

पुराणं परमाग्नेयं ब्रह्मविद्याऽक्षरं परम् ।

ऋग्वेदाद्यपरं ब्रह्म सर्वदेवसुखं परम् ॥८॥

अग्निनोक्तं पुराणं यदाग्नेयं वेदसमितम् ।

भुक्तिमुक्तिप्रदं पुण्यं पठतां शृण्वतां नृणाम् ॥९॥

कालाग्निरूपिणं विष्णुज्योतिर्ब्रह्म परात्परम् ।

मुनिभिः पृष्टवान्देवं पूजितं ज्ञानकर्मभिः ॥१०॥

संसारमागरोत्तारनावं ब्रह्मेश्वरं वद ।

विद्यासारं यद्विदित्वा सर्वजो जायते नरः ॥११॥

विष्णुः कालाग्निरुद्राऽहं विद्यासारं वदामि ते ।
ब्रह्माऽग्नेयं पुराणं यत्सर्वं सर्वस्य कारणम् ॥१३
सर्गस्य प्रतिसर्गस्य वंशमन्वन्तरस्य च ।
वंशःपुनरुचितादेश्च मत्स्यकूर्मादिरूपघट् ॥१४

परब्रह्म विद्याक्षर आग्नेय पुराण पर है और ऋग्वेदादि अपरसमस्त देवों को सुख करने वाला परब्रह्म है ॥६॥ जो अग्निदेव के द्वारा पुराण कहा गया है वह आग्नेय पुराण वेद संमित होता है । जो इस पुराण के पढ़ने बान तथा इसका श्रवण करने वाले मनुष्य हैं उन्हें यह पुण्य पुराण भोग तथा मोक्ष दोनों ही दिया करता है ॥१०॥ कालाग्नि के रूप धारण करने वाले पर से भी पर ब्रह्म ज्योति स्वरूप विष्णु से जो ज्ञान कर्म वाले मुनियों के द्वारा पूजित थे ऐसे देव से पूछा था ॥११॥ वसिष्ठ जी ने कहा—इस ससार रूपी सागर से उत्तरण करने के लिये नौका विद्या का सार ब्रह्मेश्वर को बताओ जिसका ज्ञान प्राप्त करके मानव मर्बज हो जाता है ॥१२॥ अग्नि देव ने कहा— मैं विष्णु कालाग्नि रुद्र हूँ तुमको विद्या का सार बताता हूँ । जो समस्त ब्रह्माग्नेय पुराण है वह सब का कारण होता है ॥१३॥ सर्ग का—प्रति सर्ग का और वंश मन्वन्तर का तथा वंशानुचरित आदि का, मत्स्य एवं कूर्म आदि रूपों के धारण करने वाले का है ॥१४॥

द्वे विद्ये भगवान्विष्णुः परा चैवापरा द्विज ।
ऋग्यजुः सामायर्वाक्ष्या वेदा अङ्गानि पड्द्विज ॥१५.
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषा गतिः ।
छन्दोभिधानं मीमांसा धर्मशास्त्रं पुराणकम् ॥१६
न्यायो वैद्यकगान्धर्वं धनुर्वेदोऽर्थशास्त्रकम् ।
अपरेयं, परा विद्या यया ब्रह्मावगम्यते ॥१७
यत्तददृश्यमग्राह्यमगोचरं ध्रुवम् ।
विष्णुनोक्तं यथा मह्यं देवेभ्यो ब्रह्मणा पुरा ॥१८
तथा ते कथयिष्यामि हेतुं मत्स्यादिरूपिणम् ॥१९

हे द्विज ! दो विद्या भगवान् विष्णु हैं । एक परा विद्या है और दूसरी अपरा विद्या है । ऋक्-साम-यजु और अथर्व ये नाम वाले चार वेद हैं और इनके छे अङ्ग होते हैं । १५ ॥ अब उन षट् वेदों के अङ्गों के नाम कहते हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द—मीमांसा, धर्मशास्त्र, पुराण, न्याय, आयुर्वेद गान्धर्व, धनुर्वेद और अर्थशास्त्र यह अपरा विद्या है । परा विद्या वह है जिसके द्वारा ब्रह्म जाना जाता है अर्थात् जिनसे ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होता है ॥ १६-१७ ॥ जो ब्रह्म ग्रहण्य, अग्राह्य, अगोचर चरण और ध्रुव है । पहिले ब्रह्मा जी ने देवों से कहा था और विष्णु ने मुक्त से कहा था । जिस प्रकार मे मुझे बताया गया है । उसी रीति से मैं मत्स्यादि रूपी हेतु को तुम्हें कहूँगा ॥ १८-१९ ॥



२-मत्स्यावतारकथावर्णनम् ।

मत्स्यादिरूपिणं विष्णुं ब्रूहि सर्गादिकारणम् ।
पुराणं ब्रह्म चाऽऽनेय यथा विष्णोः पुरा श्रुतम् ॥१॥
मत्स्यावतारं वक्ष्येऽहं वसिष्ठ शृणु वै हरे ।
अवतारक्रिया दुष्टं दुष्टं सत्पालनाय हि ॥२॥
आसीदतीतकल्पान्ते ब्राह्मो नैमित्तिको लयः ।
समुद्रोपप्लुतारतल लोका भूरादिका नुने ॥३॥
मनुर्वैवस्वस्तेने तपो वै भुक्तिमुक्तये ।
एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम् ॥४॥
तस्याञ्जल्युदके मत्स्यः स्वल्प एकोऽभ्यपद्यत ।
क्षोप्तुकामं जले प्राह न मां क्षिप नृपांतम ॥५॥
ग्राहादिभ्यो भयं मेऽन्न तच्छ त्वा कलशेऽक्षिपत् ।
मनुं वृद्धः पुनर्मत्स्यः प्राह तं देहि मे वृहत् ॥६॥
स्थानमेतद्वचः श्रुत्वा राजाऽयोदञ्चनेऽक्षिपत् ।
तस्य वृद्धोऽप्रवीद्भूषं पृथु देहि पदं मनो ॥७॥
सरोवरे पुनः क्षिप्तो ववृधे तत्प्रमाणवान् ।
ऊचे देहि वृहत्स्थानं प्राक्षिपन्नाम्बुधो मनुः ॥८॥

लक्षयोजनविस्तीर्णः क्षणमात्रेण सोऽभवत् ।
मत्स्यं तमद्भुतं दृष्ट्वा विस्मितः प्राब्रवांन्मनुः ॥८॥
को भवान्ननु विष्णुस्त्वं नारायण नमोऽस्तु ते ।
मायया मोहयसि मां किमर्थं त्वं जनार्दन ॥९॥

मत्स्यावतार कथा का वर्णन है । वसिष्ठ जी ने कहा—सर्ग आदि के वाग्ग जो मत्स्य आदि के रूप धारण करने वाले विष्णु हैं उन्हें बताइये । जिस रीति पाँहने विष्णु से आपने आग्नेय-पुराण-ब्रह्म सुना है ॥ १ ॥ अग्नि देव ने कहा हे वसिष्ठ ! मैं अब तुम से हरि भगवान् के मत्स्य अवतार की कथा बताऊँगा उसे श्रवण कर लो । भगवान् के अवतार लेने का काम सत्पुरुषों के पालन करने के लिये तथा दुष्टों के मंहार करने के लिये होता है ॥ २ ॥ बरतीत हुए कल्प के अन्त में ब्रह्म नाम वाला नैमित्तिक लय हुआ था । हे मुने ! उस समय में वहाँ भू आदि समस्त लोक सप्तर के द्वारा उपप्लुत अर्थात् निर्मिज्जित हो गये थे ॥ ३ ॥ वैवस्वत मनु भुक्ति और मुक्ति की प्राप्ति के लिये तपस्या कर रहे थे । एक बार कृत्तमाता नदी में जल से तर्पण कर रहे थे । उस समय वहाँ उनकी जल में भरी हुई अंजलि में एक छोटा-सा मत्स्य आ गया था । जब वे उसे जल में फेंकना ही चाहते थे तो उस समय वह मत्स्य उनमें कटने लगा—हे नृपोत्तम ! तुम मुझे जल में मज फेंको ॥४-५॥ मुझे यहाँ जल में बड़े-बड़े ग्राह आदि से भय होता है । यह मत्स्य का कथन सुन कर उसने उसे अपने कलत्र में डाल लिया था । फिर बड़े हुए उस मत्स्य में मनु ने कहा मुझे कोई बड़ा स्थान दीक्षि ॥ ६ ॥ मत्स्य के इस वचन को सुन कर राजा ने उसे एक जलगर्त में डाल दिया था । वहाँ पर भी बड़े हुए ने फिर राजा से प्रार्थना की हे मनो ! कोई और बड़ा स्थान मुझे रहने के लिये दो । इसके पश्चात् उसे एक नरोवर में डाल दिया गया था । वहाँ पर भी वह उसी प्रमाण से मुक्त होकर बड़ गया और राजा से बोला—मुझे और भी विज्ञान कोई रहने के लिये स्थान दो । तब तो वैवस्वत मनु ने उसे पुनः समुद्र में डाल दिया था ॥ ७-८ ॥ वहाँ पर वह एक क्षण भर में ही एक लाख योजन के विस्तर वाला हो गया था । मनु उस अत्यन्त अद्भुत

मत्स्य को देख कर बड़ा विस्मय करके उससे बोले ॥ ९ ॥ आप कौन हैं ?
निश्चय ही आप विष्णु हैं, हे नारायण ! आपके लिये मेरा प्रणाम है ।
हे जनार्दन ! आप किस लिये इस अपनी परम अद्भुत माया से मुझे मोहित
कर रहे हैं ? ॥ १० ॥

मनुनोक्तोऽब्रवीन्मत्स्यो मनुं वै पालने रतः ।
अवतीर्णो भवायास्य जगतो दुष्टनष्टये ॥११
सप्तमेऽथ दिने ह्यब्धिः प्लावयिष्यति वै जगत् ।
उपस्थितायां नावि त्व वीजादीनि निधाय च ॥१२
सप्तपिभिः परिवृतो निशां ब्राह्मी चरिष्यति ।
उपस्थितस्य मे शृङ्गे निवघ्नीहि महाहिना ॥१३
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे मत्स्यो मनुः कालप्रतीक्षकः ।
स्थितः समुद्र उद्वेले नावमारुरुहे तदा ॥१४
एकशृङ्गधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः ।
नाव वद्ध्वा तस्य शृङ्गे मत्स्यास्थं च पुराणकम् ॥ ५
शुश्राव मत्स्यात्पापघ्नं संस्तुवन्स्तुतिभिश्च तम् ।
ब्रह्मवेदप्रहर्तारं हयग्रीवं च दानवम् ॥१६
अवधीद्वेदमन्त्राद्यान्पालयामास केशवः ।
प्राप्ते कल्पेऽथ चाराहे कूर्मरूपोऽभवद्धरिः ॥१७

इस रीति से जब मनु ने मत्स्य से प्रार्थना की तो फिर उस मत्स्य ने
मनु से कहा—मैं मनु तैरे पालन करने में रति रखने वाला होकर इस संसार
में उत्पन्न हुए दुष्टों के नाश करने के लिये ही अवतीर्ण हुआ हूँ ॥ ११ ॥ आज
मे गालवें दिन मे यह समुद्र समस्त इस जगत् को डुबा देगा और उस समय
एक नाव उपस्थित होगी उसमें तुम समस्त बीज आदि मूल वस्तुओं को रख
लेना ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर गत ऋषियों को गाथ में लेकर उगी में बैठ
जाना और उग रात्रि में जो कि ब्राह्मी रात्रि के नाम से प्रसिद्ध है नाव में
बैठ कर विचरण करना । मैं भी यहाँ प्रस्तुत रहूँगा । एक महान् सर्प मे
उग नौका को मेरे शीर्ष में बाँध देना ॥ १३ ॥ इतना मनु ने कह कर यह

मत्स्य तो अन्तर्द्वानि हो गया और मनु वैवस्वत फिर उस सातवें दिन की प्रतीक्षा करने लगे थे । जब वह समय आ गया तो समुद्र ने उद्वेलित होकर ज्वालन करना आरम्भ कर दिया था और वह मनु मत्स्य भगवान् के कथनानुसार उस उपस्थित होने वाली नौका में बैठ गये थे ॥ १४ ॥ एक नियुक्त लम्बा सुवर्ण के सींग वाला वह मत्स्य वहाँ उस समय में उपस्थित हो गया था । उस नौका को उसके शृङ्ग से बाँध दिया गया था । उस पुराण-पुरुष को मत्स्य इस नाम से कहा जाता है ॥ १५ ॥ समस्त पापों के नाश करने वाले उस मत्स्य भगवान् को स्तुतियों से संस्तव करते हुए उस मत्स्य से ब्रह्म वेद के हनन करने वाले हयग्रीव दानव की कथा का श्रवण किया था ॥ १६ ॥ उस दानव का वध किया और भगवान् केशव ने फिर वेद मन्त्रादि सब की रक्षा की थी । जब फिर वाराह कल्प का आरम्भ हुआ तो उस समय में इसके पश्चात् भगवान् कूर्म का रूप धारण करने वाले अवतीर्ण हुए थे ॥ १७ ॥



३-कूर्मावतारकथावर्णनम् ।

वक्ष्ये कूर्मावतारं च संश्रुतं पापनाशनम् ।
 पुरा देवासुरे युद्धे दैत्यैर्देवाः पराजिताः ॥१॥
 दुर्वाससश्च शापेन निश्चीकाश्चाभवन्स्तदा ।
 मुराः क्षीराब्धिगं विष्णुमूचुः पालय वै सुरान् ॥२॥
 ब्रह्मादिकान्ह्रिः प्राह संधिं कुर्वन्तु चासुरैः
 क्षीराब्धिमथनार्थं च अमृतार्थं श्रिये मुराः ॥३॥
 अरयोऽपि हि संधेयांः सति कार्यार्यगौरवे ।
 युष्मानभृतभाजोऽथ करिष्यामि न दानवान् ॥४॥
 मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा च वासुकिम् ।
 क्षीराब्धिं मत्सहायेन निर्मथत ह्यतन्द्रिताः ॥५॥
 विष्णूक्ताः संविदं कृत्वा दैत्यैः क्षीराब्धिमागताः ।
 तता मथितुमारब्धा यतः पुच्छं ततः सुराः ॥६॥

फणिनिश्वाससंगलाना हरिणाऽऽप्यायिताः सुराः ।
 मथ्यमानेऽर्णवे सोऽद्विरनाधारो ह्यापोऽविशत् ॥७॥
 कूर्मरूपं समास्थाय दधरे विष्णुश्च मन्दरम् ।
 क्षीराब्धेर्मथ्यमानात्तु विषं हालाहसं ह्यभूत् ॥८॥

अग्निदेव बोले—अब मैं परम प्रसिद्ध और नमस्त पापों के नाश करने वाले कूर्म के अवतार की कथा को बतलाऊंगा । पहले एक बार देवामुन नाम वाला महान् युद्ध हुआ था । उस युद्ध में देवों ने समस्त देवों को पराजित कर दिया था । १॥ उस समय में दुर्वासा मुनि ने देवों को शाप दिया था और उसके प्रभाव से समस्त देवता श्रीहीन हो गये थे । तब देवगण मिल कर क्षीर सागर में शयन करने वाले भगवान् विष्णु के पास पहुँचे और उनसे प्रार्थना की कि हम देवों की रक्षा करो ॥ २ ॥ तब भगवान् हरि ने उन ब्रह्मा आदि देवों से कहा—इस समय तुम सब असुरों के साथ सन्धि कर लो । हे देवगण ! यह सन्धि इसलिए कर लेनी चाहिए कि उनके साथ मिलकर अमृत और लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये समुद्र का मन्थन करना है ॥ ३ ॥ यदि कोई एक बहुत बड़ा काम करना हो तो ऐसा नियम है कि शत्रु के साथ भी मेल-मिलाप कर लेना चाहिए । मैं तुमको ही अमृत को सेवन करने वाला कर दूँगा और दानवों को उसमें से कुछ भी नहीं दूँगा ॥ ४ ॥ आप लोग तन्द्रा रहित होकर भेरी महायत्ना से इस क्षीर सागर का मन्थन कर डालो । इस समुद्र के मन्थन करने में मन्दर पर्वत को मन्थन करने वाला बनाओ और उसकी डोरी वासुकि सर्प को बना लो ॥ ५ ॥ इस तरह जब विष्णु ने देवों से कहा तो उनने असुरों से सन्धि करके सब क्षीर सागर पर उपस्थित हो गये थे । फिर उन सब ने उस सागर का मन्थन करना आरम्भ कर दिया । जिधर सर्प की पूँछ थी उधर देवता लोग लगे हुए थे । जब पहिले देवों ने वासुकि का मुँह पकड़ा था तो वे उस गर्प के निश्वासों से बड़े दुःखित हुए थे । भगवान् हरि ने उन्हें फिर पूँछ की ओर लगा कर सन्तुष्ट किया था । भगवान् ने देवों से कहलवाया था कि हम पूँछ न पकड़ कर मुँह ही पकड़ेंगे । इस पर देख मुँह पकड़ने की हठ करने लगे और इस रीति से देवों को जो मुँह से क्षीर

से हो रहे थे, हरि ने पूँछ की ओर करा दिया था । जब मयन होने लगा तो बिना आधार वाला वह पर्वत जल में बैठने लगा था ॥ ६-७ ॥ उस समय में अपना कूर्म का रूप धारण कर विष्णु ने उस मन्दर गिरि का नीचे जाने से बचाया था और उसे अपने ऊपर धारण कर लिया था । उस मयित क्षीर समुद्र से हलाहल विष निकला था ॥ ८ ॥

हरेण धरितं कण्ठे नीलकण्ठस्ततोऽभत् ।
 ततोऽभूद्धारुणी देवी पारिजातश्च कौस्तुभः ॥८॥
 गावश्चाप्सरसो दिव्या लक्ष्मीर्देवी हरि गता ।
 पश्यन्तः सर्वदेवास्तां रतुवन्तः सश्रियोऽभवन् ॥९॥
 ततो घन्वन्तरिविष्णुरायुर्वेदप्रदर्शकः ।
 विश्रुत्कमण्डलुं पूर्णममृतेन समुत्थितः ॥१०॥
 अमृतं तत्कराद्दैत्याः सुरेभ्योऽर्घ्यं प्रदाय च ।
 गृहीत्वा जग्मुर्जम्माद्या विष्णुः स्वरूपघक्तः ॥११॥
 तां दृष्ट्वा रूपसंपन्नां दैत्याः प्रोचुर्विमोहिताः ।
 भव भार्याऽमृतं गृह्य पाययास्मान्वरानने ॥१२॥
 तथेत्युक्त्वा हरिस्तेभ्यो गृहीत्वाऽपाययत्सुरान् ।
 चन्द्ररूपधरो राहुः पिवंश्चाकेंदुनाऽपितः ॥१३॥
 हरिणाऽप्यरिणा छिन्नं सबाहु तच्छिरः पृथक् ।
 कृपयाऽमरतां नीतं वरदं हरिमब्रवीत् ॥१४॥
 राहुर्मतस्तु चन्द्रावौ प्रापस्येते ग्रहणं ग्रहः ।
 तस्मिन्काले च यद्दानं दास्यन्ते स्यात्तदक्षयम् ॥१५॥

सब प्रथम सागर से निकले हुए उस हलाहन विष को महादेव ने कण्ठ में धारण कर लिया था । तभी से महादेव नीले कण्ठ वाले हो गये हैं । इसके पश्चात् उस मयित समुद्र में वारुणी देवी-लक्ष्मी-पारिजात-कल्प वृक्ष और कौस्तुभ मणि प्रकट हुए थे । कामधेनु गौ और दिव्य अप्सराएँ प्रकट हुईं । ये सब और लक्ष्मी देवी को विष्णु ने ग्रहण कर लिया था । समस्त देवों ने उनको देख कर उनकी स्तुति की और वे श्रीमहित हो गये थे ॥ ६-१० ॥

इसके पश्चात् धन्वन्तरि भगवान् विष्णु जो कि आयुर्वेद शास्त्र के प्रवर्तक थे, अमृत से भरे हुए कमण्डल को हाथ में लिये हुए समुद्र से उठ कर आये ॥ ११ ॥ दैत्यो ने उन धन्वन्तरि भगवान् के हाथ से उस अमृत में पूर्ण कमण्डल को ले लिया और देवगण को उनका आधा भाग देकर वे चले गये थे । इसके उपरान्त भगवान् विष्णु ने मोहिनी स्त्री का रूप धारण करके वहाँ आगमन किया था ॥ १२ ॥ उस परम सौन्दर्य से सम्पन्न मोहिनी स्त्री को देख कर दैत्य गण मोहित हो गये और उससे कहने लगे, हे वरानने ! इस अमृत को तुम ग्रहण करके भार्गव बन जाओ और हमको अपने हाथों से इसका पान करा दो ॥ १३ ॥ मोहिनी के स्वरूप को धारण करने वाले हरि ने 'ऐसा ही होगा'—यह कह कर उस अमृत के कलश को लेकर उसके अन्दर रहने वाले अमृत को देवों को पिला दिया था । उस समय उस देवों की पत्ति के मध्य में चन्द्र का रूप धारण करने वाले राहु नामक दैत्य ने भी उस अमृत को पीना शुरू किया था कि चन्द्र और सूर्य ने उसे बनना दिया था अर्थात् यह राहु दैत्य है—इसकी सूचना हरि को देदी थी ॥ १४ ॥ हरि ने तुरन्त ही चक्रायुध के द्वारा राहुओं के सहित शिर काट डाला और अलग कर दिया था । कृपा करके अमरत्व को प्राप्त किये हुए तथा वरदान देने वाले हरि से वह बोला ॥ १५ ॥ मैं राहु नामक ब्रह्म हूँ मुझ से ये चन्द्र और सूर्य ग्रहण की प्राप्ति किया करेंगे । उस ग्रहण की बेला में जो भी कुछ दान दिया जायगा वह अक्षय होगा ॥ १६ ॥

तथेत्याहाय तं विष्णुस्ततः सर्वैः सहामरैः ।

स्त्रीरूपं संपरित्यज्य हरणोक्त प्रदर्शय ॥१७॥

दर्शयामास रुद्राय स्त्रीरूपं भगवान्हरिः ।

मायया मोहितः शम्भुगौरीं त्यक्त्वा स्त्रियं गतः ॥१८॥

नग्न उन्मत्तरूपोऽनुत्स्वयः केशानधारयद् ।

अगाद्धिमुच्य केशान्स्त्री अन्वधायच्च तां गताम् ॥१९॥

स्पर्शित तस्य वीर्यं को यत्न यत्न हरस्य हि ।

नय तस्माभवत्क्षेत्रं विद्वाणां कनकस्य च ॥२०॥

भायेयमिति तां ज्ञात्वा स्वरूपस्थोऽभवद्वरः ।
 शिवमाह हरी रुद्र जिता माया त्वया हि मे ॥२१॥
 न जेतुमेनां शक्तो मे त्वहूतेऽन्यः पुमान्भुवि ।
 अप्राप्ताश्चामृतं दैत्या देवैर्गुह्ये निपातिताः ॥२२॥
 त्रिदिवस्थाः सुराश्चाऽऽसूदै याः पातालवासिनः ।
 यो नरः पठते देवविजयं त्रिदिवं व्रजेत् ॥२३॥

भगवान् विष्णु ने उमसे 'ऐसा ही हो'—यह कहा और इसके उपरान्त विष्णु ने सपस्त देवों के साथ में रह कर अपने उम मोहिनी स्त्री के रूप का परित्याग कर दिया था । स्त्री के रूप के परित्याग करने के पश्चात् महादेव ने भगवान् विष्णु से उम रूप को दिखाने की प्रार्थना की ॥ १७ ॥ तब भगवान् ने रुद्र को अपना स्त्री रूप पुनः धारण करके दिखाया था । उम समय माया मे मोहित होकर शम्भु अपनी गौरी पार्वती का त्याग करके भगवान् विष्णु के घारे हुए मोहिनी के रूप वाली स्त्री के पीछे चन दिये थे ॥ १८ ॥ तब ऐसे उम रूप के मोन्दर्य पर मोहित हो गये कि पीछे भागने हुए नन्ध और उन्मत्त के जैसे रूप धारण हो गये तथा उम स्त्री के केशों को हाथ से पकड़ लिया था । फिर उम की चोटी के केशों को छोड़ कर गई हुई उस स्त्री के पीछे दौड़ने लगे ॥ १९ ॥ उम समय कामान्ध होकर दौड़ने वाले तब का वीर्य भूमि पर जहाँ-वहाँ भी गिर गया था, वहाँ-वहाँ पर लड़कों का तथा गुहर्ण का क्षेत्र बन गया था ॥ २० ॥ अन्त में यह भगवान् विष्णु की माया है ऐसा ज्ञान प्राप्त करके तब अपने स्वरूप में स्थित हुए । तब भगवान् विष्णु ने तब से कहा—हे रुद्रदेव ! आने मेरी माया को जित लिया है ॥ २१ ॥ इस भूमण्डल मे इस मेरी प्रुवन मोहिनी माया को तुम्हारे अनिर्गुण प्रत्य कोई भी जीतने में समर्थ नहीं हो सकता है । जब वे दैत्य लोग उम समुद्र मे निकले हुए समुद्र को नहीं प्राप्त कर सके तो वे देवगण के द्वारा मुद्र मे गिरा दिये गये थे ॥ २२ ॥ देवगण सब त्रिदिव धर्मात् स्वर्ग मे निवास करने वाले हैं और दैत्य मुद्र गये पाताल में रहा करते हैं । जो मनुष्य इस देशों के विषय प्राप्त करने के पाठशाला को पढ़ता है वह स्वर्ग की प्राप्ति करता है ॥ २३ ॥



४-वराहनारसिंहादीनामवताराणां वर्णनम् ।

अवतारं वराहस्य वक्ष्येऽह पापनाशनम् ।
 हिरण्याक्षोऽमुरेशोऽभूद्देवाञ्जित्वा दिवि स्थितः ॥१
 देवगन्त्वा स्तुतो विष्णुर्यज्ञरूपो वराहकः ।
 अभूत्तं दानव हत्वा दैत्यैः सार्धं तु कण्टकम् ॥२
 धर्मदेवादिरक्षाकृततः सोऽन्तर्दधे हरिः ।
 हिरण्याक्षस्य वै भ्राता हिरण्यकशिपुस्तथा ॥३
 जितदेवयज्ञभागः सर्वदेवाधिकारकृत् ।
 नारसिंह वपुः कृत्वा तं जघान सुरैः सह ॥४
 स्वपदस्थान्मुरांश्चक्रे नारसिंहः सुरैः स्तुतः ।
 देवासुरे पुरा युद्धे बलिप्रभृतिभिः सुराः ॥५
 जिताः स्वर्गात्परिभ्रष्टा हरिं ते शरणं गताः ।
 मुराणामभयं दत्त्वा अदित्या कश्यपेन च ॥६
 स्तुतोऽसौ वामनो भूत्वा ह्यदित्यां स क्रतुं ययी ।
 बलेः श्रीयजमानस्य, गङ्गाद्वारे गृणन्स्तुतिम् ॥७
 वेदान्पठन्तं तं श्रुत्वा वामनं वरदोऽब्रवीत् ।
 निवारितोऽपि शुक्रेण बलिब्रूहि यदिच्छसि ॥८

अब इस अध्याय में वराह-नारसिंह आदि अवतारों का वर्णन है ।
 यमि ने कहा — मैं अब वराह के अवतार को बताऊँगा जो समस्त पापों का
 नाश करने वाला है । पहिले हिरण्याक्ष नाम वाला एक असुर हुआ था जो
 समस्त देवों को जीत कर दिव्यलोका में रहा करता था ॥ १ ॥ तब देवगण ने
 जानकर भगवान् विष्णु की स्तुति की और उस असुर के यावत प्रार्थना की थी ।
 तब विष्णु यज्ञ रूप वाला वराह हुए थे । उनने उस हिरण्याक्ष दानव को
 जो कि यज्ञ देवों के नाश कण्टक स्वरूप देवों को दुःखदायी हो रहा था,
 मारकर धर्म और देवों की रक्षा की और इसके पश्चात् हरि अन्तर्धान हो
 गये । हिरण्याक्ष दैत्य का एक भा हिरण्यकशिपु नामधारी था ॥ २-३ ॥ उस
 हिरण्यकशिपु दैत्य ने देवों के यज्ञ भाग को जीत लिया था और देवों के

समस्त अघिकाशों को छीन कर अपने हाथ में ले लिया था । तब विष्णु नारसिंह शरीर धारण करके प्रथान् नृसिंहावतार रत्न कर मुरों के माथ वहाँ प्रकट हुए और उम हिरण्यकशिपु का वध किया था ॥ ४ ॥ देवों के द्वारा स्तुति किये गये नारसिंह ने देवों को पुनः अपने-अपने पदों पर स्थित कर दिया था । पहिले देवामुर युद्ध में बलि आदि दैत्यों के द्वारा समस्त देवता जीत लिये गये थे और स्वर्ग में परिभ्रष्ट कर दिये गये । तब समस्त देवता लोभ हरि की शरण में पड़ें । तब हरि भगवान् ने देवों को अभय रहने का वचन दिया था । 'इवर अदिति तथा उमके पनि कश्यप ऋषि के द्वारा विष्णु की स्तुति की गई थी । फिर उष अहिनि के गर्भ से वामन के रूप में समुत्पन्न होकर बलि राजा के यज्ञ में पड़ेंगे । वहाँ पर गङ्गाद्वार में यजमान राजा बलि की स्तुति को ग्रहण किया था ॥ ५-६ ॥ वेदों के पाठ करने वाले वामन से वरदान देने बलि बोला । यद्यपि बलि के गुरु शुक्राचार्य ने उसे रोका भी था किन्तु आचार्य की उम विशेषाज्ञा को न मन कर बलि ने वामन से कहा जो भी तुम चाहते हो माँगलो ॥ ७-८ ॥

तत्तेज्जं संप्रदास्यामि, वामनो बलिमब्रवीत् ।
पदक्षयं मे गुर्वर्थं देहि दास्ये तमब्रवीत् ॥८॥
तोये तु पतिते हस्ते वामनोऽभूदवामनः ।
भूर्लोकं स भुवर्लोकं स्वर्लोकं च पदक्षयम् ॥९॥
चक्रे बलिं च मुनले तच्छक्राय ददौ हरिः ।
शक्रो देवैर्हरिं स्तुत्वा भुवनेशः सुखी त्वभूत् ॥१०॥
वश्ये परशुरामस्य चावतारं शृणु द्विज ।
उद्धतान्श्रुत्स्वियान्मत्वा भूभारहरणाय मे ॥११॥
भवतीर्णो हरिः शान्त्यै देवविप्रादिपालकः ।
जमदग्ने रेणुकायां भार्गवः शस्तृपारमः ॥१२॥

दैत्यराज बलि राजा ने कहा जो भी तुम मागोगे मैं तुमको वही दे दूँगा । तब वामन ने बलि से कहा — मुझे गुरु के लिये तीन चरण प्रमाण भूमि दो जो कि दास्य भाव में रहने में मुझे गुरु को देनी है ॥८॥ भूमि के दान करने

के वास्ते हाथ में जल के लेने ही वह वामना (बौना) अवामन हो गया था और अपने तीन पदों से क्रम से भूलोक-भुवर्लोक और स्वर्लोक का नाप कर ले लिया था ॥ २० ॥ फिर राजा बलि को सुतल लोक में भेज दिया था । हरि ने यह सब इन्द्र को दे दिया । तब इन्द्रदेव ने देवों के साथ भगवान् का स्तवन किया और भुवर्नों का स्वामी होकर वह परम सुखी हो गये थे ॥ ११ ॥ हे द्विज ! अब इसके आगे मैं परशुराम के अवतार का आख्यान बतलाऊँगा, उसे तुम सुनो ! क्षत्रियों को उद्धत देख कर भूमि के भार को हरण करने के लिये और संसार में शान्ति की स्थापना करने के वास्ते हरि ने अवतार लिया था क्योंकि वह देव और विप्र आदि के पूर्ण रूप से प्रतिपालक हैं । जमदग्नि ऋषि से रेणुका में समस्त शास्त्रों के पारंगामी विद्वान् भागव अर्थात् परशुराम अवतीर्ण हुए थे ॥ १२ १३ ॥

दत्तात्रेयप्रसादेन कार्तवीर्यो नृपस्त्वभूत् ।

सहस्रबाहुः सर्वोर्वीपतिः स मृगयां गतः ॥१४

श्रान्तो निमन्त्रितोऽरण्ये मुनिना जमदग्निना ।

कामधेनुप्रभावेण भोजितः सवलो नृपः ॥१५

अप्रार्थयत्कामधेनुं यदा स न ददौ तदा ।

हृतवानथ रामेण शिरश्छित्त्वा निपातितः ॥१६

युद्धे परशुना राजा सध्रेनुः स्वाश्रमं ययौ ।

कार्तवीर्यस्य पुत्रेस्तु जमदग्निनिपातितः ॥१७

रामे वनं गते वैरादथ रामः समागतः ।

पितरं निहतं दृष्ट्वा पितृनाशाभिमपितः ॥१८

सिःमसकृत्क्वः पृथिवीं निःक्षत्स्वामकरोद्विभुः ।

धुरक्षेपे पञ्च कुण्डान्कृत्वा संतप्यं वै पितृन् ॥१९

दत्तात्रेय के प्रसाद में उस समय में कार्तवीर्य राजा हुआ था । वह नृप कार्तवीर्य गहस्र बाहुओं वाले और इस समय में भूमि के स्वामी थे । वह एक बार शिकार करने के लिये गये थे ॥ १४ ॥ शिकार करने हुए वे थक गये थे तब जमदग्नि ऋषि ने उग अरण्य में उनको निमन्त्रण दिया था ।

उनके पाम कामधेनु गो थी उसके प्रभाव से जमदग्नि ने सम्पूर्ण सेना के साथ राजा के भोजनादि का स्वागत किया था ॥ १५ ॥ राजा कार्तवीर्य ने जमदग्नि से वह कामधेनु देने को कहा तो ऋषि ने मनाकर कामधेनु को उन्हें नहीं दिया था । जब हरण करने लगे तो परशुराम ने उसका शिर काटकर मार डाला था ॥ १६ ॥ परशुराम ने अपने परशु के द्वारा राजा को मार कर वापस अपने आश्रम को प्रस्थान किया था । इसके पश्चात् कार्तवीर्य के पुत्रों ने जमदग्नि ऋषि का वध कर दिया था । परशुराम उस समय बन में चले गये थे । जब वे वापस आये तो अपने पिता को मृत देखा और उन्हें पिता के नाश से महान् क्रोध उत्पन्न हुआ । उसी समय परशुराम ने सत्य प्रतिज्ञा की कि पृथ्वी को क्षत्रियो से रहित कर दूँगा और इक्कीस बार विभूने पृथ्वी के समस्त क्षत्रियों का सहार किया था तथा कुक्षेत्र में पाँच कुण्डों का निर्माण कर पितरों का भली भाँत तर्पण किया था ॥ १७-१८-१९ ।



५-राम कृष्ण अवतार कथा वर्णनम्

विष्णुनाभ्यवज्जो ब्रह्मा मरीचिब्रह्मणः सुतः ।
 मरीचिः कश्यपस्तस्मात्सूर्यो वैवस्वतो मनुः ॥२१॥
 ततस्तस्मात्तथेक्ष्वाकुस्तस्य वंशे ककुत्स्थकः ।
 ककुत्स्थस्य रघुस्तस्मादजो दशरथस्ततः ॥२२॥
 रावणादेवंधार्थाय चतुर्धोऽभूत्स्वयं हरिः ।
 राजो दशरथाद्रामः कौसल्यायां बभूव ह ॥२३॥
 कैकेय्यां भरतः पुत्रः सुमित्रायां च लक्ष्मणः ।
 शलघ्नश्चप्यशृङ्गेण तासु संदत्तपायसात् ॥२४॥

श्रीरामावतार की कथा का सक्षिप्त वर्णन है—भगवान् विष्णु से कमल में जन्म ग्रहण कर ब्रह्मा हुए । ब्रह्मा के पुत्र मरीचि हुए । फिर मरीचि ने कश्यप ऋषि उत्पन्न हुए । उम कश्यप ने सूर्य वैवस्वत मनु इस नाम से समुत्पन्न हुए थे ॥ २१ ॥ फिर उस वैवस्वत मनु से इक्ष्वाकु ने जन्म ग्रहण

बिया था । उसके वंश में ककुत्स्थः उत्पन्न हुए और उस ककुत्स्थः के पुत्र रघु हुए उस रघु से म्रज की उत्पत्ति हुई तथा म्रज राजा के पुत्र दशरथ ने जन्म लिया । फिर रावण आदि दुष्ट राक्षसों के वध करने के लिये हरि भगवान् स्वयं चार रूपों में अवतीर्ण हुए थे । राजा दशरथ से कौसल्या रानी ने श्रीराम ने जन्म लिया था ॥ २२-२३ ॥ कैकेयी में भरत पुत्र उत्पन्न हुए और सुमित्रा नामक रानी ने लक्ष्मण हुए थे और शत्रुघ्न नाम वाले ऋष्यशृङ्ग के द्वारा दिये हुए पायस से उनमें समुदात्त हुए थे ॥ २४ ॥

भुवो भारावतारार्थं देवक्यां वसुदेवतः ।
 हिरण्यकशिपोः पुत्राः पङ्कगर्भा योगनिद्रया ॥२५॥
 विष्णुप्रयुक्त्या नीता देवकीजठरं पुरा ।
 अभूच्च सप्तमो गर्भो देवक्य जठराद्वलः ॥२६॥
 सक्रामितोऽभूद्रोहिण्या रोहिण्यस्ततो हरिः ।
 कृष्णाष्टभ्यां च नभसि अर्धरात्रे चतुर्भुजः ॥२७॥
 देवक्या वसुदेवेन स्तुतो बालो द्विबाहुकः ।
 वसुदेवः कंसभयाद्यशोदाशयनेऽनयत् ॥२८॥

अब श्रीकृष्णवतार की कथा का परम संक्षिप्त वर्णन है । इस भूमण्डल के बड़े हुए भार को उतारने के लिये देवानों ने वसुदेव से छे पुत्र उत्पन्न हुए थे । वे छहों पुत्र हिरण्यकशिपु गर्भ में हुए थे । उन समय भगवान् विष्णु के द्वारा प्रयुक्त योग निद्रा के द्वारा पहिले देवकी के उदर में लाये गये थे । देवकी में जो सातवाँ गर्भ बलराम के स्वरूप में था जो कि देवकी के उदर से रोहिणी के उदर में सक्रामित कर दिया गया था । तब हरि रोहिण्येय इत नाम से उत्पन्न हुए थे । भाद्रपद की कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में अर्द्ध रात्रि के समय में आकाश में चतुर्भुज रूप वाले दिखाई देने वाले प्रभु वसुदेव और देवकी के द्वारा स्तुति किये जाने पर दोबाहुओ बालक हो गये थे । फिर वसुदेव ने कंस राजा के भय से भीत होते हुए उसे यशोदा के शयन में पहुँचा दिया था ॥ २५-२६-२७-२८ ॥

७-जगत्सर्गवर्णनम्

जगत्सर्गादिकां क्रीडां विष्णोर्वक्ष्येऽधुना शृणु ।
 स्वर्गादिकृत्स सर्गादिः सृष्ट्यादिः सगुणोऽगुणः ॥१॥
 ब्रह्माव्यक्तं सदग्रेऽमृतं च रात्रिदिनादिकम् ।
 प्रकृतिः पुरुषं विष्टुं प्रविश्याक्षोभयत्ततः ॥२॥
 सर्गकाले महत्तत्त्वमहंकारस्ततोऽभवत् ।
 वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ॥३॥
 अहंकाराच्छब्दमात्रकाशमभवत्ततः ।
 स्पर्शमात्रोऽनिलस्तस्माद्रूपमात्रोऽनलस्ततः ॥४॥
 रसमात्रा आप इतो गन्धमात्रा धरिश्चभूत् ।
 अहंकारात्तामसात्तु तैजसान्निद्रियाण च ॥५॥
 वैकारिका दश देवा मन एकादशेन्द्रियम् ।
 ततः स्वयम्भूर्भगवान्सिमृधुर्विविधाः प्रजाः ॥६॥
 अप एव ससर्जाऽऽदौ तामु बोधयंवासृजन् ।
 आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वं नरसूनवः ॥७॥
 अयनं तस्य ताः पूर्व तेन नारायणः स्मृतः ।
 हिरण्यवर्णमभवत्तदण्डमुदकेशयम् ॥८॥

स्वर्ग आदि के करने वाला वह सर्ग का यदि और इस मृष्टि का यदि तथा सगुण और निर्गुण है ॥ १ ॥ आगे ब्रह्म अव्यक्त होता हुआ था : न तो आकाश था और ने रात और दिन आदि ही थे । उस समय प्रकृति ने पुरुष में प्रवेश किया था और उसमें क्षोभ उत्पन्न कर दिया ॥ २ ॥ सर्ग के समय में महत्तत्त्व हुआ और फिर महत् से अहंकार हुआ था और फिर वैकारिक अर्थात् विकार से युक्त-तैजस और तामस भूतादि हुए थे ॥ ३ ॥ पहिले उस अहंकार से शब्द मात्र आकाश उत्पन्न हुआ था । फिर स्पर्शमात्र वायु और उससे रसमात्र अमल (तेज) पैदा हुआ ॥ ४ ॥ रस जिनगी मात्रा है वे फिर तेज से उत्पन्न हुए और फिर उससे गन्धमात्रा धरिणी हुई । तामस अहंकार

मे तंजसं इन्द्रियां हुई ॥ ५ ॥ ये वैकारिक दज देव हैं । मन ग्यारहवीं इन्द्रिय है । इसके उपरान्त मृज्जन की इच्छा रखने स्वयम्भू भगवान् ने अनेक प्रकार की प्रजा की मृष्टि की थी ॥ ६ ॥ आदि में जल की ही मृष्टि की थी और उनमें वीर्य का म्रवामृज्जन किया था । आपो को म्रयान् जलों को नार बहा जाता है । जल निश्चय ही नर मनु हैं । पहिले वे जन ही जिनके अयन म्रयान् रहने के स्थान हैं इससे वह नारायण कहा गया है । उदक में म्रयन करने वाला बड़ अण्ड हिरण्य वर्ण वाला था ॥ ७-८ ॥

तस्मिञ्जजे स्वयं ब्रह्मा स्वयंभूरिति नः श्रुतम् ।

हिरण्यगर्भो भगवानुपित्वा पस्वित्सरम् ॥८॥

तदण्डमकरोदद्वंद्वं दिवं भुवमथापि च ।

तयोः शकलयोर्मध्य आकाशममृजत्प्रभुः ॥९॥

अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दधे ।

तत्र कालं मनो वाचं कामं क्रोधमथो रतिम् ॥१०॥

ससर्जं मृष्टिं तद्रूपां सष्टुमिच्छन्प्रजापतिः ।

विद्युतोऽजनिमेधांश्च राहितेन्द्रधनूंषि च ॥११॥

वर्षांसि च ससर्जाऽऽदौ पर्जन्यं चाय ववव्रतः ।

ऋचो यजूंषि सामानि निर्ममे यजसिदधे ॥१२॥

माधस्तात्तैर्यजन्देवान्भूतमुच्चावचं भुजान् ।

नन्तुगारं रद्रं च ससर्जं क्रोडमंभवम् ॥१३॥

नगीविषम्यद्भिर्गंसं पुनस्त्वं पुनहं क्रतुम् ।

वसिष्ठं मानसान्समं ब्राह्मणानिति निश्चितम् ॥१४॥

सर्पते जनयन्ति स्म प्रजा रद्राश्च भूतम् ।

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्थेन पुण्योऽभवत् ॥१५॥

अर्थेन नागी तस्यां न ब्रह्मा ये चामृजत्प्रजाः ॥१६॥

उगवे मे स्वयं ब्रह्मा ने जन्म ग्रहण किया था । त्रिवरा नाम हमने स्वयम्भू मृता है । हिरण्यगर्भ भगवान् ने एक पस्वित्सर वहाँ निवास करने के लिए

उस अण्ड के दो भाग कर दिये थे, जो एक भाग तो दिव है और दूसरा भूमण्डल है । इन दोनों अण्ड के खण्डों के मध्य में उसने आकाश की रचना की थी ॥ ९-१० ॥ जलों में परिल्लवा पृथ्वी को और दश दिशाओं को बनाया था । वहाँ पर काल मन-वाच-काम-क्रोध और रति का सृजन किया था ॥ ११ ॥ प्रजापति ने जोकि सृजन करने की इच्छा रखने वाला, तद्वत् सृष्टि का सृजन किया था । उसने विद्युत्-वज्र-मेघ-रोहितेन्द्र धनुष-पक्षीमण-की सृष्टि की । आदि मे पर्जन्य (मेघ) की रचना की और बाद में मुख से ऋक्-साम तथा यजुर्वेद का यज्ञ की सिद्धि के लिये सृजन किया था ॥ १२-१३ ॥ जो साधना करने के योग्य पुरुष होते हैं वे उन वेदों के द्वारा देवों का यजन करते थे । ब्रह्मा ने भुजा में उद्भावन भूत की रचना की थी । सतत्कुमार का और क्रोध से जन्म लेने वाले रुद्र का सृजन किया था । १४ ॥ फिर स्वयम्भू ने मन से उत्पन्न होने वाले मानस सात ब्राह्मणों को निर्मित किया था जिनके नाम मरीचि-अत्रि-अङ्गिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ ये होते हैं ॥ १५ ॥ ये सात प्रजा को जनमाते थे और हे सत्तम ! रूद्रों की रचना करते थे । फिर अपनी आत्मा के देह के भाग करके आधे भाग से पुरुष हुए और आधे से नारी का रूप धारण किया था । उस नारी ने उस ब्रह्मा ने प्रजाओं का सृजन किया था ॥ १६-१७ ॥



८-स्वायंभुवमनुवंशवर्णनम्

प्रियव्रतोत्तानपादो मनोः स्वायंभुवात्सुतो ।
 अजीजनत्सुतां रम्यां शतरूपा तपोन्विता ॥१॥
 काम्या कर्दमकन्याजतः सम्राट्कुक्षिविराट्प्रभुः ।
 गुरुच्यामुत्तमो जज्ञे पुत्र उत्तानपादतः ॥२॥
 सुनीत्यां च ध्रुवः पुत्रस्तपस्तेपे सुकीर्तये ।
 ध्रुवो यमंगहम्याणि प्रीणि दिव्यानि हे मुने ॥३॥
 तस्मै प्रीनो हरिः प्रादान्मन्यग्रे म्यानकं स्थिरम् ।
 श्लोकं पपाठ स्युशना उदि दृष्ट्वा स तस्य च ॥४॥

अङ्गात्सुतीथापत्यं वै वेणमेकं व्यजायत ।

अरक्षकः पापरतः स हतो मुनिभिः कुशैः ॥११

प्रजार्थमृपयोऽथास्व ममन्थुर्दक्षिणं करम् ।

वेणस्य मथिते पाणी संवत्स्र्य पृथुनृपः ॥१२

तं दृष्ट्वा मुनयः प्रादुरेप वै मुदिताः प्रजाः ।

करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत् ॥१३

स धन्वी कवची जातस्तेजसा निर्दहन्निव ।

पृथुर्वेण्यः प्रजाः सर्वा ररक्ष क्षत्रपूर्वजः ॥१४

राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स पृथिवीपतिः ।

तस्माच्चैव समुत्पन्नो निपुणो सूतमागधो ॥१५

तस्स्तोत्रं चक्रतुर्वीरो, राजाऽगूजनरञ्जनान् ।

दुःश्चा गौस्तेन सस्यार्थं प्रजानां जीवनाय च ॥१६

उन चाधुप मनु के दश पुरों के निम्न नाम हुए थे — ऊरु, पूरु, शतशुम्भ, तपस्वी, सत्यवाक्, कवि, अग्निधुव, अतिरात्र, सुशुम्भ और अति-मन्यु ॥ ६ ॥ ऊरु नामक से पद्मानेयी ने महान् प्रभा से युक्त पुत्रों को समुत्पन्न किया था जिनके नाम अङ्ग, सुमनस, स्वाति, क्रतु अङ्गिरस और गय थे ॥ १० ॥ अङ्ग से सुनीथा ने केवल एक वेण नामक सन्तति उत्पन्न हुई थी । वह वेण रक्षा न करने वाला तथा सदा पाप कर्मों में रति रखने वाला था । इसलिये मुनियों ने कुजों के द्वारा उसका हनन कर दिया था ॥ ११ ॥ फिर श्रुतियों ने प्रजा के लिये दसके दाहिने हाथ का मन्थन किया था । उस वेण के हाथ के मथित करने पर पृथु नाम का राजा उत्पन्न हुआ था ॥ १२ ॥ उस पृथुको देख कर मुनिगण कहने लगे थे कि यह प्रजा को परम सुखों एवं प्रमत्त करेगा और यह महान् तेज वाला महान् यश की भी प्राप्ति करेगा ॥ १३ ॥ वह धनुष तथा कवच भी धारण करने वाला अपने दिव्य तेज के द्वारा जलाता हुआ उत्पन्न हुआ था । वेण के पुत्र पृथु ने जोति शत्रु पूर्वज था अपनी समस्त प्रजा की भरी भीति रक्षा की थी ॥ १४ ॥ राजसूय यज्ञ के द्वारा अभिषिक्त राजाधों में वह पृथु सबसे प्रथम पृथ्वी का स्वामी हुआ था और उसमें परम

कुशल मून तथा मागध उत्पन्न हए थे ॥ १५ ॥ उन वीरों ने यह स्तोत्र किया था कि प्रजा के उद्भवन करने से राजा हुआ । प्रजा के जीवन के लिये मर्त्यों की उत्पत्ति करने को उमने इस पृथ्वी का दोहन किया था ॥ १६ ॥

सह देवैर्मुनिगणैर्गन्धर्वैश्चाप्सरोगणैः ।

पितृभिर्दानवैः सर्वैर्वीरुद्भिः पर्वतैर्जनैः ॥ १७ ॥

तेषु तेषु च पात्रेषु दुह्यमाना वसुंधरा ।

प्रादाद्यथेप्सितं क्षीरं तेन प्राणानधारयन् ॥ १८ ॥

पृथोः पुत्रो तु धर्मज्ञो जज्ञातेऽन्तर्धिपालितो ।

शिखण्डिनो हविर्धनिमन्तर्धानाव्यजायत ॥ १९ ॥

हविर्धना त्पडाग्नेयी धिषणाऽजनयत्सुतान् ।

प्राचीनवर्हिषं शुक्रं गयं कृष्णं ब्रजाजिनो ॥ २० ॥

प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य पृथिव्यां यजतो यतः ।

प्राचीनवर्हिर्भगवा न्महानासीत्प्रजापतिः ॥ २१ ॥

सवर्णाऽऽधत्त सामुद्री दश प्राचीनवर्हिषः ।

सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ॥ २२ ॥

अपृथग्धर्मवरणास्तेऽतप्सन्त महत्तनः ।

दश वर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ॥ २३ ॥

प्रजापतित्वं संप्राप्य तुष्टा विष्णोश्च निर्गताः ।

भूः खं व्याप्तं हि तरुभिस्तांस्तहनदहंश्च ते ॥ २४ ॥

देव, मुनि, गन्धर्व, अप्सरसगण, पितर, दानव, गरुड, वीर, पर्वत और जनों के साथ उन-उन पात्रों में दुह्यमान यह वसुंधरा ने इच्छानुसार क्षीर दिया था जिनमें सभी लोग प्राणों की धारण करते थे ॥ १७-१८ ॥ राजा पृथु के दो परम धर्मज्ञ धन्धि और पान्तिन पुत्र उत्पन्न हुए थे । निगण्डिनो ने धन्धिर्धनि में हविर्धनि उत्पन्न किया था ॥ १९ ॥ हविर्धनि से पडाग्नेयी धिषण ने छ पुत्रों को जन्म दृष्ट कर लिया था । उनके नाम ये हैं— प्राचीन वर्हिःशुक्र, गय, कृष्ण, ब्रज और ब्रजिन ॥ २० ॥ पृथिवी में यजन करने

वाले उसके प्राचीनाग्र कुशा थी । प्राचीन वहि भगवान् एक परम महान् प्रजापति हुए थे ॥ २१ ॥ सवर्णा सामुद्री ने प्राचीन वहि से दश पुत्रों को धारण किया था । वे सब प्रचेतस नाम वाले हुए और धनुर्वेद शास्त्र के प्रत्यन्त पारगामी पण्डित थे ॥ २२ ॥ एक ही धर्म के आबरण करने वाले उन्होंने समुद्र के जल में स्थिति करके दश सहस्र वर्ष तक महान् तप को किया था ॥ २३ ॥ इसके पश्चात् भगवान् विष्णु से उन्होंने प्रजापति के होने के पद को प्राप्त किया था और फिर वे परम सन्तुष्ट होकर निकले थे । यह समस्त पृथ्वी और आकाश तरुओं से व्याप्त हो गया था अर्थात् सर्वत्र एक महान् वृक्षावलि छा गई थी । तब उन्होंने इनको जला दिया था ॥ २४ ॥

मुखजाग्निमरुद्भ्यां च हृष्ट्वा चाथ द्रुमक्षयम् ।
 उपगम्याब्रवीदेताम्राजा सोमः प्रजापतीन् ॥२५॥
 कोपं यच्छत दास्यन्ति कन्या वो मारिषां वराभ्र ।
 तर्पास्वनो मुनेः कण्डोः प्रम्लोचायां मयैव च ॥२६॥
 भविष्य जानता सृष्टा भार्या वोऽस्तु कुलंकरी ।
 अस्यामुत्पत्स्यते दक्षः प्रजाः संवर्धयिष्यति ॥२७॥
 प्रचेतसस्तां जगृहुर्दक्षोऽस्यां च ततोऽभवत् ।
 अचरांश्च चरांश्चैव दिपदोऽथ चतुष्पदः ॥२८॥
 स सृष्ट्वा मनसा दक्षः पश्चादसृजत स्त्रियः ।
 ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥२९॥
 सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ।
 द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे ह्यदात् ॥३०॥
 तामु देवाश्च नागाद्या मयुनात्मनसा पुरा ।
 धर्मसर्गं प्रवक्ष्यामि दशपत्नीषु धर्मतः ॥३१॥
 विश्वे देवास्तु विश्वायाः साध्यासाध्यान्व्यजायत ।
 मरुत्वत्पा मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवोऽभवन् ॥३२॥

मुन ने उत्तम अग्नि और वायु ने इन द्रुमों के क्षय को देखकर राजा सोम का त्याग कर दो मारिष भापकों एक परम श्रेष्ठ कन्या दिये । तपस्वी

कण्डू मुनि की प्रम्लोचा में मेरे ही द्वारा भविष्य को जागते हुए कुलङ्करी प्राणकी भार्या का सृजन किया गया है । इसके गर्भ से दक्ष की उत्पत्ति होगी जो इस समस्त प्रजा का सम्बर्धन करेगा ॥ २६-२७ ॥ प्रचेतसों ने उसको प्रहण कर लिया था और फिर इसमें दक्ष ने जन्म धारण किया था । उसने अचरों को, चरों को, द्विपदों तथा चतुष्पदों को मन के द्वारा सृजन करके पीछे स्त्रियों का उस दक्ष प्रजापति ने सृजन किया था । उसने दशतो धर्म को दी थी और तेरह कश्यप के लिये प्रदान की थीं ॥ २८-२९ ॥ सत्ताईस सोम को दी और चार अरिष्टनेमि को प्रदान की गई थीं । दो बहू पुत्र के लिये दी गई और दो अङ्गिरस के लिये दी थी ॥ ३० ॥ उनमें मंथुन से देव और नाग उत्पन्न हुए थे । पहिले मनसे ही मृष्टि की गई थी । अब धर्म के सम को बतलाऊंगा जोकि धर्म से दश पत्नियों में हुआ था ॥ ३१ ॥ विश्वा से विश्वे-देव हुए । साध्या ने साध्यों को जन्म दिया था । मरुत्वत्या ने मरुत्वानों को उत्पन्न किया और वसु से वसुगण हुए थे ॥ ३२ ॥

भानोस्तु भानवः पुत्रा मुहूर्तस्ति मुहूर्तजाः ।
लम्बाया धर्मतो घोपो नागवीथा च यामिजा ॥३२
पृथिवीविषयं सर्वं मरुत्वत्यां व्यजायत ।
संकल्पायास्तु संकल्पा इन्दोर्नक्षत्रतः सुताः ॥ ३४
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ च नामतः ॥३५
आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः ध्रुवः शान्तो मुनिस्तथा ।
ध्रुवस्य कालो लोकान्तो वचाः सोमस्य वै सुतः ॥३६
धरस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा ।
मनोहरायाः शिशिरः प्राणोऽय रमणस्तथा ॥३७
पुरोजवोऽनिलस्याऽऽसीदविज्ञातोऽनन्यथा ।
अग्निपुत्रः कुमारश्च शरस्तम्वे व्यजायत ॥३८
तस्य शाखो विशाखश्च नैमेषश्च पृथक् ।
कृत्तिकातः कार्तिकेयो यनिः गन्धर्माश्च ॥३९

प्रत्यूपाद्देवता जज्ञो विश्वकर्मा प्रभासतः ।
 कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशाना च वर्धकिः ॥४०॥
 मनुष्याश्चोपजीवन्ति शिल्पं वं भूषणादिकम् ।
 सुरभी कश्यपाद्रद्रानेकादश विजजुषी ॥४१॥
 महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती ।
 अजंकपादहिवुं धन्यस्त्वष्टा रुद्रश्च सतम ॥४२॥
 त्वष्टुश्चैवाऽऽत्मजः श्रीमान्विश्वरूपो महायिशाः ।
 हरश्च बहुरूपश्च ध्यम्बकश्चापराजितः ॥४३॥
 वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रेवतस्तथा ।
 मृगव्याघ्रश्च सर्पश्च कपाली दश चंककः ॥४४॥
 रुद्राणां च शतं लक्षं यैर्व्याप्तं सचराचरम् ॥४५॥

भानु से भानव नामधारी पुत्र हुए, मुहूर्त से जन्म लेने वाले मुहूर्त,
 धर्म से लम्बा का धोप, नागवीर्य और यामिज यह सब पृथिवी के विषय
 मरुत्वर्ता उत्पन्न हुए । संकल्पा के संकल्प, इन्दु से नञ्जल से पुत्र हुए थे ॥ ३२-
 ३४ ॥ आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनलप्रत्यूष और प्रभाम ये आठ नाम
 से वसुगण कहे जाते हैं ॥ ३५ ॥ आपका पुत्र वैतण्ड्य, अम, शान्त, तथा
 मुनि हुए थे । ध्रुव के पुत्र काल और लोकान्त हुए तथा सोम का पुत्र वर्चा
 नामधारी हुआ था ॥ ३६ ॥ धर का द्रविण और हुतहव्य वह हुए । मनोहरा
 के शिशिर-प्राण तथा रमण पुत्र हुए थे ॥ ३७ ॥ अनिल का पुत्र पुरोजव
 नामधारी हुआ और अनल का अविज्ञात था । शरस्तम्ब में अग्नि पुत्र और
 कुमार उत्पन्न हुए थे ॥ ३८ ॥ पीछे उसके पुत्र शाल-विशाल और वैगमेय
 नाम वाले पैदा हुए थे । कृतिका से कार्तिकेय, यति और सनत्कुमारक हुए
 ॥ ३९ ॥ प्रत्यूष से देवल की उत्पत्ति हुई । प्रभाम से विश्वकर्मा ने जन्म
 ग्रहण किया था जोकि सहस्रों शिल्पों के करने वाले और देवों का वर्धकि
 हुए थे ॥ ४० ॥ मनुष्य भूषणादिक के निर्माण करने के शिल्प से अपना जीवन
 निर्वाह किया करते हैं । सुरभी ने कश्यप से एकादश रुद्रों को जन्म दिया
 दिया था ॥ ४१ ॥ महादेव के प्रसाद से तप के द्वारा भावित सती ने अजंक-

है—विष्णु, शक्र, त्वष्टा, धाता, अर्यमा, पूषा, विवस्वान्, मरुता, भिल, वरुण, भग और अंशु ये द्वादश हैं। अरिष्ट नमि की पत्नियों के सोलह सन्तान हैं ॥ २-३ ॥ विद्वान् बहु पुत्र के चार विद्युत् कही गई है। प्रत्यङ्गिरस से जन्म लेने वाले श्रेष्ठ हुए और कृशाश्व के सुरायुष हुए थे ॥ ४ ॥ उदय और अस्तमन के समय में जैसे सूर्य होते हैं उसी भाँति ये युग-युग में हुष्रा करते हैं। कश्यप ऋषि से दिति नामक पत्नी में हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष उत्पन्न हुए थे ॥ ५ ॥ सिंहिका नाम वाली एक कन्या हुई थी जो कि विप्र-चित्ति का पत्नि हुई बनी थी। उसमें राहु प्रभृति उत्पन्न हुए थे जो सिंहिकेय इस नाम से बुने गये हैं ॥ ६ ॥ राजा हिरण्यकशिपु के चार पुत्र हुए थे जो कि परम प्रसिद्ध भोज वाले थे। उन चारों के नाम अनुह्लाद, ह्लाद और प्रह्लाद जोकि इरव वंशज थे ॥ ७ ॥ मंह्लाद नाम वाला चौथा पुत्र हुआ था। ह्लाद का पुत्र हृद हुआ था। संह्लाद का पुत्र आयुष्मान् शिवि और वाष्कल था ॥ ८ ॥

विरोचनस्तु प्राह्लादिवर्जलिर्जो विरोचनात् ।
 बलेः पुत्रशतं त्वासीद्वाणज्येष्ठं महामुने ॥८
 पुराकल्पे हि वाणेन प्रसाद्योमापति प्रभम् ।
 पाश्वन्तो विहरिष्यामि इत्येवं प्राप्त ईश्वरात् ॥९०
 हिरण्याक्षमुताः पञ्च शम्बरः शकुनिस्त्विति ।
 द्विमूर्धा शंकुरार्यश्च शतमासन्दनोः मुताः ॥९१
 स्वर्मानोः सुप्रभा कन्या पुलोमस्तु शची स्मृता ।
 उपदानधी हयशिरा शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥९२
 पुलोमा कालका चैव वैश्वानरमुते उभे ।
 कश्यपस्य तु भार्ये द्वे तयोः पुत्राश्च कोटयः ॥९३
 प्रह्लादस्य चतुष्कोट्यो निवातकवचाः कुले ।
 ताम्रायाः पट्मुताः स्फुञ्च काकी श्येनी च भास्यपि ॥९४
 गृध्रिका च शुचिग्रीवा ताभ्यः काकादयोऽभवन् ।
 अश्वारचोष्ठाश्च ताम्राया अरुणो गरुडस्तथा ॥९५

विमतायाः सहस्रं तु सर्पाश्च सुरसाभवाः ।

काद्रवेयाः सहस्रं तु शेषवामुक्तिकक्षाः ॥१६॥

प्रह्लाद का पुत्र विरोचन नाम वाला हुआ था और फिर विरोचन से बलि ने जन्म धारण किया था । हे महामुने ! राजा बलि के एक सौ पुत्र हुए थे उनमें सब से बड़ा पुत्र बाण हुआ था ॥ ९ ॥ पुरा कल्य में बाण ने उमा के स्वामी शिव की आराधना कर उन्हें प्रसन्न कर लिया था और फिर उसने उन ईश्वर से मैं पार्श्व में विहार करूँगा—यह वर प्राप्त कर लिया था ॥ १० ॥ हिरण्याक्ष के शम्बर, शमुनि, द्विमूर्धा, शंकुरस्य और शमया-सन्दन ये पाँच पुत्र हुए थे ॥ ११ ॥ स्वर्भानु की कन्या सुप्रभा थी और पुलोमा की शची कक्षी गई है । उषदानवी, द्व्यशिरा, शनिष्ठा, वार्ये पर्वणी हुई थी । पुनोमा और कालरु ये दो वैश्वानर की पुत्रियाँ थीं । कश्यप ऋषि के दिनि और अदिति नाम वाली दो भार्या थीं । उन दोनों के करोड़ों ही पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ १२०-१३ ॥ प्रह्लाद के चार करोड़ कुल में निवान कवच हुए थे । ताम्रा के छे पुत्री थीं । काक्षी, श्येनी, भामी, शृङ्गिका और शुविश्रोवा उनके नाम हैं । उनसे काकादि उत्पन्न हुए थे । ताम्रा के अश्व और उष्ट्र हुए । विनता के अरुण और गरुड हुए । मुरमा में जन्म लेने वाले महर्षी मरु उत्पन्न हुए थे । काद्रवेय और महस्र शेष, वामुक्ति और तक्षक आदि हुए थे ॥ १४-१५-१६ ॥

दष्टिणः क्रोधवशमा धरायाः पक्षिणो जले ।

सुरभ्यां गोमहिष्यादि इरोत्पन्नास्तृणातयः ॥१७॥

उसायां यक्षक्षान्ति मुनेरप्सरसोऽभवन् ।

अरिष्टायास्तु गन्धर्वाः कश्यपाद्वि स्थिरं वरम् ॥१८॥

एषां पुत्रादयोऽसंख्या देवैर्वै दानवा जिताः ।

दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम् ॥१९॥

पुत्रमिन्द्रप्रहर्तारमिच्छती प्राप कश्यपान् ।

पादाप्रक्षालनात्पुना तस्या गर्भं जघान ह ॥२०॥

छिद्रमन्विष्य चेन्द्रस्तु ते देवा मरुतोऽभवन् ।

शक्रस्यैकोनपञ्चाशत्सहाया दीप्ततेजसः ॥२१॥

एतत्सर्वं हरिर्ब्रह्मा अभिषिच्य पृथुं नृपम् ।

ददौ क्रमेण राज्यानि अन्येषामधिपो हरिः ॥२२॥

द्विजोपधीनां चन्द्रस्तु अपां तु वरुणो नृपः ।

राजां वैश्रवणो राजा सूर्याणां विष्णुरीश्वरः । २३

वसूनां पावको राजा मरुतां वासवः प्रभुः ।

प्रजापतीनां दक्षोऽथ प्रह्लादो दानवाधिपः ॥२४॥

ये सब दादो वाले और क्रोध के बश में रहने वाले उत्पन्न हुए थे । घरा से पक्षी हुए । जन में सुरभी से गौ और महिषी आदि की उत्पत्ति हुई थी । इस से तृण प्रभृति का जन्म हुआ ॥ १७ ॥ खसा में मुनि से यक्ष और राक्षस तथा अप्सराएँ उत्पन्न हुए । अरिष्टा से गन्धर्वों का जन्म हुआ था जोकि वश्यप ऋषि से हुए थे निश्चय ही यह वर स्थिर है ॥ १८ ॥ इनके अगणित पुत्र उत्पन्न हुए थे, देवों के द्वारा दानव-जीत लिये गये थे । जब दिति के समस्त पुत्र विनष्ट हो गये तो उसने कश्यप ऋषि को प्रमत्त किया था ॥ १९ ॥ दिति ने कश्यप ऋषि में इन्द्र के मारने वाले पुत्र प्राप्त होने का वरदान प्राप्त किया था । दिति को बताया हुए व्रत के नियम में एक दिन विघ्न हो गया और अपने पैरों को न धोकर ही सो गई थी । उसी व्रत भङ्ग के अवसर में इन्द्र ने उसके गर्भ का हनन कर दिया था ॥ २० ॥ इन्द्र तो ऐसे ही छिद्र की खोज में था और उसने दृग्यवसर को पाकर हनन कर दिया था । ये मरुत देव हुए । ये उगचाग दीप्त तेज वाले इन्द्र के सहायक हुए ॥ २१ ॥ यह समस्त वर्णन है हरि और ब्रह्मा ने राजा पृथु का अभिषेक करके स्वामी हरि ने पत्थों के राग्यों को क्रम में दे दिया था ॥२२॥ द्विज और भीषधियों को राजा चन्द्रमा को बनाया और जलो का राजा वरुण को किया था । राजाओं का स्वामी वैश्रवण (बुध्दर) को बनाया और मृगों का स्वामी ईश्वर विष्णु हुए ॥ २३ ॥ वसुधों का अधिपति पावक तथा मरुतों का इन्द्र स्वामी बना था ।

प्रजापतियों का अधिपति दक्ष किया गया और समस्त दानवों के स्वामी प्रह्लाद बने ॥ २४ ॥

पितृणां च यमो राजा भूतादीनां हरः प्रभुः ।
हिमवांश्चैव शैलानां नदीनां सागरः प्रभुः ॥२५॥
गन्धर्वाणां चित्ररथो नागानामथ वासुकिः ।
सर्पाणां तक्षको राजा गरुडः पक्षिणामथ ॥२६॥
ऐरावतो गजेन्द्राणां गोवृषोऽथ गवामपि ।
मृगाणामथ शादूलः प्लक्षो वनस्पतीश्वरः ॥२७॥
उर्च्चैः श्रवास्तथाऽश्वानां सुधन्वा पूर्वपालकः ।
दक्षिणस्यां शङ्खपदः केतुमान्पालको जले ॥२८॥
हिरण्यरोमकः सौम्ये प्रतिसर्गोऽयमीरितः ॥२९॥

पितृगणों का स्वामी यम हुए । भूत आदि के राजा प्रभु हर हुए । शैलों के अधिपति हिमवान् बनाये गये और नदियों के स्वामी सागर को किया था ॥ २५ ॥ गन्धर्वों का राजा चित्ररथ तथा समस्त नागों का स्वामी वासुकि को बनाया था । सर्पों का राजा तक्षक तथा पक्षियों का अधिप गरुड़ को किया था ॥ २६ ॥ गजेन्द्रों का स्वामी शादूल और वनस्पतियों का स्वामी प्लक्ष को बनाया था ॥ २७ ॥ अश्वों का राजा उर्च्चैः श्रवा को किया था । पूर्व दिशा का पालक सुधन्वा हुआ । दक्षिण दिशा में शङ्खपद तथा जल में केतुमान् पालक हुआ था और सौम्य से हिरण्यरोमक हुआ था । यह प्रतिसर्ग कहा गया है ॥ २८-२९ ॥

१०-जगत्सर्गवर्णनम्

प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः ।
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि सं स्मृतः ॥१॥
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्गं ऐन्द्रियकः स्मृतः ।
इत्येष प्राकृतः सर्गः संभूतो बुद्धिपूर्वकः ॥२॥

मुख्यः सर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ।
 तिर्यक्स्रोतास्तु यः प्रोक्तैरत्यग्न्योन्यस्ततः स्मृतः ॥३॥
 तथाध्वंस्रोतसां पृष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ।
 ततोऽर्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ॥४॥
 अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च यः ।
 पञ्चैते वृक्ताः सर्गाः प्राकृताश्च त्रयः स्मृताः ॥५॥
 प्राकृतो वैकृतश्चैव कीमारो नवमस्तथा ।
 ब्रह्मातो नव सर्गास्तु जगतो मूलहेतवः ॥६॥
 ख्यात्याद्या दक्षकन्यास्तु भृगवाद्या उपयेमिरे ।
 नित्यो नैमित्तिकः सर्गस्त्रिधाऽथ कथितो जनैः ॥७॥
 प्राकृतो, दैनंदिनीयादान्तरप्रलयादनु ।
 जायन्ते यत्रानुदिनं नित्यसर्गो हि स स्मृतः ॥८॥

अब जगत् के सर्ग का वर्णन बताया जाता है । अग्नि ने कहा—
 प्रथम सर्ग महत् का होता है वह ब्रह्मा का सर्ग जानना चाहिए । तन्मात्राओं
 का दूसरा सर्ग इसके पश्चात् हुआ करता है वह भूत सर्ग कहलाता है ॥ १ ॥
 वैशारिक तीमरा सर्ग होता है जो कि ऐन्द्रियक सर्ग के नाम से प्रसिद्ध है । यह
 प्राकृत सर्ग है जोकि बुद्धि पूर्वक हुआ है ॥ २ ॥ चौथा मुख्य सर्ग होता है ।
 इनमें स्थावरों को मुख्य कहा गया है । जो तिर्यक्स्रोता ब्रह्मा गया है वह
 तिर्यग्न्योन्य नाम से कहा गया है ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वं स्रोतसों का जो छठा सर्ग
 होता है वह देव-सर्ग नाम से कहा गया है । इसके उपरान्त अर्वाक्स्रोतसों का
 सर्ग सातवां होता है वह मानुष-सर्ग कहा गया है ॥ ४ ॥ आठवां अनुग्रह सर्ग
 होता है जो सात्त्विक और तामस होता है । ये पाँच वैकृत सर्ग होते हैं और
 प्राकृत सर्ग केवल तीन ही बड़े गये हैं । ५ ॥ प्राकृत और वैकृत दोनों का
 मिश्रण त्रिगुण होता है ऐसा नवम सर्ग कीमार नाम वाला होता है । ये नौ
 सर्ग होते हैं जो ब्रह्मा से हुआ करते हैं और इस जगत् के मूल हेतु होते हैं ॥६॥
 ख्याति आदि दश प्रजापति की ब्याप्तों की जिनसे भृगु आदि ने अपनी
 प्रतिष्ठा बनाया था । नित्य और नैमित्तिक तीन प्रकार का सर्ग मनुष्यों के

उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ सनति मे क्रतु से महान् ओज वाले वालखिल्य हुए । वे वालखिल्य अँगूठे के तर्ब के समान प्रमाण वाले थे और मंथ्या मे साठ सहस्र हुए थे ॥ १४ ॥ और वसिष्ठ से ऊर्जा में राजा गाबोर्दंबाहुक प्रसूत हुआ और सवन, अनघ, शुक, सुतपा येश्वरिण हुए । पावक पवमान हुआ तथा शुचि स्वाहा अग्नि से हुए । अभिष्वाता बहिपद अनग्नि और साम्नि अन्न से हुए थे ॥ १५-१६ ॥

पितृभ्यश्च स्वधायां ज मेना वैधारिणी सुते ।
हिंसा भार्या त्वधर्मस्य तयोर्जंशे तथाऽनृतम् ॥१७
कन्या च निकृतिस्ताभ्यां भयं नरकमेव च ।
माया च वेदना चैव मिथुनं त्विदमेतयोः ॥१८
तयोर्जंशेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम् ।
वेदना च सुतं चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात् ॥१९
मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णांक्रोधाश्च जज्ञिरे ।
ब्रह्मणश्च रुदञ्जातो रोदनाद्रुदनामकः ॥२०
भवं शर्वमयेशानं तथा पशुपतिं द्विज ।
भीममुग्रं महादेवमुवाच स पितामहः ॥२१
दक्षोपात्त तद्भार्या देहं तत्याज ना सती ।
हिमवददुहिता भूत्वा पत्नी शम्भोरभूत्पुनः ॥२२
ऋषिभ्यो नारदाद्युक्ताः पूजा, स्नानादिपूर्विकाः ।
स्वार्यभुवाद्यास्ताः कृत्वा विष्णवादेभुंक्तिमुक्तिगाः ॥२३

पितृगण से स्वधा में मेना और वैधारिणी दो पुत्रियाँ हुईं । अघर्म की भार्या हिंसा थी, उन दोनों से अनृत की उत्पत्ति हुई थी ॥ १७ ॥ उन ॥ दोनों से विकृति नाम धारिणी कन्या तथा भय और नरक, माया और वेदना इन दोनों का जोड़ा उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥ उन दोनों में से माया ने भूतों के अपहरण करने वाला मृत्यु की उत्पत्ति किया था । वेदना ने रौरव से दुःख नामक पुत्र का प्रभव किया था ॥ १९ ॥ मृत्यु से व्याधि-जरा (वृद्धावस्था) शोक-तृष्णा और क्रोध उत्पन्न हुए थे । ब्रह्मा से रोता हुआ उत्पन्न हुआ और

रोदन से ही रुद्र यह नाम पढ़ गया था ॥ २० ॥ हे द्विज ! वह पितामह ब्रह्मा
उनको भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव इन नामों से
बोले ॥ २१ ॥ और दक्ष के कोप से उन महादेव की भार्या सती ने देह का
त्याग कर दिया था । फिर वही हिमवान् की पुत्री होकर शम्भु की पत्नी हुई
थी । २२ ॥ नारद आदि के द्वारा कही हुई स्नानादि पूर्विका पूजा ऋषियों
के लिये है उनको स्वायम्भव आदि ने करके, वे विष्णु आदि की भुक्ति तथा
मुक्ति प्राप्त करने वाले हुए ॥ २३ ॥



११-विष्णवादिदेवतानां सामान्यपूजाविधानम्

सामान्यपूजां विष्णवादेर्वक्ष्ये मन्त्रांश्च सर्वदान् ।
समस्तपरिवाराय अच्युताय नमो यजेत् ॥१॥
धात्वे विधात्वे गङ्गायै यमुनायै, निधीं तथा ।
द्वारधियं वास्तुनरं शक्तिं कूर्ममनन्तकम् ॥२॥
पृथिवीं धर्मकं ज्ञानं वैराग्यैश्वर्यमेव च ।
अश्रमादीन्कन्दनालपद्मकेसस्कणिकाः ॥३॥
ऋग्वेदाद्यं कृताद्यं च मत्स्वाद्यर्कादिमण्डलम् ।
विमलोत्कर्षिणी ज्ञान क्रिया योगा च ता यजेत् ॥४॥
प्रह्वी सत्या तयेशा चानुग्रहाऽमलमूर्तिका ।
दुर्गागिरं गणं क्षेत्रं वासुदेवादिकं यजेत् ॥५॥
हृदयं च शिरश्चूडां वर्म नैलमयास्तकम् ।
शंखं चक्रं गदां पद्मं श्रीवत्सं कौस्तुभं यजेत् ॥६॥
वनमालां ध्रियं पुष्टिं गरुडं गुरुमर्चयेत् ।
इन्द्रमग्निं यमं रक्षो जलं वायुं घनेश्वरम् ॥७॥
ईशानं तमजं शास्त्रं वाहनं कुमुदादिवम् ।
विष्वक्सेनं मण्डलदौ सिद्धिः पूजादिना भवेत् ॥८॥

अथ विष्णु आदि देवताओं के सामान्य पूजा का विधानवत लीया
जाता है । श्री नागदत्ती ने कहा—विष्णु आदि की माधारण पूजा को

वतलाऊंगा और सभी कुछ प्रदान करने वाले मन्त्रों को भी बताने हैं । समस्त परिवार से युक्त भगवान् प्रच्युत के लिये नमस्कार करके फिर यजन करना चाहिए ॥ १ ॥ इसके अनन्तर धाता, विधाता, गङ्गा, यमुना, निद्रि, द्वारधी, वास्तु नर, शक्ति, कूर्म, अनन्तक, पृथिवी, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, प्रथमं आदि-कन्दनाल-पद्म-केशर कणिका, अग्नेद आदि-कृतयुग आदि-मत्स्य आदि-प्रकं आदि मण्डल विमलोत्कर्षिणी-ज्ञान-योग-क्रिया इन सब का यजन करना चाहिए ॥ २-३-४ ॥ ब्रह्मी, सत्या, ईशा, अनुग्रहा, अमलमूर्ति-का, दुर्गागिर, गण-क्षेत्र और वासुदेव आदि का यजन करे ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त हृदय, शिर, चूड़ा, वरुण, नेत्र, अस्त्र, शंख, चक्र, गदा, पद्म और श्रीवत्स कोस्तुभ का अर्चन करना चाहिए ॥ ६ ॥ वनमाला, धी, पुष्टि, गरुड, गुरु का पूजन करे । इन्द्र, अग्नि, यम, रक्ष, जल, वायु, कुबेर, ईशान, तमज, शास्त्र, वाहन कुमुदप्रमृति, विष्वक्सेन की मण्डल आदि में पूजा आदि के करने से सिद्धि होती है ॥ ७-८ ॥

शिवपूजाऽथ सामान्या पूर्व नन्दिनमर्चयेत् ।
 महाकाल यजेद्दुर्गा यमुनां च गणादिकम् ॥८॥
 गिरं श्रियं गुरुं वास्तुं शक्त्यादीन्धर्मकादिकम् ।
 वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री काली कलाविकारिणी ॥९॥
 बलविकारिणी चापि बलप्रमथिनी क्रमात् ।
 सर्वभूतदमनी च मदनोन्मादिनी शिवा ॥१०॥
 हां हुं हां शिवमूर्तये साङ्गवक्त्रं शिवं यजेत् ।
 ह्रीं शिवाय हौमित्यादि हामीशानादिवक्त्रकम् ॥११॥
 ह्रीं गौरीं गं गणः शक्रमुखाश्चण्डो हृदादिकाः ।
 क्रमात्सूर्यार्चने मन्त्रा दण्डी पूज्यश्च पिङ्गलः ॥१२॥
 उच्चैःश्रवाश्चारुणश्च प्रभूतं विमलं यजेत् ।
 सोमं संध्ये परमुखं स्कन्दाद्यं मध्यतो यजेत् ॥१३॥
 दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला तथा ।
 अमोघा विद्युता चैव पूज्याऽथो सर्वतोमुखी ॥१४॥

अर्कासनं हि हं खं खं सोल्कायेति च मूर्तिकम् ।

हां ह्रीं सः सूर्याय नम आं नमो हृदयाय च ॥१६॥

अर्काय शिरसे तद्वदग्नीशाश्रयवायुगान् ।

भुभुवः स्वरे ज्वालिनी शिखा हूं कवचं स्मृतम् ॥१७॥

यहां तक विष्णु का यजन बताया गया है । अब शिव की माधारण्य पूजा के विषय में कहते हैं कि इसमें सबसे प्रथम नन्दी का यजन करे । महा-काल, दुर्गा, यमुना और फिर गण आदि का यजन करना चाहिए ॥ ६ ॥ गिर, श्री, गुरु, वास्तु और शक्ति प्रभृति तथा धर्म आदि एवं वामा-श्रेष्ठ, रोद्री, कांती, कलाविकारिणी, वचविकारिणी, वन प्रमाथिनी, सर्वभूत दम्पती, मदनोन्मादिनी, जिवा का पूजन करके—हां हूं हां जिव मूर्ति के लिये साङ्ग वक्त्र शिव का यजन करना चाहिए । 'ह्रीं जिवाय' इत्यादि 'हामीशान' प्रभृति वक्त्र—ह्रीं गौरी, गंगाय, शक्रमुख, चण्ड और हृद आदि ये क्रम से मूर्त्य के अर्चन में मन्त्र हैं । इनमें यजन करना चाहिए । दण्डी और पिङ्गल की पूजा करे । उर्ध्वभवा, अरुण, प्रभूत, विमल का यजन करे । सोम, दोनों सन्ध्या, परमुख, स्कन्दाद्य का मध्य में यजन करना चाहिए ॥ १०-११-१२ १३-१४ ॥ दीप्ता, मूकना, जवा, भद्रा, विभूति, विमला, अमोषा, विद्युता और सर्वनोमुखी का पूजन करना चाहिए । अकर्मिन, 'हं खं ख सोल्काय'—इस मन्त्र का उच्चारण करके मूर्तिक के तया 'हां श्री सः' सूर्याय नमः—श्री नमो हृदयाय—अर्काय शिरसेनमः—इन मन्त्रों के द्वारा पूजन कर इसी भाँति अग्नीश, आश्रय, वायुग का भुभुवः स्वर में, ज्वालिनी, शिखा, हूं कवच इस रीति से यजन बताया गया है ॥ १५-१६-१७ ॥

भां नेत्रं रस्तथाऽर्कास्त्रं राज्ञी शक्तिश्च निःस्वका ।

सोमोऽङ्गास्कोऽथ बुधो जीवः शुक्रः शनिः क्रमात् ॥१८॥

राहुः केतुस्तेजश्चण्डः संक्षेपादय-पूजनम् ।

आसनं मूर्तयो मूलं हृदाद्यं परिचारकः ॥१९॥

विष्णुशसनं विष्णुमूर्ते रां श्रीं श्री श्रीधरो हरिः ।

ह्रीं सर्वभूतिमन्त्रोऽममिति त्रैलोक्यमोहनः ॥२०॥

वलीं हृषीकेशो हूं विष्णुः स्वरैर्दीर्घैर्हृदादिकम् ।
 समस्तैः पञ्चमी पूजा सङ्ग्रामादी जयादिदा ॥२१॥
 चक्रं गदां कमाच्छङ्खं मुसलं खड्गशाङ्गकम् ।
 पाशाङ्कुशौ च श्रीवत्सं कौस्तुभं वनमालया ॥२२॥
 श्रीं श्रीमहालक्ष्मीस्ताक्षर्यो गुरुरिन्द्रादयोऽर्चनम् ।
 सरस्वत्यासनं मूर्तिं रौं ह्रीं देवी सरस्वती ॥२३॥
 हृदाद्या लक्ष्मीर्मेषा च कला तुष्टिश्च पुष्टिका ।
 गौरी प्रभा मतिदुर्गा गणो गुरुश्च क्षेपः ॥२४॥
 तथा गं गणपतये च ह्रीं गौर्यै च श्री श्रियै ।
 ह्रीं त्वरितायै ऐं क्लीं सौ त्रिपुरा चतुर्थ्यन्ता नमोन्तक ॥२५॥
 प्रणवाद्याश्च नामाद्यमक्षरं बिन्दुसयुतम् ।
 ॐ युता व सर्वमन्त्राः पूजनाज्जपतः स्मृताः ॥२६॥
 होमस्ति लघृताद्यैश्च धर्मकामार्थमोक्षदाः ।
 प्लामन्त्रान्पठेद्यस्तु भुक्तभोगो दिवं व्रजेत् ॥२७॥

भा नेत्र, २: प्रकाश, राज्ञी, शक्ति, निःस्वकासोम, मङ्गल, बुध, गुह,
 शुक्र और शनि, राहु, वेतु और तेज, चण्ड इनका क्रम में संक्षेप में पूजन
 करना चाहिए । आगन मूर्तियाँ, भूल, हृदादि, परिचारक, विष्णु का आसन
 या पूजन करना चाहिए । विष्णुमूर्ति का—'रौं श्री श्री श्रीधरो हरिः ह्रीं,
 यह सर्व मूर्ति मन्त्र है और यह मन्त्र त्रिलोकी को मोहन करने वाला मन्त्र है
 हमने पूजन करे ॥ १८-१९-२० ॥ इसके उपरान्त अन्य मन्त्र इस भाँति हैं—
 ह्रीं हृषी केश, हूं विष्णु, दीर्घ स्वरों में हृदादि का यजन करे । समस्त स्वर्गों
 में जय आदि देने वाली मंग्राम आदि में पञ्चमी पूजा होती है ॥ २१ ॥ चक्र,
 गदा, शंख, मुसल, खड्ग, शाङ्ग, पाश अंकुश, श्रीवत्स कौस्तुभ वनमाला,
 श्री महालक्ष्मी, ताक्षर्य गुरु और इन्द्र आदि का पूजन करे । सरस्वती का
 आगन मूर्ति का अर्चन करे त्रिमूर्ति मन्त्र 'रौं ह्रीं देवी सरस्वती' है ॥२१ २२-२३॥
 हृदाद्य, लक्ष्मी, मेषा, कला, तुष्टि, पुष्टि, गौरी, प्रभा, यनि, दुर्गा, गण, गुरु,
 क्षेप का अर्चन करना चाहिए । देवी में कुल के मन्त्र ये हैं—'गंगणपतये,

हो गोर्धे—श्री—त्व त्वेरि तायै और ऐं क्लीं सौः त्रिपुरा—इन मन्त्रों के आगे देवता के नाम के आगे चतुर्थी विभक्ति अन्त में दे देवे और अन्त में 'नमः'— इस का प्रयोग कर देना चाहिए ॥ २५ ॥ सभी मन्त्रों के आदि में प्रणव होता है और नाम का आद्य अक्षर बिन्दु से संयुक्त है । समस्त मन्त्र "ॐ" इस से युक्त ही पूजन और जप के लिये कहे गये हैं । होम तिल घृत आदि से करने से धर्म काम, अर्थ मोक्ष देने वाले भक्त होते हैं । जो पूजा के मन्त्रों का पाठ करता है वह भोगों का भोग करके स्वर्ग में जाया करता है ॥ २७ ॥



१२--सामान्य आदिमूर्त्यादिदेवतानां पूजाविधिः ।

वक्ष्ये पूजाविधिं विप्रा यं कृत्वा सर्वमाप्नुयात् ।
 प्रक्षालिताङ्घ्रिराचम्य वाग्यतः कृतरक्षणः ॥१॥
 प्राङ्मुखः स्वस्तिकं वद्ध्वा पद्माद्यपरमेव च ।
 यंबीजं नाभिमध्यस्थं धूम्रं चण्डानिलात्मकम् ॥२॥
 विश्लेषयेदशेषं तु ध्यायन्कायात्तु कल्मषम् ।
 क्षीं हृत्पङ्कजमध्यस्थं बीजं तेजोनिधिं स्मरन् ॥३॥
 अधोर्ध्वं तिर्यग्गाभिस्तु ज्वालाभिः कल्मषं दहेत् ।
 शशाङ्काकृतिवद्ध्यायेदग्निरस्थं सुधाम्बुभिः ॥४॥
 हृत्पद्मव्यापिभिर्देहं स्वकमाप्लावयेत्सुधीः ।
 सुपुम्नायोनिमार्गेण सर्वनाडीविसर्पिभिः ॥५॥
 शोधयित्वा न्यसेत्तत्त्वं करशुद्धिमथास्त्रकम् ।
 व्यापकं हस्तयोरादौ दक्षिणाङ्घ्रतोऽङ्गकम् ॥६॥
 मूलं देहे द्वादशाङ्गं न्यसेन्मन्त्रद्विपटकैः ।
 हृदयं च शिरश्चैव शिखा वर्मखिलोचने ॥७॥
 उदरं च तथा पृष्ठं बाहू रू जानुपादकम् ।
 मुद्रां दत्त्वा स्मरेद्विष्णुं जप्त्वाऽष्टशतमर्चयेत् ॥८॥

अब सामान्य आदि देवताओं की पूजा की विधि के विषय में बतलाया जाता है—श्री नारद जी ने कहा - हे विप्रवृन्द ! अब मैं पूजा की विधि को बतलाऊँगा जिसको करके मानव सभी कुछ की प्राप्ति किया करता है । अपने पैरों को धोने वाला आचमन करके मौन होते हुए अपनी रक्षा करने वाला होवे ॥ १ ॥ पूर्व की ओर मुख करके स्वस्तिक बाँधे अथवा अन्य पद्म आदि का बन्धन करें । नाभि के मध्य में स्थित—घूर्णन वरुण वाला और नेत्र अनिल के स्वरूप वाले 'य' बीज को समस्त कल्मष का ध्यान करते हुए अपने शरीर से दूर करे । अर्थात् ऐसा ध्यान करे कि मेरा सम्पूर्ण कल्मष दूर हो गया है । इसके अनन्तर हृदय कमल में स्थित तेज की खान "क्षी"—इम बीज का स्मरण करे ॥ २-३ ॥ इसके पश्चात् नीचे के भाग—ऊपर का भाग और तिर्यग् भाग में गमन करने वाली ज्वालाओं के भेज से अपने कल्मष का दाह करना चाहिए अर्थात् इस प्रकार का ध्यान करे कि मेरा ज्वालाओं से कल्मष दग्ध हो रहा है । इसके पश्चात् चन्द्र की आकृति की भाँति आकाश में स्थित का ध्यान करे कि हृदय कमल में व्याप्त रहने वाले सुधाम्बुधों के द्वारा विद्वान् को ऐसा ध्यान करना चाहिए कि वह स्वयं पूर्णतया आप्लावित हो गया है । सुषुम्ना योनि के भाग से समस्त नाडी विमर्षियों के द्वारा शोधन करके शुद्धित्व का न्यास करना चाहिए । इसके उपरान्त दोनों हाथों में अस्त्रक को व्यापक करे । सबसे प्रादि में दक्षिणाङ्गुष्ठ से अङ्गुली का न्यास करे ॥ ४-५-६ ॥ मूल को फिर देह में बारह अङ्गुली में द्वादश मन्त्रों के द्वारा न्यास करना चाहिए । हृदय, शिर, शिखा, नर्मास्त्र लोचन, उदर, पृष्ठ, बाहु, ऊरु, श्रोत्र और तद्वत् इनमें मुद्रा देकर विष्णु भगवान् का स्मरण करे और अष्टोत्तर जाप करके फिर अर्चन करना चाहिए ॥ ७-८ ॥

यामे तु वर्धनीं न्यस्य पूजाद्रव्यं तु दक्षिणे ।

प्रक्षाल्यास्त्रेण चार्घ्येज्य गन्धपुष्पान्विते न्यमेत् ॥९॥

सैतन्यं गवंगं ज्योतिर्गज्जप्तेन वारिणा ।

फङ्गतेन तु संश्लिष्य हरते ध्यात्वा हरिं परम् ॥१०॥

धर्म ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं बहिर्दिङ्मुखान् ।
 अधर्मादीनि गात्राणि पूर्वादी योग पीठके ॥११॥
 कूर्म पीठे ह्यनन्तं च पद्मं सूर्यादिमण्डलम् ।
 विमलाद्याः केसरस्था ग्रहाः कर्णिकसंरिचिताः ॥१२॥
 पूर्वं स्वहृदये ध्यात्वा आवाह्यार्चं च मण्डले ।
 अर्घ्यं पाद्यं तथाऽऽचामं मधुपर्कं पुनश्च तत् ॥१३॥
 स्नानं वस्त्रोपवीतं च भूषणं गन्धपुष्पकम् ।
 धूपदीपनंवेद्यानि पुण्डरीकाक्षविद्याया ॥१४॥
 यजेदङ्गानि पूर्वादी द्वारि पूर्वं परेऽण्डजम् ।
 दक्षे चक्रं गदां सौम्ये कोणं शंखं धनुर्न्यसेत् ॥१५॥
 देवस्यं वामतो दक्षे चेपुष्पी खड्गमेव च ।
 वामे चर्म श्रियं दक्षे पुष्टिं वामेऽग्रतो न्यसेत् ॥१६॥

अर्चक जहाँ पर स्थिति करे वहाँ अपने वाम भाग में जलपात्र को रखे और अन्य समस्त पूजा की सामग्री को अपने दाहिने भाग में रखे । अस्त्र के द्वारा प्रक्षालन करके अर्घ्य को गन्ध और पुष्पों से अन्वित करके रखे ॥ ६ ॥ सर्वत्र गमनशील चैतन्य ज्योति को अस्त्र द्वारा अभिमन्त्रित किये हुए जन से, फट् जिसके अन्त में लगाकर सम्यक् प्रकार से सिंघन कर और इसके अनन्तर परम हरि का ध्यान करना चाहिए ॥ १० ॥ धर्म-ज्ञान-वैराग्य-ऐश्वर्य और बहिर्दिङ्मुखों को, पूर्वादि योग पीठ में अधर्म आदि गात्रों को, पीठ में कूर्म को-अनन्त, पद्म, सूर्यादिमण्डल, केसरों में अर्थात् दलों में स्थित विमला आदि और कर्णिकाओं में स्थित ग्रह इन सब का अपने हृदय में ध्यान करे तथा फिर आवाहन करके मण्डल में अर्चन करना चाहिए । इस विधि से अर्घ्य-पाद्य-आचमन और फिर मधुपर्क निवेदित करे । ११-१२-१३ ॥ इसके अनन्तर पुण्डरीकाक्ष की विद्या से स्नान-वस्त्र-उपवीत-भूषण-गन्ध तथा पुष्प-धूप-दीप और नैवेद्य वेदन करे ॥ १४ ॥ फिर पूर्वादि में अङ्गों का यजन करना चाहिए । पूर्व में पर द्वार में अण्डज को, दक्ष में चक्र को-सौम्य में गदा को-कोण में शङ्ख और धनुष को न्यस्त करे ॥ १५ ॥ देव के वाम

भाग में इपुष्टी अर्थात् घनुष और दक्ष भाग में खड्ग वाम भाग में चर्म और दक्षिण भाग में श्री और वाम भाग में आग्ने पुष्टि का न्यास करना चाहिए ॥१॥

वनमालां च श्रोवत्सकोस्तुभी दिक्पतिन्वहिः ।

स्वमन्त्रैः पूजयेत्सर्वान्विष्णोरर्चावसानतः ॥१७

व्यस्तेन च समस्तेन अङ्गैर्बीजेन च यजेत् ।

जप्त्वा प्रदक्षिणीकृत्य स्तुत्वाऽर्घ्यं च समर्प्य च ॥१८

हृदये विन्यसेद्दद्या वा अहं ब्रह्मा हरिस्त्विति ।

आगच्छाऽऽवाहने योज्य क्षमस्वेति विसर्जने ॥१९

एवमष्टाक्षराद्यं च पूजाः कृत्वा विमुक्तिभाक् ।

एकमूर्त्यर्चनं प्रोक्तं नवव्यूहाचनं शृणु ॥२०

अंगुष्ठकद्वये न्यस्य वासुदेव बलादिकान् ।

तर्जन्यदौ शरीरेऽथ शिरोललाटवक्त्रके ॥२१

हृन्नाभिगुह्यजान्वङ्घ्रौ मध्ये पूर्वादिकं यजेत् ।

एकपीठं नवव्यूहं नवपीठं च पूर्वजेत् ॥२२

नवाब्जे नवमूर्त्या च नवव्यूहं च पूर्ववत् ।

पद्ममध्ये च तत्स्थाने वासुदेवं प्रयोजयेत् ॥२३

वन माला और श्रोवत्स तथा कोस्तुभी एवं बाहिर दिक्पतियों का अपने मन्त्रों से पूजन करना चाहिए । विष्णु की अर्चा के अन्त में इन सब का अर्चन करना चाहिए । व्यस्त अर्थात् पृथक् रूप वाले और समस्त अर्थात् सम्पूर्ण रूप वाले बीज से अङ्ग के द्वारा पूजन करना चाहिए । जाप करके और प्रदक्षिणा करके तथा स्तवन करके और अर्घ्य को समर्पित करके 'मैं ब्रह्मा हरि हूँ ।' ऐसा ध्यान करके हृदय में विन्यास करे । आवाहन करने के समय में 'आगच्छ'—अर्थात् आइये और विमर्जन के समय में 'क्षमस्व'—अर्थात् क्षमा करिये इनका योजन करना चाहिए ॥ १७-१८-१९ ॥ इन रीति से अष्टाक्षरादि में विमुक्ति के आह्वने वाले पुरुष की पूजा करनी चाहिए । यह एक मूर्ति के अर्चन का विधान बनला दिया गया है । अब आगे नव व्यूह के अर्चन के विधान का थवण करो ॥ २० ॥ अङ्गुष्ठक द्वय में अर्थात् दोनों अंगुष्ठों में

वामुदेव का तथा बनादि का न्यास करे । तत्रंनो आदि शरीर में और इस के अनन्तर शिर-मुख-ललाट में हृदय-नाभि गुह्य-जानु-चरण में मध्य में पूर्व आदि का यजन करना चाहिए । नव ध्यूह एक पीठ को और पूर्व की भांति नव पीठ को, नदीन कमल में नव मूर्ति में पूर्ववत् नव ध्यूह को पृथ के मध्य में और इस स्थान में वामुदेव को प्रयोजित करना चाहिए ॥२१-२२-२३॥



१३-कुण्डनिर्माणद्युग्निकार्यादिकथनम् ।

अग्निकार्यं प्रवक्ष्यामि येन स्यात्सर्वकामभाक् ।
चतुरभ्यधिकं विगमंगुलं चतुस्तत्रम् ॥१॥
सूत्रेण नूतयित्वा तु क्षेत्रं तावत्क्षेत्रेत्तमम् ।
छातम्य मेखलाः कार्यान्त्यक्त्वा चवद्गुलद्वयम् ॥२॥
सत्त्वादितंज्ञाः पूर्वास्या द्वादशाङ्गुलमुच्छ्रिताः ।
अष्टङ्गुला व्यष्टङ्गुलाऽथ चतुरङ्गुलविस्तृता ॥३॥
योनिर्दशाङ्गुला रम्या षट्चतुर्व्यङ्गुलोच्छ्रिता ।
क्रमान्निम्ना तु वर्तन्त्या पश्चिमाशाध्यवस्थिता ॥४॥
अथत्यन्तमहशी किञ्चित्कुण्डे निवेशिता ।
तुर्याङ्गुलायतं नालं पञ्चदशाङ्गुलायतम् ॥५॥
मूलं तु द्वादङ्गुलं योन्या अग्रं तस्याः षडङ्गुलम् ।
लक्षणं चैकहस्तस्य द्विगुणं द्विकरादिषु ॥६॥
एकत्रिमेष्टनं कुण्डं वर्तुलादि वदाम्यहम् ।
कुण्डार्धे तु स्थितं मूलं कोणे यदतिरिच्यते । ७
तदर्थं दिशि मस्याप्य भ्रामितं वर्तुलं भवेत् ।
कुण्डार्धं कोणमागार्धं दिशि चोत्तगतो वहिः ॥८॥
पूर्वपश्चिमनो यत्नाह्लाष्ट्यत्वा तु मध्यतः ।
चन्द्राप्य भ्रामितं कुण्डमर्धचन्द्रं भवेच्छुभम् ॥९॥
पञ्चाकारे दधानि स्पृशेद्वनायां तु वर्तुले ।
आहृदण्डप्रमाणं तु होमार्थं वारयेच्छुभम् ॥१०॥

श्री नारद जी ने कहा—अब मैं कुण्ड निर्माण आदि अग्नि के कार्य को बतलाऊँगा जिससे समस्त कामनाओं की सिद्धि प्राप्त करने वाला मानव हो जाय। करता है। चौबीस अंगुल चौकोर एक सूत से क्षेत्र को सप्तयित करके अर्थात् डोरे से भलीभाँति चारों ओर से नाप कर समान प्रमाण से खनन करना चाहिए। जब कुण्ड का खनन हो जावे तो उस खुदे हुए कुण्ड की दो अंगुल प्रमाण वाली मेखला बनानी चाहिए ॥ १-२ ॥ सत्त्वादि संज्ञा वाली पूर्व की ओर मुख से युक्त बारह अंगुल ऊँची आठ अंगुल—दो अंगुल और चार अंगुल चौड़ी बनावे ॥ ३ ॥ दश अंगुल बहुत रम्य योनि की रचना करे जो कि छै, चार और दो अंगुल ऊँची हो। इसी क्रम से इसे पश्चिम दिशा में व्यवस्थित रखते हुए निम्न अर्थात् गहरी करनी चाहिए ॥ ४ ॥ इसकी आकृति पीपल के पत्ते के समान कुछ कुण्ड में निवेशित होनी चाहिए। चार अंगुल आयत नाल हो और पन्द्रह अंगुल आयत हो ॥ ५ ॥ मूल अंगुल प्रमाण वाला और उस योनि का अग्र छै अंगुल होना चाहिए। यह एक हाथ वाले का लक्षण है और यदि दो हाथ आदि का बड़ा हो तो मब दुगुना होना चाहिए ॥ ६ ॥ अब मैं एक और तीन मेखलाओं वाले कुण्ड के वर्तुल आदि को बताता हूँ। कुण्ड के अर्ध भाग में स्थित सूत्र को जो कोण में अति रिक्त होता है उसके लिए दिशा में उसे स्थापित करके आम्रित करे अर्थात् चारों ओर घुमा देवे तो वर्तुल हो जाता है। कुण्ड के अर्ध को और कोण के अर्ध को बाहिर उत्तर की ओर से पूर्व या पश्चिम से यत्न पूर्वक विहिन्न करके मध्य में रख कर घुमावे तो अर्ध चन्द्राकृति वाला शुभ कुण्ड हो जाता है। ॥ ७-८-९ ॥ उस वर्तुल पद्म के समान आकार वाले कुण्ड की मेखला में दल होते हैं। इस प्रकार बाहु दण्ड के प्रमाण वाला कुण्ड होम काय को सम्पन्न करने के लिये परम शुभ बनाना चाहिए। १० ॥

सप्तपञ्चाङ्गुलं वाऽपि चतुरस्रं तु कारयत् ।

त्रिभागेण भवेद्गतं मध्ये वृत्तं सुशोभनम् ॥११॥

तिर्यगूर्ध्वं समं ग्रात्वा वहिरर्धं तु गोधयेत् ।

अङ्गुलस्य चतुर्धा शेषार्धं तथाऽन्ततः ॥१२॥

छातस्य मेखलां रम्यां शेषार्धेन तु कारयेत् ।
 कण्ठं त्रिभागविस्तारमङ्गुष्ठकसमायतम् ॥१३॥
 सार्धमङ्गुष्ठकं वाऽस्यात्तदग्रे तु मुखं भवेत् ।
 चतुरङ्गुलविस्तारं पञ्चाङ्गुलमथापि वा ॥१४॥
 त्रिकव्यङ्गुलकं तत्स्यान्मध्यं तस्य सुशोभनम् ।
 आयामस्तत्समस्तस्य मध्यनिग्नः सुशोभनः ॥१५॥
 मुपिरं कण्ठदेशे स्याद्विशेषावत्कनीयसो ।
 शेषं कुण्डं तु कर्तव्यं यथारुचि विचित्रितम् ॥१६॥
 स्रुवं तु हस्तमात्रं स्याद्दण्डकेन समन्वितम् ।
 वटुकं व्यङ्गुलं वृत्तं कर्तव्यं तु सुशोभनम् ॥१७॥
 गोपदं तु यथा मग्नमल्पपङ्क्ते तथा भवेत् ।
 उपलिप्य लिखेद्रेखामङ्गुलां वज्रनामिकाम् ॥१८॥
 सौम्याग्रां प्रथमां तस्यां रेखे पूर्वामुखे तयोः ।
 मध्ये तिस्रस्तथा कुर्याद्विक्षणादिक्रमेण तु ॥१९॥
 एवमुल्लिख्य चाभ्युक्ष्य प्रणवेन तु मन्त्रवित् ।
 विष्टरं कल्पयेत्तोन तस्मिन्शक्ति तु वैष्णवीम् ॥२०॥

अथवा सात-पाँच अंगुल प्रमाण वाला चौकोर निर्मित करे । मध्य में सुशोभन तीन भाग से वृत्त गत होना चाहिए ॥ ११ ॥ निरुद्ध और ऊपर समान रूप से खोद कर बाहर अर्ध भाग का शोधन करना चाहिए । अंगुलों के चतुर्थ अंश को शेष के अर्ध भाग के अर्ध भाग को अग्न तक खोद कर शेष आधे भाग से उमकी सुन्दर मेखला की रचना करावे । उमका कण्ठ तीन भाग के विस्तार वाला अंगुष्ठ के समान आयत होना चाहिए अथवा डेढ़ अंगुष्ठ वाला हो और उसके आगे मुख रहना चाहिए । चार अंगुल के विस्तार में युक्त अथवा पाँच अंगुल के विस्तार वाला होवे ॥ १२-१३-१४ ॥ तीन-दो अंगुल वाला उमका बहुत ही अच्छा मध्य होना चाहिए । उमके समान ही ही उमका आयाम और परम सुन्दर मध्य भी गहराई होवे ॥ १५ ॥ कण्ठ देश में मुपिर होवे जितनी छोटी अंगुली प्रवेश करे । इसके अनिरिक्त रुचि के

अनुसार विचित्रित कुण्ड की रचना करनी चाहिए ॥ १६ ॥ होम करने का सूवा दण्ड से युक्त एक हाथ प्रमाण वाला रखना चाहिए । इसका बहुत गोल दो अंगुल प्रमाण वाला बहुत अच्छा बन वे ॥ १७ ॥ अल्प पट्ट (कीच) में गोपद (गौ का खुर) जिस प्रकार हूब आया करता है वैसा होना चाहिए उसको उपनिप्त करके वज्र नाभि का अंगुला रेखा को लिखे ॥ १८ ॥ प्रथम रेखा सोम्य की और अग्रभाग वाली हो, दो रेखाएँ उममे पर्वाभिमुख वाली हों, उन दोनों को मध्य में दक्षिणादि क्रम से तीन रेखाएँ बनानी चाहिए ॥ १९ ॥ मन्त्रों के वेत्ता पुष्प को इस रीति से उल्लेख न करके फिर प्रणव के द्वारा अभ्युक्षण करना चाहिए । उममे विष्टर बनाकर उममे फिर उसके द्वारा वैष्णवी शक्ति को कल्पित करना चाहिए । २० ॥

अलकृतामृतुमतीं क्षिपेदग्निं हरिस्मरन् ।

प्रादेशमात्राः समिधो दत्त्वा परिसमुह्य ताम् ॥२१॥

दर्भोऽस्त्रिधा परिस्तीर्य पूर्वादी, तत्र पात्रवम् ।

आमादयेदिधमवर्द्धयं सुक्लुवकद्वयम् । २२

आज्यस्थालीं च हस्थालीं कुशाज्ये च प्रणीतया ।

प्रोक्षयित्वा प्रोक्षणी च गृहीत्वाऽऽयुज्यं वारिणा ॥२३॥

पवित्रान्तर्हिते हस्ते परिस्त्राव्य च तज्जलम् ।

अग्निं ध्यात्वाऽथ प्रोक्षण्यां योन्या अग्ने निधाय च ॥२४॥

तदद्भिस्त्रिंश्र सप्रोक्ष्य इधमं विस्रस्य चाग्रतः ।

प्रणीतायां मपुष्पायां विष्णुं ध्यात्वोत्तरेण च ॥२५॥

आज्यस्थानीमथाऽऽज्येन संपूर्वाग्ने निधाय च ।

मंज्ववोत्पवनाभ्यां तु कुर्यादाज्यस्य मस्कृतिम् ॥२६॥

अग्नौ चिन्ताग्री निर्गंभी कुशी प्रादेशमात्रको ।

ताभ्यामृतानपाणिभ्यामंगुशानामिकेन त् ॥२७॥

आज्यं ताभ्यां तु मंगृत्य त्रिवारं चोद्वंमुत्क्षिपेत् ।

युक्त्युयो चापि मंगृत्य ताभ्यां प्रक्षाल्य वारिणा ॥२८॥

प्रताप्य दध्ने समृज्य पुनः प्रक्षाल्य चैव हि ।
 निष्टप्य स्थापयित्वा तु प्रणवेनैव साधकः ॥२८॥
 प्रणवादिनमान्तेन पश्चाद्धोम समाचरेत् ।
 गर्भाधानादिकर्माणि यावदङ्गव्यवस्थया ॥३०॥
 नामान्तं व्रतवन्धात समावर्तिसानकम् ।
 अधिकारावसानं वा कुर्यादङ्गानुसारतः ॥३१॥

इस सब के उपरान्त श्री हरि का स्मरण करते हुए अलंकृत और श्रुतमती अग्नि को उसमें डाले । फिर उनमें प्रदेशनात्र समिधाएँ देकर उसे परि समूहित करे ॥ २१ ॥ दध्ने से , कुत ओं से) पूर्व आदि में परिस्तरण करे ॥ २२ ॥ इसके पश्चात् आज्य (घृत) की स्थाली और चरु की स्थाली और कुशाज्य इनको प्रणीता के द्वारा प्रोक्षण करे और प्रोक्षणी को ग्रहण करके जल से उसे भर लेवे ॥ २३ ॥ हाथ के पवित्रन्तर्हित होने पर उन जल को सावित करके प्रोक्षणी में अग्नि का ध्यान करे और उसे आगे रख लेवे ॥ २४ ॥ और विस्र के अगे उन जलों के द्वारा इध्म का भली भाँति प्रोक्षण करके पुष्पों से समन्वित प्रणीता में विष्णु का ध्यान करना चाहिए और उत्तर में आज्य स्थाली को घृत से भली भाँति भर कर आगे रखना चाहिए और फिर सप्तलव उत्पवन के द्वारा उन घृत का संस्कार कर लेवे ॥ २५-२६ ॥ निर्गम्य प्रादेश मत्र दो डामों से जिनके अग्र भाग खण्डित न हों अर्थात् सावित अग्र भाग वाले हो ऊपर को उठे हुए हाथों में अंगुष्ठ और अनामिका अंगुलि के द्वारा उन दोनों कुशाओं में लेकर तीन बार ऊपर को और उत्क्षिप्त करना चाहिए । फिर सूक्त और सूत्रा इन दोनों को लेकर जल से उनको धोकर रखे ॥ २७-२८ ॥ दध्ने से प्रणव करे और फिर अच्छी तरह मार्जन करे और प्रक्षालन करे । साधना करने वाले व्यक्ति को निष्टप्त करके प्रणव के द्वारा ही उसे स्थापित करना चाहिए ॥ २९ ॥ फिर आदि में प्रणव और अन्त में "नमः" इसे लगा कर उससे पश्चात् होम करना चाहिए । गर्भाधानादि समस्त कर्म जितने भी हैं अङ्ग व्यवस्था से नाम के अन्त तक अर्थात् नाम हरण संस्कार की समाप्ति तक —प्रवन्ध के अन्त तक समावर्तन के

अवसानं पर्यन्तं अथवा अधिकार के अन्त तत्तु प्रज्ञानुसार करने चाहिए ।
॥ ३ - ३१ ॥

प्रणवेनोपचारं तु कुर्यात्सर्वं साधकः ।
अङ्गैर्होमस्तु कतव्या यथावित्तानुसारतः ॥३२
गर्भाधानं तु प्रथमं ततः पुंसवन स्मृतम् ।
सीमन्तोन्नयनं जातकर्म नामानुशासनम् ॥३३
चूडाकृतिं व्रतबन्धं वेदव्रतान्यशेषतः ।
समावर्तनं पत्न्या च योगो यागाधिकारकः ॥३४
हृदादिक्रमतो ध्यात्वा एकैकं कर्म पूज्य च ।
अष्टावष्टौ तु जुहुयात्प्रतिकर्माऽऽहुतीः पुनः ॥३५
पूर्णाहुतिं ततो दद्यात्स्र चा मूलेन साधकः ।
वोषडन्तेन मन्त्रेण प्लुतं सुरवरमुच्चरन् ॥३६
विष्णोर्वेन्हि तु सस्कृत्य श्रपयेद्द्वैष्णवं चरुम् ।
आराधय स्थण्डिले विष्णुं मन्त्रान्संस्मृत्य पूजयेत् ॥३७
आसनादिक्रमेणैव साङ्गावरणमुत्तमम् ।
गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य ध्यात्वा देवं सुरोत्तमम् ॥३८
आध्यायेधममथाऽऽधारावाज्यावग्नोशसंनिधौ ।
वायव्येनैर्ऋताशादिप्रवृत्तौ तु यथाक्रमम् ॥३९
आज्यभागौ ततो हृत्वा चक्षुषी दक्षिणोत्तरे ।
मध्ये तु जुहुयात्सवमन्त्रैरचक्रिमेण तु ॥४०
आज्येन, तर्पयेन्मूर्तिं दशांशेनाङ्गहोमकम् ।
शतं सहस्रं वाऽऽज्याद्यैः समिद्भिर्वा तिलैः सदा ॥४१

सब जगह साधना करने वाले व्यक्ति को प्रणव के द्वारा उपचार करना चाहिए । होम अपने वित्त के अनुसार सङ्गा के द्वारा करे ॥ ३२ ॥ सब से प्रथम संस्कार “गर्भाधान” होता है जिस में गर्भ की स्थिति की जाती है । इसके अनन्तर “पुंसवन” नामक संस्कार गर्भावस्था में स्थित बालक का किया जाता है । फिर “सीमन्तोन्नयन” संस्कार होता है । यह भी माता के

उदरस्थ बालक का ही किया जाता है । अब चतुर्थ संस्कार “जातकर्म” नाम वाला है जो कि जन्म ग्रहण करने पर होता है । इसके अनन्तर “नामकरण” संस्कार है जिसमें नवजात बालक का शास्त्र की विधि से नाम रखता जाता है ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर नवजात जब कुछ बड़ा होता है तो “बृद्धा कर्म” संस्कार होता है जिसमें मुण्डन कराकर चोटी रखी जाती है । फिर “व्रतवन्ध” होता है जिसमें सम्पूर्ण वेदाध्ययनादि वेद के व्रतों का पालन आरम्भ करता है और उन्नयन होता है । फिर वेद व्रत को समाप्त करने के पश्चात् “समावर्तन” संस्कार तथा पालन के साथ योग “विवाह” संस्कार होता है । इसके बाद यज्ञादि करने का अधिकार प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ हृद आदि के क्रम से ध्यान करके एक-एक कर्म का पूजन करे और प्रत्येक कर्म के निमित्त आठ-आठ आहुतियाँ देनी चाहिए ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर स्रुक् के मूल में माधक को बोधत् अन्त में लगाकर मन्त्र के द्वारा प्लुत सुन्दर स्वर का उच्चारण करने हुए पूर्णाहुति देनी चाहिए ॥ ३६ ॥ भगवान् विष्णु की वह्नि का संस्कार करके वैष्णव चक्र का ध्वन करे । स्थाण्डिल में भगवान् विष्णु की आराधना करके मन्त्रों का स्मरण करते हुए पूजन करना चाहिए ॥ ३७ ॥ घामन आदि के अर्चन के क्रम से षड्भौं और आवरणों के सहित उत्तम रीति से सुरों में सर्वोत्तम देव का ध्यान करके और गन्धाशत पुष्पादि पूजन के समस्त उपचारों से भती भौति पूजन करना चाहिए ॥ ३८ ॥ फिर घनीय की सन्निधि में घाग्य के आधार इक्ष्म का आधान करके दास्य-नैऋत्य आदि दिशाओं में प्रवृत्ति होने पर क्रम के अनुसार घाग्य (घृत) भागों को दक्षिणोत्तर में चक्षुषों की हवन करके फिर मय्य में घर्षा के क्रम से समस्त मन्त्रों के द्वारा घाग्य में हवन करना चाहिए ॥ ३९-४० ॥ होम के दग्धान षड्भ के द्वारा मूर्ति का भवी भौति तर्पण करे । सर्वेश एक घृत घर्षा एक मह्य घाग्य (घृत) आदि के द्वारा अववा समिधाओं से किम्बा त्रिषों से हवन करना चाहिए ॥ ४१ ॥

समाप्यार्चा तु होमान्तां शुचोज्जिगप्यानुगोपितान् ।

आहूपाग्रे निवेशयाम ह्यग्नेन प्रोक्षयेत्तथून् ॥४२॥

शिष्यानात्मनि संयोज्याविद्याकर्मनिबन्धनेः ।
 लिङ्गानुवृत्तं चैतन्यं सह लिङ्गेन पालितम् ॥४३॥
 ध्यानमार्गेण संप्रोक्ष्य वायुबीजेन शोषयेत् ।
 ततो दहनबीजेन सृष्टिं ब्रह्माण्डसंज्ञिताम् ॥४४॥
 निर्दग्धां सखलां ध्यायेद्भस्मकूटनिभस्थिताम् ।
 प्लावयेद्धारिणा भस्म संसारं वाङ्मयं स्मरेत् ॥४५॥
 तत्र शक्तिं न्यसेत्पश्चात्पार्थिवीं बीजसंज्ञिताम् ।
 तन्मा त्राभिः समस्ताभिः संवृतं पार्थिवं शुभम् ॥४६॥
 अण्डं तदुद्भवं ध्यायेत्तदाधारं तदात्मकम् ।
 तन्मध्ये चिन्तयेन्मूर्तिं पौरुषीं प्रणवात्मिकाम् ॥४७॥
 लिङ्गं संक्रामयेत्पश्चात्पार्थिवं पूर्वसंस्कृतम् ।
 विभक्तेन्द्रियसस्थानं क्रमादवृद्धं हि चिन्तयेत् ॥४८॥
 ततोऽण्डमब्दमेकं तु स्थित्वा द्विशकलीकृतम् ।
 द्यावापृथिव्यौ शकले तयोर्मध्ये प्रजापतिम् ॥४९॥
 जातं ध्यात्वा पुनः प्रोक्ष्य प्रणवेन तु तं शिशुम् ।
 मन्त्रात्मकतनुं कृत्वा यथान्यासं पुरोदितम् ॥५०॥

होन के अन्त तक होने वाली अर्चा को समाप्त करके उपोषित पवित्र
 शिष्यों को बुलाकर उन्हें मामने बिठावे । इसके अनन्तर अस्त्र के द्वारा पशुओं
 का प्रोक्षण करना चाहिए । शिष्यों को आत्मा में अविद्या कर्म निबन्धनों से
 संयोजित करके लिङ्ग के साथ पालित लिङ्गानुवृत्त चैतन्य को ध्यान के मार्ग
 से सम्प्रोक्षण करके वायु बीज के द्वारा शोषण करना चाहिए । इसके उपरान्त
 दहन बीज के द्वारा ब्रह्माण्ड सत्ता वाली सृष्टि को समस्त निर्दग्ध और भस्म
 के समूह के समान स्थित है ? ऐसा ध्यान करे और यह भी ध्यान में लावे कि
 वह ब्रह्माण्ड की भस्म का ढेर जल से प्लावित हो गया है और फिर संसार
 वाङ्मय है—ऐसा स्मरण करना चाहिए ॥ ४२-४३-४४-४५ ॥ यह समस्त
 विषय अपने ध्यान करने का ही है फिर वहाँ पर बीज संज्ञा से युक्त पार्थिवी
 शक्ति का न्यास करना चाहिए । इसके उपरान्त समस्त तन्मात्राओं से यह शुभ

पायिव जगन् संवृत है । ऐसा ध्यान करे ॥ ४६ ॥ फिर उससे उद्भव प्राप्त करने वाला और तदात्मक एवं उनके आधार वाले अण्ड का ध्यान करे उस अण्ड के मध्य में प्रणव के स्वरूप वाली पौरुषी मूर्ति के स्थित होने का चिन्तन करना चाहिए ॥ ४७ ॥ इनके पदवान् पहिले संस्कार किये हुए और पास में स्थित लिङ्ग को संशामित करे । इसके उपरान्त इन्द्रियों के संस्थान के विभाग जाने तथा ज्ञान से वृद्धि को प्राप्त होने वाले का चिन्तन करना चाहिए ॥ ४८ ॥ इस प्रकार के ध्यान एवं चिन्तन के पदवान् उस अण्ड को एक वषं पर्यन्त स्थित करके फिर उनके दो अण्ड हो जाने का चिन्तन करे । वे दोनों अण्डों के छाया पृथिवी हुए हैं और उन दोनों के मध्य में प्रजापति उत्पन्न हुए हैं । ऐसा ध्यान करे । फिर उस शिगु स्वरूप प्रजापति का प्रणव के द्वारा जल में प्रोक्षण करके पहिले कथित न्यायों के अनुसार मन्त्रात्मक तनु करे ॥ ४९-५० ॥

विष्णुहस्तं ततो मूर्ध्नि दत्त्वा तु वैष्णवम् ।

एवमेकं बहून्वाऽपि जपित्वा ध्यानयोगतः ॥ ५१

करो संगृह्य मूलेन नेत्रे बद्ध्वा तु वाससा ।

नेत्रमन्त्रेणमन्त्री तानशेषानाहतेन तु ॥ ५२

कृत्वा पूजो गुरुः सम्यग्देवदेवस्य तत्त्ववान् ।

शिष्यान्पुष्पाञ्जलिभृतः प्राङ्मुखानुपवशेयेद् ॥ ५३

अर्चयेयुश्च तेऽप्येवं प्रसूता गुरुणा हरिम् ।

क्षिप्वा पुष्पाञ्जलिं तत्र पुष्पादिभिरनन्तरम् ॥ ५४

वामुदेवाचनं कृत्वा गुरोः हादाचनं ततः ।

विधाय दक्षिणां दद्यात्सर्वस्वं चार्घ्यमेव वा ॥ ५५

गुरुः संशिक्षयेच्छिष्यांस्तैः पूज्यो नामभिर्हरिः ।

विष्वक्सेन तत्रेदीश शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ५६

तर्जयन्तं च तर्जन्या मण्डनस्थं विसर्जयेत् ।

विष्णुनिर्मात्यमन्त्रिनं विष्वक्सेनाय चार्पयेत् ॥ ५७

प्रणोताभिस्तयाऽऽमानमभिपिच्य च कुण्डकम् ।

बन्दिमात्मनि संयोज्य विष्वक्सेने विसर्जयेत् मुमुक्षुः

सर्वमाप्नोति मुमुक्षुर्नोयने हरो ॥

इसके अनन्तर विष्णु-हस्त को माथे पर देकर तथा वैष्णव का ध्यान करके एक अथवा बहुतों का ध्यान के योग से जा करे ॥ ५१ ॥ मूल से हाथों को संगृहीत करके और वस्त्र से दोनों नेत्रों को बाँध करके मन्त्री को बाँधिए कि उन समस्तों को नेत्र मन्त्र द्वारा ग्राह्य करे ॥ ५२ ॥ इस तरह ये भली भाँति देव-देव के तत्त्व वाला गुरु पूजा करके पुष्पाञ्जलि धारण करने वाले शिष्यों को पूर्व की ओर मुख किये हुए बिठावे ॥ ५३ ॥ वे भी इस प्रकार से गुरु के द्वारा प्रसूत हरि का अर्चन करें और शिष्यों को चाहिए कि वे पुष्पादि से जो पुष्पाञ्जलि है उसे वहाँ पर प्रक्षिप्त कर दें । फिर भगवान् वामुदेव का पूजन करके गुरु के चरणों की अर्चना करें फिर सर्वस्व अथवा अर्ध भाग दक्षिणा दें ॥ ५४-५५ ॥ गुरु का कर्त्तव्य है कि शिष्यों को शिक्षा दें कि उन्हें नामों के द्वारा हरि का पूजन करना चाहिए । शङ्ख-चक्र और गदा को धारण करने वाले भगवान् विष्वक्सेन का यजन करना चाहिए ॥ ५६ ॥ मण्डल में स्थित तर्जन करने वाले को तर्जनी से विमजित करे । फिर समस्त भगवान् विष्णु के निर्मात्य को लेकर विष्वक्सेन के लिये अर्पित कर देना चाहिए ॥ ५७ ॥ इसके उपरान्त प्रणीताथों से अपने घापको और कुण्ड को अभि-सिञ्चित करके तथा वहिन्को आत्मा में संयोजित कर विष्वक्सेन का विसर्जन कर देना चाहिए । इस तरह यजन करने का फल यह होता है कि जो भोगेच्छा वाला बुभुक्षु होता है उसे समस्त भोगों की प्राप्ति हो जाया करती है और जो मुक्ति की इच्छा रखता है वह हरि में लीन होजाता है ॥ ५८ ॥



१४—देवालयनिर्माणफलादिः ।

वासुदेवाद्यलयस्य कृती वक्ष्ये फलादिकम् ।
चिकीर्षोर्देवधामादि सहस्रजनिपापनुत् ॥१॥
मनसा सदाकृतृणां शतजन्माधनाशनम् ।
येऽनुमोदन्ति कृष्णस्य क्रियमाणं नरत् गृहम् ॥२॥
तेऽपि पापैर्विनिमुक्ताः प्रयान्त्यच्युतलोकताम् ।
समतीतं भविष्यं च कुलानामयुतं नरः ॥३॥

विष्णुलोकं नयत्याशु कारयित्वा हरेर्गृहम् ।
 वसन्ति पितरा हृष्टा विष्णुलोके ह्यलंकृताः ॥४॥
 विमुक्ता नारकैर्दुःखैः कर्तुं कृष्णस्य मन्दिरम् ।
 ब्रह्महत्यादिपापीधघातकं देवतालयम् ॥५॥
 फलं यन्नाऽऽप्न्यते यपैर्धर्मं कृत्वा तदाप्यते ।
 देवागारे कृते सर्वतीर्थस्नानफलं लभेम् ॥६॥
 देवाद्यर्थे हतानां च रणे यत्तत्फलादिकम् ।
 शाठ्येन पांसुना वाऽपि कृतं धाम च नाकदम् ॥७॥

श्री अग्निदेव ने कहा—अब मैं वासुदेव आदि के देवालय के निर्माण के फल आदि को बतलाऊँगा ॥ जो देवालय के निर्माण करने की इच्छा रखता है उसके एक सहस्र जन्मों के पापों का नाश हो जाया करता है ॥ १ ॥ भगवान् के मन्दिर के निर्माण करने की बात यदि कोई मन में भी नाता है अर्थात् मन से विचार करता है तो इसका ही इतना फल होता है कि सौ जन्म तक के किये हुए पापों का नाश हो जाता है । जो मनुष्य भगवान् कृष्ण के निमित्त आलय का अनुमादन किया करते हैं वे भी पापों से विनिर्मुक्त होकर अच्युत भगवान् के लोको की प्राप्ति किया करते हैं । व्यतीत हुए और आगे होने वाले दस सहस्र कुलों को ऐसा व्यक्ति शीघ्र ही विष्णु लोक को ले जाता है । हरि के मन्दिर बनवाने वाले पितर परम प्रगन्न एवं अलंकृत होते हुए विष्णु लोक में निवास किया करते हैं ॥ २-३-४ ॥ श्रीकृष्ण के मन्दिर का निर्माण कराने वाला पुरुष नारकीय समस्त यातनाओं से मुक्त हो जाता है । देवता का आलय निर्माण कराना ब्रह्म हत्या आदि भीषण पापों के समूह का घातक होता है ॥ ५ ॥ जो परम फल यज्ञों के करने से भी कभी प्राप्त नहीं होता है वह भगवद्धाम के निर्माण कराने में प्राप्त हो जाया करता है । देवागार के निर्माण कराने पर समस्त महान् तीर्थों के स्नान करने का फल प्राप्त हो जाता है ॥ ६ ॥ देव आदि के लिये यदि हत हो जावे तो रणे में युद्ध करते हुए शत्रु के सामने मरने वाले को जो उत्तम फल मिलता है वही फल उसे भी प्राप्त हुआ करता है । पांसु के द्वारा भी यदि भगवद्धाम बनाया गया है तो वह स्वर्गप्रद होता है ॥ ७ ॥

एकायतनकृत्स्वर्गो श्यगरी ब्रह्मलोकभाक् ।
 पञ्चागारी शंभुलोकमष्टागासद्वरो स्थितिः ॥८॥
 षोडशालयकारी तु भुक्ति मुक्तिवाप्नुयात् ।
 कनिष्ठं मध्यमं श्रेष्ठं कारयित्वा हरेर्गृहम् ॥९॥
 स्वर्गं च वैष्णवं लोकं मोक्षमाप्नोति च क्रमात् ।
 श्रेष्ठमायतनं विष्णोः कृत्वा यद्वनवाल्मेभेत् ॥१०॥
 कनिष्ठेनैव तत्पुण्यं प्राप्नोत्यधनवान्नरः ।
 समुत्पाद्य धनं कृत्वा स्वल्पेनापि सुरालयम् ॥११॥
 कारयित्वा हरेः पुण्यं प्राप्नोत्यभ्यधिकं वरान् ।
 लक्ष्णेनाथ सहस्रेण शतेनार्धेन वा हरेः ॥१२॥
 कारयन्भवनं यानि यत्रास्ते गरुडध्वजः ।
 वाल्ये तु क्रोडमाना ये पांसुभिर्भवनं हरेः ॥१३॥
 वासुदेवस्य कुर्वन्ति तेऽपि तल्लोकगामिनः ।
 तीर्थे चाऽऽयतने पुण्ये सिद्धक्षेत्रे तथाऽऽश्रमे ॥१४॥
 कर्तुं गायतनं विष्णोर्यथोक्तात्स्निगुणं फलम् ।
 बन्धून्पुष्पविन्यासैः सुधापङ्क्तेन वैष्णवम् ॥१५॥

यदि कोई एक ही देव का आयतन निमित्त कराना है तो वह स्वर्ग-
 लोक प्राप्त करने का अधिकारी हो जाया करता है और यदि तीन धामों का
 निर्माण कराने वाला हो तो ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है । पाँच मन्दिरों को
 बनवाने वाला शिवलोक को जाता है तथा आठ यदि निमित्त करा देवे तो
 उगरी फिर हरि भगवान् में ही स्थिति हो जाया करती है ॥ ८ ॥ मोलह
 देवागारों का निर्माता भुक्ति और मुक्ति दोनों का लाभ प्राप्त करता है । बहुत
 छोटा-मध्यम श्रेणी का घरान् न तो अत्यन्त छोटा और न बहुत बड़ा ही तथा
 परम विज्ञान और श्रेष्ठ इन तीन प्रकार के देवानियों के बनवाने वाला क्रम
 में स्वर्ग-वैष्णव लोक और मोक्ष को प्राप्त किया करता है । श्रेष्ठ देवायतन
 का निर्माण कराने वाला धनवान् जो फल प्राप्त करता है निर्धन साधारण
 मनुष्य एक छोटे से देवालय के निर्माण में वही फल प्राप्त करता है । धन का

उत्सादन करके थोड़े से भी धन से जो सुरालय का निर्माण कराता है वह पुण्य और अधिक बरों को प्राप्त करता है । एक लक्ष रुपये से, महस्र से, जन से अथवा उनके भी ग्रामे रुपये मे जो भगवान् हरि के मन्दिर का निर्माण कराता है वह जहाँ पर गड़ड़वत्र निवान करते हैं उस स्थान पर जाना है । बाल्य काल में क्रीड़ा करते हुए खेल ही मे जो मिट्टियों के ठेनों से वामुदेव हरि का भवन बनाया करते हैं वे भी उसी लोक के गामी हुआ करते हैं । तीर्थ स्थल में पुण्य भूमि में सिद्ध क्षेत्र में तथा आश्रम में विष्णु भगवान् का मन्दिर बनाने वाले को तिगुना फल मिलता करता है । बन्धूक पुष्टों के विन्यास से तथा सुधापद्म (मफेदी) मे जो विष्णु के भवन की पुनर्दि किया करते हैं वे भी भगवान् के ही पुर को जाया करते हैं ॥ ६ मे १५ ॥

ये विलिम्पन्ति भवनं ते यन्ति भगवत्पुरम् ।
 पतितं पतमानं तु तथाऽत्रपतितं नरः ॥१६
 समुद्धृत्य हरेर्धाम प्राप्नोति द्विगुणं फलम् ।
 पतितस्य तु यः कर्ता पतितस्य च रक्षिता ॥१७
 विष्णोरायतनस्येह स नरो विष्णुरूपमाक् ।
 इष्टकानिचयस्तिष्ठेद्यावदायतनं हरेः ॥१८
 सकुलस्तस्य वै कर्ता विष्णुलोके महीयते ।
 स एव पुण्यवान्भूज्य इहलोके परत्र च ॥१९
 कृष्णस्य वासुदेवस्य य कारयति केतनम् ।
 जातः स एव सुकृत्तो कुल तेनैव पालितम् ॥२०
 विष्णुहृद्रार्कदेव्यादेर्गृहकर्ता स कीर्तिमाक् ।
 किं तस्य वित्तनिचयैर्मूढस्य परिरक्षणः ॥२१
 दुःखार्जितयः कृष्णस्य न कारयति केतनम् ।
 नोपमोग्य धनं यस्य पितृविप्रदिगौकसाम् ॥२२
 नोपमोगाय बन्धूनां व्यर्थंस्तस्य धनागमः ।
 यथा ध्रुवो नृणां मृत्युवित्तनाशस्तथा ध्रुवः ॥२३

जो कोई मनुष्य पतित को अर्थात् गिरे हुए को - यजमान को अर्थात् पतन होने वाले को तथा अर्घ्य पतित को अर्थात् उसको जिसका आधा पतन हो गया हो, उठाकर हरि के मन्दिर में प्राप्त कर देना है। उनको दुगुना फल होता है। पतित का कर्त्ता हो तथा पतित का रक्षित हो अर्थात् विष्णु के आयतन को जो गिर गया हो उसको बनाने वाला और जो आयतन गिरा हुआ हो उसका जीर्णोद्धार करके रक्षा करने वाला हो वह मनुष्य इस संसार में साक्षात् विष्णु का हा स्वरूप होता है। भगवान् हरि के आयतन अर्थात् मन्दिर के निर्माण में लगी हुई ईंटों का समूह जब तक रहता है तब तक वह निर्माता मनुष्य कुन के साथ विष्णु लोक में प्रतिष्ठित रहा करता है। वह ही परम पुण्य वाला और इस लोक में तथा पर लोक में पूज्य होता है ॥ १६-१७-१८-१९ ॥ भगवान् कृष्ण वामुदेव का जो मन्दिर बनवाता है वह ही मुकृती उत्पन्न हुआ है और अपने ही अपने कुल का पालन किया है ॥ २० ॥ जो विष्णु, रुद्र, सूर्य और देवी आदि देवों के मन्दिरों का निर्माण करता है वह संसार में परम कीर्ति को प्राप्त किया करता है। उस मूर्ख परिरक्षण करने वाले के धन-समूहों से क्या लाभ है जो अत्यन्त कष्टों से कमाये हुए धनों से कृष्ण के मन्दिर का निर्माण नहीं कराता है। जिसका धन विवृण-विप्र वृन्द और देव समूह के उपभोग के योग्य नहीं होता है और अपने बन्धु-बान्धवों के उपभोग के लिये भी जो काम में नहीं आता है वह धन व्यर्थ ही है। उस प्रकार के धन का आना बेकार ही हुआ करता है। क्योंकि जिस तरह मृत्यु का होना मनुष्यों का निश्चित होना है वैसे ही इस धन का नाश होना भी निश्चित ही है ॥ २१-२२-२३ ॥

मूढस्तस्मानुबध्नाति जीवितेऽथ चले धने ।

यदा वित्तं न दानाय नोपभोगाय देहिनाम् ॥ २४ ॥

नापि कीर्त्ये न धर्म्ये सत्यं स्वाम्येऽथ को गुणः ।

तस्माद्वित्तं गमामाद्य द्वैवाद्या पीरपादय ॥ २५ ॥

दद्यात्तन्मय्यद्विजाप्येभ्यः कीर्त्तनानि च कारयेत् ।

दानेभ्यश्चाधिकं परमाशीर्त्तनेभ्यो यत् यतः ॥ २६ ॥

शिवब्रह्माङ्कविघ्नेशचण्डीलक्ष्म्यादिकात्मनाम् ।
 देवालयकृतेः पुण्यं प्रतिमाकरणेऽधिकम् ॥३१॥
 प्रतिमास्थापने यागे फलस्यान्तो न विद्यते ।
 मृन्मयादारुजे पुण्यं दारुजादिष्टकोद्भवे ॥३२॥
 इष्टकोत्थाच्छैलज स्याद्धेमादेरधिकं फलम् ।
 सप्तजन्मकृतं पापं प्रारम्भादेव नश्यति ॥३३॥
 देवालयस्य स्वर्गो स्यान्नरकं न स गच्छति ।
 कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं नयेन्नरः ॥३४॥
 यमो यमभटानाह देवमन्दिरकारिणः ॥३५॥
 प्रतिमापूजादिकृतो नाऽऽनेया नरकं नराः ।
 देवालयाद्यकर्तार आनेयारते विशेषतः ॥३६॥

शिव, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश, चण्डी और लक्ष्मी आदि देव देवियों के देवालयों के निर्माण कराने पर पुण्य होता है किन्तु उनकी प्रतिमाओं की रचना करा कर प्रतिष्ठापित करने से और भी अधिक पुण्य हुआ करता है ॥ ३१ ॥ प्रतिमा के स्थापन स्वरूप याग में तो फल का कोई अन्त नहीं है । मृन्मयी अर्थात् मिट्टी की बनाई हुई प्रतिमा से काष्ठ की प्रतिमा में अधिक फल होता है और काष्ठ की प्रतिमा से भी अधिक फल इष्टकाग्रो मे (ईंटों की) बनी हुई प्रतिमा में होता है ॥ ३२ ॥ इष्टका निर्मित प्रतिमा से पापाण की बनी हुई प्रतिमा में और इससे भी अधिक हेमादि धातु निर्मित प्रतिमा में फल की अधिकता क्रम से हुआ करती है । सात जन्म का किया हुआ पाप तो प्रतिमा के निर्माण के प्रारम्भ से ही नष्ट हो जाया करता है ॥ ३३ ॥ देवालय का निर्माता स्वर्गशायी होता है और वह नरक में कभी भी नहीं जाया करता है । सात कुलों का उद्धार करके वह फिर विष्णु लोक को प्राप्त हो जाता है । देव मन्दिर के बनाने वालों के विषय मे यम का यमभटों के प्रति यही आदेश कहा है ॥ ३४-३५ ॥ यमराज ने कहा—जो मनुष्य या प्राणी प्रतिमा का निर्माण करावे या उनकी पूजा करे अथवा मन्दिर की रचना करावे उन्हें कभी भी नरक में नहीं ले जाना चाहिए । देवालय आदि के करने वाले विशेष रूप से स्वर्ग साये जाने के योग्य होते हैं ॥ ३६ ॥

विचरन्त्वं यथान्यायं नियोगो मम पाल्यताम् ।
 नाऽऽज्ञाभङ्गं करिष्यन्ति भवतां जन्तवः क्वचित् ॥३७
 केवलं ये जगत्तातमनन्तं समुपाश्रिताः ।
 भवदभिः परिहर्तव्यारतेषां नात्रास्ति संस्थितिः ॥३८
 यत्र भागवता लोके तच्चित्तास्तत्परायणाः ।
 पूजयन्ति सदा विष्णुं ते च त्याज्याः सुदूरतः ॥३९
 यस्तिष्ठन्प्रवरवपन्गच्छन्तुत्तिष्ठन्स्खलिते स्थिते ।
 संकीर्तयन्ति गोविन्दं ते च प्राज्याः सुदूरतः ॥४०
 नित्यैर्नैमित्तिकैर्देवं ये यजन्ति जनार्दनम् ।
 नावलोक्या भवद्भिस्ते तद्व्रता यान्ति तदगतिम् ॥४१
 ये पुष्पधूपवासोभिर्भूषणैश्चातिबल्लभैः ।
 अर्चयन्ति न ते ग्राह्या नराः कृष्णालये गृताः ॥४२
 उपलेपनकर्तारः संभार्जनपराश्च ये ।
 कृष्णालये परित्याज्यास्तेषां पुत्रास्तथा कुलम् ॥४३

यमराज ने कहा—आप लोग न्यायानुसार सर्वत्र विचरण करो और मेरी आज्ञा का पूर्णतया पालन करो । जन्तुगण कहीं भी आज्ञा का भङ्ग नहीं करेंगे ।
 ॥ ३७ ॥ केवल जो लोग इस जगत् के धर्मीश्वर अनन्त भगवान् के चरणों का आश्रय लिये हुए हैं, आप लोग उन्हें छोड़ देवें क्योंकि उनकी यहाँ कोई स्थिति नहीं है ॥ ३८ ॥ जहाँ पर भागवत लोग लोक में हों जो भगवान् में ही चित्त लगाये हुए हैं और उसी की सेवा में तत्पर रहने वाले हैं जोकि सर्वदा विष्णु का पूजन किया करते हैं उन्हें दूर से ही आप लोगों को त्याग देना चाहिए ॥ ३९ ॥ जो उठते-बैठते, सोते जागते तथा गिरने पर उठ जाने पर एवं स्थित रहते हुए गोविन्द के नाम का संकीर्तन किया करते हैं उन्हें भी दूर से ही आपको त्याग देना उचित है ॥ ४० ॥ नित्य होने वाले या निमित्तवशाद् होने वाले कर्मों से जनार्दन भगवान् की पूजा एवं यजन किया करते हैं उन्हें आप लोग छूटी आँख से भी कभी नहीं देखें क्योंकि उसके व्रत के करने वाले प्राणी उनकी ही गति को प्राप्त किया करते हैं ॥ ४१ ॥ जो

मनुष्य पुष्प-धूप वस्त्र और अत्यन्त प्रिय एवं सुरम्य भूषणों के द्वारा विष्णु की अर्चना किया करते हैं उन्हें ग्रहण नहीं करना चाहिए क्योंकि वे कृष्णालय के जाने वाले होते हैं ॥ ४२ ॥ जो कृष्णालय में उपनेपन करने वाले तथा संमार्जन करने वाले हों उन्हें कृष्णालय में ही त्याग देना चाहिए वे ही नहीं बल्कि उनके पुत्रादि और समस्त कुल को भी निग्रहीत नहीं करना चाहिए ॥ ४३ ॥

येन चाऽऽयतनं विष्णोः कारितं तत्कुलोद्भवम् ।

पुंसां शतं नावलोक्य भवदभिदुष्टचेतसा । ४४

यस्तु देवालय विष्णोर्दारुशलमयं तथा ।

कारयेन्मृन्मयं वाऽपि सर्व पापैः प्रमुच्यते ॥ ४५

अहन्यहनि यज्ञेन यजतो यन्महाफलम् ।

प्राप्नोति तत्फलं विष्णोर्यः कारयति केतनम् ॥ ४६

कुलानां शतमागाभि समतीत तथा शतम् ।

कारयन्भगवद्धाम नयत्यच्युतलोक्ताम् ॥ ४७

सप्तलोकमयो विष्णुस्तस्य यः कुरुते गृहम् ।

तारयत्यभयांलोकानक्षयान्प्रतिपद्यते ॥ ४८

इष्टकाचयविन्यासो यावन्त्यब्दानि तिष्ठति ।

तावद्वर्षसहस्राणि तत्कतुर्दिवि सस्थितिः ॥ ४९

प्रतिमाकृद्विष्णुलोकं स्थापको लीयते हरी ।

देवसदमप्रतिकृतिप्रतिष्ठाकृत्तु गोचरे । ५०

यमोक्ता न नयन्त्येतं प्रतिष्ठादिकृतं हरेः ।

हयग्रीवः प्रतिष्ठाद्य देवानां ब्रह्मणेऽब्रवीत् ॥ ५१

जिम मनुष्य ने विष्णु के मन्दिर का निर्माण कराया हो उस पुरुष के कुल में होने वाले सौ पीढ़ियों को आप लोग घुरे चित्त से कभी नहीं देखें ॥ ४४ ॥ जो मानव विष्णु के देवालय को लकड़ी-पाषाण से बनवाये अथवा मिट्टी से निर्माण करावे वह समस्त पापों से छुटकारा पा जाता करता है ॥ ४५ ॥ दिन-दिन अर्थात् प्रति दिन जो यज्ञ के द्वारा यजन करता है उसको जो महान् फल मिला करता है वही फल उग व्यक्ति को भी मिला है जो भगवान् विष्णु

का मन्दिर निर्माण कराया करता है ॥ ४६ ॥ ऐसा व्यक्ति जिसने भगवदालय के निर्माण कराने का काम किया है वह आगे आने वाले सौ कुनों को तथा बीते हुए एक शत कुनों को अच्युत भगवान् के लोक में ले जाया करता है ।

॥ ४७ ॥ भगवान् विष्णु सात लोको से स्वयं परिपूर्ण होते हैं ऐसे विष्णु का जो घर अर्थात् निवास करने के लिये मन्दिर को बनवाना है वह अक्षय लोकों को तार दिया करता है और स्वयं भी अक्षय लोकों की प्राप्ति किया करता है ॥ ४८ ॥ ईंटों के समूह जितने वर्षों तक स्थित रहा करते हैं उतने ही महस्र वर्षों तक वह व्यक्ति दिव्य लोक में अपनी संस्थिति किया करता है ॥ ४९ ॥

विष्णु की प्रतिमा बनवा कर उसे स्थापित कराने वाला मनुष्य हरि में लीन हो जाया करता है । चाहे वह प्रत्यक्ष में देव की प्रतिमा बनवाने वाला हो या मद्म का निर्माण कराकर उसमें उस प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराने वाला हो ये दोनों तीनों ही हरि में लीन हो जाते हैं ॥ ५० ॥ अग्निदेव ने कहा—इस प्रकार से यमराज के द्वारा आज्ञा दिये हुए यमदूत हरि की प्रतिष्ठा आदि करने वालों को नहीं ले जाया करते हैं । हयग्रीव ने देवों की इस प्रतिष्ठा आदि का वर्णन ब्रह्मा के लिये कहा था ॥ ५१ ॥



१५-भूपरिग्रहवर्णनम्

विष्णवादीनां प्रतिष्ठादि वक्ष्ये ब्रह्मञ्चर्युष्व मे ।

प्रोक्तानि पञ्चरात्राणि सप्तरात्राणि वै मया ॥१॥

व्यस्तानि मुनिभिलोके पञ्चविंशतिसंख्यया ।

हयशीर्षं तन्त्रमाद्यं तन्त्रं सैलोक्यमोहनम् ॥२॥

वैभवं पीण्करं तन्त्रं प्रह्लादं गार्ग्यगालवम् ।

नारदीयं च श्रीप्रश्नं शाडिल्यं चैश्वरं तथा ॥३॥

सत्योक्तं शौनकं तन्त्रं वासिष्ठं ज्ञानसागरम् ।

स्वायम्भुवं वापिलं च तार्क्ष्यं नारायणीयकम् ॥४॥

आश्वेयं नारसिंहाख्यमानन्दाख्यं तथाऽऽरुणम् ।

नं तथाऽष्टाङ्गं विश्वोक्तं तस्य सारतः ॥५॥

प्रतिष्ठां हि द्विजः कुर्यान्मध्यदेशादिसंभवः ।

न कच्छदेशसंभूतः कावेरीकौङ्क्षणादगतः ॥६॥

कामरूपः कलिङ्गोत्थः काञ्चीकाशमीरके स्थितः ।

आकाशवायुतेजोम्बुभूरेताः पञ्चरात्रयः ॥७॥

अचैतन्यास्तमोद्विक्ताः पञ्चरात्रिविजिताः ।

ब्रह्माऽहं विष्णुरमल इति विद्यात्स देशिकः ॥८॥

श्रीहयग्रीव बोले—हे ब्रह्मन् ! मम मैं विष्णु आदि देवताओं का प्रतिष्ठा के लिये भूमि का परिग्रहण तथा अन्य प्रतिष्ठा के कार्यों का वर्णन करूँगा जिसका तुम श्रवण करो । मैंने इसके लिये पाँच रात्रि तथा सात रात्रि यताई है । लोक में मुनियों के द्वारा ये व्यस्त होती हैं जिनकी संख्या पचीस है । हयग्रीव आद्य (प्रथम) तन्त्र है और यह तन्त्र ब्रह्मलोक के मोहन करने वाला है ॥१-२॥ ऐसे अन्य तन्त्र भी हैं जिनके नाम—वैभव तन्त्र, पौष्कर प्रह्लाद, गार्ग्य तन्त्र, गालव तन्त्र, नारदीय, श्रीप्रश्न, शाण्डिल्य, ऐश्वर्य, मर्योक्त तन्त्र, शौनक तन्त्र, वामिष्ठ, ज्ञान सागर, स्वायम्भुव, कामिन, तात्पर्य, नारायणीयक, आश्वेय, नारमिह नामक, आनन्द, भरुण, बोधायन तन्त्र, अष्टाङ्ग तन्त्र और विश्वोक्त तन्त्र हैं । इसके सार से मध्य देश आदि में उत्पन्न होने वाले द्विज को देवता की प्रतिष्ठा करनी चाहिए । कच्छ देश और कावेरी कौङ्क्षण देश में समुद्राग्न द्विज को प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिए ॥ ३-४-५-६ ॥ कामरूप और कलिङ्ग देश में उत्पन्न तथा काञ्ची और काशमीर में जो स्थित है उसे भी प्रतिष्ठा का कर्म नहीं करना चाहिए । आकाश वायु, तेज, जल और भू—ये पञ्च रात्रियाँ होनी है ॥ ७ ॥ अचैतन्य और तमोद्विक्त पाँच रात्रि प्रतिष्ठा आदि कर्म में विजित मानी गई हैं । उम आचार्य को मैं ब्रह्मा हूँ, मैं मल रहित विष्णु हूँ ? ऐसा जानना चाहिए ॥ ८ ॥

सर्वलक्षणहीनोऽपि स गुरुस्तन्त्रपारगः ।

नगराभिमुखाः स्थाप्या देवा न च पराङ्मुखाः ॥९॥

कुरेक्षेक्षे गयादी च नदीनां तु समीपतः ।

ब्रह्मा मध्ये तु नगरे पूव शक्रस्य शोभनम् ॥१०॥

अग्नावग्नेश्च मातृणां भूतानां च यमस्य च ।
 दक्षिणे चण्डिकायाश्च पितृदेत्यादिकस्य च ॥११॥
 नैऋते मन्दिरं कुर्यादरुणादेश्च वारुणे ।
 वायोर्नगस्य वायव्ये सोम्ये यक्षगुहस्य च ॥१२॥
 चण्डीशस्य महेशस्य ऐशे विष्णुश्च सर्वशः ।
 पूर्वदेवकुलं पड्य प्रासादं स्वल्पकं त्वथ ॥१३॥
 समं वाऽप्यधिकं वाऽपि न कर्तव्यं विजानता ।
 उभयोर्द्विगुणां सीमां त्यक्त्वा चोच्छ्राय संमिताम् ॥१४॥
 प्रासादं कारयेदन्यं नोभयं पीडयेद्विधुः ।
 भूमीं तु शोधितायां तु कुर्याद्भूमिपरिग्रहम् ॥१५॥
 प्राकास्मीमापयन्तं ततो भूतबलिं हरेत् ।
 मापं हरिद्राचूर्णं तु सलाजं दधिसक्तुभिः ॥१६॥

समस्त शुभ लक्षणों से रहित भी हो किन्तु तन्त्र शास्त्र वा पारमारी
 पूर्ण जाता हो तो वह गुरु होता है । देवों को नगर के सम्मुख स्थापित करना
 चाहिए कभी भी नगर के परामुख स्थापित न करे ॥ ६ ॥ कुरुक्षेत्र में तथा
 गया आदि पवित्र धामों में एव पुण्य नदियों के समीप में देव प्रतिष्ठा करनी
 चाहिए । नगर के मध्य में ब्रह्मा को स्थापित करे । इन्द्र की स्थापना नगर
 के पूर्व दिशा में करन शुभ होता है ॥ १० ॥ अग्नि की स्थापना अग्निकोण
 में, मातृगण की यम की और भूतों की स्थापना दक्षिण दिशा में करे ।
 चण्डिका, पितृगण और दैत्य आदि की स्थापना नैऋत्य कोण में करे ।
 चरुण आदि के मन्दिर वारुण दिशा में बनवाना चाहिए । वायु का और
 नाम का मन्दिर वायव्य दिशा में स्थापित करे । यक्ष और गुह्य की स्थापना
 सोम्य दिशा में करे ॥ ११-१२ ॥ चण्डीश महेश की स्थापना ईशान दिशा
 में करे और विष्णु की यमस्त दिशाओं में करे । पूर्व देव कुल को गीर्द्धित
 करके फिर स्वल्प प्रासाद की रचना करे ॥ १३ ॥ ज्ञान की प्राप्ति के लिए
 और अधिक नहीं करना चाहिए । ऊँचाई से संमित दीर्घों की गुप्तनी सीमा
 का त्याग करके प्रासाद को बनाना चाहिए । विद्वांस की प्राप्ति

उभय को पीड़ित न करे । भूमि के शोधन करने पर भूपरिग्रह करना चाहिए

॥ १४-१५ ॥ चहारदीवारी की सीमा तक भूत बलि देवे ॥१६॥

अष्टाक्षरेण सक्तुंश्च पातयित्वाऽष्टदिक्षु च ।

राक्षसाश्च पिशाचाश्च येऽस्मिन्तिष्ठन्ति भूतले ॥१७

सर्वे ते व्यपगच्छन्तु स्थानं कुर्यामह हरेः ।

हस्तेन दारयित्वा गां गोभिश्चैवावचारयेत् ॥१८

परमाण्वष्टकेनैव रथरेणुः प्रकीर्तितः ।

रथरेण्वष्टकेनैव ससरेणुः प्रकीर्त्यते ॥१९

तैरष्टभिस्तु वालाग्रं लिखा तैरष्टभिर्मता ।

ताभिर्यूकाऽष्टभिः ख्याता ताश्चाष्टौ यवमध्यमः ॥२०

यवाष्टकंरंगुलं स्याच्चतुर्विशाङ्गुलः करः ।

चतुरंगुलसंयुक्तः स्वहस्तः पद्महस्तकः ॥२१

आठ अक्षरों वाले पन्त्र के द्वारा आठ दिशाओं में सतुष्ट्रा को दिरावे और उम समय यह कहे कि जो भी राक्षस और पिशाच इस भूमि में स्थित हैं वे सब यहाँ से चले जावें क्योंकि मैं अब यहाँ हरि भगवान् का स्थान निर्मित कराना चाहता हूँ । फिर हल से भूमि को जुगवा कर फिर उसे गौओं से चरवावे अर्थात् उगमे गौओं को चरने के लिये छोड़ देवे ॥ १७-१८ ॥ आठ परमाणुओं का एक रथरेणु कहा जाता है । आठ रथ रेणुओं का एक ससरेणु होता है । आठ ससरेणुओं का एक वालाग्र होता है । आठ वालाग्र का एक लिखा और आठ लिखा की एक यूका और आठ यूका का एक यव मध्यम होता है आठ यव का एक अंगुल और चौबीस अंगुलों का कर होता है । चार अंगुलों से संयुक्त अपना हस्त पद्म हस्तक होता है ॥ १९-२०-२१ ॥



१६-वासुदेवादिप्रतिमानां लक्षणम्

वासुदेवादिप्रतिमालक्षणं प्रवदामि ते ।

प्रासादस्योत्तरे पूर्वमुग्री वा चोत्तराननाम् ॥१

संस्थाप्य पूज्य च वर्णि दत्त्वाऽग्रे मध्यसूत्रकम् ।
 शिलां शिली तु नवधा विभज्य नवमैऽङ्गके ॥२॥
 सूर्यभक्ते शिलायां तु भाग स्वाङ्गुलमुच्यते ।
 द्वाङ्गुलं गोलकं नाम्ना कलानेत्रं तदुच्यते ॥३॥
 भागमेकं त्रिधा कृत्वा पाणिभागं प्रकल्पयेत् ।
 भागमेकं तथा जानौ ग्रीवायां भागमेव च ॥४॥
 मकुटं तालमात्रं स्यातालमात्रं तथा मुखम् ।
 तालेनैकेन कण्ठं तु तालेन हृदयं तथा ॥५॥
 नाभिमेढ्रान्तरं तालं द्वितालावूरको तथा ।
 तालद्वयेन जङ्घा स्यात्सूक्ष्माणि शृणु संप्रतम् ॥६॥
 कार्यं सूत्रद्वयं पादे जङ्घामध्ये तथाऽपरम् ।
 जानौ सूत्रद्वयं कार्यं गुरुमध्ये तथाऽपरम् ॥७॥
 मेढ्रे तथाऽपरं कार्यं कट्यां सूत्रं तथाऽपरम् ।
 मेखलाबन्धसिद्धचर्यं नाम्ना चैवापरं तथा ॥८॥

श्री ह्यशीव ने कहा—अब मैं वासुदेव आदि की प्रतिमा के लक्षण
 बोलना है। प्रासाद के उत्तर में पूर्व की ओर मुख वाली अथवा उत्तर की
 ओर मुख वाली प्रतिमा को स्थापित करे। स्थापना करके उसकी पूजा करे
 और बलि देवे। इसके उपरान्त शिल्पकार को चाहिए कि मध्य सूत्रक शिला
 को नौ भागों में विभाजित करे। शिला में नवम अंश में जो मूर्त्ये का विभाग
 है वह भाग स्वाङ्गुल नाम से कहा जाता है। द्वाङ्गुल गोलक इस नाम से
 कहा जाता है जो कि कला नेत्र नाम से भी प्रसिद्ध है ॥ १-२-३ ॥ एक
 भाग को तीन में विभक्त कर पाणि भाग की प्रकल्पना करनी चाहिए। एक
 भाग का जानु (घुटना) में और एक भाग को ग्रीवा में करे ॥ ४ ॥ एक
 ताल में हृदय करे। नाभि और मेढ्र के बीच का भाग एक ताल में और दो
 तालों में ऊरुओं को करे। दो ताल में शेष होवे। अब त्रुम सूत्रों का श्रवण
 करे ॥ ५-६ ॥ चरणा में दो सूत्र करनी चाहिए। तथा जाँघ के मध्य में
 दूरगम सूत्र करे। जानु में दो सूत्र करे और ऊरुओं के मध्य में मध्य सूत्र

कमर के नीचे के भाग को ऊरु कहते हैं। भेड़ में तथा कटि में (कमर में) ऊपर सूत्र करना चाहिए। मेखला के बांधने की सिद्धि के लिए नाभि में अन्य सूत्र को करे ॥ ७-८ ॥

हृदये च तथा कार्यं कण्ठे सूत्रद्वयं तथा ।
ललाटे चापरं कार्यं मस्तके च तथा परम् ॥८॥
मुकुटोपरि कर्तव्यं सूत्रमेकं विचक्षणैः ।
सूत्राण्यूर्ध्वं प्रदेयानि सप्तैव कमलोद्भव ॥९॥
कक्षात्रिकान्तरेणैव षट्सूत्राणि प्रदापयेत् ।
मध्यसूत्रं तु सत्यज्यं सूत्राण्येव निवेदयेत् ॥१०॥
ललाटं नासिकां च वल्लं कर्तव्यं चतुरंगुलम् ।
श्रीवाकर्णौ तु कर्तव्यावायामाञ्चतुरंगुलौ ॥११॥
व्यङ्गुले हनुके कार्यं विस्तारं चिबुकं तथा ।
ऋष्टाङ्गुलं ललाटं तु विस्तारेण प्रकीर्तितम् ॥१२॥
परेण व्यङ्गुली शङ्खौ कर्तव्यं बलवान्वितौ ।
चतुरंगुलमाख्यायतमन्तरं कर्णनेत्रयोः ॥१३॥
व्यङ्गुली पृथुको कर्णौ कर्णावाङ्गार्धपञ्चमे ।
भ्रूममेन तु सूत्रेण कर्णस्रोतः प्रकीर्तितम् ॥१४॥
विदं षडंगुलं कर्णमदिदं चतुरंगुलम् ।
चिबुकेन समं विदमविदं वा षडंगुलम् ॥१५॥

विद्वानों को मुकुट के ऊपर एक सूत्र करना चाहिए। हे कमल से जन्म ग्रहण करने वाले ! ऊपर में मात ही सूत्र देने चाहिए ॥ ८-१० ॥
नक्ष घोर त्रिक के अन्तर में ही छे सूत्रों को दिलाता चाहिए। मध्य के सूत्र का भली भाँति त्याग करके ही सूत्रों को निवेदित करना चाहिए ॥ ११ ॥
ललाट नासिका, मुख चार घंगुल का करना चाहिए। श्रीवा (गरदन) घोर जान घायाम (विस्तार) में चार घंगुल करने चाहिए ॥ १२ ॥ दो घंगुल विस्तारयुक्त छोटी ओर चिबुक करने चाहिए। ललाट का विस्तार षाठ घंगुल का होगा चाहिए ऐसा कहा गया है ॥ १३ ॥ चलकों में मुक्त शंख

दो अंगुल करने चाहिए । जो बाल मुड़े हुए छल्वेदार होने हैं उन शिर के बालों को घलक कहा जाना है । कानों और नेत्रों का जो अन्तर भाग होना है वह चार अंगुल कहा गया है । पृथुक कर्ण (छोटे कान) दो अंगुल और कर्णापाङ्ग ढाई अंगुल होने चाहिए । भ्रू के समान मूत्र से कर्णों (कानों) का स्रोत कहा गया है ॥ १४-१५ ॥ विद कर्ण छै अंगुल और अविद कर्ण चार अंगुल होते हैं । चिबुक (ठोड़ी) के समविद अथवा अविद छै अंगुल है ॥ १६ ॥

गन्धपात्रं तथाऽऽवर्तं शङ्कुलीं कल्पयेत्तथा ।
अंगुलेनाधरः कार्यस्तस्यार्धेनोत्तराधरः ॥१७॥
अर्धांगुलं तथा नेत्रं वक्त्रं तु चतुरंगुलम् ।
आयामेन तु वैपुल्यात्सार्धमङ्गुलमुच्यते ॥१८॥
नामावशमृच्छ्रायं मूत्रे त्वेकाङ्गुलं मतम् ।
उच्छ्रायादव्यङ्गुलं चाग्रे करवीरोपमा स्मृता ॥१९॥
अन्तरं चक्षुषोः कार्यं चतुरंगुलमानतः ।
व्यङ्गुलं चादि शीर्षं च व्यङ्गुलं चान्तरं तयोः ॥२०॥
तारा नेत्रसिभागेण दृक्ताया पञ्चमांशिका ।
अव्यङ्गुलं (लो) नेत्रविस्तारं (रो) श्रोणी चार्धांगुला मता ॥२१॥
तत्प्रमाणा भ्रुवोर्लैङ्गा भ्रुवो चैव ममे मने
भ्रूमध्यं व्यङ्गुलं कार्यं भ्रुवेभ्यश्च चतुरंगुलम् ॥२२॥
पङ्क्तिशदङ्गुलायामं मन्मथस्य तु वेष्टनम् ।
मूर्त्तीनां केशवादीनां द्वाविशद्वेष्टनं भवेत् ॥२३॥
पञ्चनेत्रा त्वधो ग्रीवा विस्ताराद्वेष्टनं पुनः ।
त्रिगुणं तु भवेद्भुजं विस्तृताष्टाङ्गुलं पुनः ॥२४॥

गन्धपात्र तथा आवर्त और शङ्कुली की कल्पना करनी चाहिए एवं अंगुल से अधर वर्तना । आयाम से विपुलता में डेढ़ अंगुल कहा गया है । नाशिका के वन की ऊँच ई मूल में एक अंगुल श्रोणी चाहिए और पादों में ऊँचाई में दो अंगुल रज्ज्वोर के समान बताई गई है ॥ १७-१८-१९ ॥

मान से चार अंगुल नेत्रों का अन्तर रखना चाहिए । नेत्रों का कोश दो अंगुल और उन दोनों का अन्तर दो अंगुल होना चाहिए ॥ २० ॥ नेत्रों के तीन भाग से तारा होवे और पाँचवा अंश दृक्तारा (घाँस की पुनली) होनी चाहिए । तीन अंगुल नेत्र का विस्तार होवे और द्रोणी आधा अंगुल होनी चाहिए ॥ २१ ॥ उसके प्रमाण वाली भीमों की लेखःऐं और ममान भीहें मानी गई हैं । भीमों के मध्य का भाग दो अंगुल रखना चाहिए तथा भीमों की दीर्घता चार अंगुल रखनी चाहिए ॥ २२ ॥ मस्तक का वेष्टन छद्दवीस अंगुल के विस्तार वाला होवे । केशव आदि की मूर्तियों का मस्तक-वेष्टन बत्तीस अंगुल का आवश्यक होता है ॥ २३ ॥ पञ्च नेत्र की घ्रीवा और विस्तार से वेष्टन तिगुना होवे और ऊपर को तो आठ अंगुल विस्तृत होना चाहिए ॥ २४ ॥

ग्रीवात्रिगुणमायामं ग्रीवावक्षोन्तरं भवेत् ।
 स्कन्धावष्टाङ्गुली कार्यौ त्रिकलावशकौ शुभौ ॥ २५ ॥
 सप्तनेत्रौ स्मृतौ बाहू प्रबाहू षोडशाङ्गुली ।
 त्रिकली विस्तृतौ बाहू प्रबाहू चापि तत्समी ॥ २६ ॥
 बाहुदण्डोर्ध्वतो शेषः परिणाहः कला नव ।
 सप्तदशाङ्गुली मध्ये कूर्पंगोऽर्धे च षोडश ॥ २७ ॥
 कूर्परस्य भवेन्नाहस्त्रिगुणं कमलोद्भव ।
 नाहः प्रबाहुमध्ये तु षोडशाङ्गुल उच्यते ॥ २८ ॥
 अग्रहस्ते परीणाहो द्वादशाङ्गुल उच्यते ।
 विस्तारेण करतलं कीर्तितं तु षडङ्गुलम् ॥ २९ ॥
 दैर्घ्यं समाङ्गुलं कार्यं मध्या पश्चाद्गुला मता ।
 तर्जन्यनामिका चैव तस्मादध्याङ्गुल विना ॥ ३० ॥

घ्रीवा वा तिगुना आयाम वाला ग्रीवा वक्ष का अन्तर होना चाहिए । कंधे आठ अंगुल विस्तार वाले हों और तीन कला अंश वाले शुभ सप्त नेत्र बाहू-प्रबाहू मोनह अंगुल की होनी चाहिए । तीन कला के विस्तार वाली बाहू और उन्ही के समान प्रबाहू भी होवें ॥ २५-२६ ॥ बाहु के दण्ड से ऊपर जो कला परिणाह होना चाहिए । सप्तह अंगुल का मध्य में कूर्पर और

आघे में सोलह अंगुल होता है ॥ २७ ॥ हे कमल से जन्म ग्रहण करने वाले !
 कूर्पर का नाह तिगुना होता है । प्रवाहु के मध्य में जो नाह होता है वह
 सोलह अंगुल का कहा जाता है ॥ २८ ॥ आगे के हाथ में जो परीणाह होता
 है वह बारह अंगुल का नाह होता है । करतल का विस्तार छे अंगुल का बताया
 जाता है ॥ २९ ॥ सम्बाई सात अंगुल की करनी चाहिए । मध्यमा पाँच
 अंगुल की ग्रीव तर्जनी तथा अनामिका उनसे आधी अंगुल कम होती है ॥ ३० ॥

कनिष्ठाङ्गुष्ठको कायो चतुरंगुलसमिती ।
 द्विपर्वोऽङ्गुष्ठकः कार्यः शेषाङ्गुल्वस्त्रिपविकाः ॥३१
 सर्वासां पर्वणोऽर्धेन नखमानं विधीयते ।
 वक्षसो यत्प्रमाणं तु जठरं तत्प्रमाणतः ॥३२
 अंगुलंका भवेन्नाभिर्वधेन च प्रमाणतः ।
 ततो मेढ्रान्तरं कार्यं तालमात्रं प्रमाणतः ॥३३
 चूचुको यवमानी तु मण्डलं द्विपदं भवेत् ।
 चतुःपट्यङ्गुलं कार्यं वेष्टनं वक्षसः स्फुटम् ॥३४
 चतुर्मुखं च तदधो वेष्टनं परिकीर्तितम् ।
 पारिणाहस्तथा कट्याश्चतुष्पञ्चदशाङ्गुलः ॥३५
 विस्तारश्चोरुमूले तु प्रोच्यते द्वादशाङ्गुलः ।
 तस्मादन्मधिकं मध्ये ततो निम्नतरं क्रमात् ॥३६
 विस्तृताष्टाङ्गुलं जानु विगुणा परिणाहतः ।
 जङ्घा मध्यं तु विस्तारः सप्ताङ्गुल उदाहृतः ॥३७
 त्रिगुणः पारिध्र्यास्य जङ्घाग्रं पञ्च विस्तरात् ।
 त्रिगुणः परिधिश्चास्य पादौ तालप्रमाणकौ ॥३८
 आपामादुत्थितौ पादौ चतुरंगुलमेव च ।
 गुल्फात्पूर्वा तु कर्तव्यं प्रमाणाच्चतुरंगुलम् ॥३९
 द्विकर्णं विस्तृता पादौ च्यंगुलौ गुल्फकः स्मृतः ।
 पञ्चाङ्गुलस्तु नाहोऽस्य दीर्घा तद्वत्प्रदीर्घनी ॥४०

कनिष्ठिका और अंगुष्ठ चार अंगुल के बराबर होने चाहिएँ । अंगुष्ठ दो पर्व का और बाकी अंगुलियाँ तीन-तीन पर्वों की होनी चाहिएँ ॥ ३१ ॥ सब अंगुलियों के पर्व का प्राधा नख का मान किया जाता है । वक्षः का जो प्रमाण होता है उसके प्रमाण से ही जठर होता है ॥ ३२ ॥ एक अंगुल की नाभि वक्ष और प्रमाण होनी चाहिए । तालमाल प्रमाण से भेद का अन्तर करना चाहिए ॥ ३३ ॥ चूचुक दोनों यव के प्रमाण वाले और मण्डल दो पद वाला होना चाहिए चौपठ अंगुल का वक्षस्थल का वेष्टन होता है ॥ ३४ ॥ उसके नीचे चतुर्मुख वेष्टन बताया गया है । कमर का परिणाह उन्नीस अंगुल का होना चाहिए ॥ ३५ ॥ ऊरुओं के मूल में विस्तार बारह अंगुल का कहा गया है । उससे भी अधिक मध्य में विस्तार होता है और वह कम से कम होता जाता है ॥ ३६ ॥ आठ अंगुल विस्तृत जानु होते हैं और उनका जो परिणाह होता है उस से तिगुनी जाघ होती है । इनके मध्य में जो विस्तार है वह मात अंगुल बताया गया है ॥ ३७ ॥ त्रिगुण इसकी परिधि होती है और जघा का ग्रस भाग विस्तार से पाँच अंगुल का होना चाहिए । इसी परिधि तिगुनी और पाद ताल प्रमाण वाले होने चाहिएँ ॥ ३८ ॥ आयाम से पैर चार अंगुल उठे हुए होते हैं । गुल्फ से पहिले प्रमाण में चार अंगुल करना चाहिए ॥ ३९ ॥ तीन कला पाँच विस्तृत होवें और तीन अंगुल के गुल्फ होवें । इसका नाह ग्रस्यात् परिणाह पाँच अंगुल होना चाहिए । उसी के समान प्रदेशिनी लम्बी होनी चाहिए ॥ ४० ॥

अष्टमाष्टांशमध्योनाः शेषाङ्गुल्यः क्रमेण तु ।
 सपादाङ्गुलमुत्सेधमङ्गुष्ठस्य प्रकीर्तितम् ॥४१॥
 तदेव द्विगुणं कार्यमङ्गुष्ठस्य नखं तथा ।
 अर्धाङ्गुलं तथाज्यासां क्रमान्मूलं तु कारयेत् ॥४२॥
 अर्धाङ्गुली वृषणी कार्या मेढ्रं तु चतुरंगुलं लम् ।
 परिणाहोऽथ कोपाग्रं कतप्यं चतुरंगुलम् ॥४३॥
 पट्टङ्गुलपरीणाहो वृषणी परिकीर्तितो ।
 त्रिमा भूषणाद्व्या म्यादेतदुद्देशलक्षणम् ॥४४॥

अनयैव दिशा कार्यं लोके दृष्ट्वा तु लक्षणम् ।
 दक्षिणे तु करे चक्रमधस्तात्पद्ममेव च ॥४५॥
 वामे शङ्खं गदाऽधस्ताद्वासुदेवस्य लक्षणात् ।
 श्रीपुष्टी चापि कर्तव्ये पद्मवीणाकरान्विते ॥४६॥
 ऊरुमाक्षोच्छ्रिताश्रमे मालाविद्याधरो तथा ।
 प्रभामण्डलसंस्थो तो प्रभा हरत्यादिभूषणा ॥४७॥
 पद्माभ पादपीठं तु प्रतिमास्वेवमाचरेत् ॥४८॥

मध्य भाग अष्टमांश कम और शेष अंगुलियों का क्रम से होनी चाहिए ।
 अंगूठे की ऊँचाई सवा अंगुल बताई गई है ॥ ४१ ॥ यही अंगुष्ठ का नख
 द्विगुण करना चाहिए और अन्य अंगुलियों का आधा अंगुल क्रम से न्यून
 करना चाहिए ॥ ४२ ॥ तीन अंगुल प्रमाण वाले वृण करने चाहिए ।
 मेढू चार अंगुल के प्रमाण वाला होना चाहिए । यहाँ पर कोप का अग्रभाग
 का परिणाह चार अंगुल करना चाहिए ॥ ४३ ॥ इस प्रकार से वृणों का
 परिणाह छै अंगुल का होता है । प्रतिमा भूषणों से युक्त होनी चाहिए यह
 उद्देश का लक्षण है ॥ ४४ ॥ इसी विधि से लोक में देख कर लक्षण करना
 चाहिए । दाहिने में चक्र और नीचे में पद्म होना चाहिए । बाँये हाथ में
 शङ्ख नीचे के में गदा धारण करानी चाहिए । वामुदेव के लक्षण से श्रीपुष्टि भी
 करनी चाहिए । पद्म और वीणा से युक्त हाथ होने चाहिए ॥ ४५-४६ ॥
 ऊरुओं तक उठी हुई और आयाम वाली माला विद्याधर करे । ये दोनों प्रभा
 मण्डल में स्थित रहने हैं । प्रभा आदि भूषण वाली होती है । पद्म की आभा
 वाला पादपीठ प्रतिमाओं में आचरित किया जाना चाहिए ॥ ४७-४८ ॥



१७—शालग्राममूर्तीनां लक्षणानि ।
 शालग्रामादिमूर्तीश्च वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदाः ।
 वामुदेवः सितो द्वारि शिलालग्नद्विचक्रकः ॥१॥
 ज्ञेयः संकर्षणो लग्नद्विचक्रो रक्त उत्तमः ।
 मूक्ष्मचक्रो बहुच्छिद्रः प्रद्युम्नो नीलदीर्घकः ॥२॥

गोन के तुल्य स्थूल और तीन रेखाओं के बिन्दु वाले शालग्राम हैं वे कूर्म
प्रवतार की मूर्ति समझनी चाहिए। जो उन्नत और पीठ में वस्तुल भावत्
गले प्रमितवर्ण के होते हैं वह हयग्राव की मूर्ति वाले शालग्राम कहलाते हैं
॥६॥ अंकुश के आकार वाली रेखा वाधे, नील वर्ण से युक्त तथा बिन्दुओं से
युक्त होते हैं वह बैकुण्ठ की मूर्ति शालग्राम कहे जाते हैं। एक ही चक्र वाले
प्रव्र (कमल) के बिन्दु से युक्त तथा मणि की आभा सहित एवं पुच्छ की रेखा
वाले होते हैं वह मत्स्य की मूर्ति होते हैं ॥७॥

मत्स्यो दीर्घस्त्रिबिन्दुः स्यात्काचवर्णस्तु पूरितः ।
थोघरो वनमालाङ्कः पञ्चरेखस्तु वस्तुलः ॥८॥
वामनो वस्तुलश्चातिह्रस्वो नीलः सविन्दुकः ।
श्यामस्त्रिविक्रमो दक्षरेखां वामेन रिक्तकः ॥९॥
अनन्तो नागभागाङ्को नैकाभा नैकमूर्तिमान् ।
स्थूलो दामोदरो मध्यचक्रोऽथः सूक्ष्मबिन्दुकः ॥१०॥
सुदर्शनस्त्वेकचक्रो लक्ष्मणानारायणौ द्वयात् ।
त्रिचक्रश्चाच्युतो देवस्त्रिचक्रा वा त्रिविक्रमः ॥११॥
जनादंनश्चतुश्चक्रो वामुदेवश्च पञ्चभिः ।
पट्चक्रश्चैव प्रद्युम्नः संकपणश्च सप्तभिः ॥१२॥
दशावतारा दशभिर्दशैकेनानिरुद्धकः ।
द्वादशात्मा द्वादशभिरत ऊर्ध्वमनन्तकः ॥१३॥

दीर्घ तथा तीन बिन्दुओं से युक्त और काँच के समान वर्ण वाले होते हैं
वह थोघर की मूर्ति वाले शालग्राम होते हैं। वन माला के माला में युक्त गोन
रेखाओं वाले और गोन आकार सहित जो शालग्राम हैं वे वामन की भांति
मूर्ति कहे गये हैं। वस्तुल तथा बहुत अधिक छोटे नील वर्ण वाले बिन्दु से
युक्त होते हैं। दाहिने भाग में रेखाएँ हों और वाम भाग में कुछ भी न हो वह
अनन्त भगवान् की मूर्ति वाले शालग्राम कहे जाते हैं। नाग के भोग (पन) के
बिन्दु से युक्त तथा घनेक प्रकार की आभा वाले और घनेक तरह की मूर्ति
वाले स्थूल शालग्राम दामोदर कहलाते हैं। जिनके मध्य में पञ्च हो और नीचे

के भाग में सूक्ष्म बिन्दु हों वह सुदर्शन नाम से प्रसिद्ध एक ही चक्र वाले शालग्राम होते हैं जिनमें दो चक्र होते हैं वह लक्ष्मीनारायण होते हैं । तीन चक्र वाले अच्युत देव अथवा तीन चक्र वाले त्रिविक्रम होते हैं ॥८॥९॥१०॥११॥ चार चक्र जिस शालग्राम की शिला में होते हैं वह जनार्दन भगवान् की मूर्ति कही जाती है । पाँच चक्र वाले वासुदेव और छे चक्रों से युक्त प्रद्युम्न तथा सात चक्र के सहित जो होते हैं वह संकर्षण होते हैं । दश चक्रों से युक्त दशवतार कहे जाते हैं और ग्यारह से युक्त अनिरुद्ध तथा बारह चक्रों से युक्त द्वारशात्मा होते हैं । इससे ऊपर अनन्त भगवान् की मूर्ति वाले शालग्राम होते हैं ॥१२॥१३॥



१८-शालग्रामादिपूजाकथनम्

शालग्रामादिचक्राङ्कपूजाः सिद्ध्यै वदामि ते ।
 विविधा स्याद्भूरेः पूजा काम्याऽकाम्योभयात्मिका ॥१॥
 मीनादीनां तु पञ्चानां काम्यार्था बोभयात्मिका ।
 वराहस्य नृसिंहस्य वामनस्य च मुक्तये ॥२॥
 चक्रादीनां त्रयाणां तु शालग्रामार्चनं शृणु ।
 उत्तमा निष्कला पूजा कनिष्ठा सकलार्चना ॥३॥
 मध्यमा मूर्तिपूजा स्याच्चक्राब्जे चतुरस्तके ।
 प्रणवं हृदि विन्यस्य पङ्क्तं करदेहयोः ॥४॥
 कृतमुद्रात्रयश्चक्राद्वहिः पूर्वं गुरुं यजेत् ।
 आप्ये गणं वायवे च धातारं नैऋते यजेत् ॥५॥
 विद्यातारं च कर्तारं हर्तारं दक्षसौम्ययोः ।
 विष्वक्सेनं यजेदंश आग्नेयो दोषपालधकम् ॥६॥
 ऋगादिवेदान्प्रागादावाधारानन्तकं भुवम् ।
 पीठं पद्मं चार्कचन्द्रग्रहाभ्यां मण्डलम् ॥७॥
 आगनं द्वादशान्तेन तत्र स्थाप्य शिलां यजेत् ।
 व्यस्तेन च समस्तेन स्वबीजेन यजेत्क्रमात् ॥८॥

श्री हयग्रीव कहते हैं—अब मैं शालग्रामादि चक्राङ्क की पूजा तुमको विधि के लिये बताऊँगा । हरि भगवान् की पूजा काम्या अर्थात् कामना को हृदय में रखकर की जाने वाली—अकाम्या अर्थात् जिसमें कोई भी कामना या मनोरथ न हो और दोनों के मिलान जिस पूजा में हों, वह उभयात्मिका—ऐसे अनक प्रकार की हुमा करनी है ॥१॥ मत्स्य आदि पाँचों की जो पूजा होती है वह काम्यार्था अथवा उभयात्मिका होती है । वराह-नृसिंह और वामन भूति वाले शालग्रामों की जो पूजा होती है वह मुक्ति के लिये होती है ॥२॥ चक्र आदि तीनों की जो शालग्राम की पूजा होती है उसे अब बताता हूँ तुम ध्वण करो । निष्कला जो पूजा होती है वह सर्वश्रेष्ठ कही गई है । सकलार्चना जो होती है वह पूजा सबसे छोटी मानी जाती है ॥३॥ चतुरन्धक चक्राङ्क में जो पूजा की जाती है वह मध्यम श्रेणी की होती है । पहिले हृदय में प्रणव (मोक्षार) का विन्यास करके फिर कर और देह के छै भङ्गों का न्यास करे । चक्र से बाहिर तीन मुद्रा करके पूर्व में गुरु का यजन करना चाहिए । वायव्य दिशा में गण का—वायव्य में धाना का—और नैऋत्य दिशा में विद्यता का तथा दक्षिण और पूर्व में कर्ता और हर्ता विष्वक्मेन का यजन करना चाहिए । ईशान और आग्नेय दिशाओं में क्षेत्रपाल का यजन करे ॥४॥५॥६॥ ऋग्वेद आदि चारों वेदों का यजन पूर्व आदि दिशाओं में करे तथा आधार अनन्त भू-भीठ-पथ-सूर्य-चन्द्र और ब्रह्म नामक मंडल का घामन वहाँ पर स्थापित कहना चाहिए और द्वादशान्त के द्वारा स्थापना करे फिर शिला का यजन करे । अपने क्षेत्र मन्त्र में व्यम्न रूप में धर्मान अलग-अलग या समस्त रूप में क्रम से यजन करना चाहिए ॥७॥८॥

पूर्वाश्वथ वेदार्चगायत्रीम्यां जितादिना
प्रणवनाचर्गतात्पश्चान्मुद्रास्तिस्रः प्रदर्शयत् ॥८॥
विष्वक्वनम्य चक्रस्य क्षेत्रपालस्य दर्शयेत् ।
शालग्रामस्य प्रथमा पूजाऽप्योनिष्कलोच्यते ॥९॥
पूर्ववत्पोडशारं च सप्तमं मण्डलं लिखेत् ।
शतचक्रमदाद्यङ्गं गुंवाद्यं पूर्ववत्पूजेत् ॥१०॥

पूर्वं सौम्ये धनुर्वाणान्वेदाद्यैरासनं ददेत् ।
 शिलां न्यसेद्द्वादशार्णस्तृतीयं पूजनं शृणु ॥१२॥
 अष्टारमब्जं विलिखेदमुर्वाद्यं पूर्ववच्चजेत् ।
 अष्टार्णेनाऽऽसनं दत्त्वा तेनैव च शिलां न्यसेत् ॥१३॥
 पूजयेद्दशधा तेन गायत्रीभ्यां जितं ततः ॥१४॥

पूर्व आदि दिशाओं में वेद के मन्त्रों तथा गायत्री से जिनादि के द्वारा प्रणव से अर्चना करनी चाहिए फिर तीन मुद्राओं को दिखावे ॥६॥ विष्ण्वक्त्रेण, चक्र, क्षेत्रपालक मुद्राएं दिखानी चाहिए । यह शालग्राम की प्रथम पूजा है । श्वेद निष्कला पूजा कही जाती है ॥१०॥ पूर्व की भांति सोलह दल वाला पद्म के सहित मङ्गल लिखना चाहिए । शङ्ख-चक्र-गदा और खंग के सहित गुरु आदि का पहले की भांति यजन करना चाहिए ॥११॥ पूर्व सौम्य में धनुष और बाणों की वेदादि के द्वारा आसन देवे । फिर द्वादशाक्षर मन्त्रों द्वारा शिला का न्यास करे । अथ तृतीय प्रकार का पूजन बताते हैं उसे सुनो ॥१२॥ इस तीसरे पूजन में आठ दली वाले कमल की रचना करे और फिर पूर्व की भांति ही गुरु आदि का पूजन करना चाहिए । आठ अक्षरों वाले मन्त्र से आसन समर्पित कर फिर उसी मन्त्र से शिला का न्यास करना चाहिए ॥१३॥ उससे दशवार पूजन करे फिर इसके पश्चात् जिनका गायत्री मन्त्रों से यजन करना चाहिए ॥१४॥



१६-चतुर्विंशतिमूर्तिस्तोत्रकथनम् ।

ओंह्रपः केशवः पद्मशङ्खचक्रगदाधरः ।
 नारायणः शङ्खपद्मगदाचक्री प्रदक्षिणम् ॥१॥
 ततो गदो माघयोऽरिशङ्खपद्मो नमामि तम् ।
 चक्रकीर्णोदकीपद्मशङ्खो गोविन्द ऊजितः ॥२॥
 मोक्षदः श्रीगदो पद्मी शङ्खो विष्णुश्च चक्रधृक् ।
 शङ्खचक्राद्यगदिनं मधुगूदनमानमं ॥३॥

भक्त्या त्रिविक्रमः पद्मगदी चक्री शंख्यपि ।
 शंखचक्रगदापद्मो वामनः पातु मां सदा ॥४॥
 गतिदः श्रीधरः पद्मो चक्रशार्ङ्गो च शङ्ख्यपि ।
 हृषीकेशो गदी चक्री पद्मो शङ्खो च पातु नः ॥५॥
 वरदः पद्मनाभस्तु शङ्खलाञ्जारिगदाधरः ।
 दामोदरः पद्मशङ्खगदाचक्री नमामितम् ॥६॥
 तेने गदी शङ्खचक्री वासुदेवोज्ज्वलभृजगत् ।
 संकर्षणो गदी शंखो पद्मो चक्री च पातु वः ॥७॥
 गदी चक्री शङ्खगदी प्रद्युम्नः पद्मभृत्प्रभुः ।
 अनिरुद्धश्चक्रगदी शङ्खो पद्मो च पातु नः ॥८॥

अथ चतुर्विंशति (चौबीस) भूतियों के स्तोत्र का कथन किया जाता है—
 श्री भगवान् ने कहा—ओम् के रूप वाले वैश्व भगवान् हैं जो पद्म-शङ्ख-चक्र
 और गदा इन चारों धारुणों के धारण करने वाले हैं । प्रदक्षिण में शङ्ख-
 पद्म-गदा और चक्र के धारण करने वाले नारायण हैं ॥१॥ इसके पश्चात्
 गदा-धनु-शंख और पद्म वाले माधव भगवान् हैं उनको नमस्कार करता हूँ ।
 चक्र-कौमोदकी-पद्म और शङ्ख धारण करने वाले ऊर्जित भगवान् गोविन्द हैं ।
 श्रीगदा वाले-पद्मधारि-शङ्ख रखने वाले और मुदग्न चक्र को धारण करने वाले
 मोक्ष के प्रदाता विष्णु भगवान् हैं । शङ्ख-चक्र-पद्म और गदा रखने वाले मधु-
 मूदन भगवान् हैं उनको नमन करता हूँ ॥२॥३॥ भक्ति से गदा पद्म-चक्र और
 शङ्खधारि विविक्त्र भगवान् हैं । शङ्ख चक्र-गदा और पद्म को धारण करने
 वाले वामन भगवान् मेरी सर्वदा रक्षा करें ॥४॥ गति का प्रदान करने वाले
 श्रीधर भगवान् हैं जो पद्म-चक्र-शङ्ख धनुष और शङ्ख के धारण करने वाले हैं ।
 गदा-चक्र-पद्म और शङ्ख के धारण करने वाले हृषीकेश भगवान् हमारी पूर्ण-
 तथा रक्षा करें ॥५॥ पद्मनाभ भगवान् वरदान देने वाले हैं । दामोदर भगवान्
 भी वामन-शङ्ख-गदा और मुदग्न चक्र को धारण किये रहते हैं उनको मैं
 प्रणाम करता हूँ ॥६॥ वासुदेव भगवान् गदा-चक्र-शङ्ख और वामन धारण
 करने वाले हैं जिन्होंने हम ममम्न जगत् का विस्तार किया है । मधुपर्ण
 भगवान् गदा-शंख-पद्म और चक्र के धारण करने वाले हैं वे धारणी रक्षा

करें ॥ ७ ॥ प्रद्युम्न गदा, शंख, चक्र और पद्म के धारण करने वाले हैं । भगवान् अनिरुद्ध चक्र गदा, पद्म और शंख के धारी हैं वे हमारी रक्षा करें ॥ ८ ॥

सुरेशोऽयं वज्रशंखाढ्यः श्रीगदी पुरुषोत्तमः ।
 अधोक्षजः पद्मगी शङ्खचक्री च पातु वः ॥९॥
 देवो नृसिंहश्चक्राब्जगदी शंखी नमामि तम् ।
 अच्युतः श्रीगदी पद्मी चक्री शंखी च पातु वः ॥१०॥
 बालरूपी शङ्खगदी उपेन्द्रश्चक्रपद्म्यपि ।
 जनार्दनः पद्मचक्री शङ्खधारी गदाधरः ॥११॥
 शङ्खी पद्मी च चक्री च हरि कौमादकीधरः ।
 कृष्णः शंखी गदी पद्मी चक्री मे भूक्तुमुक्तदः ॥१२॥
 आदिमूर्तिर्वासुदेवस्तस्मात्सकर्पणोऽभवत् ।
 सकर्पणाच्च प्रद्युम्नः प्रद्युम्नादनिरुद्धकः ॥१३॥
 केशवादिप्रभेदेन एकैकः स्यात्त्रिधा क्रमान् ॥१४॥
 द्वादशाक्षरकं स्तोत्रं चतुर्विंशतिमूर्तिमतम् ।
 यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि निर्मलः सर्वमाप्नुयात् ॥१५॥

सुरों के स्वामी अरिषब्ज-शंख से युक्त हैं । भगवान् पुरुषोत्तम श्री गदा के धारी हैं । भगवान् अधोक्षज पद्म, गदा, शंख और चक्र के धारण करने वाले आपकी रक्षा करें ॥ ९ ॥ नृसिंह देव चक्र, पद्म गदा और शंख को धारण करते हैं उनकी मेरा नमस्कार है । भगवान् अच्युत श्री गदा, पद्म, चक्र, और शंख को धारण करने हैं वे आपकी रक्षा करें ॥ १० ॥ उपेन्द्र भगवान् बाल स्वरूप वाले और शंख, गदा, चक्र और पद्म को धारण किया करते हैं । भगवान् जनार्दन पद्म, चक्र, गदा और शंख को धारण करने वाले हैं ॥ ११ ॥ भगवान् हरि शंख, चक्र, पद्म और गदा को धारण करते हैं । भगवान् कृष्ण शंख, गदा पद्म और चक्र को धारण करते हैं मुझे वे भुक्ति और मुक्ति देने वाले हैं ॥ १२ ॥ आदि मूर्ति भगवान् वासुदेव हैं उनसे भगवान् सकर्पण का प्रादुर्भाव हुआ है । संकर्पण से प्रद्युम्न और प्रद्युम्न से

अनिरुद्ध हुए हैं। केशव आदि के प्रभेद के होने से एक-एक के क्रम से तीन भेद होते हैं ॥ १३-१४ ॥ यह द्वादश अक्षर वाला वक्तोत्र है जिसमें चौतीस मूर्तियाँ हैं। इस स्तोत्र को जो भी कोई पढ़ता है या इसका श्रवण किया करता है वह समस्त मलों से छुटकारा पाकर निमल हो जाता है और फिर उसे सब की प्राप्ति हो जाती है ॥ १५ ॥



२०-मत्स्यादिदशावतार प्रतिमालक्षण वर्णं स् ।

दशावतार मत्स्यादिलक्षणं प्रवदामि ते ।
 मत्स्याकारस्तु मत्स्यः स्यात्कूर्मः कूर्माकृतिर्भवेत् ॥१
 नराङ्गो वाऽय कर्तव्यो भूवराहो गदारिभृत् ।
 दक्षिणे वामके शंखं लक्ष्मीर्वा पद्ममेव वा ॥२
 श्रीर्वामकूर्परस्था तु क्षमानन्तो चरणानुगौ ।
 चराहस्थापनाद्वाज्यं भवाब्धितरणं भवेत् ॥३
 नरसिंहो विवृतास्यो वामोरुवृत्तदानवः ।
 तद्वक्षो दारयन्मालो स्फुरच्चक्रगदाधरः ॥४
 छत्री दण्डो वामनः स्यादथवा स्याच्चतुर्भुजः ।
 रामश्चापेपुद्गस्तः स्यात्खड्गो परशुनाऽन्वितः ॥५
 रामश्चापी शरी खड्गो शंखो वा द्विभुजः स्मृतः ।
 गदालाङ्गलघारी च रामो वाऽय चतुर्भुजः ॥६
 वामार्धे लाङ्गलं दद्यादथः शंखं सुशोभनम् ।
 मृसलं दक्षिणार्धे तु चक्रं चाथः सुशोभनम् ॥७
 शान्तात्मा लम्बकर्णश्च गौराङ्गश्चाम्बरावृतः ।
 ऊर्ध्वं पद्मस्थितो बुद्धो वरदाभयदायकः ॥८

अब मत्स्य आदि दश अवतारों की प्रतिमा के लक्षणों का वर्णन किया जाता है—श्री भगवान् ने कहा—अब मैं तुम से मत्स्य आदि दश अवतारों की प्रतिमा के लक्षण बघाता हूँ। मत्स्य भगवान् बिल्कुल बड़ी मछली के ही

आकार वाले थे और इसी भाँति कूर्मावतार में कूर्म भगवान् भी कछुआ आकृति वाले अवतीर्ण हुए थे । १ ॥ भूवराह जो अवतार हुआ था वह नर के समान अङ्ग वाले थे । वे गदा और मिर के धारण करने वाले तथा दाहिने और बाँये हाथ में शंख लक्ष्मी अथवा पद्म धारण करने वाले हैं । बाँये कूपर में श्री स्थित है और भूमि तथा अनन्त (आकाश) चरणों के अनुग है । भगवान् वराह के स्थापन करने से राज्य और इस संसार लुप्त समुद्र का तरण होता है ॥ २-३ ॥ भगवान् नृसिंह खुले हुए मुख वाले तथा बाँये ऊरु पर दानव हिरण्यकशिपु को धारण करने वाले हैं । माला धारी तथा चमकते हुए चक्र और गदा को रखने वाले नरसिंह भगवान् उस दैत्य के पक्षःस्थल को अपने नखों से विदीर्ण कर रहे हैं ॥ ४ ॥ वामन छत्र-दण्ड धारण किये हुए हैं अथवा चार भुजाओं वाले हैं । परशुराम के हाथों में धनुष और बाण हैं तथा खड्ग एवं परशु को धारण किये हुए हैं ॥ ५ ॥ राम चाप, शर, खड्ग, शंख धारण करने वाले दो भुजाओं वाले कहे गये हैं । ये दो राम हुए अब तीसरे राम गदा-हल धारण करने वाले और ये चार भुजाओं वाले हैं ॥ ६ ॥ वाम ग्रंथ भाग में लाङ्गल (हल) देना चाहिए और नीचे के भाग में सुन्दर शोभा से युक्त शंख धारण कराने । दक्षिण ग्रंथ भाग में मूमल और उसके निचले भाग में शोभा युक्त चक्र धारण कराना चाहिए ॥ ७ ॥ दान्त आराम वाला, लम्बे कानों वाला, गौर वर्ण वाले और वस्त्र से आवृत, ऊपर पद्म पर स्थित वरदान और अभय के दान देने वाले भगवान् बुद्ध हैं ॥ ८ ॥

धनुस्तूणान्वितः कल्की म्लेच्छोत्मादकरो द्विजः ।

अथवाऽश्वस्थितः खड्गी शखचक्रगदान्वितः ॥८॥

लक्षणं वामुदेवादिनवकस्य वदामि ते ।

दक्षिणार्धे गदा वामे वामार्धे चक्रमुत्तमम् ॥१०॥

ब्रह्मेशो पार्श्वंगो नित्यं वासेदेवोऽस्ति पूर्ववत् ।

शंखो सयरदो वाऽथ द्विभुजो वा चतुर्भुजः ॥११॥

साङ्गली मुंगली रामो गदापद्मधरः स्मृतः ।

प्रद्युम्नो दक्षिणे चक्रं शंखं वामे धनुः करे ॥१२॥

चक्रशंखौ चतुर्बाहुर्नरसिंहश्चतुर्भुजः ।
 शंखचक्रधरो वाऽपि विदारितमहासुरः ॥१७॥
 चतुर्बाहुर्वराहस्तु शेषः पाणितले घृतः ।
 धारयन्बाहुना पृथ्वीं वामनः कमलामघः ॥१८॥
 पादलग्ना धरा कार्या यदा लक्ष्मीर्व्यवस्थिता ।
 त्रैलोक्यमोहनस्तांक्षर्ये ह्यष्टबाहूस्तु दक्षिणे ॥१९॥
 चक्रं शंखं च मुसलमङ्कुशं वामके करे ।
 शंखशाङ्गं गदापाशान्पद्मवीणासमन्विते ॥२०॥
 लक्ष्मीः सरस्वती कार्ये विश्वरूपोऽयं दक्षिणे ।
 चक्रं खड्गं च मुसलमङ्कुशं पट्टिशं क्रमात् ॥२१॥
 मुद्गरं च तथा पाशं शक्तिशाल शरं करे ।
 वामे शंखं च शाङ्गं च गदां पाशं च तोमरम् ॥२२॥
 नाङ्गलं पद्मं दण्डं छुरिकां चर्मं चोत्तमम् ।
 विंशद्बाहुश्चतुर्वक्त्रं दक्षिणस्थोऽयं वामके ॥२३॥
 त्रिनेत्रो वामपार्श्वेऽपि शयितो जलशाय्यपि ।
 श्रिया घृतकचरणो विमलाद्याभिरौडितः ॥२४॥

भगवान् नरसिंह चार भुजाओं वाले हैं । शंख चक्र धारण करने वाले हैं अथवा महान् दैत्य को विनीत करने वाले हैं ॥ १७ ॥ वराह भगवान् भी चार बाहुओं वाले हैं और हाथ में दोष को धारण किये हुए हैं । एक बाहु में पृथ्वी को धारण किये हुए हैं । वामन लक्ष्मी को नीचे भाग में खने वाले हैं ॥ १८ ॥ जब लक्ष्मी व्यवस्थित होती है तब पृथ्वी को पाद लगाना करती चाहिए । त्रिलोकी को मोहित करने वाले महिष पर स्थित हैं और आठ बाहु हैं । दक्षिण हाथ में शंख और चक्र हैं तथा बाँये हाथ में मूसल और अंकुश धारण कर रक्ता है । लक्ष्मी और सरस्वती इन दोनों को शङ्ख, शाङ्ग, गदा, पाश, पद्म, वीणा में युक्त करना चाहिए । दक्षिण भाग में विश्व रूप स्थित है त्रिनेत्र दक्षिण में चक्र, गद्ग, मूसल, अंकुश, पट्टिश त्रय में मुद्गर,

पाश, शक्ति, शूल, शर तथा वाम कर में शंख, गार्ज्ज, गदा, पाश, तोमर, लाङ्गल, परशु, दण्ड, छुरी, चर्म धारण करने वाला स्वरूप है । बीस बाहु हैं और चार मुखों वाले हैं । दक्षिण में स्थित हैं । वाम पार्श्व में शयन करने वाले जलशायी भी हैं । जनशायी भगवान् के एक चरण को श्री ने दबाने के लिये अपने हाथों में ले रक्खा है और विमला आदि के द्वारा स्तुति की जा रही है ॥ १६ से २४ ॥

नामिपद्मे चतुर्वक्त्रो हरे शकरको हरिः ।
 शूलट्टिधारी दक्षे च गदाचक्रधरोऽपरे ॥२५॥
 रुद्रकेशवलक्ष्माङ्गो गौरीलक्ष्मीसमन्वितः ।
 शखचक्रगदावेदगार्णिश्चाश्वशिरा हरिः ॥२६॥
 वामपादो धृतः शेषे दक्षिणः कूर्मपृष्ठगः ।
 दत्तात्रेयो द्विबाहुः स्याद्वामोत्सङ्गो श्रिया सह ॥२७॥
 विष्वक्सेनश्चक्रगदी हूलशंखो हरेर्गणः ॥२८॥

नारायण के नामि कमल में ब्रह्मा जी हैं दक्षिण भाग में हरि के शङ्कर भगवान् हैं जो दाहिने हाथ में शूल और श्रुट्टि धारण करने वाले हैं और बायें हाथ में गदा और चक्र धारण करने वाले हैं ॥ २५ ॥ रुद्र और केशव के चिन्हों से युक्त अंग वाले तथा गौरी और लक्ष्मी से युक्त हैं । शंख, चक्र, गदा, वेद हाथों में रखने वाले हैं । हरि अश्व शिरा हैं तथा उनका वाम चरण शेष पर रक्खा हुआ है और दाहिना चरण कूर्म की पीठ पर स्थित है । दत्तात्रेय दो बाहुओं वाले हैं । वाम भाग में गोद में लक्ष्मी को साथ लिये हैं । विष्वक्सेन चक्रधोर गदा वाले और हरि के गण हूल और शंख वाले हैं ॥ २६ से २८ ॥



२१-चण्ड्यादिदेवताप्रतिमालक्षणानि ।

चण्डी विशतिबाहुः स्याद्विभ्रती दक्षिणः करैः ।
 शूलासिशक्तिचक्राणि पाशखेटायुधामयम् ॥१॥
 डमरुं शक्तिकां वामैर्नागपाशं च खेडकम् ।
 कुठाराङ्कुशपाशांश्च घण्टायुधगदास्तथा ॥२॥

आदर्शमुद्गगन्हस्तैश्चण्डी वा दशबाहुका ।
 तदधो महिषश्छिन्नगूधर्ना पातितमस्तकः ॥३॥
 शस्त्रोद्यतकरः क्रुद्धस्तदग्रीवासंभवः पुमान् ।
 शूलहस्तो वमद्रक्तो रक्तस्रङ्मूर्धजेक्षणः ॥४॥
 सिंहेनाऽऽस्वाद्यमानस्तु पाशबद्धो गले भृशम् ।
 याम्याङ्घ्र्याक्रान्तसिंहा च सव्याङ्घ्रिर्नीचगामुरे ॥५॥
 चण्डिकेयं त्रिनेत्रा च मशस्त्रा रिपुमर्दिनी ।
 नवपद्मात्मके स्थाने पूज्या दुर्गा स्वभूतितः ॥६॥

अब चण्डी आदि देवताओं की प्रतिमा के लक्षणों को बतलाया जाता है । श्री भगवान् ने कहा—चण्डी देवी की बीस बाहु होती हैं जिनमें वह दाहिने भाग की भुजाओं से शूल-असि (तलवार)—शक्ति, चक्र, पाश और छेद आयुधों को धारण किये रहा करती है ॥ १ ॥ बाँयी ओर की भुजाओं से डमरू, शीतल कुण्ड, त्रिशूल, छेदक, कुठार, अंकुश, पाश, घण्टा और गदा इन आयुधों को धारण किया करती है ॥ २ ॥ अथवा दश बाहुओं वाली देवी चण्डी हाथों से अदश मुद्गरों को धारण करने वाली होती है । उसके नीचे महिष मुर का मस्तक कट कर पड़ा हुआ है ॥ ३ ॥ हाथ में शस्त्र बड़े ही क्रोध के साथ लिये हुए है ऐसा एक पुरुष उमकी गर्दन में उत्पन्न होने वाला यही पर रहता है जिसके हाथ में शूल रहता है और रक्त का वमन कर रहा है । उसके बाल और नेत्र खून में भीगे हुए हैं ॥ ४ ॥ चण्डी देवी का बाहन सिंह पाश के द्वारा गले में बंधे हुए उस खा रहा है । बाँई ओर इसके सिंह स्थित है और दाहिने पैर से नीचे समुर को दबा रक्खा है ॥ ५ ॥ यह चण्डी देवी तीन नेत्रों व सौ शस्त्रों को भुजाओं में धारण करने वाली और शत्रुओं का मर्दन करने वाली है । नवीन पद्मात्मक स्थल में दुर्गा की प्रतिमा का पूजन करना चाहिए ।

आदौ मध्ये तथेन्द्राद्या नवतत्त्वात्मभिः क्रमान् ।
 अष्टादशभुजैका तु दशे मुण्डं च छेदकम् ॥७॥
 आदर्शं तर्जनी चापं दशजं डमरुकं तथा ।
 पाशं यामे विघ्रनी च शक्तिमुद्गरशूलवयम् ॥८॥

वज्रखड्गः कुण्डलशरश्चक्रं देवी शलाकया ।
 एतैरेवाऽऽयुज्युक्ताः शेषाः षोडशबाहुकाः ॥६॥
 डमरुं तर्जनीं त्यक्त्वा रुद्रचण्डादयो नव ।
 रुद्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ॥१०॥
 चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपाऽतिचण्डिका ।
 उग्रचण्डा च मध्यस्था रोचनामाऽरुणासिता ॥११॥
 नीला शुक्ला धूम्रिका च पीता श्वेता च सिंह्या ।
 मर्हपोत्थः पुमाञ्छस्त्री तत्कचग्रहमुष्टिका ॥१२॥

इसके आदि में और मध्य में नव तत्त्वात्मक इन्द्र आदि देवता क्रम से रहते हैं । एक चण्डी की प्रतिमा ऐसी होती है जिसके अठ्ठारह भुजाएँ होती हैं । दाहिनी ओर भुजाओं से मुण्ड-खेटक-आदर्श-तर्जनी-चाप (धनुष), ध्वज-डमरु और पाश को लिये हुए हैं तथा बायीं भुजाओं से शक्ति, मुद्गर, शूल, वज्र खड्ग, अक्रुश, शर और शलाका को धारण करने वाली है । यह देवी इन आयुधों से युक्त होती है । शेष चण्डी की प्रतिमाय सोलह भुजाओं वाली होती है ॥ ७-८ ॥ डमरु और तर्जनी को त्याग कर रुद्र चण्डा आदि नौ भूतिर्वा देवी की होती हैं । उनके नाम बतलाये जाते हैं—रुद्र, चण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा, अति-चण्डिका, उग्रचण्डा—ये मध्य में स्थित रोचन के तुल्य आभा वाली—अरुण और श्वेत, नील, शुक्ल, धूम्रिक, पीत और श्वेत होती है तथा सिंह पर गमन करने वाली है । महिष असुर से उत्पन्न होने वाले शस्त्रधारी पुरुष के केश देवी अपने हाथ से पकड़े हुए रहती है ॥ १०-११-१२ ॥

आलीढा नव दुर्गाः स्युः स्थाप्याः पुत्रादिवृद्धये ।
 तथा गौरी चण्डिकाया कुण्डलशररदाग्निधृक् ॥१३॥
 सैव रम्भा बने सिद्धाऽग्निहीना ललिता तथा ।
 स्कन्धमूर्धकरा वामे द्वितीये धृतदर्पणा ॥१४॥
 याम्ये कलाङ्गुलिहस्ता सौभाग्या तत्र चन्द्रिका ।
 लक्ष्मीर्याम्यकराम्भाजा वामे श्रीफलसंयुता ॥१५॥

पुस्ताक्षमालिकाहस्ता वीणाहस्ता सरस्वती ।
 कुम्भाब्जहस्ता श्वेताभा मकरे वाऽपि जाह्नवी ॥१६॥
 कूर्मगा यमुना कुम्भकरा श्यामा च पूज्यते ।
 सवीणस्तुम्बुरुः शस्तः शूली मात्रप्रती वृषे ॥१७॥
 गौरी चतुर्मुखी ब्राह्मी अक्षमालास्रुगन्विता ।
 कुण्डाक्षपात्राणी वामे हंसगा शांकरी स्थिता ॥१८॥

इस प्रकार से ये आलीढ़ नौ दुर्गा की प्रतिमाएँ अपने पुत्र आदि की वृद्धि के लिए स्थापित करनी चाहिए । इसी प्रकार से गौरी कुण्डो प्रक्षर रद तथा अग्नि के धारण करने वाली चण्डिका आदि होती है ॥ १३ ॥ वही रम्भा, वन में सिद्धा, अग्नि हीना, ललिता हाथ में स्कन्ध मूर्धा वाली और दूगरे वाम हस्त में दपण धारण करने वाली होती है ॥ १४ ॥ दाहिने भाग में कलांगुलि हाथ वाली, गोभाग्ययुक्ता तथा ऋद्धि रुषिणी लक्ष्मी है जो दाहिने हाथ में कमल पुष्प को धारण करती है और वाम हस्त में श्रीफल हांता है ॥ १५ ॥ जिम देवी के हाथों में पुस्तकाक्षर मालिका तथा वीणा होते हैं वह सरस्वती देवी है । कुम्भ और घट्टन (कमल) हाथ में रखने वाली तथा श्वेत आभा से युक्त देवी श्वेताभा नाम वाली है । मकर पर स्थित जाह्नवी, कूर्म से गमन करने वाली यमुना, कुम्भ करों में धारण करने वाली श्यामा देवी पूजी जाया करनी है । माता के आगे वृष पर वीणा और तुम्बुरु को धारण किये हुए शूली स्थित है ॥ १६-१७ ॥ गौरी, चतुर्मुखी, ब्राह्मी जो प्रक्षो की माला और स्रुक से युक्त हैं और कुण्डाक्ष पात्र वाली वाम भाग में हंस से गमन करने वाली शाङ्करी देवी स्थित रहती हैं ॥ १८ ॥

शरचापा दक्षिणेऽस्या वामे चक्रं धनुर्वृषी ।
 कौमारी शिखिगा रक्ता शक्तिहस्ता द्विबाहुका ॥१९॥
 चक्रशस्त्रधरा सव्ये वामे लक्ष्मोगंदाब्जधृक् ।
 दण्डशस्त्रारिगदया वाराही महिषस्थिता ॥२०॥
 ऐन्द्री गजे वज्रहस्ता सहस्राक्षी तु सिद्धये ।
 चामुण्डा कोटराक्षी स्यान्निर्माता तु त्रिलोचना ॥२१॥

निर्माज्ञा अस्तिनारा व ऊर्ध्वकेशो कुशोदरो ।
 द्वोपिचर्मवरा वाने कपालं पट्टिश करे ॥२२
 शूलं कर्त्री दक्षिणे न्याचउवारुडाऽस्तिभूषण ।
 विनायको नराकारो बृहत्कुक्षिर्गजाननः ॥२३
 बृहच्छुण्डो त्र्युपवीतीमुख सप्तकलं भवेत् ।
 विस्ताराहं यन्तश्चैव शुग्द पट्क्षिप्तदङ्गुलम् ॥२४
 कला द्वादश नाडो तु श्रोत्रा साधं कलोच्छिता ।
 पट्क्षिप्तदङ्गुलः कण्ठो गुह्यमायधंमङ्गुलम् ॥२५
 नामिरूरु द्वादशं च जङ्घे पादे तु दक्षिणे ।
 स्वदन्तं परशुं वामे लङ्गुलं चोत्पलं शये ॥२६
 मुमुखां च विडालाक्षी हार्ध्व स्कन्दो मयूरगः ।
 स्वामी शाखो विशाखश्च द्विभुजो बालरूपधृक् ॥२७
 दक्षे शक्तिः कुक्कुटेऽथ एकवक्त्रोऽथ पण्मुखः ।
 पङ्भुजो वा द्वादशभिर्प्रांरण्ये द्विबाहुकः ॥२८

इनके दाहिने भाग में शर घोर चाप से युक्त देवी है घोर वाम भाग में चक्र-धनुष घोर वृष (बंर) हैं । कीमारी-जिली (मयूर) से गमन करने वाली, रक्ता-शक्ति हाथ में धारण करने वाली घोर दो बाहुओं वाली है । सव्य अर्पण दक्षिण में शङ्ख घोर चक्र को धारण करने वाली है घोर वाम भाग में गदा-ऊनल को धारण करने वाली सखी है । दण्ड शस्त्र-धनि घोर गदा से युक्त महिष पर स्थित वाराही देवी है ॥ १६-२० ॥ वज्र हाथ में धारण करने वाली तथा सहस्र नेत्रों वाली निद्रि के लिये गज पर ऐग्री देवी है । चामुण्डा, कोटराक्षी, निपाँया, त्रिलोचना प्रणया निर्माता, अस्तिनारा ऊर्ध्व केशों वाली तथा कुस उदर से युक्त-द्वीपों के सम को धारण करने वाली वाम भाग में हाथ में कपाल तथा पट्टिश को लिये हुए स्थित है ॥ २१-२२ ॥ दक्षिण हस्त में धूल घोर कर्त्री को लिये हुए है । रात्र (मृत मानव का शरीर) पर भारुद्ध घोर हड्डियों के भूषण धारण करने वाली हैं । इन प्रकार देवी के विभिन्न स्वभावों का वर्णन किया गया है । सब गणेश का स्वरूप यत्नतः

जाता है । विनायक नर के आकार वाले होते हैं । इनकी कुक्षि बहुत बड़ी होती है तथा गज के समान मुख शुण्ड वाला होता है ॥ २३ ॥ शूङ इन की बहुत बड़ी होती है । उपवीन (जनेऊ) धारण किये रहा करते हैं । सप्त कल मुख होता है । विस्तार से और लम्बाई से छत्तीस अंगुल की शुण्ड होनी है ॥ २४ ॥ बारह कला नाड़ा तथा डेढ़ कला ऊँची ग्रीवा है । छत्तीस अंगुल का कण्ठ और अर्ध अंगुल गुह्य है ॥ २५ ॥ नाभि और ऊँह बारह अंगुल दक्षिण जंघा पद पर परशु और अपना दाँत रखे हुए है । वाम पर लङ्का और उत्पल पड़ा हुआ है ॥ २६ ॥ पार्श्व में सुमुखी और विद्यालक्षी स्थित रहती हैं । तथा मयूर के वाहन वाले स्कन्द है । स्वामी-शाख-विशाख त्रिभुज अर्थात् दो भुजाओं वाले और बाल के स्वरूप में स्थित रहा करते हैं ॥ २७ ॥ दक्षिण भाग में शक्ति है और कुक्कुट पर स्थित हैं । यह स्वामी कार्तिकेय के स्वरूप का वर्णन किया जाना है । एक मुख वाले और छं मुख वाले हैं । अथवा छं भुजाओं से युक्त हैं । याम और अरण्य में बारह भुजाओं से युक्त है तथा दो बाहुओं वाला भी इनका स्वरूप होता है ॥ २८ ॥

शक्तीपुपाशनिर्लिशगदासत्तजंनीयुतः ।

शक्त्या दक्षिणहस्तेषु पद्मसु वामे करे तथा ॥ २९ ॥

शिखिपिच्छं धनुः खेट पताकाऽभयकुक्कुटे ।

कपानकर्तरीशूलपाशभृद्याभ्यसौम्ययोः ॥ ३० ॥

गजचर्मभृदूर्ध्वास्यपादा स्याद्बुधचर्चिका ।

संव चाष्टभुजा देवो शिरोऽडमरुहान्विता ॥ ३१ ॥

तेन सा रुद्रचामुण्डा नादेश्वयथ नृत्यता ।

इयमेव महालक्ष्मीरुपविष्टा चतुर्मुखो ॥ ३२ ॥

नृवाजिमहिषेर्मांश्च खादन्ती च करे स्थितान् ।

दशबाहुस्त्रिनेत्रा च शम्भ्यासिद्धमरुक्षिकम् ॥ ३३ ॥

विभ्रती दक्षिणे हस्ते वामे घण्टां च घटकम् ।

घट्वाङ्गं च त्रिशूलं च सिद्धचामुण्डिकाक्षया ॥ ३४ ॥

सिद्धयोगेश्वरी देवी सर्वसिद्धिप्रदायिका ।

एतद्रूपा भवेदन्या पाशाङ्कुशयुताऽरुणा ॥३५॥

दाहिनी ओर के हाथों में शक्ति, बाण, पाश, निस्त्रिय गदा और तर्जनी हैं तथा छे बायी ओर के हाथों में मोर का पंख, धनुष, सैट, पताका, अभयदान, कुक्कुट, कपाल, कर्त्तारिका, शूल, पाश धारण किए हुए हैं । दाहिने तथा बायें दोनों में गज के चर्म को धारण करते हैं । ऊपर की ओर मुख तथा चरण हैं ऐसी स्वरूप वाली रुद्र वचिका है । (यही आठ भुजाओं वाली देवी है जो शिर और डमरू से युक्त रहा करती है ॥ २६-३०-३१ ॥ इस से यह रुद्र चामुण्डा नाम वाली है तथा नादेश्वरी एवं नृत्यनी भी इसके नाम हैं ।) यही महानक्षत्री चार मुखों वाली उपविष्ट रहा करती है, अब सिद्ध चामुण्डा के स्वरूप को बताया जाता है—मनुष्य, अश्व, महिष (भैंसा) और हाथी इनको खानी हुई जो कि इसके हाथों से स्थित रहा करते हैं, इस देवी की दश भुजाएं होती हैं तथा तीन नेत्रों वाली है । शस्त्र-तलवार और डमरू इन तीनों को धारण करती है ॥ ३२-३३ ॥ ये तीनों दाहिने हाथ में धारण करती है और वाम कर में घण्टा और खेटक, खट्वाङ्ग, त्रिशूल धारण करती हैं । इनका नाम निद्ध चामुण्डा कहा जाता है ॥ ३४ ॥ निद्ध योग की स्वामिनी देवी ममन्त गिद्धियों को प्रदान करने वाली हैं । उ रूप वाली घन्य जो होती हैं जिनके पाम पाश-अंकुश होने हैं और धरण वर्ण होता है उग देवी का नाम भी अरुणा होता है ॥ ३५ ॥

भैरवी रूपविद्या तु भुजैर्द्वादशभ्युता

एताः श्मशानजा रोद्रा अम्बाष्टकमिदं स्मृतम् ॥३६॥

क्षमा शिवाङ्ग ॥ वृद्धा द्विभुजा विवृतानना ।

दन्तुरा क्षेमकारी स्याद्भूमी जानुकरा स्थिता ॥३७॥

यक्षिणस्तद्वद्वीर्गाक्ष्यः शाकिन्यो वक्रदृष्टयः ।

विद्वाक्ष्यः स्युर्महार्म्या रूपिण्योऽम्बरसः सदा ॥३८॥

साक्षमानस्त्रिशूली च नन्दीशो द्वारपालकः ।

महाकालोऽगिर्गुण्डो स्याच्छूलघेटकरस्तथा ॥३९॥

कृश' भृङ्गो च नृत्यन्दं कूष्माण्डस्थूलखर्ववान् ।
 गजमोकर्णवक्त्राद्या वीरभद्रादयो गणाः ॥४०॥
 घण्टा कर्णोऽष्टादशदोः पापरोग विदारयन् ।
 वज्रासि दण्ड चक्रपुमुसलाङ्कुशमुदगरान् ॥४१॥
 दक्षिणे तर्जनीखेटं शक्ति मुण्ड च पाशकम् ।
 चापं घण्टां कुठारं च द्वाभ्यां चैवं त्रिशूलकम् ॥४२॥
 घण्टामाला कुलो देवो विस्फोटकपिमर्दनः ॥४३॥

भैरवी रूप विद्या देवी का स्वरूप बारह भुजाओं से युक्त होता है । ये शक्तान जा और रोद्रा होती हैं । इस प्रकार से अम्बाओं का अष्टक बताया गया है ।
 ॥ ३६ ॥ इन के नाम बहुत से हैं जैसे — क्षमा, शिवावृता, वृद्धा, द्विभुजा, विवृतानना, दन्तुरा क्षेम करी तथा भूमि में घुटने और हाथ रखने वाली स्थित रहती हैं ॥ ३७ ॥ यक्षिणी, स्तब्ध और दीर्घ नेत्रों वाली, शक्तिनी, वक्र दृष्टि वाली, पिङ्गाक्षी, महारम्या, रूप वाली अम्भराएँ सदा स्थित रहा करती हैं । ये देवी के समीप रहने वाली हैं । साक्ष माल-त्रिशूली और नन्दीग द्वार पाल हैं । महाकाल-असिमुण्डो-शूल, खेटकर, कृश-भङ्गी नृत्य करने वाले तथा कूष्माण्ड, स्थूल, खर्ववान्, गज गोकर्ण और वक्त्र आदि तथा वीर भद्र प्रभृति देवी के गण हैं ॥ ३८-३९-४० ॥ अष्टादश हाथों वाला घण्टाकर्ण जो पापों के रोग को विदीर्ण कर देते हैं । दक्षिण हाथ में वज्र, असि, दण्ड, चक्र, इपु, मुसल, अङ्कुश और मुकुट को धारण किये हुए हैं । तर्जनी, खेट, शक्ति, मुण्ड, पाश, काम, घण्टा और कुठार को तथा दोनों हाथों से त्रिशूल को धारण करने वाले हैं ॥ ४१-४२ ॥ घण्टाओं की माला से घिरे हुए देव विस्फोट को विमर्दन करने वाले हैं ॥ ४३ ॥



२२-सूर्यादि ग्रह देवता प्रतिमालक्षणादि

सप्तसाश्वे संकचक्रे रथे सूर्यो द्विपद्म धृक् ।

मपीभाजनलेखन्यो विभ्र दृण्डो तु दक्षिणे ॥१॥

वामे तु पिङ्गलो द्वारि दण्डभृत्स रवेर्गणः ।

बालव्यजनधारिणी पाश्व राज्ञी च निष्प्रभा ॥२

अथवाऽश्वत्थमारूढः कार्यं एकस्तु भास्करः ।

वरदा व्यब्जिनः सर्वे दिक्पाः शस्त्रकराः क्रमात् ॥३

मुद्गरशूलचक्राब्जभृतोऽन्यादिविदिविस्थिताः ।

सूर्यार्थमादिरक्षोऽन्ताश्चतुर्हस्ता द्विपङ्कले ॥४

वरुणः सूर्यनामा च महर्षांशुस्तथाऽपरः ।

घाता तपनसंज्ञश्च सविताऽथ गर्भास्तकः ॥५

रविश्चत्राथ पर्जन्यस्त्वष्टा मित्रोऽथ विष्णुकः ।

मेधादिराशिसंरथाश्च मार्गादिकार्तिकान्तकाः ॥६

अब सूर्य आदि ग्रह देवताओं की प्रतिमा के लक्षण बतलाये जाते हैं ।

श्री भगवान् ने कहा — सूर्य ग्रह देव के रथ में सान अश्व होते हैं और एक चक्र (पहिया) होता है । ऐसे रथ में दो पद्म धारण करने वाले तथा दक्षिण भाग में दण्ड धारी और वाम हस्त भाग में मङ्गल द्वार पर रविदेव के गण स्थित रहा करते हैं । बाल व्यजन धारण करने वाली पाश में निष्प्रभा नाम वाली रानी स्थित रहती है ॥ १-२ ॥ अथवा अश्व पर विराजमान एक भास्कर रखना चाहिए । वरदान देने वाले, दो कमलों के धारण करने वाले समस्त दिक्पाल क्रम से हाथों में शस्त्र धारण करने वाले हैं । जोकि मुद्गर, शूल, चक्र और कमल के धारण करने वाले अग्नि आदि विविध ग्रहों में स्थित रहते हैं । सूर्य अर्धमा आदि रथोन्म चार हाथों वाले बारह दल में स्थित हैं । ॥ ३-४ ॥ अब सूर्य के कनिष्ठ परम प्रविद्ध नाम बताते हैं — वरुण, सूर्य, महर्षांशु तथा घाता-तपन, सविता, गर्भास्तक, राव, पर्जन्य, त्वष्टा, मित्र विष्णुक ये सूर्य मार्गशीर्ष मास में लेकर कार्तिक मास के अन्त तक मेघ आदि राशियों पर स्थित रहा करने हैं ॥ ५-६ ॥

कृष्णो रक्तो मनाग्रक्तः पीतः पाण्डुरकः सितः ।

कपिलः पातवर्णश्च शुक्राभो धवलस्तथा ॥७

धूम्रो नीलः क्रमाद्वर्णाः शक्तयः केसराग्रगाः ।
 इडा सुपुम्ना विश्वार्चिरिन्दुसंज्ञा प्रमदिनी ॥८
 प्रहर्षिणी महाकाली कपिला च प्रबोधिनी ।
 नीलाम्बरा वनान्तस्था अमृताढ्या च शक्तयः ॥९
 वरुणादेश्व तद्वर्णा केसराग्रेषु विन्यसेत् ।
 तेजश्चण्डो महावक्त्रो द्विभुजः पद्मखड्गभृत् ॥१०
 कुण्डिकाजप्यमालीन्दुः कुजः शक्त्यक्षमालिकः ।
 बुधश्चापाक्षपाणिः स्योञ्जीवः कुण्ड्यक्षमालिकः ॥११

इनके भिन्न-भिन्न वर्ण भी माने जाते हैं । यथा—कृष्ण, रक्त, घोडा
 लाल, पीला, पाण्डुर, सित, कपिल, पीत वर्ण तोता के समान आभा वाला
 वर्ण, धवल, धूम्र, नील ये क्रम से द्वादश राशियों पर स्थित सूर्यों के वर्ण होते
 हैं । केसरों के अग्र भाग में गमन करने वाली शक्तियाँ होती हैं । उनके नाम
 इडा सुपुम्ना विश्वार्चि, इन्दु-संज्ञा, प्रमदिनी, प्रहर्षिणी, महा काली, कपिला
 प्रबोधिनी, नीलाम्बरा, वनान्तस्था, अमृताढ्या अर्थात् अमृता इस नाम वाली
 ये शक्तियाँ हैं जो बारह होती हैं । वरुण आदि के उनके जो वर्ण हैं वे केसरों
 के अग्र भाग में विन्यस्त करने चाहिये । अब रवि के अतिरिक्त अन्य ग्रहों
 को बतलाते हैं । तेज, चण्ड, महा वक्त्र, द्विभुज, पद्म और खड्ग को धारण
 करने वाला—कुण्डिकाजप्य माली—इन्दु है । शक्ति और अक्षों की माला वान
 कुज । मङ्गल) है । चाप और अक्षों को हाथ में धारण करने वाले बुध हैं
 कुण्डो और अक्ष माला धारी गुरु हैं ॥ ७ से ११ ॥

१ शुक्रः कुण्ड्यक्षमाली स्यात्किङ्किणीसूत्रवाञ्छनिः ।
 अर्धचन्द्रधरो राहुः केतुः खड्गी च दीपभृत् ॥१२
 अनन्तस्तक्षकः कर्कः पद्मो महावज्रः शङ्खकः ।
 कुलिकः सूत्रिणः सर्वे फणवक्त्रा महाप्रभाः ॥१३
 इन्द्रो वज्री गजारूढच्छागगोऽग्निश्च शक्तिमान् ।
 यमो दण्डी च महिषे नैऋतः खड्गवान्करे ॥१४

मकरे वरुणः पाशी वायुर्वज्रवरो मृगे ।
 गदी कुबेरो मेघस्थ ईशानश्च जटो वृषे ॥१५
 द्विवाहवो लोकपाला विश्वकर्माश्चसूचभृत् ।
 हनुमान्वज्रहस्तः स्यात्पद्भ्यां संपीडितासुरः ॥१६
 वीणाहस्ताः किं राः स्युर्मालावद्याधराश्च स्ते ।
 दुर्वलाङ्गाः पिशाचाः स्युर्वेताला विकृताननाः ॥१७
 क्षेपपाला शूलवन्तः प्रेता महोदराः कृशाः ॥१८

कुण्डो और अक्ष मालिक शुक्र हैं । किङ्किणी मूत्रवान् शनि हैं ।
 आधा चन्द्र धारी राहु है । केतु खड्गी और दीप को धारण करने वाला है
 ॥ १२ ॥ अनन्त, तक्षक, वर्क, पद्म, महावज्र, शंखक, कुलिक ये सब सूच
 धारी फन के मुख वाले और महा प्रभा वाले होते हैं ॥ १३ ॥ इन्द्र वज्रधारी
 और हाथी के वाहन वाले हैं । अग्नि छाग के वाहन वाले और महान् शक्ति
 धारी हैं । यम दण्ड धारण करने वाले और भैरव के वाहन वाले हैं ।
 नैऋत हाथ में खड्ग धारण करने वाले हैं । वरुण मकर पर सवार और
 पाश धारण करने वाले हैं । वायु पद्म धारी और मृग के वाहन वाले हैं ।
 कुबेर गदा धारी और मेघ पर सवारी किये रहा करते हैं । ईशान जटाधारी
 हैं और बैल पर आसुते होते हैं ॥ १४-१५ ॥ लोकपाल सभी दो वाहुओं
 वाले होते हैं । विश्वकर्मा प्रश सूत्र को धारण करने वाले हैं । हनुमान् के
 के हाथ में वज्र रहा करता है और पदों से असुर को पीड़ित करने रहा करने
 हैं ॥ १६ ॥ विष्णुओं के हाथों में वीणा का वाद्य (वाजा) रहता है और
 आकाश में विद्याधर सब माला धारी होते हैं । पिशाच दुर्वल अश्लील होते
 हैं तथा वेतालों के मुख का आकार विकृत होता है । जो क्षेपणाय होते हैं वे
 शूलधारी होते हैं । प्रेतों का उदर बड़ा होता है और जमीन में मृग दृष्टा
 करते हैं ॥ १७-१८ ॥



२३—चतुःषष्टियोगिनीप्रतिमालक्षणानि

योगिन्यष्टाष्टक वक्ष्ये इन्द्रादीशान्ततः क्रमात् ।
 अक्षोभ्या रुक्षकर्णी च राक्षसी क्षपणा क्षमा ॥१
 पिङ्गाक्षी चाक्षया क्षेमा इला नीलालया तथा ।
 लोला रक्ता बलाकेशी लालसा विमला पुनः ॥२
 दुर्गा सा च विशालाक्षी ह्रीकारा बडवामुखी ।
 महाकरुरा क्रोधना तु भयंकरी महानना ॥३
 सर्वज्ञा तरला तारा ऋग्वेदा तु हयानना ।
 साराख्या रससंग्राही शवरा तालजङ्घिका ॥४
 रक्ताक्षी मुप्रसिद्धा तु विद्युज्जिह्वा करङ्कणी ।
 मेघनादा प्रचण्डोग्रा कालकर्णी वरप्रदा ॥५
 चण्डा चण्डवती चैव प्रपंचा प्रलयान्तिका ।
 शिशुवक्त्रा पिशाची च पिशितासवलोलुपा ॥६
 धमनी तपनी चैव रागिणी विकृतानना ।
 वायुवेगा बृहत्कुक्षिविकृता विश्वरूपिका ॥७
 यमजिह्वा जयन्ती च दुर्जया च जयान्तिका ।
 विहाली रेवती चैव पूतना विजयान्तिका ॥८
 घटहस्ताश्चतुर्हस्ता इच्छास्त्राः सर्वसिद्धिदाः ।
 भैरवश्चाकंहस्तः स्यादन्तुरास्यो जटेंद्रुभृत् ॥९
 घट्वाङ्कुशकुठारेषु विश्वामयभृदेवतः ।
 चापत्रिशूलखट्वाङ्गपाशकार्धवरोद्यतः ॥१०
 गजचर्मधरो द्वाभ्यां कृत्तिवासोऽहिभूषितः ।
 प्रेतामनो मातृमध्ये पूज्यः पञ्चाननोऽप्य या ॥११

यह बीस योगिनी की प्रतिमा के मक्षण बताये जाते हैं । श्री भगवान् ने कहा—यह भी योगिनियों के अष्टक के अष्टक को बताऊँगा । जो कि हमने इत्यादि ईशान हैं—बीस योगिनियों के नाम आरम्भ में बताये जाते हैं—पक्षोभ्या—रुक्षकर्णी—राक्षसी—क्षपणा—क्षमा—पिङ्गाक्षी—अक्षया—क्षेमा—इला—नीलालया—तथा—लोला—रक्ता—बलाकेशी—लालसा—विमला—पुनः—दुर्गा—सा च—विशालाक्षी—ह्रीकारा—बडवामुखी—महाकरुरा—क्रोधना—तु—भयंकरी—महानना—सर्वज्ञा—तरला—तारा—ऋग्वेदा—तु—हयानना—साराख्या—रससंग्राही—शवरा—तालजङ्घिका—रक्ताक्षी—मुप्रसिद्धा—तु—विद्युज्जिह्वा—करङ्कणी—मेघनादा—प्रचण्डोग्रा—कालकर्णी—वरप्रदा—चण्डा—चण्डवती—चैव—प्रपंचा—प्रलयान्तिका—शिशुवक्त्रा—पिशाची—च—पिशितासवलोलुपा—धमनी—तपनी—चैव—रागिणी—विकृतानना—वायुवेगा—बृहत्कुक्षिविकृता—विश्वरूपिका—यमजिह्वा—जयन्ती—च—दुर्जया—च—जयान्तिका—विहाली—रेवती—चैव—पूतना—विजयान्तिका—घटहस्ताश्चतुर्हस्ता इच्छास्त्राः सर्वसिद्धिदाः—भैरवश्चाकंहस्तः स्यादन्तुरास्यो जटेंद्रुभृत्—घट्वाङ्कुशकुठारेषु विश्वामयभृदेवतः—चापत्रिशूलखट्वाङ्गपाशकार्धवरोद्यतः—गजचर्मधरो—द्वाभ्यां कृत्तिवासोऽहिभूषितः—प्रेतामनो मातृमध्ये पूज्यः पञ्चाननोऽप्य या—

नालालया—नोला—रक्ता—बलाकेरी—लालमा—विमना—दुर्गा—दिशालाक्षी—ह्रींकारा
—वडवामुखी महाबहुरा—क्रोधना—भयङ्करी—ऋग्वेदा—ह्यानना—साराह्या—रस
संग्राही—शवरा—ताल जंधिका रक्ताक्षी—मुप्रमिद्धा—विद्युज्जिह्वा—वरंकिणी—
मेघनादा—प्रचण्डोग्रा—काल कर्णी—वरप्रदा—चण्डा—चण्डवती—प्रपञ्चा—प्रलयान्तिका
—गिगुबश्च—पिनाची—पिजिताशन लोलुपा—घमनी—तपनी—रागिणी—विकृतानना
—वायुवेगा—वृहत्कुक्षि—विकृता—विश्व लेपिका—यमजिह्वा—जयन्ती—दुर्जया—
जयनिका—विडानी—रेवती—पूतना—विजयान्तिका—अष्टहस्ता—चतुर्हस्ता—दृच्छास्त्रा
—मर्वसिद्धिदा ये योगिनियों के नाम हैं। अब भैरव के नाम बताते हैं—भैरव,
अर्कहस्त, दन्तुरास्य, जटेन्दुभृत्, खट्वाङ्ग, अंकुश, वृठार इषु, विश्व के अभय
को धारण करने वाले एक ओर तथा दूसरी ओर चाप, त्रिशूल, खट्वांग,
पाश, अर्ध वर के लिये उद्यत रहने वाले हैं। दोनों हाथों से गज के चर्म को
धारण करने वाले—चर्म के वस्त्र धारण करने वाले—सर्पों के भूषणों में अलंकृत-
प्रेत के प्रामन पर स्थित—अंचानन मातृ मध्य में पूजने के योग्य होने
हैं ॥ १ मे ११ ॥

अविलोमाग्निपर्यन्तं दीर्घाष्टकैकभेदितम् ।
तत्पडङ्गानि जात्यन्तरवितं च क्रमाद्यजेत् ॥१२॥
मन्दिराग्निदलारुढं सुवर्णरसनान्वितम् ।
नार्दाविन्दिन्दुसंयुतं मातृनाथाङ्गदीपितम् ॥१३॥
वीरभद्रो वृषारुढो मातृगः स चतुर्भुजः ।
गौरी तु द्विभुजा स्यक्षा शूलिनी दपणान्विता ॥१४॥
त्रिशूलकुण्डिकाकुण्डिवरहस्ता चतुर्भुजा ।
अवजस्था ललिता स्कन्दगणादर्शशलाकया ॥१५॥
चण्डिका दशहस्ता स्यात्खड्गशूलारिशक्तिधृक् ।
दक्षे वामे नागपाश चर्माङ्कुशकुठारकम् ॥१६॥
घनुः मिहे च महिषः शूलेन प्रहतोऽग्रतः ॥१७॥

अविलोम अग्नि पर्यन्त दीर्घं अष्टक के एक-एक भेद को घोर जात्यन्तों
में युवन को क्रम से यजन करे घोर पडङ्गों का भी यजन करना चाहिए ॥१२॥

मन्दिराग्नि दल में आरूढ़ तथा सुवर्ण की निर्मित रसना करधनी से युक्त-
नाद बिन्दु और इन्दु के सहित एवं मातृनाथ के अङ्ग से दीपित का यजन
करना चाहिए ॥१३॥ वीरभद्र वृष पर विराजमान है उनकी चार भुजाएँ
होती हैं । गौरी दो भुजा वाली तथा तीन नेत्रों से युक्त दूल धारण करने
वाली और दण्ड हाथ में लिये रहा करती ॥१४॥ ललिता त्रिशूल-कुण्डिका
लेनी हुई कुण्डिक हाथ वाली चार भुजा धारण करने वाली कमल पर स्थित
रहती है तथा स्कन्द गण के आदर्श शलाका के सहित विराजमान होती है
॥१५॥ चण्डिका दशकरों वाली है और खड्ग-शूल-अरि-शक्ति को धारण किया
करती है । दाहिने और बाँये हाथ में नाग पाश तथा चर्म-अंकुश और कुठार
लिये हैं । धनुष धारिणी है तथा महिष अमुर दूल से प्रहत हुआ उनके आगे
पड़ा रहता है और सिंह का वाहन है जिस पर वे आरूढ़ होनी है ॥१६॥१७॥



२४-लिङ्गादिलक्षणम् ।

लिङ्गादिलक्षणं वक्ष्ये कमलोद्भव तच्छुणु ।
दैर्घ्यार्धं वसुभिर्बभूव त्वत्त्वा भागस्यं ततः ॥१॥
विष्कम्भं भूतभार्गस्तु चतुरस्रं तु कारयेत् ।
आयाममृतुर्गर्भं वत्त्वा एकद्वित्रिक्रमान्यसेत् ॥२॥
ग्रहविष्णुशिवांशेषु वधमानेऽयमुच्यते ।
चतुरस्रेऽस्य कर्णार्धं गुह्यकोशेषु लब्धयेत् ॥३॥
अष्टाशो वक्ष्यन्धो भागः सिध्यत्येव न संशयः ।
षोडशास्रं ततः कुर्याद्द्वित्रिशास्रं ततः पुनः ॥४॥
चतुःषष्ठ्यस्रकं कृत्वा चतुर्ल साधयेत्ततः ।
वर्तमेदय लिङ्गस्य शिरो यं देशिकोत्तमः ॥५॥
विस्तारमथ लिङ्गस्य अष्टधा संविभाजयेत् ।
भागार्धार्धं तु गन्धज्य षष्ठ्याकारं शिरो भवेत् ॥६॥
त्रिषु भागेषु सहस्र आयामो यम्य विस्तरः ।
तद्विभागमथ लिङ्गं सर्वकामफलप्रदम् ॥७॥

दैर्घ्यस्य तु चतुर्थेन विष्कम्भं दैवपूजिते ।
सर्वेषामेव लिङ्गानां लक्षणं शृणु सांप्रतम् ॥८॥

श्री भगवान् ने कहा—है कमल मे जन्म ग्रहण करने वाले ! मैं अब लिंग प्रादि का लक्षण बताता हूं उमका तुम श्रवण करो । दीर्घता के आधे भाग को आठ से विभक्त करे और फिर तीन भाग का आध्या कर देना चाहिए ॥१॥ पौख भागों से चतुरस्र विष्कम्भ कराना चाहिए । जो उसका आध्याम हो उसको छे मे विभक्त करे और एक दो तथा तीन को क्रम से न्याम करना चाहिए ॥२॥ यह ब्रह्मा-विष्णु और शिव के अंशों में वर्धमान होता है ऐसा कहा जाता है । इसके चतुरस्र में कर्णाग्र को गुह्य कोणों में चिह्नित करना चाहिए ॥३॥ प्रष्टाग्र वैष्णव भाग होता है वह अवश्य ही मिद्ध होता है इसमें संशय नहीं है । फिर षोडशाक्ष करे और फिर बत्तीस प्रस्त्र करने चाहिए ॥४॥ इसके उपरान्त चौमठ अक्ष करके फिर इसे वर्तुल बनावे । श्रेष्ठ आचार्य को फिर लिंग का शिर काटना चाहिए । ५॥ लिंग के विस्तार को आठ प्रकार से विभाजित करना चाहिए । भाग के आधे का जो आधा भाग है उमका त्याग करके छत्र के आकार वाला शिर होता है ॥६॥ तीन भागों के महश्च आध्याम होता है जिसका कि विस्तार है उमके विभाग के समान जो लिंग होता है यह समस्त कामनाओं के फल को देने वाला होता है ॥७॥ दीर्घता के चौथे भाग मे विष्कम्भ को दैव पूजित किया जाता है । अब समस्त लिंगो का लक्षण गुनो ॥८॥

मध्यमूलं समामाद्य ब्रह्मरुद्रान्तिकं बुधः ।
षोडशांगुलिङ्गस्य षड्भागेर्भाजितो यथा ।
तद्व्ययमनमूत्राभ्यां मानमन्तरमुच्यते ।
यवाष्टमुत्तरे कार्यं शेषाणां यवहानितः ॥१०॥
अर्चामागं त्रिधा कृत्वा ह्यर्ध्वमेकं परित्यजेत् ।
प्रष्टधा तद्वयं कृत्वा ऊर्ध्वं भागवयं त्यजेत् ॥११॥
ऊर्ध्वं तु पञ्चमाद्भागाद्ब्राम्य लेगां प्रलम्बयेत् ।

भागमेकं परित्यज्य सङ्गम कारयेत्तयोः ॥१२॥
 एतन्माधारणं प्रोक्तं लिङ्गानां लक्षणं मया ।
 सर्वसाधारणं वक्ष्ये पिण्डिकान्तं निबोध मे ॥१३॥
 ब्रह्मभागप्रवेशं च ज्ञात्वा लिङ्गस्य चोच्छ्रयम् ।
 न्यसेद्ब्रह्मशिलां विद्वान्सम्यक्कर्म शिलोपरि ॥१४॥
 तथा समुच्छ्रयं ज्ञात्वा पिण्डिकां प्रविभाजयेत् ।
 द्विभागमुच्छ्रयं पीठ विस्तारे लिङ्गसमितम् ॥१५॥
 त्रिभागं मध्यतः खातं कृत्वा पीठं विभाजयेत् ।
 स्वमानार्धत्रिभागेण बाहुल्यं परिवर्त्ययेत् ॥१६॥

विद्वान् को चाहिए कि ब्रह्म रुद्रान्तिक मध्य मूत्र को छे भಾಗो में अष्ट
 यव करे और दोषो को यव हानि में करना चाहिए ॥१६॥१०॥ अर्चा के भाग
 को तीन में कन्क ऊपर के एक का त्याग कर देना चाहिए । उन दोनो को
 अष्ट भागों में करके ऊपर के तीन भागों का संगम करादे अर्थात् मिला देना
 चाहिए ॥११॥१२॥ मैंने यह एक साधारण लिंगो का लक्षण बतला दिया है उसे
 पिण्डिकान्त तक मुक्त से समझ लो ॥१३॥ ब्रह्म भाग के प्रवेश को भली-भाँति
 जानकर और लिंग के उच्छ्रय (ऊँचाई) को समझकर विद्वान् को चाहिए कि
 कर्म शिल के ऊपर भली भाँति से ब्रह्म शिला का न्यास करे ॥१४॥ उमी
 समुच्छ्रय का ज्ञान प्राप्त करके पिण्डिका का विभाजन करना चाहिए । दो भाग
 उच्छ्रित पीठ को विस्तार में लिंग के समान करना चाहिए ॥१५॥ तीन भाग
 बीच से छोड़कर पीठ को विभाजित करना चाहिए । अपने भाग के प्राचे
 विभाग से उसके बाहुल्य की परिकल्पना करे ॥१६॥

बाहुल्यस्य त्रिभागेण मेखलामथ वर्त्ययेत् ।
 खातं स्यान्मेखलातुल्यं क्रमाद्विम्बं तु कारयेत् ॥१७॥
 मेखलापीडशांशेन खातं वा तत्प्रमाणतः ।
 उच्छ्राय तस्य पीठस्य विकाराङ्गं तु कारयेत् ॥१८॥
 भूमौ प्रविष्टमेकं तु भागेनैकेन पिण्डिका ।
 कण्ठं भागस्त्रिभिः कार्यं भागेनैकेन पट्टिका ॥१९॥

विष्णवे शिपिविष्टेति ऊर्णसूत्रेण सर्पपैः ।
 पट्टवस्त्रेण कर्तव्यं देशिकस्यापि कौतुकम् ॥३॥
 मण्डले प्रतिमां स्थाप्य सवस्त्रां पूजितां स्तुवन् ।
 नमस्तेऽर्चं सुरेशानि प्रणीते विश्वकर्मणा ॥४॥
 प्रभाविताशेषजगद्धात्रि तुभ्यं नमो नमः ।
 त्वयि सपूजयामीशे नारायणमनामयम् ॥५॥
 रहिता शिल्पिदोषैस्त्वमृद्धियुक्ता सदा भव ।
 एव विज्ञाप्य प्रतिमां नयेत्तां स्नानमण्डपम् ॥६॥
 शिल्पिन तोषयेद्द्रव्यैर्गुरवे गां प्रदापयेत् ।
 चिक्ष देवेति मन्त्रेण नेत्रे चोन्मीलयेत्ततः ॥७॥
 अग्निज्योतीति दृष्टिं च दद्याद् भद्रपीठके ।
 ततः शुक्लानि पुष्पाणि धृत सिद्धार्थकं तथा ॥८॥
 दूर्वा कुशाग्रं देवस्य दद्याच्छिरसि देशिकः ।
 मधु वातेतिमन्त्रेण नेत्रे चाभ्यञ्जयेद् गुरुः ॥९॥

अब स्नपन विधि आदि का वर्णन किया जाता है । श्री भगवाने कहा—
 ऐशानी दिशा में गुरु को कुण्ड बनवाना चाहिए अष्टोत्तर शत गायत्री मन्त्र से
 वैष्णव बह्नि में हवन करके सम्पात विधि से घरों का प्रोक्षण करावे । काम
 शाला में मूर्तिप शिल्पियों के साथ जाना चाहिए और सूर्य की ध्वनि के साथ
 दाहिने हाथ में कौतुक सूत्र बंधवाना चाहिए ॥१॥२॥ “विष्णवे शिपिविष्ट”
 इस मन्त्र से सर्पप (सर्पों) के साथ ऊन सूत्र से पट्ट वस्त्र के द्वारा आचार्य
 को भी कौतुक बन्धन करना चाहिए ॥३॥ वस्त्र को धारण कराकर प्रतिमा को
 मण्डल में स्थापित करे और उसकी पूजा करे । इसके पश्चात् प्रतिमा की स्तुति
 करे—हे सुरेशान्ति ! हे प्रर्षे ! हे विश्वकर्मा के द्वारा प्रणीते ! तुम्हारे लिये
 नमस्कार है ॥४॥ हे समस्त जगत् को प्रभावित करने वाली धात्रि ! तुम्हारे
 लिये भग वा०-वार नमस्कार है । हे ईश ! तुम्हारे में मैं धामय (रोगादिविष)
 रहित नारायण को पूजना हूँ ॥५॥ तुम शिल्पियों के द्वारा होने वाले दोषों
 से रहित होती हुई गर्वदा ऋद्धि में युक्त हो जाओ । इन प्रकार से प्रतिमा के

सामने स्तवन तथा निवेदन करके फिर उन प्रतिमा को स्नान काने के लिये मंडप में ले जाना चाहिए । जो उम प्रतिमा के निर्माण करने वाला शिल्पी हो उसे धन देकर पूर्ण मुन्तुष्ट कर देना चाहिए और गुरु को गाय का दान दिलवाना चाहिए । इसके उपरान्त “वित्र देव” इत्यादि मन्त्र से नेत्रों का उन्मीलन करना चाहिए ॥६॥७॥ “अग्निज्योति” इत्यादि मन्त्र से हृष्टि देवे । भद्र पीठक में इनके अनन्तर शुक्ल फूल-धृत-सिद्धार्थक-शूर्वा और कुशा का अग्र भाग प्रतिमा के मस्तक में आचार्य को देना चाहिए । फिर गुरु को “मधुवात” इत्यादि मन्त्र से देवों का अभ्यञ्जन करना चाहिए ॥८॥९॥

हिण्यगभमन्त्रेण इम मेति च कीर्तयेत् ।

धृतेनातयञ्जयेत्पश्चात्पठन्धृतवतीं पुनः ॥१०॥

मसूरपिष्टेनोद्वर्त्य अतो देवेति कीर्तयेत् ।

क्षालयेदुष्णतोयेन सप्त तेज्जनेति देशिकः ॥११॥

द्रुपदादिवेत्यनुलिम्पेदापो हिष्टेति सेचयेत् ।

नदीजंस्तोत्र्यजः स्नानं पावमानोति रत्नजः ॥१२॥

समुद्र गच्छ गच्छेति तोत्र्यमृतफलशेन च ।

शं नो देवोः स्नापयेच्च गायत्र्याऽप्युष्णवारिणा ॥१३॥

पञ्च भृद्भिर्हिर मेति स्नापयेत्परमेश्वरम् ।

सिकताद्भिरिमं मेति वल्मांकोदघटेन च ॥१४॥

तद्विष्णारिति ओषध्यद्भिर्या ओषधिमन्त्रतः ।

यज्ञा यज्ञेति कापायोः पञ्चभिर्गव्यकस्ततः ॥१५॥

पयः पृथिव्यां भन्त्रेण याः फलीति फलाम्बुभिः ।

विश्वतञ्चक्षुः सांभ्येन पूर्वेण कलशेन च ॥१६॥

साम राजानमित्यवं विष्णोरराटं दक्षिणेः ।

हसः शुचि पश्चिमेन कुर्यादुद्धतं न हरेः ॥१७॥

फिर “हिरण्यगभं” मन्त्र के द्वारा ‘इम मे’—यह कहें । इसके पदवान् “धृतवती पुनः” इस का पाठ करने हुए धृत से अभ्यञ्जन करें ॥ १० ॥ मसूर की पिष्टि से उद्वर्तन करके अर्थात् उबटना सगा कर “अतो देव” —इत्यादि का

कीर्त्तन करना चाहिए । फिर आचार्य का कर्त्तव्य है कि “सप्त सेऽग्रम” — इत्यादि मन्त्र के द्वारा गर्भ पानी से धो डाले ॥ ११ ॥ “द्रुपदादिव” इस मन्त्र से अनुलिम्पन करे और “आपोहिष्ठा” — इत्यादि मन्त्रों से स्नेहन करना चाहिए । नदी के तथा तीर्थों के जल से स्नान होना चाहिए । “पव मानि” — इत्यादि से रत्नजो के द्वारा “समुद्रं गच्छ गच्छ” इस से और तीर्थ की मिट्टी कलश के द्वारा “शंनो देवी” — इस से स्नपन करावे और गायत्री मन्त्र से भी गर्भ जल के द्वारा स्नपन कर्म करे ॥ १२-१३ ॥ “हिरण्य” — इत्यादि मन्त्रों के द्वारा पाँच मिट्टियों से “यद्विष्णोः” इस मन्त्र से “ओषध्यद्भिर्या” इस ओषधि मन्त्र से “यज्ञा यज्ञ” इस से पाँच कापायों के द्वारा और पद्मगव्यों से स्नपन करावे ॥ १४-१५ ॥ “पयः पृथिव्यां या फली” इस मन्त्र से फलों के रस से स्नपन करावे । “विश्वतश्चक्षुः” इस से उत्तर में — कलश के द्वारा “सोमं राजानम्” इससे पूर्व में — “विष्णोरराट्” इससे दक्षिण में — ‘इस शुवि’ इस से पश्चिम में द्वार का उद्घाटन करना चाहिए ॥ १६-१७ ॥

सूधनिमिति मन्त्रेण धात्वोमांस्युदकेन च ।
 मा नरतोकेति मन्त्रेण गन्धद्वारेति गन्धकैः ॥ १८
 इदमापेति च घटरेकाशीतिपदस्थितैः ।
 एह्येहि भगवन्विष्णो लोकानुग्रहकारक ॥ १९
 यज्ञभाग गृहाणमं वासुदेव नमोऽस्तु ते ।
 अनेनाऽऽवाह्य देवेश कुर्यात्कौतुकमोचनम् ॥ २०
 मुञ्चामि त्वेतिमुक्तेन देशिकस्यापि मोचयेत् ।
 हिरण्यमेन पाद्यं दद्यादतो देवेति चार्धकम् ॥ २१
 मधु धाता मधुपर्कं मयि गृह्णामि चाऽऽचामेत् ।
 अक्षन्नमीमन्तेति किरेद्दूर्वाक्षतं बुधः ॥ २२
 काण्डाश्रिमन्यनं कुर्याद् गन्धं गन्धवतीति च ।
 उन्नयामीति माल्यं च इदं विष्णुः पवित्रकम् ॥ २३
 बृहस्पते वस्त्रयुग्मं वेदाहमुत्तरायकम् ।
 महाव्रतेन सकलान्पुष्पं चोपधयः क्षिपेत् ॥ २४

“मूर्धानम्”—इम मन्त्र से घात्री (आँखों) जटामांघी के जल से—

“मानस्तोक” - इम मन्त्र से तथा “गन्धद्वारा” इम मन्त्र से गन्धों के द्वारा

“इदमात्र” इम मन्त्र से इत्यासी पद स्थित घटों के द्वारा स्नपन करावे । ‘ऐहि-

ऐहि भगवान् विष्णो लोकानुग्रह कारक । यज्ञभामं गृहाणोर्गं वामुदेव नमोऽस्तुते”

इम मन्त्र के द्वारा आवाहन करके देवेश के कौतुक मूल का मोचन करना

चाहिए ॥ १८-१९-२० ॥ “मुञ्चामि त्वा” इसे कहते हुए आचार्य के हाथ

में बंधे हुए कौतुक सूत्र का उन्मोचन करा देना चाहिए । “हिरण्य” इम से

पाद्य देवे “अन्नो देव” इम से अन्न को समर्पित करना चाहिए । “मधु-

वाता”—इम से मधुपर्क देवे और “मयि गृह्णामि” इम से आचमन करावे ।

“अक्षममी मदन्त” इम से विद्वान् पुरुष को हर्षा और अक्षतों को फँसा देना

चाहिए ॥ २१-२२ ॥ “काण्डात्”—इत्यादि मन्त्र से निमग्न्यत करे “गन्ध-

वती” इस से गन्ध और “उन्नयामि”—इमसे माल्य तथा ‘इद विष्णुः’ इमसे

पवित्रक क्षेप करे । “वृहस्पते” इम मन्त्र से वस्त्र युग्म अर्थात् दो वस्त्र और

‘वेदाहम्’—इमसे उत्तरीय तथा “महा व्रत” इमसे ममस्त पुण्य और औपधियों

का क्षेपण करना चाहिए ॥ २३-२४ ॥

धूपं दद्याद्भूरभोति विभ्राट्सूक्तेन चाञ्जनम् ।

मुञ्जन्तोति च तिलकं दीर्घायुष्टवेति माल्यकम् ॥२५

इन्द्रच्छत्रेति छत्रं तु आदर्शं तु विराजतः ।

चामरं तु विकर्णेन भूषां रथंतरेण च ॥२६

व्यजनं वामुदेवाद्यं भुञ्जामि त्वेति पुष्पकम् ।

वेदाद्यैः संस्तुतिं कुर्याद्वरेः पुरुषसूक्ततः ॥२७

सवमेतत्समं दद्यात्पिण्डिकादां हरादिके ।

देवस्योत्थानसमये सौर्णं सूक्तमुच्चरेत् ॥२८

उत्तिष्ठेति समुत्थाप्य शय्याया मण्डपे नयेत्

शाकुनेनेव सूक्तेन देवं ग्रहारथादिना ॥२९

अतो देवेति सूक्तेन प्रतिमां पिण्डिकां तथा ।

श्रीसूक्तेन च शय्यायां विष्णोर्नं सरुलोकृतिः ॥३०

मृगराजं वृषं नागं व्यजनं कलशं तथा ।
 वैजयन्तीं तथा भेरीं दीपमित्यष्टमङ्गलम् ॥३१॥
 दर्शयेदश्वसूक्तेन पाददेशे त्रिपादिति ।
 उखां पिधानकं पात्रमम्बिकां दीघिकां ददेत् ॥३२॥
 मुसलोलूखल दद्याच्छिलां संमार्जनीं तथा ।
 तथा भोजनभाण्डानि गृहोपकरणानि च ॥३३॥
 शिरोदेशे च निद्राख्यं वस्त्ररत्नयुतं घटम् ।
 खण्डखाद्यैः पूरयित्वा शयनस्य विधिः स्मृतः ॥ ३४ ॥

“धूरमि”—ईत्यादि मन्त्र से धूप का आध्यापन करावे । “विभ्राद् सूक्त” इस से वजन समर्पित करे । “युजन्ति”—इस मन्त्र के द्वारा तिलक देवे । “दीघायुष्टवा” इस से माला समर्पित करना चाहिए ॥ २५ ॥ “इन्द्रच्छत्र”—इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए छत्र तथा “विराजतः”—इस से दर्पण एवं “त्रिकर्णेन” इस मन्त्र से भूरण भेट करे । “रथन्तरेण”—इस से व्यजन समर्पित करे । “वासुदेवाद्यैर्मुञ्चामि त्वा”—इस से पुष्प देवे । फिर भगवान् हरि की वेदादि पुरुष सूक्त के द्वारा स्तुति करनी चाहिए ॥ २६-२७ ॥ यह सभी हरादि पिण्डिकादि में ममान् रूपा से देवे । देव के उत्थापन के समय में सौपर्ण सूक्त की उच्चारण करना चाहिए ॥ २८ ॥ “उत्तिष्ठ” इस से देव का समुत्थापन कर के अर्थात् उठाकर फिर शय्या के मण्डप में ले जाना चाहिए । ग्रहणरथादि शाकुन सूक्त से देव को तथा “प्रतो देव”—इस सूक्त से प्रतिमा पिण्डिका का एव विष्णु की शय्या में श्री सूक्त के द्वारा सकली करण करे । फिर मृगराज, वृष, नाग, व्यजना, कनश, वैजयन्ती, भेरी और दीप इन आठ मङ्गल वस्तुओं को दिवावे । अश्व सूक्त के द्वारा पाद देश में—“त्रिपाद”—इस से उखा को तथा पिधानक पात्र को और दीघिका अम्बिक को देवे ॥ २९-३०-३१-३२ ॥ मुसल, उलूखल, शिला, संमार्जनी, भोजन के बरतन और गृह के अन्य उपकरण देने चाहिए ॥ ३३ ॥ शिरो भाग में निद्राख्य वस्त्र और रत्नों से युक्त घट जोकि खण्ड याचों में पूरित हो, रखे । यह देव की शयन की विधि कही गई है ॥ ३४ ॥

२६—वासुदेवादिदेवतानां सामान्यः प्रतिष्ठाविधिः

पिण्डिकास्थापनार्थं तु गर्भागारं तु सप्तधा ।
 विभजेद् ब्रह्मभागे तु प्रतिमां स्थापयेद् बुधः ॥१॥
 देवमानुषपैशाचभागेषु न कदाचन ।
 ब्रह्मभागं परित्यज्य किञ्चिदाश्रित्य चाण्डज ॥२॥
 देवमानुषभागाम्ब्या स्थाप्या यत्नात्तु पिण्डिका ।
 नपुंसकशिलायां तु रत्नन्यासं समाचरेत् ॥३॥
 नारसिंहेन हुत्वाऽथ रत्नन्यासं च तेन वै ।
 व्रीहीयत्नानि धातुंश्च लोहान्वै चन्दनादिकान् ॥४॥
 पूर्वादिनवर्गेषु न्यसेन्मध्ये ययारुचि ।
 अथ चेन्द्रादिमन्त्रैश्च गर्तं गुग्गुलुनाऽऽवृतम् ॥५॥
 रत्नन्यासविधिं कृत्वा पतिमामानभेदगुरुः ।
 सशलाकेर्दम्पुञ्जः सहदेवैः समन्वितः ॥६॥
 सवाह्यान्तश्च संस्कृत्य पञ्चगव्येन शोधयेत् ।
 प्रोक्षयेद्दम्तोयेन नदीतीर्थोदकेन च ॥७॥
 होमार्थं स्थण्डिलं कुर्यात्सकताभिः समन्ततः ।
 सार्धहस्तप्रमाणं तु चतुरस्रं सुशोभनम् ॥८॥

अथ वासुदेव आदि देवताओं की सामान्य प्रतिष्ठा की विधि के विषय में बतलाया जाता है । श्री भगवान् ने कहा—पिण्डिका की स्थापना करने के लिये गर्भागार को सात भागों में विभक्त करना चाहिए । विद्वान् पुरुष को चाहिए कि जो ब्रह्म भाग है उसमें प्रतिमा की स्थापना करे ॥ १ ॥ अन्य जो देव-मानव और पिशाचों के भाग हैं उनमें कभी भी भूल कर प्रतिमा को स्थापित न करे । हे ऋषि से जायमान । यदि ब्रह्म भाग का त्याग करके अन्य भाग में ही प्रतिमा स्थापित करे तो कुछ आश्रय लेकर ही करे । फिर अन्य भागों में देव तथा मानुष भाग में यत्न में पिण्डिका की स्थापना करना चाहिए । नपुंसक शिला हो तो उसमें नीचे रत्नों का न्यास अवश्य ही करना चाहिए । ॥ २-३ ॥ नारसिंह के द्वारा हुन करके और उसके द्वारा रत्नों का न्यास

करके फिर ब्रीहि-रत्न, धातुधनं, लोह और चन्दनादिको पूर्वादि गौ गत्तो (गड्ढों) में मध्य में रुक्मि के अनुसार रखे । इसके अनन्तर इन्द्रादि मन्त्रों के द्वारा गर्ती को गुग्गुलु से आवृत कर देवे । इस तरह रत्नों के न्यास की विधि को सम्पन्न करके गृह पति का ग्रामान्वन करे । समन्वित सहदेव और शलाका युक्त दर्भ के पुञ्जों के द्वारा बाहिर-भीतर सर्वत्र संस्कार करके फिर पञ्चजन्य से शोधन करना चाहिए । डाम के जल से और नदी तथा तीर्थ के जल से प्रोक्षण करना चाहिए ॥ ४-५-६-७ ॥ इसके उपरान्त होम करने के लिये चारों ओर सिकता से एक स्थाण्डिल की रचना करे । वह अत्यन्त सुन्दर चौकोर और डेढ़ हाथ प्रमाण वाला बनाना चाहिए ॥ ८ ॥

अष्टदिक्षु यथान्यासं कलशानपि विन्यसेत् ।
 पूर्वाद्यानष्ट वर्णेन अग्निमानीय संस्कृतम् ॥८
 त्वमग्ने द्युभिरिति च गायत्र्या समिधो हुनेत् ।
 अष्टार्णेनाष्टशतकमाज्य पूर्णा प्रदापयेत् ॥९
 शान्त्युदक ताम्रपत्रे मूलेन शतमन्त्रितम् ।
 सिञ्चेद्देवस्य तन्मूर्ध्नि श्रीश्च ते ह्यनया ऋचा ॥१०
 ब्रह्मयानेन चोद्धृत्य उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते ।
 त्वं विष्णोरिति मन्त्रेण प्रासादाभिमुख नयेत् ॥११
 शिविकायां हरिं स्वाप्य भ्रामयीत पुरादिकम् ।
 गीतवेदादिशब्दैश्च प्रासादद्वारि धारयेत् ॥१२
 स्त्रीभिर्विप्रैर्मञ्जुलाष्टघटैः संस्नापयेद्वरिम् ।
 ततो गन्धादिनाऽभ्यर्च्य मूलमन्त्रेण देशिकः ॥१३
 अतो देवेति वस्त्राद्यमष्टाङ्गाध्यं निवेद्य व ।
 स्थिरे लग्ने पिण्डिकायां देवस्य त्वेति धारयेत् ॥१४
 ॐ संलोक्यविक्रान्ताय नमस्तेऽस्तु त्रिविक्रम ।
 संस्थाप्य पिण्डिकायां तु स्थिर कुर्याद्विचक्षणः ॥१५

आठ दिशाओं में यथा न्यास करने को वा विन्यास करना चाहिए ।
 पूर्वादि आठ रत्नों में इनका न्यास आवश्यक है । इससे अनन्तर संस्कृत मन्त्र

लाकर "त्वमग्ने शुभि" इसमें और गायत्री मन्त्र ममिध्राओं की आहुतियाँ देवे ।
 अष्ट क्षर मन्त्र से अष्टोत्तरशत घृत की पूर्ण आहुतियाँ देवे ॥६॥ १०॥ सी वार
 मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित करके शान्त्युदक को ताम्र पत्र पर मिश्रित करे फिर
 'श्रीश्वते' ऋचा से देव के मस्तक पर मिचन करना चाहिए । ब्रह्मपान से 'उत्तिष्ठ
 ब्रह्मणस्यते' इससे उठाकर "त्वं विष्णोः" इत्यादि मन्त्र से प्रासाद के सम्मुख ले
 जाना चाहिए ॥११॥१२॥ इसके पश्चात् एक त्रिविक्रमायान में हरि को विराजमान
 करके नगर आदि में शोभा यात्रा द्वारा भ्रमण कराना चाहिए । गीत-वेद आदि
 की ध्वनियों से प्रासाद के द्वार पर धारण करे ॥१३॥ स्त्रियों के द्वारा तथा
 विप्रों के द्वारा मंगल के घाठ घटों से हरि का संस्नपन करावे । फिर आचार्य
 को गन्धाक्षत आदि के द्वारा मूल मन्त्र से अर्चना करनी चाहिए ॥१४॥ "अतो
 देव" इत्यादि मन्त्र में वस्त्रादि अष्टाङ्ग अर्घ्य को निवेदित करे । किसी स्थिर
 स्थान में "देवस्य त्वेति" इस मन्त्र पिण्डिका में धारण करावे ॥१५॥ "ॐ
 त्रैलोक्य विक्रान्ताय नमस्तेऽस्तु त्रिविक्रम" अर्थात् हे त्रिविक्रम ! त्रैलोक्य के
 विक्रान्त आपके लिये नमस्कार है । इस मन्त्र से पिण्डिका में संस्थापित करके
 विद्वान् को चाहिए कि स्थिर करे ॥१६॥

ध्रुवा द्यौरिति मन्त्रेण विश्वतश्चक्षुरित्यपि ।
 पञ्चगव्येन सस्नाप्य क्षात्यं गन्धोदकेन च ॥१७॥
 पूजयेत्सकलीकृत्य साङ्गं साधारणं हरिम् ।
 ध्यायेत्खं तत्र मूर्ति तु पृथ्वी तस्य च पीठिका ॥१८॥
 कल्पयेद्विग्रहं तस्य तैजसैः परमाणुभिः ।
 जीवमाव हयिष्यामि पञ्चविंशतितत्त्वगम् ॥१९॥
 चतन्यं परमानन्दं जाग्रत्स्वप्नविर्वाजितम् ।
 देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहकारवर्जितम् ॥२०॥
 ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं हृदयेषु व्यवस्थितम् ।
 हृदयात्प्रतिभावित्वे स्थिरो भव परमेश्वर ॥२१॥
 मजीवं कुरु बिम्बं त्वं सवाह्याभ्यन्तरस्थितः ।
 अंगुष्ठमात्रः पुरुषो देहोपाधिषु संस्थितः ॥२२॥

ज्योतिर्ज्ञानं परं ब्रह्म एकमेवाद्वितीयकम् ।
 सजीवीकरणं कृत्वा प्रणवेन निबोधयत् ॥२३॥
 सान्निध्यकरणं नाम हृदयं स्पृश्य वै जपेत् ।
 सूक्तं तु पौरुष ध्यायन्निदम् गुह्यमनुं जपेत् ॥२४॥

इसके अनन्तर “ध्रुमाक्षीः” इन मन्त्र में तथा “विश्वतश्चक्षुः” इन पञ्चजल्य के द्वारा स्नान कराके फिर ग धोदक में प्रक्षालन करे और सत्त्वो करण करके श्रृंगों के सहित साधारण हरि का पूजन करे वहाँ पर आकाश के मूर्ति का ध्यान करे उसकी पीठिका पृथ्वी को माने ॥१८॥ तेज के परिमाणों से उसके शरीर की कल्पना करनी चाहिए । पञ्चीम तत्वों में गमन करने वा ज्ञाव का आवाहन करेगा । परम आनन्द स्वरूप-चैतन्य-जाग्रत और स्वप्न वे रहित-देह-इन्द्रिय-मन-बुद्धि-त्राण-अहंकार से वज्रिन-ब्रह्मादि स्वप्न पयन्त हृदयों में व्यवस्थित है परमेश्वर ! अब हृदय से प्रतिमा के बिम्ब में आप स्थिर हो जाइये ॥१६॥२०॥२१॥ आप बाहिर और भीतर अपनी स्थिति बनाकर इस प्रतिमा के बिम्ब को सजीव कर दो । देह की उपाधि वालों में एक श्रृंग जितने प्रमाण वाला पुष्प स्थित रहता है ॥२२॥ ज्योति-स्वरूप ज्ञानम-परात्पर-व ॥ एक ही है और अद्वितीय है । इस प्रकार से सजीवीकरण करते फिर प्रणव के द्वारा निबोधन करना चाहिए ॥२३॥ हृदय का स्पर्श करके सन्निर्धाकरण करे और फिर पुष्प सूक्त का जप करना चाहिए । इसका ध्यान करते हुए गुह्य मन्त्र का जप करे ॥२४॥

नमस्तेऽस्तु सुरेशाय संतोषविभवात्मने ।
 ज्ञानविज्ञानरूपाय ब्रह्मातेजोनुयायिने ॥२५॥
 गुणातिक्रान्तरूपाय पुरुषाय महात्मने ।
 अक्षयाय पुराणाय धिष्णो सन्निहितो भव ॥२६॥
 यच्च ते परम तत्त्व यच्च ज्ञानमयं वपुः ।
 तत्सर्वमेकतो नातमस्मिन्देहे विबुध्यताम् ॥२७॥
 आत्मनं सन्निधीकृत्य ब्रह्मादिपरिवारकान् ।
 स्वनाम्ना स्यापयेदन्यायुधादीन्समुद्रया ॥२८॥

यावावर्पादिकं दृष्ट्वा ज्ञेयः संनिहितो हरिः ।
 नत्वा स्तुत्वा स्वार्थं च जप्त्वा चाष्टाक्षरादिकम् ॥२६॥
 चण्डप्रचण्डी द्वारस्थौ निर्गत्याभ्यर्चयेद् गुरुः ।
 अथ मण्डपमासाद्य गरुडं स्थाप्य पूजयेत् ॥३०॥
 दिगीशान्दिशि देवांश्च स्थाप्य सपूज्य देशिकः ।
 विष्वक्सेनं तु मस्थाप्य शंखचक्रादि पूजयेत् ॥३१॥
 सर्वपार्षदकेभ्यश्च बलिं भूतेभ्यः अर्पयेत् ।
 ग्रामवस्त्रसुवर्णादि गुग्मे दक्षिणां ददेत् ॥३२॥
 यागोपयोगिद्रव्याद्यमाचार्याय नरोऽर्पयेत् ।
 आचार्यं दक्षिणार्घं तु ऋत्विग्यो दक्षिणां ददेत् ॥३३॥
 अन्येभ्यो दक्षिणां दद्याद् भोजयेद् ब्राह्मणांस्ततः ।
 अवारितान्फलं दद्याद्यज्ञमाप्ताय च गुरुः ॥३४॥
 विष्णुं नयेत्प्रतिष्ठाता चाऽऽत्मना सकलं कुलम् ।
 सर्वेषामेव देवानामेव साधारणो विधिः ॥३५॥
 मूलमन्त्राः पृथक्तेषां शेषं कार्यं समानकम् ॥३६॥

मन्त्रोप और विभव के स्वरूप वाले देवों के स्वामी तथा ज्ञान और
 ज्ञान के रूप में गुह्य और ब्रह्म तेज के अनुयायी आपके लिये मेरा नमस्कार
 । माय के गुणों से परे रूप वाले—महान् आत्मा पुरुष एवं क्षय से रहित
 और परम पुराण पुरुष के लिये मेरा नमस्कार है । हे विष्णुदेव ! आप मेरे
 निहित हो जाट्ये ॥ २५—२६ ॥ जो भी आपका परम तत्त्व है और जो भी
 आपका ज्ञानमय शरीर है वह सब एक ही स्थल पर प्राप्त किया गया है और
 ग देह में वर्तमान है—ऐसा जान लो ॥ २७ ॥ इस तरह देव के सन्निधान
 । अपने आपको बरह्म ब्रह्मा आदि जो परिवार वाले हैं उनको भी अपने नाम
 । स्थापित करना चाहिए । मुद्रा के साथ अन्य आयुध आदि की स्थापना करे
 । २८ ॥ यात्रा वर्षा आदि को देख कर हरि भगवान् को अपने सन्निहित ही
 । अभिमान चाहिए । प्रणाम करने और स्तव आदि के द्वारा स्तुति करने तथा
 । आक्षर आदि मन्त्रों का जो जा करने द्वारा पर स्थित चण्ड प्रचण्ड नामों की

बाहर निकल कर गुरु की प्रार्थना करनी चाहिए । इसके पश्चात् मण्डप में
 घाकर गरुड़ की स्थापना करे और उगला पूजन करना चाहिए ॥ २९-३० ॥
 आचार्य से दिशाओं में दिक्गालो को और देवों को स्थापित करके उनका पूजन
 करना चाहिए । विष्वमेन की स्थापना करके शंख चक्र आदि का प्रर्चन करे
 ॥ ३१ ॥ समस्त पापेंद और भूतो के लिये बलि प्रर्पित करे । याग-वस्त्र
 और सुवर्ण आदि गुरु की भेंट करे तथा गुरु को दक्षिणा देवे ॥ ३२ ॥ याग
 के उपयोगी द्रव्य आदि आचार्य के लिये मनुष्य को प्रर्पित करना चाहिए ।
 जो दक्षिणा आचार्य को देवे उगमे घाधी दक्षिणा श्रुतिव्रजों को देनी चाहिए
 ॥ ३३ ॥ अन्य भी जो ब्राह्मण आदि हो उन्हें दक्षिणा देवे और फिर ब्राह्मणों
 को अनिवारित रूप से भोजन करावे । गुरु यजमान को पल देवे । इस तरह
 प्रतिष्ठा करने वाला अपने समस्त कुल को विष्णु लोक में ले जाता है । यही
 समस्त देवों की प्रतिष्ठा की सामान्य विधि है । केवल अन्य देवों के मूल मन्त्र
 पृथक् होते हैं शेष समान ही कार्य विधि है ॥ ३४ से ३६ ॥



२८-कूपवापीतडागप्रतिष्ठाविधिः

कूपवापीतडागानां प्रतिष्ठां वच्मि तां शृणु ।
 जलरूपेण हि हरिः सोमो वरुण उत्तमः ॥१॥
 अग्नीषोममयं विश्वं विष्णुरापस्तु कारणम् ।
 हैमं रोप्यं रत्नजं वा वरुणं कारयेन्नरः ॥२॥
 द्विभुजं हंसपृष्ठस्थं दक्षिणेनाभयप्रदम् ।
 वामेन नागपार्श्वं तु नदीनागादिसंयुतम् ॥३॥
 यागमण्डपमध्ये स्याद्देविका कुण्डमण्डिता ।
 तारणं वारुणं कुम्भं न्यसेच्च करकान्वितम् ॥४॥
 भद्रके चार्धचन्द्रे वा स्वस्तिके द्वारि कुम्भकान् ।
 अन्याधानं चापि कुण्डे कृत्वा पूर्णा प्रदापयेत् ॥५॥
 वरुणं स्नानपीठे तु ये ते शतेति संस्पृशेत् ।
 वृतेनाभ्यञ्जयेत्पश्चान्मूलमन्त्रेण देशिकः ॥६॥

शं नो देवीति प्रक्षाल्य शुद्धवत्या शिवोदकैः ।
 अग्निवासयेदष्टकुम्भान्सामुद्रं पूर्वकुम्भके ॥७॥
 गाङ्गमग्नौ वर्षतोयं दक्षे रक्षस्तु नैर्जरम् ।
 नदीतोय पश्चिमे तु वायव्ये तु नदीदकम् ॥८॥
 औद्भिज्जं चोत्तरे स्थाप्यमैशान्यां तोर्यसंभवम् ।
 अलाभे तु नदीतोयं यासां राजेति मन्त्रयेत् ॥९॥
 देवं निर्मार्ज्यं निर्मय्य दुर्मित्तियेति विचक्षणः ।
 नेत्र चोन्मोलयेच्चित्तं तच्चधुर्मधुरत्तयैः ॥१०॥

श्री भगवान् ने कहा - अब मैं कूपा-वावडी और तालाव आदि की प्रतिष्ठा की विधि के विषय में बतलाता हूँ । उसको आप श्रवण करें । जल के रूप में हरि भगवान् सोम और उत्तम वरुण हैं ॥ १ ॥ यह विश्व अग्नि-ष्टोममय है और जल स्वरूप विष्णु वारण हैं । मनु का चाहिए कि वह सृष्टि निमित्त-चाँदी का अथवा रत्नों का वरुण निमित्त करावे ॥ २ ॥ वरुण की प्रतिमा जो बनवाई जावे वह दो भुजा वाली होनी चाहिए । हंस की पीठ पर स्थित-दाहिने हाथ से अभय का दान करते हुए तथा बाँये हाथ से नाग पाश को ग्रहण किये हुए वरुण का स्वरूप बनवावे । उन वरुण देव के साथ में नहीं और नाग आदि मभी होवें ॥ ३ ॥ याग मण्डप के मध्य में कुण्ड से विभूषित वेदिका होनी चाहिए । वहाँ पर करकों से युक्त वारुण कुम्भ और तोरण का न्याम करे ॥ ४ ॥ भद्रक में और अर्ध चन्द्र में अथवा स्वस्तिक में द्वार पर कुम्भों का न्याम करना चाहिए और कुण्ड में अग्नि का आधान करके पूर्ण को प्रदापित करे ॥ ५ ॥ स्नान पीठ में वरुण की "ये ते जत्" इस मन्त्र से संस्पर्श करना चाहिए । इसके पश्चात् देशिक अर्थात् आचार्य को मूल मन्त्र में घृत के द्वारा अभ्यञ्जन करना चाहिए ॥ ६ ॥ "शंनो देवी" इस मन्त्र से प्रक्षालन करके शिव एव शुद्ध जलों से शुद्ध बनी इससे प्रक्षालन करे । फिर आठ कुम्भों को अग्निवासित करे । पूर्व कुम्भ में गङ्गाजल, अग्निकोण में वर्षा का जल, दक्षिण में भरने का जल, पश्चिम में नदी का जल, वायव्य कोण में तीर्थों का जल स्थापित करे । लाभ न होने पर "नदीतोयं यासां राज" इस

मन्त्र से अभिमन्त्रित करे ॥ ७-८-६ ॥ विद्वान् पुरुष को “दुर्मन्त्रिय” इस मन्त्र से देव निर्माज्जन करके भिमन्त्रण करे । मधुगव्य से चित्रं तच्चक्षु मे नेत्रों को दम्भीलित करे ॥ १० ॥

ज्योतिः संपूजयेद्दम्यां गुरवे गामयार्पयेत् ।
 समुद्रज्येष्ठेत्यभिपिष्वेद्वरुण पूर्वकुम्भतः ॥११
 समुद्र गच्छ गाङ्गेयात्सोमो धेन्विति वर्षकात् ।
 देवीरापो निर्झराद्भिनन्दाद्भिः पञ्चनद्यतः ॥१२
 उद्भिज्जाद्भिश्चोद्भिदेन पावमान्याऽथ तीर्थकैः ।
 आपो हि ष्ठा पञ्चगव्याद्विरण्यवर्णति स्वर्णजात् ॥१३
 आपो अस्मेति वर्षोन्थैर्व्याहृत्या वृषसंभवेः ।
 वरुणं च तडागोत्थैर्वरुणाद्भिस्तु वाग्यतः ॥१४
 आपो देवीनि गिरिजैरेकाशीतिषट्शततः ।
 स्नापयेद्वरुणस्येति त्वं नो वरुण चार्पवम् ॥१५
 व्याहृत्या मधुपर्कं तु बृहस्पतेति वस्त्रकम् ।
 वरुणेति पवित्रं तु प्रणवेनोत्तरीयकम् ॥१६

ज्योति का भली भाँति पूजन करना चाहिए और सुवर्ण की गौ गुरु को अर्पित करे । “समुद्र ज्येष्ठ” इस मन्त्र से पूर्व में स्थित कुम्भ से वरुण का अभिपिष्वन करना चाहिए ॥ ११ ॥ ‘समुद्र गच्छ’—इसके द्वारा गङ्गा के जल से, ‘सोमो धेन्वा’—रस के द्वारा वर्षा के जल से, ‘देवीरापो’ इसके द्वारा निर्झर के जल से, ‘पञ्च नद्यतः’ इसके द्वारा नद के जल से, ‘उद्भि-देन’—इससे और उद्भिज्ज जल से, ‘पाव मान्या’—इसके द्वारा तीर्थों के जल से, ‘आपो हिष्ठा’—इसके द्वारा पञ्चगव्य से, ‘हिरण्य वर्णा’—इत्यादि मन्त्र के द्वारा स्वर्ण जल से, ‘आपो अस्म’—इससे वर्षा से उत्पन्न जल से, व्याहृति के द्वारा कुए के जल से, वाग्यत (मीन) होते हुए ‘वरुणाद्भिः’ इससे तानाब के जल से वरुण को स्नान करावे । फिर ‘आपो देवी’— इस मन्त्र के द्वारा गिरिज इवयासी घटो से स्नान करावे । इसके पश्चात् ‘वरुणस्य’ इत्यादि मन्त्र के द्वारा हे वरुण ! आप हमारा अर्ध ग्रहण करो— यह कहते हुए

अर्घं देवे ॥ १२-१३-१४-१५ ॥ फिर व्याहृति से मधुपर्क—“बृहस्पति”
इम से वस्त्र—‘वरुण’ इम से पवित्र और प्रणव मे उत्तगीय देना चाहिए ॥ १६ ॥

यद्वाहणेन पुष्पादि प्रदद्याद्वरुणाय तु ।
चामरं दपणं छलं व्यजनं वैजयन्तिकाम् ॥ १७
मूलेनोत्तिष्ठेत्युत्थाप्य तां रात्रिमधिवासयेत् ।
वरुणं वेति मन्त्रिद्यं यद्वाहणेन पूजयेत् ॥ १८
सजीवीकरण मूलात्पुनर्गन्धादिना यजेत् :
मण्डले पूर्ववत्प्राच्यं कुण्डेषु समिदादिकम् ॥ १९
वेदादिमन्त्रैर्गङ्गाद्याश्चतस्रो धेनवो दुहेत् ।
दिक्ष्वथो वै यवचरुं ततः संस्थाप्य होमयेत् ॥ २०
व्याहृत्या वाऽथ गायत्र्यामूलेनाऽऽमन्त्रयेत्तथा ।
मूर्धायि प्रजापतये ह्यीः स्वाहा चान्तकनिग्रहाय ॥ २१
तस्यै पृथिव्यै देहधृत्यै इह स्वाधृतये ततः ।
इह रत्यै चेह रमत्या उग्रो भीमश्च रौद्रकः ॥ २२
विष्णुश्च वरुणो धाता रायम्पोपो महेन्द्रकः ।
अग्निर्यमो नैऋतोऽथ वरुणो वायुरेव च ॥ २३
कुवेर ईशोऽनन्तोऽथ ब्रह्मा राजा जलेश्वरः ।
तस्मै स्वाहेद विष्णुश्च तद्विप्रासेनि होमयेत् ॥ २४
सोमो धेन्विति षड्भुत्वा इमं मेति च होमयेत् ।
आपो हि षेति निमृभिरिमा रुद्रेति होमयेत् ॥ २५

इमके उपरान्त ‘यद्वाहणेन’—इममे वरुण देव के लिये पुष्पादि देवे ।

चामर, छत्र, व्यजन और वैजयन्ति का समर्पित करे ॥ १७ ॥ उत्तिष्ठ’—इस
मूल के द्वारा उठा कर उम रात्रि में अधिवाम करना चाहिए । ‘वरुणं वा’—
इम मे मन्त्रिन्ध करे और ‘यद्वाहणेन’—इम मे पूजन करे ॥ १८ ॥ फिर मूल
मन्त्र मे सजीवी करण करे और फिर गन्धाभक्त के द्वारा पूजन करना चाहिए ।
मण्डल में पूर्व की भूमि अर्चन करके कुण्डों में सामिदादि रखवे ॥ १९ ॥
वेदादि मन्त्रों मे गङ्गादि चार धेनुओं का दिशाधो मे दोहन करे । इसके

पश्चात् तब चरु को वहाँ संस्थापित कर होम करना चाहिए ॥ २० ॥ व्याहृति से गायत्री से अथवा मूल मन्त्र से ग्रामन्त्रण करे । अब होम करने की रीति मन्त्रों का विधान बतलाया जाता है -सूर्याय प्रजापतयेद्यौ स्वाहा और अन्तरिक्षाया स्वाहा, तस्यै पृथिव्यै देह धृत्यै स्वाहा, इह स्वधृतये स्वाहा, उग्र-भीम और रौद्रक-विष्णु-वरुण, धाता, रायस्योप, महेंद्रक, अग्नि, यम, नैऋत, वरुण, वायु, कुवेर, ईश, अनन्त, ब्रह्मा, राजा और जनों के स्वामी उसके लिये यह स्वाहा है । 'विष्णु-च तद्विप्रास' इस मन्त्र से होम करना चाहिए ॥ २१-२२-२३-२४ ॥ "सोमो धुन्वा"—इससे छैं बार आहूतियाँ देकर "इम ये" इस से होम करना चाहिए ॥ २५ ॥

दशदिक्षु वर्णि दद्याद्गन्धपुष्पादिनाऽर्चयेत् ।

प्रतिमां तु समुत्थाप्य मण्डले विन्यसेद् बुधः ॥२६॥

पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्हैमपुष्पादिभिः क्रमात् ।

जलाशयांस्तु दिग्भागे वितस्तिद्वयसमितान् ॥ ७

कृत्वाऽष्टौ स्थण्डिलात्रम्यान्सैकतान्देशिकोत्तमः ।

वरुणस्येति मन्त्रेण आज्यमष्टशतं ततः ॥२७॥

नरुं यवमयं हुत्वा शान्तितोयं समाहरेत् ।

सेचयेद्गन्धैर्देयं तु सजीवकरणं चरेत् ॥२८॥

प्यायेत्तु वरुणं मुक्तं गौर्या नदनदीगणः ।

ॐ वरुणाय ततोऽभ्यर्च्यं ततः सान्निध्यमाचरेत् । ३०

उत्थाप्य नागपृष्ठाद्यैर्भ्रामयेत्तोः समञ्जलैः ।

आपो द्विष्टंति च क्षिपेत्त्रिमध्वाक्ते घटे जले ॥३१॥

जलाशये मध्यगतं मुमुक्षु विनिवेशयेत् ।

रनात्वा दद्यादेष्टु वरुणं मृष्टिं ब्रह्माण्डसंज्ञिकाम् ॥३२॥

अग्निघोजेन संदग्ध्वा ह्य तद्भस्म प्लावयेन्नरः ।

गवामाश्वामयं लोकं दद्यादेष्टु जलेश्वरम् ॥३३॥

तापभक्ष्यस्थितं देवं ततो यूपं निवेशयेत् ।

चतुरस्रमथाष्टास्रं चतुर्लया मुकीर्तितम् ॥३४॥

आराध्य देवतालिङ्गं दशहस्तु तु कूपके ।

यूपं यज्ञी (जि) यवृक्षोत्थं मूले हैम फलं न्यसेत् ॥३५

इसके अनन्तर दशों दिशाओं में बलि देनी चाहिए और गन्धाक्षत पुष्पादि के द्वारा अर्चन क ना चाहिए । विद्वान् पूजक को उचित है कि प्रतिमा को उठाकर फिर मण्डन में उसका विन्यास करे ॥ २६ ॥ फिर वहाँ पर गन्धाक्षत पुष्प आदि पूजोपचारों से तथा हैम पुष्पादि मे क्रम से पूजन करे । दो वालिश्च संमित जलाशयों को दिग्भाग मे करके श्रेष्ठ आचार्य को चाहिए कि वह अति सुन्दर मिकता के आठ स्थण्डिलों की रचना करे । फिर 'वरुणस्य' इत्यादि मन्त्र के द्वारा अष्टोत्तर शत बार घृत-चरु जो यवमय हो उसका हवन करके शान्ति तोय का समाहरण करे । फिर सेचन करे, मस्तक पर देना चाहिए और फिर मजीवकरण करे ॥ २७-२८-२९ ॥ गौरी और नद तथा नदी गणों के सहित वरुण की आराधना करे । फिर "ॐ वरुणाय नमः"— इस से वरुणाक का अर्घ्यर्चन करके साग्निध्य का समाचरण करना चाहिए ॥ ३० ॥ फिर नाग पृष्ठ से उठाकर भिर समञ्जल उनसे भ्रामण करे । "आपोदिश" इत्यादि मन्त्रों के द्वारा तीन मधुओं से अक्त घट के जल में क्षेपण करना चाहिए ॥ ३१ ॥ जलाशय के मध्य मे गुप्त रूप से विनिवेशित कर देना चाहिए । फिर स्नान करके और वरुण का ध्यान कर ब्रह्माण्ड संज्ञा वाली इस मृष्टि को अग्नि बीज मे भली भाँति दग्ध करके फिर मानव को चाहिए कि उसकी भस्म को प्लावित कर देवे । वहाँ पर आपोमय समस्त लोह जलेश्वर का ध्यान करे ॥ ३२-३३ ॥ जल के मध्य में जहाँ देव स्थिति है वहाँ एक यूप को निवेशित करे । वह चौकोर अथवा आठ कोने वाला हो किम्वा सुन्दर वस्तुल हो ऐसा यूप निवेशित करे ॥ ३४ ॥ दवता के विन्दु दण्ड को कूप में आराधित करके यज्ञिय वृक्षोत्थ यूप के मूल में मुषण के फल का न्यास करे ॥ ३५ ॥

वाप्यां पञ्चदशकरं पुष्करिण्यां तु त्रिंशकम् ।

तडागे पञ्चविंशत्यं जलमध्ये निवेशयेत् ॥३६

यागमण्डपाङ्गणे वा यूप ब्रह्मोत्तिमन्धतः ।
 स्थाप्य तद्वेष्टयेद्वस्त्रं यूपोपरि पताकिकाम् ॥३७॥
 तदभ्यर्च्य च गन्धार्घ्यजंगच्छान्तिं समानरेत् ।
 दक्षिणां गुरवे दद्याद्भूगोहेमाम्बुपात्रकम् ॥३८॥
 द्विजेभ्यो दक्षिणा देया आगतान्भोजयेत्तथा ।
 आब्रह्म स्तम्बपयन्त ये केचित्सलिलार्धिनः ॥३९॥
 ते तृप्तिमुपगच्छन्तु तडागस्थेन वारिणा ।
 तोयमुत्सर्जयेदेव पञ्चगव्यं विनिक्षिपेत् ॥४०॥
 आपो हि ष्टेति निसृभिः शान्तिर्तोयं द्विजैः कृतम् ।
 तीर्थं तोयं क्षिपेत्पुण्यं गोकुल चार्पयेद् द्विजान् ॥४१॥
 अनिवारितमन्नाद्यं सर्वजग्यं च कारयेत् ।
 अश्वमेधसहस्राणां सहस्रं यः समाचरेत् ॥४२॥
 एकाहं स्यापयेत्तोयं तत्पुण्यमयुनायुतम् ।
 विमाने मोदते स्वर्गे नरकं न स गच्छति ॥४३॥
 गवादि पिवते यस्मात्तस्मात्कर्तुर्न पातकम् ।
 तोयदानात्मवर्दानफलं प्राप्य दिवं व्रजेत् ॥४४॥

बावड़ी में पन्द्रह हाथ का पुष्कगिणी में बीस हाथ का तलाव में पचीस हाथ का जल के मध्य में निवेष्टित करे ॥ ३६ ॥ अथवा याग मण्डप के अग्नि में “यूप ब्रह्म” इग मन्त्र से स्थापित करके उसके ऊपर वस्त्रों से पताका को वेष्टित करे ॥ ३७ ॥ उगवा गन्धाक्षत आदि से अर्चन करके जगत् की शान्ति का समानरण करे । उगके अग्निर भूमि, गौ, हेम श्रीर जल पात्र की दक्षिणा गुरु को देनी चाहिए ॥ ३८ ॥ द्विजों को भी दक्षिणा देनी चाहिए । जो समागत हो उनको भोजन करावे । जो भी आब्रह्म स्तम्ब पयन्त जल के चाहने वाले हों वे तडाग में रहने वाले जल में तृप्ति को प्राप्त होंगे । इग विधि से जल को निकाले और उगमें पञ्चगव्य का निक्षेप करे ॥ ३९-४० ॥ “आपोहिष्टा मयो भुवः” इग मन्त्र से तीन बार द्विजों के द्वारा शान्ति तोय करके फिर पवित्र तीर्थ के जल का शेष करना चाहिए । उगे फिर गायो वे समूह के विषे

और द्विजों के लिये अर्पित करना चाहिए । ४१ ॥ अग्निवारिण अग्नादि को समस्त जनों के लिये कर दे । ऐसा जो करता है वह एक सहस्र अश्वमेध किया करता है ॥ ४२ ॥ एक दिन उम तोय का स्थापित करे तो वह अयुतायुत पुण्य देता है । वह मनुष्य विमान में बैठ कर परम प्रमदना प्राप्त किया करता है और वह नरक में नहीं जाता है ॥ ४३ ॥ गो आदि जिमसे जल का पान करते हैं उससे कर्त्ता को कोई भी पानक नहीं होता है । तोय दान से ही समस्त वस्तुओं के दान का फल प्राप्त करके दिव्य लोक जाता है ॥ ४४ ॥



२६-सभादिस्थाप विधि:

सभादिस्थापन वक्ष्ये तथैतेषां प्रवर्तन्म् ।
 भूमौ परोक्षिनायां च वास्तुयागं समाचरेत् ॥१
 स्वेच्छया तु समां कृत्वा स्वेच्छया स्थापयेत्सुगम् ।
 चतुष्पथे च ग्रामादौ न शून्ये काग्येत्तन्नाम् ॥२
 निर्मलः कुलमुद्धृत्य कर्त्ता स्वर्गे विमोदते ।
 अनेन विधिना कुर्यात्सप्तभौमं हरेर्गृहम् ॥३
 यथा राज्ञां तथाऽन्येषां पूर्वाद्याश्च ध्वजादयः ।
 कोणभुजान्वर्जयित्वा चतुःशालं तु वर्जयेत् ॥४
 त्रिशाल वा द्विशाल वा एकशालमथापि वा ।
 व्ययाधिकं न कुर्वीत व्ययदोषकर हि तन् ॥५
 आयाधिके भवेत्पीडा तस्मात्कुर्यात्समं द्वयम् ।
 करराशिं समस्तं तु कुर्याद्विसुगणं गुरुः ॥६
 सप्तार्चिषा कृते भागे गर्गविद्याविबक्षणः ।
 अष्टत्रा भाजिते तस्मिन्वच्छेपं स व्ययो मतः ॥७
 अथवा करराशिं तु हन्यात्सप्तार्चिषा बुधः ।
 वसुभिः संहृते भागे ध्वजादि पारिकल्पयेत् ॥८

श्री भगवान् ने कहा—यव मैं ममा आदि की स्थापना करने की विधि के विषय में बतलाऊँगा तथा इनका प्रवर्तन कहूँगा । पहिले भूमि की परीक्षण करे और फिर उसमे वास्तुयाग का सम चरण करना चाहिए ॥ १ ॥ अपनी इच्छा से सभा की रचना करके इगमे देवगण की स्थापना करे । चौराहे पर और ग्राम आदि में तथा शून्य स्थल में सभा की रचना नहीं करानी चाहिए ॥ २ ॥ सभा की रचना करने वाला निर्मल होते हुए अपने कुल का उद्धार करके स्वर्ग में आनन्द प्राप्त करता है । इस निम्नलिखित विधि से सप्त भीम हरि का गृह बनवाना चाहिए ॥ ३ ॥ जिस प्रकार से राजाओं का होता है उसी प्रकार से भूर्वाय ध्वजा आदि होते हैं । कोण भुजों को त्याग करके चतुःशाल को भी वर्जित करना चाहिए ॥ ४ ॥ त्रिशाल-द्विशाल अथवा एक शाल और अधिक व्यय वाला नहीं करे क्योंकि वह व्यय दोष करने वाला होता है ॥ ५ ॥ ग्राम के अधिक होने पर भी पीडा होती है इससे दोनों को सम ही करना चाहिए । गुरु को चाहिए कि जो करकी समस्त राशि हो उसे अठगुना करे ॥ ६ ॥ गर्ग विद्या के पण्डित को चाहिए सप्तार्चि से भाग देवे और उस भाग के देने पर अर्थात् अष्टधा विभाजित करने पर जो शेष रहे वह ही व्यय सम्मन होता है ॥ ७ ॥ अथवा बु को उचित है कि करकी राशि को सप्तार्चि से हनन करे और आठ से भाग के संहृत होने पर ध्वजादि की परि-कल्पना करे ॥ ८ ॥

ध्वजो धूम्रस्तथा सिंहः श्वा वृषगु खरो गजः ।

द्वाङ्क्षश्चेति क्रमैर्णवमायाष्टकमुदाहृतम् ॥८॥

त्रिशालकत्रय शस्तं सर्वभेदविवर्जितम् ।

याम्यां परगृहोपेतं द्विशालं शस्यते सदा ॥९॥

याम्ये शालकशालं तु प्रत्यवशालमथापि वा ।

एकशालद्वयं शस्तं शेषास्त्यग्ये भयावहाः ॥१०॥

चतुःशाल मदा शस्तं सर्वदोषविवर्जितम् ।

एकभीमादि कुर्वीत भवनं पञ्चभीमकम् ॥११॥

ॐ नन्दे नन्दय वासिष्ठे वसुभिः प्रजया सह ।
 जये भार्गवदायादे प्रजानां विजयावहे ॥१७॥
 पूर्णेऽङ्गिरसदायादे पूर्णकामं कुरुव माम् ।
 भद्रे काश्यपदायादे कुरु भद्रा मतिं मम ॥१८॥
 सर्वबीजीपधीयुक्ते सर्वरत्नोपधीवृते ।
 रुचिरे नन्दने नन्दे वासिष्ठे रम्यतामिह ॥१९॥
 प्रजापतिसुते देवि चतुरस्रे महीयसि ।
 सुभगे सुव्रते देवि गृहे काश्यपि रम्यताम् ॥२०॥
 पूजिते परमाचार्यैर्गन्धमाल्यैरलंकृते ।
 भवभूतिकरि देवि गृहे भार्गवि रम्यताम् ॥२१॥
 अव्यक्तेऽव्याकृते पूर्णे मुनेरङ्गिरसः सुते ।
 इष्टके त्वं प्रयच्छेष्टं प्रतिष्ठां कारयाम्यहम् ॥२२॥
 देशस्वामिपुरस्वामिगृहस्वामिपरिगृह्ये हे ।
 मनुष्यधनहरस्त्यश्वपशुवृद्धिकरी भव ॥२३॥

वह मन्त्र यह है — 'ॐ नन्दे नन्दय वासिष्ठे वसुभिः' प्रजया सह ।
 जये भार्गव दायादे प्रजानां विजयावहे । अर्थात् हे नन्दे ! हे वासिष्ठे ! वसुधैव
 कुतश्चित् प्रजा के साथ प्रसन्न करो । 'जये भार्गव दायादे ! प्रजाओं पर विजय
 प्राप्त करें ॥ १७ ॥ हे पूर्ण ! हे अङ्गिरस दायादे ! मुझको पूर्ण कामनाओं
 वाला बना दो । हे भद्रे ! हे काश्यप दायादे ! मेरी शुभ मति कर दो
 ॥ १८ ॥ हे ममस्त बीजीपधीयों से युक्ते ! हे सर्व रत्नोपधि वृते ! हे
 रुचिरे ! हे नन्दने ! हे नन्दे ! हे वासिष्ठे ! यहाँ पर तुम रमण करो ॥ १९ ॥
 हे प्रजापति सुते ! हे देवि ! हे चतुरस्रे ! हे महीयसि ! हे सुभगे ! हे
 सुव्रते ! हे काश्यपि ! अ.प. घर में रमण करो ॥ २० ॥ हे अव्यक्ते ! हे
 परम आचार्यों के द्वारा पूजिते ! हे गन्ध और मालाओं के द्वारा अलंकृते !
 हे भवभूति करि ! हे भार्गव ! हे देवि ! घर में रमण करो ॥ २१ ॥ हे
 अव्याकृते ! हे पूर्ण ! हे अङ्गिरस मुनि की सुते ! हे इष्टके ! तुम मेरी अमीष्ट
 हो, मैं प्रतिष्ठा करता हूँ ॥ २२ ॥ हे देश स्वामी, पुरस्वामी और गृह स्वामी

के परिग्रहे । धान मेरे मनुष्य, घन, हस्ती, अश्व और पशुओं की वृद्धि करने वाली होजाओ ॥ २३ ॥ २३ ॥



३०-देवतासामान्यप्रतिष्ठा

समुदायप्रतिष्ठां च वक्ष्ये सा वामुदेवक्षत् ।
 आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वेऽश्विनौ तथा ॥१॥
 ऋषयश्च तथा सर्वे वक्ष्ये तेषां विनैपकम् ।
 यस्य देवस्य यन्नाम तस्याऽऽद्यं गृह्य चान्नरम् ॥२॥
 मात्राभिर्मदयित्वा तु दोषोऽप्यङ्गानि नैदयेत् ।
 प्रयत्नं कल्पयेद् बीजं सुविन्दुं (न्दु) प्रणवान्वितम् ॥३॥
 सर्वेषां मूलमन्त्रेण पूजनं स्थापनं तथा ।
 नियमव्रतकृच्छ्राणां मठसंक्रमवेदमनाम् ॥४॥
 मासोपवासं द्वादश्या इत्यादि स्थापनं वदे ।
 शिलां पूर्णवटं कांक्ष्यं संभारं स्थापयेत्ततः ॥५॥
 ब्रह्मकूर्चं समाहृत्य श्रपेद्यवमयं चरुम् ।
 क्षीरेण कपिलायान्तु तद्विष्णारि त साधकः ॥६॥
 प्रणवेनाभिघार्यैव दर्भा संघटयेत्ततः ।
 साधयित्वाऽब्रतायां विष्णुमभ्यर्च्य होमयेत् ॥७॥
 व्याहृत्या चैव गाथया तद्विप्रासेति होमयेत् ।
 विश्वतश्चक्षुर्वेदाद्यं भूर्भुवः तथैव च ॥८॥
 सूर्याय प्रजापतये अन्तरिक्षाय होमयेत् ।
 द्यौः स्वाहा ब्रह्मणे स्वाहा पृथिवी महाराजकः ॥९॥
 तस्मै सोमं च राजानमिन्द्राय होममाचरेत् ।
 एवं हुत्वा चरोर्भागान्दद्याद्भिर्भनिमादरान् ॥१०॥

प्रथम देवता सामान्य प्रतिष्ठा का वर्णन किया जाता है । श्री भगवान् ने कहा—समुदाय की प्रतिष्ठा बतवाऊंगा । वह समुदाय प्रतिष्ठा वामुदेव की

भांति हानी है । आदित्य, वसुगण, रुद्र, साध्य, विश्वे देवा, अश्विनो कुमार, ऋषि वर्ग, समस्त की विशेषता ब्रतलाऊंगा । जिस देव का जो नाम हो उस नाम का पहिला अक्षर ग्रहण कर लो ॥ १-२ ॥ मात्राओं से भेद करके दीर्घ अक्षरों को भेद युक्त करना चाहिए । प्रथम को बिन्दु से युक्त एवं प्रणव के सहित बीज की कल्पना करे । ३ ॥ समस्त नियम ब्रत कृच्छ्रों का तथा मठ, संक्रम वेदों का मूल मन्त्र से स्थापन तथा पूजन, द्वादश्या इत्यादि मासोपवास एवं स्थापन बताता है । इसके अन्तर शिला, पूर्णचंद्र, कास्य और संभार को स्थापित करे ॥ ४-५ ॥ ब्रह्मकूर्च लाकर यवमय चरु का श्रपन करे और वह कपिला गौ के क्षीर से 'तद्विष्णो' इत्यादि मन्त्र के द्वारा साधक को करना चाहिए ॥ ६ ॥ प्रणव के द्वारा अभिधारण करके ही दर्वी से संघटन करे । साधयित करके उतार कर इसके अनन्तर विष्णु की अर्घ्यार्चना करके होम करना चाहिए ॥ ७ ॥ व्याहृति से गायत्री मन्त्र से तथा "तद्विप्रास"—इसमे होम करे । विश्व तक्षभुर्वदाद्य के द्वारा भू-अग्नि, सूर्य, प्रजापति और अन्तरिक्ष के लिए होम करना चाहिए । द्यौः स्वाहा, ब्रह्मणे स्वाहा, पृथिवी महाराजक के लिये-सोम और राजा को इन्द्राद्यों के द्वारा होम का आचरण करे । इस प्रकार से वह के भागों का हवन करके आदर से दिग्गति देवे ॥ ८-९-१० ॥

समिधोऽऽष्टशतं हुत्वा पालाशा (शी) श्चाऽऽज्यहोमकम् ।

कुर्यात्पुरुषसूक्तेन इरावती तिलाष्टकम् ॥११

हुत्वा तु ब्रह्मविष्ण्वीशदेवानामनुयायिनाम् ।

ग्रहाणामाहुतीहुत्वा लोकेशानामथो पुनः ॥१२

पर्वतानी नदानां च समुद्राणां तथाऽऽहुतीः ।

हुत्वा च व्याहृतीर्दद्यात्सुवपूर्णाहुतिप्रथमम् ॥१३

वोषहन्तेन मन्त्रेण यैष्णवेन पितामह ।

पञ्चगव्यं चरुं प्राश्य दत्त्वाऽऽचार्याय दक्षिणाम् ॥१४

तिलपात्रं हेमयुक्तं सवर्गं गामलकुन्ताम् ।

प्रीयतां भगवान्विष्णुमृत्युरमृत्युजैश्च व्रतं बुधः ॥१५

मासोपवासादेरन्यां प्रतिष्ठां वच्मि पूर्वतः ।

यज्ञेनाऽऽतोष्य देवेशं श्रपयेद्द्विष्णवं चरुम् ॥१६॥

तिलतण्डुलनीवारं श्यामाकरं वा यवं ।

आज्येनाऽऽचार्यं चोत्तार्यं हामयेन्मूर्तिमन्त्रकं ॥१७॥

विष्णवादीनां मासपानां तदन्ते होमयेत्पुनः ॥१८॥

ॐ श्रोविष्णवे स्वाहा । ॐ विष्णवे विभूषणाय स्वाहा ।

ॐ विष्णवे शिविविष्टाय स्वाहा । ॐ नरसिंहाय स्वाहा ।

ॐ पुरुषोत्तमाय स्वाहा ॥

१६

द्वादशाश्वरयसमिधो होमयेद् धृतसंस्तुताः ।

विष्णो रराट्मन्त्रेण ततो द्वादश चाऽऽहुतोः ॥२०॥

अष्टोत्तर गत पलाश की समिधाओं को और धृत को लेकर पुष्प मूक्त से इरावती तिलाष्टक ॐ हवन करे ॥ ११ ॥ ब्रह्मा-विष्णु, ईश और अनुयायी देवों के लिये आहुतियाँ देवे । ग्रहों को, लोकेश्वरों को, पर्वतों को, नदियों को, समुद्रों को आहुतियाँ देकर खूब की तीन पूर्णाहुति व्याहृतियों की देनी चाहिए ॥ १२-१३ ॥ हे विनामह ! जिसके 'नीपट्' यह अन्त में हो ऐसे वैष्णव मन्त्र के द्वारा पञ्चगव्य चरु का प्राशन करके आचार्य के लिये दक्षिणा देवे ॥ १४ ॥ तिलों में भरा हुआ पाव जिसमें मुग्धा भी हो । वस्त्रों के सहित हो तथा मलट्टारों विमृषित मी को "भगवान् विष्णुः प्रीयताम्"—यह कह कर विद्वानाश्रित को उत्सृष्ट करे ॥ १५ ॥ अब मामोरवागादि से अन्य प्रतिष्ठा बतलाना है । पहिले यज्ञ के द्वारा देव को पूर्णनया सन्तुष्ट करके वैष्णव चरु का श्रयन करना चाहिए ॥ १६ ॥ तिल, तण्डुल-नीवार और श्यामाकर अपवा यों में धृत में आधायग करने और उत्तारण करके मामग विष्णु पादि के मूर्ति मन्त्रों के द्वारा होम करना चाहिए । उनके अन्त में पुनः होम करे ॥ १७-१८ ॥ ॐ श्रो विष्णवे स्वाहा—ॐ विष्णवे विभूषणाय स्वाहा—ॐ विष्णवे शिविविष्टाय स्वाहा—ॐ नरसिंहाय स्वाहा । ॐ पुरुषोत्तमाय स्वाहा । इन मन्त्रों में अन्त में होम करे ॥ १९ ॥ बारह गीतों की समिधाओं को धृत में संस्तुत करके 'विष्णो रराट्' द्वादश मन्त्र में बारह प्राद्विनवी देवे ॥ २० ॥

इदं विष्णुरिरावती चगोद्वादिश चाऽऽहुतोः ।
 हुत्वा चाऽऽज्याहुतीस्तद्वराद्विप्रासेति होमयेत् ॥२१॥
 शेषहोमं ततः कृत्वा दद्यात्पूर्णाहुतिश्रयम् ।
 युञ्जतेत्यनुवाकं तु जप्त्वा प्राशयेत् यं चरम् ॥२२॥
 प्रणवेन स्वशब्दान्ते कृत्वा पात्रे तू पंप्पले ।
 ततो मासाधिपानां तु विप्रान्द्वादश भोजयेत् ॥२३॥
 त्रयोदशी गुरुस्तत्र तेभ्य दद्यात्त्रयोदश ।
 कुम्भान्स्वाढ्विभुसंयुक्तान्सच्छत्रापानहान्वितान् ॥२४॥
 सुवस्त्रहेममाल्याढ्यान्त्रतपूयै त्रयोदश ।
 गावः प्रीतिं समायान्तु प्रचरन्तु प्रहर्षिताः ॥२५॥
 इति गोपथमुत्सृज्य यूपं तत्र निवेशयेत् ।
 दशहस्तं प्रपाराममठसंक्रमणादिषु ॥२६॥
 गृहे च होममेवं तु कृत्वा सर्वं यथाविवि ।
 पूर्वोक्तेन विधानेन प्रविशेच्च गृहं गृहो ॥२७॥
 अनिवारितमन्नाद्यं सर्वेष्वेतेषु कारयेत् ।
 द्विजेभ्यो दक्षिणा देया यथाशक्ति विचक्षणैः ॥२८॥
 आरामं कारयेद्यस्तु नन्दने सुचिरं वसेत् ।
 मठप्रदानात्स्वल्लोके शक्रलोके वसेत्ततः ॥२९॥
 प्रपादानाद्वाहणेन सक्रमेण वसेद्विवि ।
 इष्टकासेतुकारी च गोलोके मार्गकृद् गवाम् ॥३०॥
 नियमव्रतकृद्विष्णुः कृच्छ्रकृत्सर्वपापहा ।
 गृहं दत्त्वा वसेत्स्वर्गे यावदाभूतसंप्लवम् ॥३१॥
 समुदायप्रतिष्ठेष्टा शिवादीनां गृहात्मनाम् ॥३२॥

"इदं विष्णु" — इससे इरावती चर की द्वादश आहुतियाँ देवे वीस
 घृण की आहुतियों से हवन करके उसी की भाँति 'तद्विप्रास' — इससे होम करे
 ॥ २१ ॥ फिर शेष रहे होम को करके तीन पूर्णाहुति देवे । इसके पश्चात्
 युञ्जत इस अनुवाक का जप करके चर का प्राशन करना चाहिए ॥ २२ ॥

स्वगन्ध के अन्त में प्रशव से पैण्डल पात्र में करके इसके उपरान्त मासाधियों के दारुह ग्राह्यणों को भोजन करावे ॥ २३ ॥ उनमें तेरहवां गुरु है उनके लिये छत्र और उपानहों में युक्त-स्वादिवृत्त जल में समुक्त तेरह कुम्भ देवे । मुन्दर वस्त्र, हेम और मालाओं में समन्वित तेरह गो व्रत की पूति के लिये लावे और उनका दान प्रहर्षित होते हुए करें ॥ २४-२५ ॥ इस रीति से गोपथ का उत्सर्जन कन्के वहाँ पर यूप को निवेशित करे । वह प्रपा, धाराम, मठ और संक्रमण आदि में दश हाथ का होना चाहिए ॥ २६ ॥ और घर में इस प्रकार से होम करके पूर्वोक्त विधान में प्रपा विधि गृही गृह में प्रवेश करे । ॥ २७ ॥ इन समस्त कर्तों में अन्न की अनिवारिता कर देनी चाहिए । विद्वान् कम कर्ता को चाहिए कि द्विजों के लिये यथाशक्ति दक्षिणा देवे ॥ २८ ॥ जो धाराम (बगोवा) बनवाता है वह मनुष्य वृद्ध ऋषिक समय तक इन्द्र के नन्दन धन में निवाम किया करता है । मठ के प्रदान करने में स्वर्लोक में से और इन्द्र लोक में वाग दिया करता है ॥ २९ ॥ प्रपा (प्याऊ) के दान से अयत्ति प्याऊ लगाने से वारुण लोक में और संक्रमण में द्विवि लोक में वाम करता है । इष्ट का सेतु बनाने वाला और गौओं के मार्ग को बनवाने वाला गोलोक में निवाम किया करता है ॥ ३० ॥ नियम और व्रतों को करने वाला विष्णु लोक में वाम करता है और जो कुछ करते हैं वे ममस्त पापों के नाश करने वाले होने हैं । जो गृह का दान करता है वह आभूत संप्लव पर्यन्त स्वर्ग लोक में वाम किया करता है ॥ ३१ ॥ शिवादि गृहात्माओं की समुदाय प्रतिष्ठा इष्ट होनी है ॥ ३२ ॥



३१-जीर्णोद्धारविधि:

जीर्णोद्धारविधि वक्ष्ये भूषितां स्नपयेद् गुरुः ।

अचलां विन्यसेद् गेहे अतिजीर्णां परित्यजेत् ॥१॥

व्यक्तां भग्नां च शैलादयां न्यसेदस्यां च पूर्ववत् ।

सहान्विधिना तत्र तस्यांसंहृत्य देशिकः ॥२॥

सहस्रं नारसिंहेन हुत्वा तामुद्धरेद् गुरुः ।
 दारवीं दाहयेद्बह्वीं शूलजां प्रक्षिपेज्जले ॥३॥
 धातुजां रत्नजां वाऽपि अगाधे वा जलेऽम्बुधौ ।
 यानमारोप्य जीर्णाङ्गं छाद्य वस्त्रादिना नयेत् ॥४॥
 वादिल्लैः प्रक्षिपेत्तोये गुरवे दक्षिणां ददेत् ।
 यत्प्रमाणा च यद्द्रव्या तन्मानां स्थापयेद्दिने ॥५॥
 कूपवापीतडागादेर्जीर्णोद्दारे महाफलम् ॥६॥

श्री भगवान् ने कहा—अब मैं भूषित जीर्णोद्धार की विधि के विषय में बतलाऊंगा । गुरु स्नान करे, गेहूँ में अचला का विन्यास करे और प्रति जीर्ण का त्याग कर देना चाहिए ॥ १ ॥ दक्षिण अर्थात् आचार्य को सहार विधि से वहाँ पर तत्त्वों का सहार करके पूर्व की भाँति व्यङ्ग्य और भग्ना को अग्न्या शैलाद्वया न्यास करे ॥ २ ॥ गुरु को उचित है कि वह नारसिंह मन्त्र से एक सहस्र ग्राहणियाँ देकर उसका उद्धार करे । जो काष्ठ की मूर्ति हो उसे वह्नि में जला देवे और शूलजा प्रतिमा हो उसे जल में प्रक्षिप्त कर देवे ॥३॥ जो प्रतिमा रत्नों से निर्मित हो अथवा धातु निर्मित हो उसको भी अगाध जल में अथवा समुद्र में यान में रख कर और जीर्णाङ्ग को वस्त्रादि से ढक कर ले जावे ॥ ४ ॥ वादिल्लों के साथ अर्थात् वाजे वज्र ते हुए जल में प्रक्षिप्त करना चाहिए । फिर गुरु के लिये दक्षिणा भेजे । पुरानी जीर्ण प्रतिमा जितनी बड़ी हो और जिस द्रव्य से निर्मित हो उतनी ही बड़ी और उसी द्रव्य से निर्मित कराई हुई प्रतिमा की दिन में स्थापना करनी चाहिए ॥ ५ ॥ इसी भाँति कूप, वापी, तडाग आदि के जीर्णोद्धार में भी महान् फल होता है ॥६॥



३२-उत्सवविधिकथनम्

यद्यपे विधि चोत्सवस्य स्थापिते तु गुरो चरेत् ।
 तस्मिन्दिने वैकरासं विरालं चाष्टगसप्तम् ॥१॥

उत्सवेन विना यस्मात्स्थापनं निष्फलं भवेत् ।
 अयने विपुवे चापि शयनोपवने गृहे ॥२
 कारकस्यानुकूलो वा यात्रां देवस्य कारयेत् ।
 मङ्गलाङ्कुरारोपेन्तु गोतनूत्यादिवाद्यकैः । ३
 शरावद्यटिकापाली स्वङ्कुरारोहणे हिता ।
 यवान्नालीस्तिलान्मुद्गान्गोधूमान्सितसर्पपान् ॥४
 कुलत्पमापनिष्पावान्क्षान्वित्वा तु वापयेत् ।
 पूर्वाङ्गे च बलिं दद्याद्धर्मदीर्घैः पूरे त्रिभिः ॥५
 इन्द्रादेः कुमुदादेश्च सर्वभूतेभ्य एव च ।
 अनुगच्छन्ति ते तत्र प्रतिरूपधराः पुनः ॥६
 पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं तेषां न सशयः ।
 आगत्य देवतागारं देवं विज्ञापयेद् गुरुः ॥७
 तीर्थयात्रा त्वया देव श्वः कर्तव्या सुरोत्तम ।
 तस्यारम्भमनुज्ञातुमर्हः सर्वज्ञ सर्वदा ॥८

श्री भगवान् ने कहा—अब मैं उत्सव की विधि का वर्णन करूँगा जो कि देवता के स्थापित कर देने पर करनी चाहिए । उस दिन में एक रात्रि तक उत्सव करने के बिना ही जो किसी भी देव की स्थापना की जाती है वह फलहीन हो जाया करती है । विपुव घयन में शयन के उपवन में घयवा गृह में या जो भी करने वाले के अनुकूल पड़े वहाँ पर देवता की शोभा यात्रा (गवारी) करने और उग ममय में वह शोभा यात्रा मङ्गलाङ्कुरों के आरोपण से घर्षण जो दो कर जो अङ्कुर निकला करते हैं वे मङ्गलाङ्कुर बहे जाने हैं उनका आरोप और गोत-नृत्य और वाद्यों (वाजों के) का बजाना इन सब से युक्त होनी चाहिए ॥ १-२-३ ॥ जो के अङ्कुरों के आरोपण करने के लिये सकोरे या छोटी सी घड़िया हित कर हुआ करती है । मङ्गल मूचक अङ्कुरों के उत्सव करने के लिये जो-शाली, तिल, मूँग, मूँह, मफेद गरमों, कुलयी, उदं और निष्पावों को पहिने धोकर फिर बोना चाहिए । पूर्व आदि दिशाओं में रात में नगर में जलने हुए दीपकों के द्वारा बलि देना चाहिए ।

॥ ४-५ ॥ इन्द्र आदि घोर कुमुद प्रभृति तथा समस्त मूर्तों के पीछे जो अनु-
 भवन किया करते हैं वे वहाँ पर प्रति रूप के धारण करने वाले होते हैं ॥ ६ ॥
 उस अनुगमन में उनको एक-एक कदम के चलने में अश्वमेध यज्ञ का फल
 प्राप्त हुआ करता है । इसमें तनिक भी संशय नहीं है । पहिले गुरु को चाहिए
 कि देव मन्दिर में आकर देवता को प्रार्थना के रूप में विज्ञापित कर देवे कि
 हे देव ! हे गुरु मे श्रेष्ठ ! कल आपको तीर्थ माला करनी होगी अथवा तीर्थ
 यात्रा करनी चाहिए । इस से उसके आरम्भ करने की तैयारी के लिये यह है
 सर्वज्ञ ! सर्वदा आज्ञा प्राप्त करने के योग्य हैं । ७-८ ॥

दधमेव तु विज्ञाप्य ततः कर्म समारमेत् ।
 प्ररोहघटिकाढ्यां तु वेदिकां भूषितां अजेत् ॥८॥
 चतुःस्तम्भां तु तन्मध्ये स्वस्तिके प्रतिमां न्यसेत् ।
 काम्यार्थं लेख्य चित्रेषु स्थाप्य तत्ताधिवासयेत् ॥९॥
 वेण्वर्चः सह कुर्वीत धृताभ्यङ्गं तु मूलतः ।
 धृनधाराभिषेक वा सकलां शर्वरीं बुधः ॥१०॥
 दर्पण दशं नीराजगीतवाद्यं च मङ्गलम् ।
 वीजनं पूजनं दोषगन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ॥११॥
 हरिद्रामुक्तकाशमीरशुबलचूर्णादि मूर्धनि ।
 प्रतिमायाश्च भक्तानां सर्वतीर्थफलं धृत्वा ॥१२॥
 स्थापयित्वा समभ्यर्च्य यात्राक्षिप्य रथे स्थितम् ।
 नयेद् गुरुरन्दी नार्दशुभार्थं राष्ट्रपालिकाम् ॥१३॥
 निम्नगायोजनादव्यक्तं वेदी तु कारयेत् ।
 बाह्यादवतार्येता तस्यां वेद्यां निवेशयेत् ॥१४॥
 चरं च श्रपयेत्तत्र पायमं होमयेत्ततः ।
 अग्निहोत्रं यदि मन्त्रैस्तोषाभ्यावाहयेत्ततः ॥१५॥
 आपो हिष्ठोपानपदः पूजयेदथ मुख्यकः ।
 पुनर्देवं गमादाय तोषे कृत्याऽश्वमर्पणम् ॥१६॥

स्नायान्महाजनैर्विप्रर्वेशामुत्तार्य तं न्यसेत् ।

पूजयित्वा तदन्हा च प्रासादं तु नयेत्ततः ॥१८॥

पूजयेत्पावकस्थं तु गुरुः स्याद्भुक्तिमुक्तिवृत् ॥१९॥

इस प्रकार मे देवता को जना कर फिर कम का आरम्भ करना चाहिए । वेदिका प्ररोहों की अर्थात् जो धान बोये गये थे उनके अङ्कुरों वाली घटिका में युक्त कर के भूयिन् बनावे ॥ ९ ॥ चार स्वस्म बनाकर उसे सुशोभित रूप देवे और फिर उसके मध्य में स्वस्तिक (सायिया) रच कर उसके ऊपर उस प्रतिमा को रखे । निखने के योग्य चित्रों में : काम्य अर्थ को स्थापित करे और वहाँ पर अधिवास करना चाहिए ॥ १० ॥ वैष्णवों के साथ मूल मन्त्र में धृन् के द्वारा अम्बुज्ज करे अर्थात् धृन् लगावे । अथवा विद्वान् कर्म करने वाले को सम्पूर्ण रात में धृन् की धारा में अभिषेक करना चाहिए ॥ ११ ॥ शीना दिखावे और आरती, गीत तथा वाद्यों के द्वारा मङ्गल करे । बीजन-पूजन तथा दीप-गन्ध और पुष्पादि के द्वारा यजन करना चाहिए ॥ १२ ॥ हल्दी मुक्ता, केशर शुक्ल आदि का चूर्ण प्रतिमा के मस्तक पर रखने से भक्तों को समस्त तीर्थों का फल प्राप्त हो जाता है ॥ १३ ॥ स्थापना कर के और भली भाँति अम्बुचर्चन करके रथ में यात्रा विन्ध्य को विराजमान करे फिर छत्रादि के तथा वाजों के साथ राष्ट्र के पालन करने वाली यड़ी नदी पर ले जावे ॥ वहाँ पर एक योजन में पहिले ही गहरी नीची वेदी बनवावे फिर बाहन में उस प्रतिमा को उतार कर उस वेदी पर निवेशन करे अर्थात् विराजमान करना चाहिए और वहाँ पर चरहा अर्पण करे तथा पायन (और) का होम करना चाहिए । फिर जल के निम्न वाले वेदिक मन्त्रों द्वारा समस्त गीर्णों का आवाहन करना चाहिए ॥ १५-१६ ॥ फिर 'आपो हिता' इत्यादि उपनिषदों में जिनमें कि अर्घ्य की मुख्यता है, पूजन करे । फिर देवता को नाकर जल में अघमर्षण करना चाहिए ॥ १७ ॥ स्नान करे और महाजनविप्रों के द्वारा वेदी में उतार कर उमका न्यास करे । उस दिन पूजन करके हमके उपरान्त फिर आमाद की ले जावे ॥ १८ ॥ गुरु पावक में स्विन की पूजा करे जो कि मुक्ति (भोग) और मुक्ति के करने वाला है ॥१९॥



३३-गणपूजाविधिः

गणपूजां प्रवक्ष्यामि निविघ्नायादित्यर्थं दाम् ।
 गणाय स्वाहा हृदयमेकदशाय व शिरः ॥१॥
 गजकर्णने च शिखा गजवक्त्राय चर्म च ।
 महोदराय सुदण्डहस्तायाक्षि तथाऽस्त्रकम् ॥२॥
 गणो गुरुः पार्श्वका च शक्त्यनन्तौ च धर्मकः ।
 मुख्यास्थिमण्डलं चाधश्चोर्ध्वं छदनमर्चयेत् ॥३॥
 पद्मकर्णिकधोज च ज्वालिनीं नन्दयाऽचयेत् ।
 सूर्येशा कामरूपा च उदया क्रामवतिनी ॥४॥
 सत्या च विघ्ननाशा च आसनं गन्धमृत्तिका ।
 वंशो घोरं च दहनं प्लवो लम्ब तथा स्मृतम् ॥५॥
 लम्बोदराय विघ्नहे महोदराय धीमहि ।
 तन्ना दन्तिः प्रनोदयात् ॥६॥
 गणपतिर्गणाधिपो गणेशो गणनायकः ।
 गणक्रीडो वक्रतुण्ड एकदशो महोदरः ॥७॥
 गजवक्त्रो लम्बकुक्षिर्विकटो विघ्ननाशनः ।
 धूम्रवर्णो महेन्द्राद्याः पूजया गणपतेः स्मृताः ॥८॥

अब गण की पूजा की विधि बतलाते हैं । ईश्वर बोले—अब मैं गण की पूजा को बतलाऊंगा जो नि समस्त अर्थों के देने वाली है और विघ्नों को मिटा देने वाली होती है । “गणाय स्वाहा”—इस से हृदय का पूजन करे । “एक दशाय स्वाहा”—इस मन्त्र का उच्चारण करके शिर का पूजन करे । “गज कर्णने स्वाहा”—इस में शिखा तथा “गज वक्त्राय स्वाहा”—इस से चर्म का पूजन करे । “महोदराय स्वाहा”—इस में प्रसि तथा “सुदण्ड हस्ताय स्वाहा”—इस मन्त्र में धनुष का धर्चन करना चाहिए । गण, गुरु, पार्श्वक, दन्ति, घनन्त, धर्म तथा मुख्यास्थि मण्डल का घोर नीचे एवं ऊपर छदन का धर्चन करना चाहिए ॥ १-२-३ ॥ पद्म कर्णिकाजीज, ज्वालिनी, नन्दा, सूर्येश, कामरूपा, गन्धमृत्तिका, वंश, घोर, दन्त, प्लव तथा लम्ब ये सभी

पूजन के लिये बताया गये हैं ॥ ४-५ ॥ गणपति का मन्त्र यह है—“लम्बो-
दराय विद्यहे महोदराय धीमहि । तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्” । गणपति के पूजा
में निम्न नाम वालों की पूजा करनी चाहिए । गणपति, गणाधिप, गणेश,
गणनायक, गण क्रीड, वक्रतुण्ड, एकदंष्ट्र, महोदर, गजवक्त्र, लम्ब कुक्षि,
विकट, विघ्न नाशन, घूँघ्र वर्ण महेंद्र आदि ये सब गणपति के पूज्य नाम हैं
जो कि बताया गये हैं ॥ ६-७-८ ॥



३४ — सूर्यपूजाकथनम्

वक्ष्ये सूर्याचिनं स्कन्द कराङ्गन्यासपूर्वकम् ।
अहं तेजोमयः सूर्यं इति ध्यात्वाऽर्घ्यमर्चयेत् ॥१॥
पूरयेद्रक्तवर्णेन ललाटाकृष्टविन्दुना ।
तं सपूज्य रवेरङ्गः कृत्वा रक्षावगुण्ठनम् ॥२॥
संप्रोक्ष्य तज्जलद्रव्यं पूर्वास्यो भानुमर्चयेत् ।
ॐ अं मृद्वीजादि सर्वेषु पजनं दण्डिपिङ्गली ॥३॥
द्वारि दक्षे वामपार्श्वे ईशाने अङ्गणाय च ।
अग्नी गुरुं पीठमध्ये प्रभूतं चाऽऽसनं यजेत् ॥४॥
अग्न्यादौ विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम् ।
सितरक्तपीतनीलवर्णान्सिंहान्यजयेत् ॥५॥
पद्ममध्ये गं च दीप्तां रीं सूक्ष्मां रुं जयां क्रमात् ।
रुं भद्रां रें विमतींश्च विमलां रैममोघया ॥६॥
गं रीं विद्युता शक्तिपूर्वाद्याः सर्वतोमुखाः ।
रं मध्ये अर्कासनं स्यात्सूर्यमूर्ति पङ्कजरम् ॥७॥
ॐ हं खं छशोत्कायेति यजेदावाह्य भास्करम् ।
ललाटाकृष्टमञ्जल्यां ध्यात्वा रक्तं न्यसेद्रविम् ॥८॥

श्री ईश्वर ने कहा—हे स्कन्द ! अब मैं कराङ्ग न्यास के साथ सूर्य
की पूजा को बनल ऊँगा । मैं तेज में परिपूर्ण सूर्य हूँ । इस प्रकार में ध्यान

करके अर्घ्य देकर अर्चना करनी चाहिए ॥ १ ॥ रक्त वरुण आले ललाट में
 आशुष्य बिन्दु से पूरित करे उसको सूर्य के अङ्गों द्वारा भली भाँति पूजन करके
 रेखा के लिये अवगुण्ठन करे ॥ २ ॥ उत जल से पूजा के द्रव्य का मन्त्रोक्षण
 करे फिर पूर्व दिशा की ओर मुख करके भानु का पूजन करना चाहिए । ॐ
 मुद्दीजआदि से सब जगह दण्ड गिङ्गलो का पूजन करना चाहिए ॥ ३ ॥
 द्वार में, दक्ष भाग में, बाँये पाश्वर् में, ईशान में और आग्न के लिये अग्नि में
 गृह को और पीठ के मध्य में प्रभूत आमन का यजन करे ॥ ४ ॥ अग्नि आदि
 में विमल सार एवं परम सुख की आराधना करनी चाहिए । श्वेत, लाल,
 पीला, नीला वरुणों को जो कि सिंह के तुल्य हैं, यजन करे ॥ ५ ॥ पद्म के
 मध्य में 'गं' को फिर दीप्त 'री' को—'रु' को, फिर क्रम से जया को, भद्रा
 'रु' को, विभूति 'रे' को और अमोघ से विमल 'रे' को, 'रौ ओर रौ' को,
 विद्युत् से शक्ति को जो पूर्व से आदि में होने वाली सब ओर मुख रखने वाली
 है, मध्य में 'र' सूर्य का आसन है और छि अक्षर वाली सूर्य की मूर्ति है उसका
 ध्यान करे ॥ ६-७ ॥ 'ओ३म् हुं खं लशीत्काय'—इस मन्त्र के द्वारा भास्कर
 का आवाहन करके पूजन करना चाहिए । ललाट में आकर्षण की हुई को
 अञ्जलि में ध्यान क के लाल वर्ण वाले रवि का न्यास करे ॥ ८ ॥

ह्नां ही सः सूर्याय नमो मुद्रयाऽऽवाहनादिकम् ।

विधाय प्रीतये विम्बमुद्रां गन्धादिकं ददेत् ॥ ९ ॥

पद्ममुद्रां विम्बमुद्रां प्रदक्ष्यान्तो हृदोरितम् ।

ॐ आं हृदयाय नमः, अर्काय शिरसे तथा ॥ १० ॥

भूर्भुवः स्व गुरेणाय शिखायै नेत्रं ते यजेत् ।

है कवचाय वायव्ये हो नेत्रायेति मध्यतः ॥ ११ ॥

वः, अस्त्रायेति पूर्वादी ततो मुद्राः प्रदर्शयेत् ।

धेनुमुद्रा हृदादीनां गोविपाणा च नेत्रयोः ॥ १२ ॥

अम्भस्य त्रासनी योज्या ग्रहाणां च नमस्क्रिया ।

मो मोग चुं बुधं वं च जीवं भ भार्गवं यजेत् ॥ १३ ॥

"हां ही मः सूर्याय नमः"—इस मन्त्र में मुद्रा को दिखाने हुए प्रतीक आवाहन करने की जो मुद्रा होती है उसे बनाकर सूर्य का आवाहन प्राप्त करें। सूर्य की प्रीति के लिये त्रिम्ब की मुद्रा करें और फिर उसे गन्धासन आदि देवे ॥ २ ॥ पञ्च की मुद्रा और त्रिम्ब की मुद्रा को प्रदर्शित करके अग्नि में हृदयादि का न्यास करे। जैसे—'ॐ आं हृदयाय नमः' यह कहते हुए हृदय पर हाथ रखे। इसी भाँति घागे बनाये हुए न्यास भी करे। यथा—'प्रकाश शिरसे'—'भूभुवः स्वः सुरेणाय निधाय', इससे नैऋत्य दिशा में—'हृत्स्वनाय'—इससे वायव्य कोण में—'हां नेत्राय', इससे मध्य में—'वः अम्नाय'—इससे पूर्व आदि दिशा में न्यास करके फिर मुद्राओं को दिखावे। धेनु की मुद्रा को हृदय आदि में न्यास गाय के विषाणु वाली मुद्रा को नेत्रों में, अम्ब की ग्रामनी नाम वाली मुद्रा होती है उसे करनी चाहिए और ग्रहों की नमस्कार करने की मुद्रा हाँकी है। (यहाँ पर केवल मुद्राओं के नाम दिये गये हैं, इनके बनाने की शिक्षा किसी ज्ञान गुरु से ही प्राप्त कर लेनी चाहिए) निम्नलिखित बीज मन्त्रों के द्वारा ग्रहों का यजन करे—'सौ' में चन्द्र को, 'बु' में बुध को, 'वं' से गुरु को, 'भं' में शुक्र को पूजित करना चाहिए ॥ १०-११-१२-१३॥

दले पूर्वदिकेऽग्न्यादीनां भीम श शनैश्चरम् ।
 रं राहू कं केतवे च गन्धार्द्यं च छशोत्किना ॥१४॥
 भूलं जप्त्वाऽर्घ्यपायाम्पु दत्त्वा सूर्याय संस्तुतिः ।
 नत्वा पगाङ्मुखं चार्कं धमस्येति ततो वदेत् ॥१५॥
 शराणुना फट्ण्तेन समाहृत्याणुनहतिम् ।
 हृत्पद्मे शिव सूर्येति सहारिण्योपसङ्कृतिम् ॥१६॥
 योजयत्तेजश्चण्डाय रविनिर्मल्यमर्पयेत् ।
 अग्न्याच्चैरगजपादघानाद्दोषात्मकं रवेर्भवेत् ॥१७॥

इस में पूर्वादिके और अग्नि आदि दिशा में भं इसमें मङ्गल को 'सं'—इस बीज में शनिश्चर को, 'रे' इसमें राहु को और 'के'—इसमें केतु को गङ्गावती मन्त्र के द्वारा गन्धासन आदि में यजन करना चाहिए ॥१४॥ फिर गुरु मन्त्र का जप करे और अर्घ्य पान के जप में अर्घ्य देकर सूर्य भग-

वान् के लिये संस्तवन करे । फिर पण्डित सूर्य को नमस्कार करके अन्त में 'क्षमस्व' अर्थात् क्षमा करो, यह कहना चाहिए ॥ १५ ॥ फिर शराणु मन्त्र से जिसके अन्त में फट हो अणु-संहति का समाहरण करके हृदय के पत्र में 'शिव सूर्य' इत्यादि संशारिणी मन्त्र से उप सस्कृति करे ॥ १६ ॥ तेज से प्रचण्ड के लिये रवि के निर्माल्य का अर्पण करे । अर्घ्यर्चना करके ईश जप-ध्यान और होम से पूति करे जोकि सब सूर्य का होता है ॥ १७ ॥



३५--शिवपूजाविधिकथनम्

शिवपूजां प्रवक्ष्यामि आचम्य प्रणवाघ्यवान् ।
 द्वारमस्त्राम्बुना प्रोक्ष्य होमादिद्वारपान्यजेत् ॥१॥
 मणं सरस्वती लक्ष्मीमूर्ध्निर्दुम्बरके यजेत् ।
 नन्दिगङ्गा दक्षशाख स्थिते वामगते यजेत् ॥२॥
 महाकाल च यमुनां दिव्यदृष्टिनिपाति तः ।
 उत्सार्य दिव्यान्विघ्नांश्च पुष्पक्षोपान्तरिक्षगान् ॥३॥
 दक्षपार्ष्णित्रिभिर्घातेभूर्मिष्ठान्यागमन्दिरम् ।
 देहलीं लङ्घयेद्वामशाखामाश्रित्य वं विशेषेत् ॥४॥
 प्रविश्य दक्षपादेन विन्यस्यास्त्रमुदुम्बरे ।
 ॐ हां वास्वधिपतये ब्रह्मणे मध्यतो यजेत् ॥५॥
 निरीक्षणादिभिः शस्त्रैः शुद्धानादाय गङ्गुकान् ।
 लब्धानुज शिवान्मोनी गङ्गादिकमनुयजेत् ॥६॥
 पवित्राङ्गः प्रजप्तेन वस्त्रपूतेन चारिणा ।
 पूरयेदम्बुघो नांस्तान्गायत्र्या हृदयेन वा ॥७॥
 गन्धाक्षतपुष्पादिसर्वद्रव्यसमुच्चयम् ।
 सनिधोकृत्य पूजार्थं भूतशुद्ध्यादि कारयेत् ॥८॥

ईश्वर ने कहा—अब मैं शिव की पूजा की विधि को बताऊँगा कि प्रणव और घण्टे वाला गूजर आचमन करके अस्त्र मन्त्र द्वारा जल से द्वार

का प्रीक्षण करे और फिर होम आदि द्वारपानों का यजन करना चाहिए । १॥
 गम का, सन्वती का और लक्ष्मी का ऊर्ध्व उदुम्बर में तजन करना चाहिए ।
 दक्षिण और वाम भाग में स्थित नन्दी और गङ्गा का यजन करे ॥ २ ॥
 दिव्य दृष्टि के निपातन से यज्ञ काल का और यमुना का यजन करे । पुण्यों के
 क्षेप में और अन्तरिक्ष में रहने वाले दिव्य विघ्नों का उरसारण करे अर्थात्
 हटा देवे ॥ ३ ॥ दक्ष पार्ष्णि में तीन घातों से अर्थात् दाहिनी पार्ष्णि में तीन
 घात करके भूमिष्ठों को, याग मन्दिर को और देहली को वाई शाखा का
 आश्रय करके लीरे अर्थात् पार करे ॥ ४ ॥ दाहिने पैर से प्रवेश करके उदुम्बर
 में अस्य का विन्यास करे और फिर 'ॐ ह्रां वास्वधिपतये ब्रह्मणे—इमं से
 मध्य में यजन करना चाहिए ॥ ५ ॥ निरीक्षण आदि शास्त्रों से शुद्ध गङ्गुकों
 को लेकर शिव से आज्ञा प्राप्त करे और आज्ञा प्राप्त करने वाला होकर मौन
 होते हुए गङ्गा आदि का अनुगमन करना चाहिए ॥ ६ ॥ प्रकर्ष रूप में जाप
 किये हुए वस्त्र से पवित्र जल से पवित्र अङ्गों वाला होकर गायत्री मन्त्र से
 प्रथवा हृदय से उन-उन को जन से पूरित कर देवे ॥ ७ ॥ गन्ध-प्रक्षत और
 पुष्प आदि समस्त पूजा के द्रव्यों के समुदाय को पूजा करने के लिये अपने
 समाप में रख कर फिर भूत शुद्धि आदि करनी चाहिए ॥ ८ ॥

देवदक्षे ततो न्यस्य सौम्यास्यश्च शरीरतः ।

सहारमुद्रयाऽऽदाय मूर्ध्नि मन्त्रेण धारयेत् ॥८॥

भोग्यकर्मोपभोगार्थं पाणिकच्छपिकाव्यया ।

हृदम्बुजे निजात्मन द्वादशान्तपदेऽथ वा ॥९॥

शोध्यतेऽप्यस्य भूतानि सचिन्त्य सुपिर तनौ ।

चरणाङ्गुष्ठयोयुग्मान्मुपिरान्तर्वहिः स्मरेत् ॥१०॥

शक्तिं हृदव्यापिनी पञ्चाधूतकारे पावकप्रभे ।

रन्ध्रमध्ये स्थिते कृत्वा प्राणरोधं हि चिन्तकः ॥११॥

निवेशयेद्रेचकान्ते फडन्तेनाय तेन च ।

हृत्कण्ठतालुधूमध्यग्रहान्ध्रे विभिद्य च ॥१२॥

ग्रन्थीन्निभिद्य ह्रंकारं मूर्ध्नि विन्यस्य जीवनम् ।
 संपुटं हृदयेनाथ पूरकाहितचेतनम् ॥१४॥
 ह्रं शिखोपरि विन्यस्य शुद्धं विन्द्वात्मकं स्मरेत् ।
 कृत्वाऽथ कुम्भकं शंभावेकोद्धातेन योजयेत् ॥१५॥
 रेचकेन बीजवत्या शिवे लीनोऽथ शोधयेत् ।
 प्रतिलोमं स्वदेहे तु विन्द्वन्तं तत्र विन्दुकम् ॥१६॥

मौम्य अर्थात् पूर्वं दिशा में मुख करके देव के दक्षिण भाग में रख कर
 सहार मुद्रा के द्वारा शरीर से लाकर यन्त्र से मस्तक में धारण करना चाहिए
 ॥ ६ ॥ भोगने योग्य वर्मों के उपभोग करने के लिये पाणि कच्छरिका नाम
 वाली से हृदय के कमल में अपनी आत्मा को अथवा द्वादशान्त पद में पाँच
 भूतों का शोधन करे । शरीर में सुपिर (छिद्र) का चिन्तन करके चरणों
 के अँगुठों के जोड़ों को उम मृपिर के अन्दर और बाहिर स्मरण करना चाहिए
 ॥ १०-११ ॥ पीछे अग्नि के समान प्रभा वाले ह्रंकार में हृदय में अग्रात रहने
 वाली शक्ति को रन्ध्र (छिद्र) के मध्य में स्थित रहने पर ध्यान करने वाले
 को प्रणों का रोध करना चाहिए ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर फट् जिसके अन्त
 में ही ऐसे उससे एकान्त में निवेशित करना चाहिए और हृदय, कण्ठ, तालु,
 भ्रूमध्य और ब्रह्मरन्ध्र में विभेदन करके तथा ग्रन्थियों का विभेदन करके
 मूर्द्धा में ह्रंकार का विन्यास करे । जीवन संपुट को हृदय से पूरक अहित चेतन
 "ह्रं" को शिखा के ऊपर विशेष रूप में न्यास करे और फिर शुद्ध विन्दु के
 स्वरूप वाले का स्मरण करना चाहिए । इसके उपरान्त कुम्भक को करके
 एकोद्धात में शम्भु में योजित करे ॥ १३-१४-१५ ॥ रेचक के द्वारा बीजवती
 से शिव में लीन होना हुआ अपने देह में विन्दु के अन्त तक प्रतिलोम का
 शोधन करना चाहिए और वही विन्दुक का भी शोधन करे ॥१६॥

तयं नीत्वा महीवाती जलवल्ली परस्परम् ।
 द्वौ द्वौ साध्यौ तथाऽऽकाशमविरोधेन तच्छृणु ॥१७॥
 पायिष्य मण्डर्त पीत कठिन वज्रलाञ्छितम् ।
 ह्रीमित्यात्मोद्योजेन तान्नवृत्तिकतामयम् ॥१८॥

कलामय करे । उद्धात गुग्म से प्रवात् दो उद्धातों से वित्तन करके पृथ्वी भूत का शोधन करना चाहिए ॥ २४ ॥

नमो बिन्दुमयं वृत्तं बिन्दुराक्तिविभूषितम् ।
 व्योमाकारं सुवृत्तं च शुद्धस्फटिकनिर्मलम् ॥२५॥
 ह्रौंकारेण फडन्तेन शान्त्यतीतकलामयम् ।
 ध्यात्वंकोद्धातयोगेन सु विशुद्धं विभावयेन् ॥२६॥
 आप्याययेत्तन. सर्वं मूलेनामृतवर्षिणा ।
 आधाराध्यामनन्त च धर्मज्ञानादिपङ्कजम् ॥२७॥
 हृदाऽऽसनमिद ध्यात्वा मूर्तिमावाहयेत्ततः ।
 मृष्ट्या शिवमयं तस्यामात्मानं द्वादशान्ततः ॥२८॥
 अथ तां शक्तिमन्त्रेण वीपडन्तेन सर्वतः ।
 दिव्यामृतेन संप्लाव्य कुर्वीत सकलोकृतम् ॥२९॥
 हृदयादिकरान्तेषु कनिष्ठाङ्गुलीषु च ।
 हृदादिमन्त्रविन्यासः सकलौकरण मतम् ॥३०॥
 अन्त्रेण रक्ष्य प्राकारं तनुत्वेनाथ तदवहिः ।
 शक्तिजालमधश्चाध्वं महामुद्रां प्रदर्शयेत् ॥३१॥
 आपादमस्तकं यावदभावपुष्पः शिवं हृदि ।
 पश्ये यजेत्पूरकेण आकृष्टामृतसदधृतैः ॥३२॥
 शिवमन्त्रैर्नाभिकुण्डे तर्पयेत् शिवानलम् ।
 ललाटे बिन्दुरूपं च चिन्तयेच्छुभविग्रहम् ॥३३॥

नम (आकाश) बिन्दुमय, वृत्त और बिन्दु शक्ति से सुशोभित है । वह व्योम के प्राकार वाला, सुन्दर वृत्त से युक्त तथा शुद्ध स्फटिक मणि के समान निर्मल है । पट् जिसके अन्त में हो ऐसे ही कार से शान्त्यतीत कलामय का ध्यान कर एक उद्धात योग से उसके विस्रोहित होने का ध्यान करे ॥ २५-२६ ॥ इसके अनन्तर अमृत की वर्षा करने वाले भूत से सब को नृप करे । आधार इय नाम वाले, अनन्त और धर्म ज्ञान आदि पङ्कज को यह आसन है- ऐसा हृदय में ध्यान करके फिर मूर्ति वा आवाहन करे । मृष्टि से शिवमय

आत्मा को द्वादशान्त से उसमे आवाहन करे ॥ २७-२८ ॥ इसके अनन्तर उसको वीरट्, त्रिमके अन्त में लगा हो ऐसे शक्ति मन्त्र से दिव्यामृत के द्वारा सब ओर से संप्लावित (निमग्न) करके सकली करण करना चाहिए ॥ २९ ॥ सकली करण उसे कहा जाता है जहाँ हृदय से लेकर करों के अन्त तक और कनिष्ठिका आदि अंगुलियों में हृदादि मन्त्रों का विन्यास किया जाता है ॥ ३० ॥ अस्त्र से प्राकार (चारों ओर की भित्ति) की रक्षा करके तथा तनुत्र से बाहिर शक्तिजाल की रक्षा करके नीचे और ऊपर महा मुद्रा को दिखावे ॥ ३१ ॥ चरण से लेकर मस्तक पर्यन्त हृदय में भावमय पुणों के द्वारा पञ्च में शिर का यजन करना चाहिए । पूरक के द्वारा आकृष्ट अमृत से घारण किये हुए शिव मन्त्रों से शिव की अग्नि को नाभिकुण्ड में दान्त करे और ललाट में शुभ विग्रह वाले बिन्दु रूप का चिन्तन करे ॥ ३३ ॥

एकं स्वर्णादिगन्धानां पात्रमध्वान्मुशोधितम् ।
 बिन्दुप्रसूनपीयूषरूपतोयाक्षतादिना ॥ ३४
 हृदाऽऽपूर्य्य पङ्कजेन पूजयित्वाऽभिमन्त्रयेत् ।
 सरक्ष्य हेतिमन्त्रेण कवचेनावगुण्ठयेत् ॥ ३५
 रचयित्वाऽर्घ्यमष्टाङ्गं सेचयेद्धनुमुद्रया ।
 अभिपिञ्चदेयाऽऽत्मानं मूर्ध्नि तत्तोयविन्दुना ॥ ३६
 तत्रस्थं यागसंभारं प्रोक्षयेदस्त्रवारिणा ।
 अभिमन्त्र्य हृदा पिण्डैस्तनुत्वाणेन वेष्टयेत् ॥ ३७
 दर्शयित्वाऽहृतां मुद्रां पुष्पं दत्त्वा निजासने ।
 विधाय तिलकं ध्वनिपुष्पमूलेन योजयेत् ॥ ३८
 स्नाने देवाचने होमे भोजने यागयोगयोः ।
 आवश्यकं जपे धीरः सदा वाचयामो भवेत् ॥ ३९
 नादान्तोच्चारणान्मन्त्रं शोधयित्वा सृप्तं स्मृतम् ।
 पूजामध्वर्य्यं पादयोः सामान्याध्यमुपाहरेत् ॥ ४०

स्वर्ण के पात्रों में से एक पात्र को जोकि अध्वान्मु से शोधित किया हुआ हो बिन्दु से निकले हुए अमृत रूपा जल और प्रक्षन आदि वाले हृदय में

भापूरित कर छें अङ्गों से घर्चना करके अभिमन्त्रित करना चाहिए । फिर हेति मन्त्र से संरक्षण करके कवच के द्वारा अवगुह्यन्त करे ॥ ३५-३५ ॥
 आठ अङ्गों वाले अर्घ्य की रचना करके घेनु मुद्रा से सेचन करना चाहिए । उस जल की बिन्दु से अपने आपको माथे में अभिपिञ्चन करे ॥ ३६ ॥ वहाँ पर रखी हुँवा जो याग का सामान है उसे अस्त्र जल में प्रोक्षित करे । हृदय से अभिमन्त्रित करके तनुत्राण के द्वारा पिण्डों से वेष्टित करना चाहिए ॥ ३७ ॥ अमृत मुद्रा को दिखा कर अपने प्रायतन में पुष्प अर्पित करे । माथे पर तिलक करके मूल से पुष्प को योजित करे ॥ ३८ ॥ स्नान करने के समय में देवता की पूजा करने के अवसर पर होम करने के समय में भोजन करने के वक्त याग और योग में तथा आवश्यक जग में धीरे पुरुष को सर्वदा मौन रहना चाहिए ॥ ३९ ॥ नाद जिसके अन्त में ऐसे उच्चारण से मन्त्र को शोधित करके सुसंस्कार से युक्त पूजा का अभ्यञ्जन करे और गायत्री मन्त्र से सामान्य अर्घ्य को देवे ॥ ४० ॥

ब्रह्मपञ्चकमावर्त्य माल्यमादाय लिङ्गितः ।
 ऐशान्यां दिशि चण्डाय हृदयेन निवेदयेत् ॥४१
 प्रक्षाल्य पिण्डकालिङ्गे अक्षतोये ततो हृदा ।
 अर्घ्यपात्राम्बुना तिष्ठेदिति लिङ्गविशोधनम् ॥४२
 आत्मद्रव्यमन्त्रलिङ्गशुद्धी सर्वान्सुरान्यजेत् ।
 वायव्ये गणपतये ह्ना गुरुभ्योऽर्चयेच्छिवे ॥४३
 आधारशक्तिमङ्कुरनिभा कूर्मशिलास्थिताम् ।
 यजेद् ब्रह्मशिलारूढं शिवस्यानन्तमासनम् ॥४४
 विचित्रकेसरिप्रध्यामन्योन्यं पृष्ठदिशिनः ।
 कृतसेतादिरूपेण शिवस्याऽऽमनपादुकाम् ॥४५
 धर्मं ज्ञानं च वरायैश्वर्यं चाग्निदिङ्मुखान् ।
 कपूरकुङ्कुमस्वर्णकज्जलाभान्यजेत्क्रमात् ॥४६
 पद्मं च कणिकामध्ये पूर्वादौ मध्यता नव ।
 वरदाभयहस्ताश्च शक्तयो धृतचामराः ॥४७

वामा ज्येष्ठा च रौद्री च काली कलविकारिणी ।

बलविकारिणी पूज्या बलप्रमथनी क्रमात् ॥४८॥

ब्रह्म पञ्चक की आवृत्ति करके लिङ्ग से माला लेकर ईशान दिशा में हृदय के द्वारा चण्ड के लिये निवेदन करना चाहिए ॥ ४१ ॥ पिण्डिका लिङ्ग अस्त्र तोय में हृदय मे ही प्रक्षालन करके अर्घ्य पात्र के जल से मिश्रण करे । यह लिङ्ग का विशोधन होता है ॥ ४२ ॥ अपनी आत्मा की, द्रव्यों की, मन्त्र की तथा लिङ्ग की शुद्धि हो जाने पर समस्त देवों का यजन करना चाहिए । माघ्य दिशा में गणपति की ओर हे शिवे ! 'ह्रां'—इम बीज मे गुरु वृन्द की अर्चना करे ॥ ४३ ॥ कूर्म शिला पर स्थित अंकुर के तुल्य आधार शक्ति का यजन करे । ब्रह्म शिला पर आरूढ़ शिव के अनन्त ग्रामन का यजन करे ॥ ४४ ॥ विचित्र केसरी के नाम से प्रसिद्ध परस्पर में पृष्ठ दर्शो की कृत (मत् युग) और लेता आदि के रूप से शिव की ग्रामन पादुका को, धर्म को, ज्ञान को, वैराग्य को, ऐश्वर्य को और कपूर, रोली, सुवर्ण तथा काजल की आभा वाले दिशाघों के मुखों का यजन क्रम से करना चाहिए ॥ ४५-४६ ॥ पूर्व आदि दिशाघों में कर्णिका के मध्य में पद्म का यजन करे तथा मध्य से जो नौ अक्षियाँ हैं और वो वर देने वाली, अभय देने वाली हाथों वाली, चमर धारण करने वाली जिनके नाम, वाया, ज्येष्ठा, रौद्री, काली कलविकारिणी, बलविकारिणी और प्रमथनी क्रम से ये हैं उन सब का पूजन करना चाहिए । ॥ ४६-४७-४८ ॥

ह्रां सर्वभूतदमनी केसराग्रे मनोन्मनी ।

क्षित्यादिशुद्धविद्यां तु तत्त्वव्यापकमासनम् ॥४९॥

न्यसेत्मिहासने देवं शुबल पञ्चमुखं विभुम् ।

दशबाहुं च खण्डेन्दुं दधानं दक्षिणैः करैः ॥५०॥

शक्त्यष्टिशूलखटवाङ्गवरदं वामकैः करैः ।

हमरं बीजपूरं च नीलाब्जं मूलमुत्पलम् ॥५१॥

द्वात्रिंशलक्षणोपेतां शैवीं मूर्तिं तु मध्यतः ।

ह्रां ह ह्रां शिवमूर्तये स्वप्रकाशं शिवं स्मरन् ॥५२॥

ब्रह्मादिकारणत्यागाम्मन्त्रं नीत्वा शिवास्पदम् ।
 ततो ललाटमध्यस्थं स्फुरत्ताराप्रतिप्रभम् ॥५३॥
 पङ्कजेन समाकीर्णं बिन्दुरूपं परं शिवम् ।
 पुष्पाञ्जलिगतं ध्यात्वा लक्ष्यमूर्तौ निवेशयेत् ॥५४॥
 ॐ हां हौ शिवाय नम आवाहन्या हृदा ततः ।
 आवाह्य स्याप्य स्यापन्या सनिधायान्तिकं शिवम् ॥५५॥
 निरोधयेन्निष्ठुरया कालकान्त्या फडन्ततः ।
 विघ्नानुत्सार्य मुष्ट्याऽथ लिङ्गमुद्रां नमस्कृतिम् ॥५६॥

उन नी शक्तियों में एक ही सर्व मत दमनी और कैसरों के अग्र भाग में एक मनोभमनी नाम वाली में इस प्रकार से ये नी शक्तियाँ हुईं । क्षिति आदि शुद्ध विद्या और तत्त्व व्यापक आसन का यजन करे ॥ ५३ ॥ इसके अनन्तर सिंहासन पर देव का न्यास करे जो शुक्ल वर्ण वाले, पाँच मुलों से युक्त, विभु (व्यापक) दश बाहुओं से समन्वित और दक्षिण (दाहिने) हाथों से खण्ड चन्द्र को धारण करने वाले हैं ॥ ५० ॥ बाँये हाथों से शक्ति, ऋषि, धूल, खट्वाङ्ग और वरदान तथा नील कमल, बीजपूर और उत्पल सूत्र धारण करने वाले हैं । इस तरह बत्तीस लक्षणों से युक्त भगवान् शिव की मूर्ति को मध्य में "हां हं हां शिव मूर्तये" - इस मन्त्र का उच्चारण करके अपने ही प्रकाश वाले शिव का स्मरण करे ॥ ५१-५२ ॥ ब्रह्म आदि कारण को त्याग करने से शिव के स्थान मन्त्र को ग्रहण करे और ललाट के मध्य में स्थित चमकते हुए तारा की प्रतिभा वाला तथा छे अङ्गों से समाकीर्ण बिन्दु के स्वरूप वाले शिव को पुष्पाञ्जलि में रहते हुए का ध्यान करे और लक्ष्य मूर्ति में निवेशित कर देना चाहिए ॥ ५३-५४ ॥ इसके उपरान्त—“ॐ हां हौ शिवाय नमः”—इस मन्त्र के द्वारा आवाहनी मुद्रा से हृदय में आवाहन करके फिर स्थापनी मुद्रा से भूमि में सन्निधान करके शिव को स्थापित करना चाहिए ॥ ५५ ॥ काल कान्ति निष्ठुर मुद्रा से निरोध करके घन्त में 'फट्'- इस से मुष्टि मुद्रा के द्वारा समस्त विघ्नों को उत्सारण करे अर्थात् हटा देवे । तत्पश्चात् लिङ्ग मुद्रा और नमस्कृति को करे ॥ ५६ ॥

हृदाऽवगुण्ठयेत्पश्चादावाहः संमुखी खतः ।
 निवेशनं स्थापनं स्यात्संनिधानं तवास्मि भोः ॥५७
 आकर्मकाण्डपर्यन्तं संनिधेयौऽपरिक्षयः ।
 स्वभक्तेश्च प्रकाशो यस्तद्भवेदवगुण्ठनम् ॥५८
 मकलीकरणं कृत्वा मन्त्रैः पङ्क्तिर्युक्तताम् ।
 अङ्गानामङ्गिना सार्धं विदध्यादमृतीकृतम् ॥५९
 चिच्छक्तिहृदयं शंभोः शिव ऐश्वर्यमष्टधा ।
 शिखा वशित्वं चाभेद्यं तेजः कवचमैश्वरम् ॥६०
 प्रनापो दुःमहश्चास्त्रमन्तरायापहारकम् ।
 नमः स्वधा च स्वाहा च वीपट् चेति यथाक्रमम् ॥६१
 हृत्पुरसरमृत्चार्यं पाद्यादीनि निवेदयेत् ।
 पाद्यं पादाम्बुजद्वन्द्वे ववत्वे स्वाचमनीयकम् ॥६२

फिर हृदय में अवगुण्ठन करना चाहिए । अवगुण्ठन किम को कहने है यहाँ पर यह स्पष्ट किया जाना है कि आवाहन, सम्मुखी करण, निवेशन, स्थापन और प्रापका मन्निधान में करता हूँ । इस कर्म काण्ड के पूर्ण होने तक जो देव की मन्निधि का परिक्षय न होना और जो स्वभक्ति का प्रकाश होता है वही अवगुण्ठन कहा जाता है ॥ ५७-५८ ॥ छे मन्त्रों के द्वारा मकली करण करे और मन्त्रों के साथ मन्त्रों की एकता करे ; यही अमृतीकरण नाम से कहा जाता है । इसे करना चाहिए ॥ ५९ ॥ मन्त्र का चिच्छक्ति हृदय है और शिव के आठ प्रकार का ऐश्वर्य होता है । शिखा व.शित्व, अभेद तेज, ऐश्वर कवच, दुःमह प्रनाप, विष्णो के अपहरण करने वाला अस्त्र । नमः स्वधा, स्वाहा और वीपट् ये क्रम के अनुसार हृत् पूर्वक उच्चारण करके जैसे हृदयाय नमः इसी विधि से कह कर पाद्य आदि को निवेदित करना चाहिए । दोनों चरण कमलों में पाद्य को समर्पित करे और मुख में आचमनीय समर्पित करना चाहिए ॥ ६० ६१-६२ ॥

अर्घ्यं शिरसि देवस्य दूर्वापुष्पाक्षतानि च ।
 एव मंसृज्य मंस्कारैर्दंताभिः परमेश्वरम् ॥६३

यजेत्पञ्चोपचारेण विधिना कुसुमादिभिः ।
 अभ्युक्ष्योद्वर्त्य निमृज्य राजिकालवणादिभिः ॥६४
 अध्वोदविन्दुपुष्पाद्यं गङ्गदूकैः स्नापयेच्छनैः ।
 पयोदधिघृतक्षौद्रशर्कराद्यैरनुक्रमान् ॥६५
 ईशादिमन्त्रितैर्भुक्त्यै मुक्त्यै तेषां विपर्ययः ।
 तोयधूपान्तरैः सर्वैर्मूलेन स्नापयेच्छिवम् ॥६६
 विरूक्ष्य यवचूर्णेन यथेष्टं शीतलजलैः ।
 स्वशक्त्या गन्धतोयेन संस्नाप्य शुचिवाससा ॥६७
 निर्माज्यार्घ्यं प्रदद्याच्च नोपरि भ्रामयेत्करम् ।
 न शन्यमस्तकं लिङ्गं पुष्पैः कुर्यात्ततो ददेत् ॥६८
 चन्दनाद्यैः समालभ्य पुष्पैः प्राच्यं शिवाणुना ।
 धूपभाजनमस्त्रेण प्रोक्ष्याभ्यर्च्य शिवाणुना ॥६९
 अस्त्रेण पूजितां घण्टां चाऽऽदाय गुग्गुलं दहेत् ।
 दद्यादाचमनं पश्चात्सुधामं हृदयाणुना ॥७०
 आरात्रिकं समुत्तार्य तथैवाऽऽचामयेत्पुनः ।
 प्रणम्याऽऽदाय देवाज्ञां भोगाङ्गानि प्रपूजयेन् ॥७१

देवता के शिर मे अर्घ्य और दूध पुष्प और अक्षतों को समर्पित करे ।
 इस प्रकार से दश संस्कारों द्वारा परमेश्वर का संस्कार करके फिर कुसुम आदि
 पाँच उपचारों से विधि के साथ यजन करना चाहिए । राजिका (राई)
 और लवण आदि से अभ्युक्षण-उद्वर्तन और निमृजन करना चाहिए ॥ ६३
 ६४ ॥ अर्घ्य के जल की विन्दु और पुष्प आदि से गङ्गदूकों से धीरे-धीरे स्नान
 करावे और फिर दूध-दही, घृत, मधु, शर्करा आदि से यथा क्रम अभिषेक
 करावे । भुक्ति और मुक्ति के लिये उनका विपर्यय होता है ऐसे ईशादि से
 मन्त्रित किये हुएों से स्नपन करावे । जल और धूप आदि सब मूल मन्त्र से
 करे । इस विधि से शिव का स्नपन करावे ॥ ६५-६६ ॥ जो के चून से
 विरहण करके फिर शीतल जल में जो भी प्रभीष्ट हो अपनी शक्ति में गुग्गुल
 जल से स्नान कराकर फिर सुद्ध वस्त्र से पोछ कर अर्घ्य देना चाहिए । दाय

को ऊपर में नहीं घुमावे और अन्य मस्तक वाले निष्क पर भी न करे । पहिले पुष्प समर्पित करे फिर अर्घ्य देना चाहिए ॥ ६७-६८ ॥ शिव मन्त्र से पुष्प एवं चन्दन आदि के द्वारा पूजन करे । धूप के पात्र को अस्त्र से प्रोक्षण करके शिव मन्त्र से अभ्यर्चन करे । अस्त्र के द्वारा घण्टा को पूजित करे और गुग्गुलु जलावे । फिर शिव मन्त्र से आचमन देना चाहिए । इसके पश्चात् भारती उतारे और पुनः आचमन करावे । प्रणाम करके देवता के आगे विनय के साथ ध्याना जाने की प्रार्थना करके फिर भोग के अंगों का पूजन करे । ॥ ६९-७०-७१ ॥

हृदग्रीवा चन्द्रन चैते शिवं चामीकग्रभ्रम् ।
 शिखां रक्तां च नैऋत्ये कृष्णं चर्म च वायवे । ७२
 चतुर्वक्त्रं चतुर्बाहुं दनस्यान्पूजयेदिमान् ।
 दष्टाकरालमप्यस्त्रं पूर्वादिं वज्रसंनिभम् ॥ ७३
 मूले हौं शिवाय नमः, ॐ हां हूं हं शिरश्च ।
 ह्रूं शिखा है वर्म वास्तं परिवारयुताय च । ७४
 शिवाय दद्यात्पात्रं आन्नाम चाग्रमेव च ।
 गन्धं पुष्पं धूपदीपं नैवेद्याचमनीयकम् ॥ ७५
 करोद्धतंतनताम्बूलं मुखवानं च दर्पणम् ।
 शिरस्यारोप्य देवस्य दूर्वाक्षितपवित्रकम् ॥ ७६

हृदग्रीव चन्द्रन चैते शिवं चामीकग्रभ्रम् को ऐंग में अर्घ्याङ्ग ईशान में मुखगु के समान प्रसा वाले को, नैऋत्य में कृष्ण शिखा को और वायव्य में कृष्ण चर्म को पूजित करे ॥ ७२ ॥ चार मुख वाले और चार बाहु वाले को इन सब को दोनों में शिवों को अर्पित करना चाहिए । पूर्व आदि दिशाओं में दष्टा कराल अस्त्र और वज्र के तुल्य को पूजा करे ॥ ७३ ॥ मूल में 'हौं शिवाय नमः' और शिर "ॐ हां हूं हं हौं" शिखा, "ह्रूं", वर्म 'है' और अस्त्र "परिवारयुताय" इन उक्त मन्त्रों से अभ्यर्चन करना चाहिए । ॥ ७४ ॥ फिर भगवान् शिव के लिये पात्र, अर्घ्य, आचमनीय, गन्ध, पुष्प घण्ट, धूप, दीप, नैवेद्य, मुख मुद्रादयं आचमन, करेद्धतंत, ताम्बूल, मुख

वाम, दर्पण ये सब देवता के शिर में आरोपित करे और दूर्वा तथा अक्षत भी रखे ॥ ७५-७६ ॥

मूलमष्टशत जप्त्वा हृदयेनाभिमन्त्रितम् ।
चर्मणा वेष्टितं खड्गरक्षितं कुशपुष्पकः ॥७७
अक्षतैर्मुद्रया युक्त शिवमुद्भवसंज्ञया ।
गुह्यातिगुह्यगुप्त्यर्थं गृहाणास्मत्कृत जपम् ॥७८
सिद्धिर्भवति मे येन त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिते ।
भोगी श्लोकं पठित्वा तु दक्षहस्तेन शंभवे ॥७९
मूलाणुनाऽर्घ्यतोयेन वरहस्ते निवेदयेत् ।
यत्किञ्चित्कुमहे देव सदा सुकृतदुष्कृतम् ॥८०
तन्मे शिवपदस्थस्य हूं क्षः क्षेपय शकर ।
शिवो दाता शिवो भाक्ता शिवः सर्वमिदं जगत् ॥८१
शिव' जयति सर्वत्र यः शिवः सोऽहमेव च ।
श्लोकरूपमध्रील्यैवं जप देवाय चार्पयेत् ॥८२
शिवाङ्गानां दशांशं च दत्त्वाऽर्घ्यं स्तुतिमाचरेत् ।
प्रदक्षिणाकृत्य नमोच्चाष्टाङ्गं चाष्टमूर्तये ॥८३
नत्वा ध्यानादिभिश्चैव यजेच्चित्तेऽनलादिषु ॥८४

अष्टोत्तर शत मूल मन्त्र का जप करके हृदय से अभिमन्त्रित चर्म से वेष्टित और कुश-पुष्प तथा अक्षतों से खड्गरक्षित करके उद्भव संज्ञा वाली मुद्रा से युक्त शिव में प्रार्थना करे—हे शिव ! गुह्य से भी गुह्य की रक्षा के लिये मेरे द्वारा लिये हुए जप को ग्रहण कीजिएगा जिससे आपके स्थित होने हुए आपके प्रसाद से मेरी विद्धि हो जावे । इस पद्य में दी हुई प्रार्थना को भोगी पढ़े और इसके पश्चान् घपने दाहिने हाथ से शम्भु के लिये मूल मन्त्र से अर्घ्य के जल से वर्दान देने वाले शिव के हाथ में गमपित करे । इसके पश्चान् फिर प्रार्थना करे कि—हे शङ्कर ! हे देव ! हम जो भी कुछ गुह्य और दुष्कृत सदा करने हैं उग भगवान् शिव के पद में स्थित मेरे सब को 'हैं और दाता' नष्ट कर दें । शिव दाता हैं और शिव ही भोक्ता हैं यह गमस्त

जगत् भी शिव स्वर्ण है ॥ ७७-७८-७९-८०-८१ ॥ शिव की मंत्र जगह जप होती है । जो शिव है वही मैं हूँ । इन दो श्लोकों को शिव के आगे पढ़ कर जप को देव के लिये अर्पण करे ॥ ८२ ॥ शिवार्जुनों के दर्शन और अर्घ्य देकर शिव की स्तुति करे । शिव की प्रदक्षिणा करके अष्टमूर्ति भगवान् शिव के लिये अष्ट अंगों को भूमि पर स्पर्श कराकर नमस्कार करे ॥ ८३ ॥ शिव में अनलादि में नमस्कार करके ध्यान आदि के द्वारा यजन करना चाहिए ॥ ८४ ॥



३६-चण्डपूजा

ततः शिवान्निकं गत्वा पूजाहोमादिकं मम ।
 गृहाण भगवन्पुण्यफल मत्प्रसिद्धाय च ॥१
 अध्वर्योदकेन देवाय मुद्रयोद्धपवसंजया ।
 हृद्बीजपूर्वमूलेन स्थिरचित्तो निवेदयात् ॥२
 ततः पूर्ववदभ्यर्च्यं स्तुत्वा स्तोत्रैः प्रणम्य च ।
 अध्वर्य पराङ्मुखं दत्त्वा क्षमस्वेत्यभिधाय च ॥३
 नाराचमुद्रयाऽस्त्रेण फटन्तेनाऽऽमसंचयम् ।
 संहृत्य दिव्यया लिङ्गं मूर्तिमन्त्रेण यो गच्छेत् ॥४
 स्थण्डिले त्वचित्ते देवे मन्त्रसंहारमात्मनः ।
 नियोज्य विधिनोक्तेन विद्ध्यञ्चण्डपूजनम् । ५
 ॐ चण्डेशानाय नमो मध्यतश्चण्डमूर्तये ।
 ॐ धवलचण्डेश्वराय हूं फट्स्वाहा तमाह्वयेत् ॥६
 चण्डहृदयाय हूं फडों चण्डशिरसे तथा ।
 ॐ चण्डशिखायै हूं फटचण्डायुष्कवचाय च ॥७
 चण्डांशाय तथा हूं फट्चण्ड रुद्राग्निर्जं स्मरेत् ।
 भूलटङ्कशरं कृष्णं साधमूलकमण्डलुम् ॥८
 टङ्काकारेऽग्रचन्द्रे वा चतुर्वक्त्रं प्रपूजयेत् ।
 यथाशक्ति जप कुर्यादङ्गानां तु दशोशतः ॥९

अब चण्ड पूजा के विषय में बतलाते हैं । ईश्वर ने कहा - इसके अनन्तर भगवान् शिव के समीप में जाकर प्रार्थना करे—हे भगवान् मेरी पूजा तथा होम आदि जो कुछ भी पुण्य का फल है उसे आप ग्रहण कीजिएगा । यह कह कर अर्घ्योदक से उड्डूव मज्ञा वाली मुद्रा के द्वारा स्थिर चित्त वाला होकर हृद्बीज पूर्वक मूत्र मन्त्र से देव के लिये निवेदन कर देना चाहिए । ॥ १-२ ॥ इसके अनन्तर पूर्व की भाँति अर्चना करके तथा स्तौत्रों से स्तुति करके गौर प्रणाम करके पराङ् मुख अर्घ्य देकर 'क्षमस्व' अर्थात् क्षमा करो यह कहना चाहिए ॥ ३ ॥ नगरान् मुद्रा से फट् जिनके अन्त में हो ऐसे अस्त्र से घ्रातम संचय का संहार करके दिव्या मुद्रा से मूर्ति मन्त्र के द्वारा तिङ्ग पर आत्मा में मन्त्र संहार को नियोजित कर उक्त विधि से चण्ड का पूजन करना चाहिए ॥ ५ ॥ 'ॐ चण्डेशानाय नमो महयता चण्ड मूर्तये । ॐ धवल चण्डेश्वराय ह्रीं फट् स्वाहा' — इस मन्त्र से उसका आवाहन करना चाहिए ॥ ६ ॥ "ॐ चण्ड हृदयाय ह्रीं फट्" "ॐ चण्ड शिरसे ह्रीं फट्—ॐ चण्ड शिखायै ह्रीं फट् × ॐ चण्डायुक्तवचाय ह्रीं फट्—ॐ चण्डास्थाय ह्रीं फट्—इन मन्त्रों के द्वारा रुद्र की क्रोधाग्नि से जन्म ग्रहण करने वाले चण्ड का स्मरण करना चाहिए । शूल टङ्क धर, कृष्ण, साक्ष सूत्र कमण्डलु का टङ्काकार में अथवा अर्ध चन्द्र में चार मुख वाले का पूजन करना चाहिए । अपनी शक्ति के अनुसार जाप करे तथा अङ्गों का दशांश करे ॥ ७-८-९ ॥

गोभूहिरण्यवस्त्रादिमणिहेमादिभूषणम् ।

विहाय शेषनिर्मल्यं चण्डेशाय निवेदयेत् ॥१०॥

लेह्यचोप्याद्यन्नवरं ताम्बूलं स्रग्विलेपनम् ।

निर्मल्यं भोजनं तुभ्यं प्रदत्तं तु शिवाज्ञया ॥११॥

सर्वमेतत्क्रियाकाण्ड मया चण्ड तवाऽऽज्ञया ।

न्यूनाधिकं कृतं मोहात्परिपूर्णं सदाऽस्तु मे ॥१२॥

इति विज्ञाप्य देवेशं दत्त्वाऽर्घ्यं तस्य संस्मरन् ।

संहारमूर्तिमन्त्रेण शमैः संहारमुद्रया ॥१३॥

पूरकान्वित मूलेन मन्त्रानात्मनि योजयेत् ।

निर्माल्यापनयस्यानं लिम्पेद् गोमयवारिणा ॥१४॥

प्रोक्ष्याध्यादि विमृज्याथ आचान्तोऽन्यत्समाचरेत् ॥१५॥

गो-भूमि, सुवर्ण, वस्त्र आदि मणि और हेमादि के भूषण को छोड़ कर शेष निर्माल्य चण्डेश के लिये निवेदिन कर देना चाहिए ॥ १० ॥ लेह्य (चाटने के योग्य) और चोष्य (चूसने के योग्य) आदि भक्ष्य-भोज्य श्रेष्ठ अन्न, ताम्बूल, माला, चन्दनादि लेपन की सामग्री, निर्माल्य, भोजन आपके लिये भगवान् शिव की आज्ञा से प्रदान किया है । यह समस्त वर्म-काण्ड हे चण्ड ! मुझ में कुछ भी कमी या अधिकता हो गई हो तो मैं यह आप से प्रार्थना करता हूँ कि वह सब-परिपूर्ण हो जावे ॥ ११-१२ ॥ इस प्रकार से देवेश की सेवा में विज्ञापन करके फिर अर्घ्य देवे और उसका स्मरण करते हुए संहार मूर्ति मन्त्र के द्वारा शर्मों से संहार मुद्रा से पूरक में अन्वित मूल के द्वारा मन्त्रों को आत्मा में योजित करना चाहिए तथा निर्माल्य के अपनयन (हटाने) के स्थान को गोमय (गोबर) जल से लीप देवे । प्रोक्षण करके अर्घ्य आदि का विमर्जन करे और अन्त में आचमन कर फिर अन्य कार्य करना चाहिए ॥ १३-१४-१५ ॥



३७-कपिलापूजनम्

कपिलापूजन वक्ष्य एमिमन्त्रैर्यजेच्च गाम् ।

ॐ कपिले नन्दे नमः कपिले भद्रिके नमः ॥१॥

कपिले सुशोले नमः कपिले मुरभिप्रभे ।

ॐ कपिले सुमनसे भुक्तिमुक्तिप्रदे नमः ॥२॥

सौरभेयि जगन्मातर्देवानाममृतप्रदे ।

गृहाण वरदे ग्राममोष्यितार्थं च देहि मे ॥३॥

वन्दिताऽसि वसिष्ठेन विश्वामित्रेण धीमता ।

कपिले हर मे पाप यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥४॥

गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठेन एव च ।
 गावो मे हृदये चापि गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥५॥
 दत्तं गृहाण मे ग्रासं जप्त्वाऽस्यां निर्मलः शिवः ।
 प्राच्यं विद्यापुस्तकानि गुरुपादौ नमस्कृतः ॥६॥
 यजेत्स्नात्वा तु मध्यान्हे अष्टपुष्पिकया शिवम् ।
 पीठमूर्तिशिवाङ्गानां पूजा स्यादष्टपुष्पिका ॥७॥
 मध्यान्हे भोजमागारे सुलिप्तं पाकमानयेत् ।
 ततो मृत्युं जयेन्नैव वोपहन्तेन सप्तधा ॥८॥
 जप्तं सदभंशङ्खस्थैः सिञ्चैत्तं वारिविन्दुभिः ।
 सर्वपाकाग्रमुधृत्य शिवाय विनिवेदयेत् ॥९॥

श्री ईश्वर ने कहा—अब मैं कपिला गौ के विशेष पूजा के विषय में बताऊँगा । इन नीचे बताये हुए मन्त्रों से गौ की अर्चना करनी चाहिए ।
 मन्त्र—‘ॐ कपिले ! नन्दे ! नमः, कपिले ! भद्रि के ! नमः ॥ १ ॥ अर्थात् हे कपिला गौ ! मेरा आपके लिये नमस्कार है । “कपिले ! सुशीले ! नमः, कपिले ! सुरभिप्रभे । ॐ कपिले ! सुमनसे ! भुक्ति-मुक्ति प्रदे ! नमः ॥ २ ॥ अर्थात् सुरभि गौ के समान प्रभावशाली तथा सुन्दर मन वाली, अच्छे ज्ञान स्वभाव रखने वाली और भोग एवं मोक्ष दोनों को प्रदान कर देने वाली हे कपिला गौ ! आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है । “श्रीरभेयि ! जगन्मातं देवानाममृत प्रदे ! गृह्ण वर दे ! ग्रासमीप्सितार्थं च देहि मे ॥ ३ ॥ अर्थात् हे जगन् की माता कपिला गौ ! तू देवों को भी अमृत का प्रदान करने वाली है । हे वरदान देने वाली ! यह मेरा समर्पित क्रिया हुआ ग्राम ग्रहण करो और मेरे अभीष्ट मनोरम की पूर्ति कर दो । आप वसिष्ठ मुनि के द्वारा वन्दना की गई हो तथा विश्वामित्र ऋषि के द्वारा जो कि परम बुद्धिमान् हैं वन्दित हुई हो हे कपिले ! आप मेरे पापों को दूर कर दो जो भी कुछ मैंने अपने इस जीवन में दुष्कृत किये हो । ४ ॥ गौएँ मेरे सामने नित्य रहे और गौएँ मेरे पीछे भी निवास करे तथा गौवों का निवास सर्वदा मेरे हृदय में रहे और गौधों के मध्य में ही मदा याग कर ॥ ५ ॥ मेरे समर्पित किये हुए ग्राम को

आप ग्रहण करो । इस प्रकार से जा करके अर्थात् मन्त्रों को पढ़ कर यह ध्यान करे कि इसमें निर्मल शिव है । विद्या पुस्तकों का यजन करके फिर मनुष्य को श्री गुरु के चरणों में नमस्कार करना चाहिए । ६ ॥ स्नान करके मध्याह्न में अष्ट पुष्पिका से शिव का यजन करना चाहिए । पीठ मूर्ति शिव के शङ्खों की पूजा भी अष्ट पुष्पिका होती है ॥ ७ ॥ दोपहर के समय में भोजनागार जो हो उसे भली भाँति लीन कर पाक वहाँ पर लावे । फिर “वीपद्” इस को घन्ट में लगा कर मृत्युञ्जय मन्त्र के द्वारा ही सान वार जप करके साथ में डाम रख कर उनमें जल की बूँदों द्वारा सिञ्चन करना चाहिए । फिर समस्त पाक सामग्री को लाकर भगवान् शिव के लिये समर्पित कर देना चाहिए ॥ ८-९ ॥

अथार्घ्यं चुल्लिकाहोमे विधानायोपकल्पयेत् ।

विशोध्य विधिना चुल्लीं तद्वह्निं पूरकाहुतिम् ॥१०॥

हुत्वा नाभ्यग्निना चैकं ततो रेचकवायुना ।

वह्निं त्रोजं शमादाय कादिरथानेगेनिक्रमात् ॥११॥

शिवाग्निस्त्वमिति ध्यात्वा चुल्लिकाग्नीं निर्वेशयेत् ।

ॐ हामग्नये नमो वै हां सोमाय वं नमः ॥१२॥

सूर्याय बृहस्पतये प्रजानां पतये नमः ।

सर्वेभ्यश्चैव देवेभ्यः सर्वे विश्वेभ्य एव च ॥१३॥

हामग्नये स्विष्टकृते पूर्वादावचंयेदिमान् ।

स्वाहान्तमाहुनि दत्त्वा क्षमयित्वा विसर्जयेत् ॥१४॥

चुल्का दक्षिणवाही च यजेदधर्माय वै नमः ।

वामगाहावधर्माय काञ्चिकादिकृष्णशङ्खके ॥१५॥

रमपरिवर्तमानाय वरुणाय जलाश्रये ।

विघ्नराजे गृहदारे पेपण्यां मुमगे नमः ॥१६॥

इसके अनन्तर चुल्लिका (चूल्हा) के होम में अर्घ्य देवे और पूरे विधान के लिये समस्त कल्पना करे । विधि के नाथ गोपन कर चुल्ली और वह्नि में पूरक आहुति देवे ॥ १० ॥ हुवन करने नान्यानि में एक आहुति

देवे फिर रेचक वायु के द्वारा वहित बीज को लाकर आदि स्थान के गति-
क्रम से इसका समादान करे ॥ ११ ॥ उस अग्नि को यह समझ कर तथा
ध्यान करके कि यह शिवाग्नि है फिर उसे चूल्हे की अग्नि में निवेशित करना
चाहिए । नीचे लिखे हुए मन्त्रों का उच्चारण करे—“ॐ हामग्नये नमो वै हौ
सोमाय वै नमः” —सूर्याय वृश्स्पतये प्रजानां पतये नमः । सभ्यैश्च देवेभ्यः सर्वै
विश्वेभ्य एव च हामग्नये त्विष्टकृते” । इन सब का पूर्व की भाँति घर्जन
करना चाहिए । ‘स्वाहा’—इस शब्द को अन्त में लगा कर आहुति देवे और
समा प्रार्थना कर फिर विमर्जन कर देना चाहिए ॥ १२-१३-१४ ॥ चूल्हे के
दक्षिण वङ्ग में “धर्माय वै नमः”—इस मन्त्र से यजन करे । वाम भाग के
वाङ्ग में ‘अधर्माय वै नमः’—इस मन्त्र से यजन करना चाहिए । काञ्चिकादि-
भण्ड में रस परिवर्तमान के लिये तथा जलाशय में वरुण के लिये तथा गृह के
द्वार पर विघ्नराज के लिये एवं पेपली (चक्री) में सुभग के लिये नमस्कार
है । इस प्रकार से भिन्न २ मन्त्रों में भिन्न २ देवों का यजन करना चाहिए ।
॥ १५-१६ ॥

ॐ रौद्रिके गिरिके च नमश्चोलूखले यजेत् ।
वलिप्रियायाऽऽयुधाय मस्ते मुसले यजेत् ॥ १७
संमार्जन्या देवतक्तं कामाय शयनीयके ।
मध्यस्तग्नये च म्कन्दाय दत्त्वा धाम्नुवलि ततः ॥ १८
भुञ्जीत पाले सौवर्णे पद्मिन्यादिदलादिके ।
आचार्यः साधकः पुत्रः समयी मोनमास्थितः ॥ १९
घटाश्रयार्कवातारितार्जमल्लातर्कस्त्यजेत् ।
आपोशान पुराऽऽदाय प्राणार्घ्यः प्रणवान्वितः ॥ २०
स्वाहान्ते चाऽऽहुतीः पञ्च दत्त्वाऽऽदीप्योदरानलम् ।
नमः कूर्गेऽथ कृकरो देवदत्तो धनंजयः ॥ २१
एतेभ्य उपवायुभ्यः स्वाहाऽऽपोशानवारिणा ।
भक्तादिक निवेद्याथ पिबेच्छेपोदकं नरः ॥ २२

अमृतोपस्तरणमसि प्राणाहुतोस्ततो ददेत् ।

प्राणाय स्वाहाऽपानाय समानाय ततस्तथा ॥२३॥

उदानाय च ध्यानाय भुक्त्वा चुल्लकमाचरेत् ।

अमृतापिधानमंसीति शरीरेऽन्नादनाय च ॥२४॥

“ॐ रौद्रिके गिरिके च नमः” इस मन्त्र से उत्तुखल में यजन करना चाहिए । “वलि त्रिषाय आयुषाय नमः”—इस मन्त्र से भुमल में यजन करें । ॥ १७ ॥ संमाजंती (बुझरी) में देवतोक्त का तथा शय्या में काम के लिये श्रीर मध्यस्नम्ब में स्कन्द के लिये वास्तु बलि देकर फिर सोने के पात्र में या कमलिनी प्रादि के दल में स्वयं भोजन करना चाहिए । आचार्य-साधक-भुक् श्रीर ममयी इनको मौन व्रत में आस्थित रहना चाहिए ॥ १८-१९ ॥ बट, पीपल, अर्क, वातारिसर्ज और भिलावों का त्याग कर दें । पहिले अपोशान लेकर प्रणव से युक्त तथा जिनके अन्त में ‘स्वाहा’—यह होना चाहिए । यथा—‘ॐ प्राणाय स्वाहा’—इस प्रकार से पाँच प्राहुतियाँ देकर उदर की अग्नि को दीप्त करें । नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनञ्जय ये पाँच उपवायु हैं । इनको ‘स्वाहा’ लगा कर अपोशान जल से भक्त (भात) प्रादि देवे फिर शेष जल को स्वयं पी लेना चाहिए ॥ २०-२१-२२ ॥ इनके अनन्तर ‘अमृतोपस्तरण मसि’ इससे प्राणाहुतियाँ निम्न प्रकार देवोप्राणाय स्वाहा—ध्यानाय स्वाहा—समानाय स्वाहा—उदानाय स्वाहा—प्रपानाय स्वाहा—इन मन्त्रों केद्वारा खाकर चुल्लुक लेवे । शरीर में अन्न के प्राशन के लिए ‘अमृता पिधान मसि’—यह मन्त्र उच्चारित करे ॥२३-२४॥



३८-संस्कारदीक्षाविधिः

वक्ष्ये संस्कारदीक्षाया विधानं शृणु पण्डित ।

आवाहयेन्महेशस्य बन्धिस्थस्य शिवो हृदि ॥१॥

संश्लिष्टी तो समभ्यर्च्य संतर्प्य हृदयागुना ।

तपोः संनिधये दद्यात्ते नैवाऽऽहुतिपञ्चकम् ॥२॥

उत्पापन च सा प्रोक्ता लिङ्गोद्धारपुरःमरा ।
 यस्यां तु लिङ्गमारोप्य संस्कारः क्रियते बुधैः ॥४॥
 आस्थापनं तदुद्दिष्टं द्विधा विष्णवादिकस्य च ।
 आसु सर्वासु चैतन्यं नियुञ्जीत परं शिवम् ॥५॥
 यदाधारादिभेदेन प्रासादेष्वपि पञ्चधा ।
 परोक्षामथ मेदिन्याः कुर्वात्प्रासादकाम्यया ॥६॥
 शुक्लाऽऽज्यगन्धा रक्ता च रक्तगन्धा मुगन्धिनी ।
 पीता कृष्णः सुरागन्धा विप्रादीनां मही क्रमात् ॥७॥
 पूर्वशोत्तरसर्वत्र पूर्वा चैषां विशिष्यते ।
 आखाते हास्तिके यस्याः पूर्णं मृदधिका भवेत् ॥८॥
 उत्तमां तां महीं विद्यात्तोयाद्यैर्वा समुभिताम् ।
 अस्थ्यङ्गरादिभिर्दुष्टामत्यन्तं शोधयेद् गुरुः ॥९॥

अब संक्षेप से प्रतिष्ठा की विधि बतलाई जाती है । श्री ईश्वर ने कहा—हे गुरु ! अब मैं क्रम से एवं संक्षेप से प्रतिष्ठा को बतलाऊंगा । पीठ, शक्ति, शिव, लिङ्ग और शिव मन्त्रों से उसका योग, ये प्रतिष्ठा के पाँच भेद होने हैं । अब मैं उन सब का क्या रूप है—यह बताता हूँ । जहाँ पर ब्रह्म शिला का योग होता है वह विद्येय रूप से प्रतिष्ठा कही जाती है ॥ १-२ ॥ यथायोग पीठ पर ही निवेशन करना स्थापन कहा जाता है । भिन्न पीठ की जो प्रतिष्ठा है वह स्थित स्थापन कहा जाता है । ३ ॥ जो उत्पापन होता है वह लिङ्ग के उद्धार पूर्वक कही जाती है और जिसमें लिङ्ग का आरोपण करके विद्वान् पुरुषों के द्वारा संस्कार किया जाता है वह आस्थापन होता है । वह विष्णु आदि का दो प्रकार से उद्दिष्ट किया गया है । इन सब में चैतन्य पर शिव को नियुक्त करे ॥ ४-५ ॥ प्रासाद की कामना से आधार आदि के भेद से प्रासादों में भी पृथ्वी की हवि प्रकार से परोक्षा करनी चाहिए ॥ ६ ॥ विप्र आदि की पृथ्वी शुक्ला, आज्य गन्धा, रक्ता, रक्तगन्धा, मुगन्धिनी, पीता कृष्णा और सुरागन्धा क्रम से होती है ॥ ७ ॥ पूर्व, ईशान और उत्तर इन सब में पूर्वा दिशा विशिष्ट होती है । एक हाथ का खात (गर्ज) करके उसे

पूर्ण करे जब मिट्टी अधिक रहे तो उस भूमि को उत्तम भूमि समझना चाहिए ।
गुरु को चाहिए कि अस्थि घोर अङ्गार आदि के दोषों से दूषित उस भूमि का
शोधन करे और जल आदि से समुक्षित बनावे ॥ ८-९ ॥

नगरग्रामदुर्गार्थं गृहप्रासादकारणम् ।
खननेर्गोकुलावासैः कर्पणैर्वा मुहुर्मुहुः ॥१०॥
मण्डपे द्वारपूजादिमन्त्रतृप्त्यवसानकम् ।
कर्म निर्वर्तयधोरास्त्रं सहस्रं विधिना यजेत् ॥११॥
समीकृत्यापलिप्तायां भूमौ संशोध्येद्दिशः ।
स्वर्णदध्यक्षतै रेखाः प्रकुर्वीत प्रदक्षिणम् ॥१२॥
मध्यादीशानकोष्ठस्थे पूणकुम्भे शिवं यजेत् ।
वास्तुमभ्यर्च्य तत्तोयं सिञ्चेत्कुहालकादिकम् ॥१३॥
वाह्ये रक्षोगणानिष्ट्वा विधिना दिग्बलि क्षिपेत् ।
भूसि संसिच्य सस्नाप्य कुहालाद्यं प्रपूजयेत् ॥१४॥
अयं वस्त्रयुगच्छन्नं कुम्भं स्वन्धे द्विजन्मनः ।
निधाय गतिवाद्यादिग्रहघोपसमाकुलम् ॥१५॥
पूजां कुम्भे समाहृत्य ग्रामे लग्नेऽग्निकोष्ठके ।
कुहालेनाभिपिक्तेन मध्वक्तेन तु खानयेत् ॥१६॥
नैर्ऋत्यां क्षेपयेन्मृत्स्नां छाते कुम्भजलं क्षिपेत् ।
पुरस्य पूर्वसीमान्तं नयेद्यावदभीप्सितम् ॥१७॥
अथ तद्रक्षणं स्थित्वा भ्रामयेत्परितः पुरम् ।
मिश्रन्सीमान्तचिन्हानि यावदीशानगोचरम् ॥१८॥

नगर-ग्राम घोर दुर्ग निर्माण करने के लिये तथा घर और महल की
रचना के लिये भूमि के खनन-गार्थों का निवास और कर्पण (जुनाई) बार-
बार करके शोधन करना चाहिए ॥ १० ॥ मण्डप में द्वार पूजा आदि तथा
मन्त्र तृप्ति के अवसान पयन्त समस्त कर्म पूरा करके विधि के साथ एक महत्स
घघोर अस्त्र का यजन करे ॥ ११ ॥ भूमि की ऊँचाई-नीचाई को समान करे
करि उगको तिर यावे घोर दिशाओं का शोधन करे । स्वर्ण, दधि और

कहा जाता है ॥ १३ ॥ शिवादि तत्त्व की जो शुद्धि है उसकी स्वीकृति को जन्म ग्रहण करना कहते हैं । शिवत्व के योग्य का जो शिवत्व के रूप से बोधन है वह हमारा मत है ॥ १४ ॥ चमकते हुए अग्नि के कण के समान आत्मा को संहार मुद्रा से अपने हृदय कमल में लाकर यज्ञ करना चाहिए । ॥ १५ ॥ नत होते हुए कुम्भक के योग से मूल मन्त्र को उच्चारण करना चाहिए और उस समय हृदय में दोनों शिवों का समरसी भाव करना चाहिए ॥ १६ ॥

ब्रह्मादिकारणत्यागक्रमाद्रेचकयोगतः ।

नीत्वा शिवान्तमात्मानमादायोद्भवमुद्रया ॥१७॥

हृत्संपुटितमन्त्रेण रेचकेन विधानवित् ।

शिष्यस्य हृदयाम्भोजकर्णिकायां विनिक्षिपेत् ॥१८॥

पूजां शिवस्य बह्वंश्र गुरुः कुर्यात्तदोचिताम् ।

प्रणतिं चाऽऽन्मने शिष्यं समयाञ्चावयेत्तथा ॥१९॥

देवं न निन्देच्छास्त्राणि निर्माल्यादि न लङ्घयेत् ।

शिवाग्निगुरुपूजा च कर्तव्या जीवितावधि ॥२०॥

बालबालिशवृद्धस्त्रीभोगभुग्व्याधितात्मनाम् ।

यथाशक्ति ददीतार्थं समर्थस्य समग्रकान् ॥२१॥

अताङ्गानि जटाभस्मदण्डकोपीनसंयमान् ।

ईशानार्थं हृदाद्यर्वा परिजप्य यथाक्रमात् ॥२२॥

स्याहान्तसहितामन्त्रैः पात्रेऽप्यारोप्य पूर्ववत् ।

संपाताभिद्रुतं हृत्वा स्थण्डिलेशाय दर्शयेत् ॥२३॥

रक्षणाय घटाधस्तादारोप्य क्षणमात्रकम् ।

शियादाज्ञां समादाय ददीत अतिने गुरुः ॥२४॥

एवं समयदीक्षायां विशिष्टायां विशेषतः ।

वह्निहोमागमज्ञानयोग्यः संजायते शिशुः ॥२५॥

रेचक के योग से ब्रह्मा आदि कारण के त्याग के क्रम से आत्मा को शिवान्त तब से लेकर फिर उद्भव मुद्रा से लेकर हृत्सं पुटित मन्त्र से रेचक

के द्वारा विद्यान के ज्ञाता को शिष्य के हृदय कमल की कर्पिका में विनिक्षेप करना चाहिए ॥ १७-१८ ॥ गुरु का कर्त्तव्य है कि शिव और अग्नि की पूजा उनके उचित स्वरूप में करनी चाहिए । शिष्य को आत्मा के लिये प्रणति और समर्पण (नियमों) को व्यवस्था करना चाहिए ॥ १९ ॥ कभी देव और शास्त्रों की निन्दा नहीं करनी चाहिए । जो भी निर्माल्य आदि वस्तु हैं उनको नहीं लांघना चाहिए । जब तक जीवन की अवधि हो तब तक शिव-अग्नि और गुरु की पूजा करनी चाहिए ॥ २० ॥ बालक-बालिका (मूर्ख) वृद्ध, स्त्री, भोगों के भोगने वाला और व्याधितात्मा को यथा शक्ति धन देना चाहिए । जो सामर्थ्य वाला हो उसे मभी व्रतों के प्रज्ञों को और जटा, मरुम, दण्ड, कोपीन और संयमों का पालन करना चाहिए । ईशानादि अथवा हृदादि के द्वारा यथाक्रम जप करे ॥ २१-२२ ॥ पूर्व की भाँति स्वाहान्त संहिता के मन्त्रों से पात्रों में आरोप करे तथा सम्पात के अभिद्रुत को हरण करके स्पण्डिल के स्वामी को दिखाना चाहिए ॥ २३ ॥ रक्षण करने के लिये घट के नीचे क्षण भर तक आरोप करे फिर गुरु को चाहिए कि शिव से आज्ञा प्राप्त करके व्रती को दे देवे ॥ २४ ॥ इस प्रकार से विशेष रूप से विनयेता से युक्त समर्पण की दीक्षा में शिष्य बहिन होम और प्रागम के ज्ञान के योग्य हो जाया करता है ॥ २५ ॥



३६-संक्षेपेण प्रतिष्ठाविधिः

प्रतिष्ठां संप्रवक्ष्यामि क्रमात्संक्षेपतो गुह ।
पीठं शक्तिं शिवो लिङ्गं तद्योगः सा शिवानुमिः ॥१॥
प्रतिष्ठायाः पञ्च भेदास्तेषां रूपं वदामि ते ।
यस्य ब्रह्मशिलायोगः सा प्रतिष्ठा विशेषतः ॥२॥
स्थापनं तु यथायोगं पीठ एव निवेशनम् ।
प्रतिष्ठा भिन्नपीठस्य स्थितस्थापनमुच्यते ॥३॥

कुसुमेनास्त्रलिप्तं न ताडयेत्तं हृदा शिशुम् ।
 प्रस्फुरत्तारकाकारं चैतन्यं तत्र भावयेत् ॥३॥
 प्रविश्य तत्र ह्रैकारमुक्तं रेचकयोगतः ।
 सहारिण्या तदाहृत्य पूरकेण हृदि न्यसेत् ॥४॥
 ततो वागीश्वरीं योनीं मुद्रयोद्भवसंज्ञया ।
 हृत्संपुटितमन्त्रेण रेचकेन विनिक्षिपेत् ॥५॥
 ॐ हां हां हामात्मने नमः ॥६॥
 जाज्वल्यमाने निर्धूमे जुहुयादित्थिद्वये ।
 अप्रवृद्धे सधूमे तु होमो बह्वी न सिध्यति ॥७॥
 स्निग्धः प्रदक्षिणावाहः सुगन्धिः शस्यतेऽनलः ।
 विपरीतः स्फुलिङ्गी च भूमिस्पृङ्गश्च प्रशस्यते ॥८॥

श्री ईश्वर ने कहा—हेपण्डित ! अब मैं संस्कार दीक्षा के विधान को बताऊँगा उसका तुम श्रवण करो । सर्व प्रथम हृदय में महेश का और बहिन में स्थित का दोनों शिवों का आवाहन करना चाहिए । मिले हुए उन दोनों का अर्चना करे और हृदय मन्त्र से दोनों का भली भाँति तर्पण करे । उन दोनों के सन्निधान करने के लिये उसी मन्त्र से पाँच आहुतियाँ दी जानी चाहिए ॥ १-२ ॥ उस शिशु को अस्त्र से लिप्त कुसुम से हृदय मन्त्र के द्वारा ताड़न करना चाहिए और प्रस्फुरण करने वाले तारक के आकार वाले चैतन्य को उसमें भावित करना चाहिए ॥ ३ ॥ वहाँ पर प्रवेश करके रेचक के योग से ह्रैकार को मुक्त करे फिर सहारिणी से उसका आहरण करके पूरक से हृदय में न्यास करे ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर उद्भव संज्ञा वाली मुद्रा से योनि में वागीश्वरी को हृत्सं पुटित मन्त्र के द्वारा रेचक से विनिक्षेप करना चाहिए ॥ ५ ॥ "ओ३म् हां हां हामात्मने नमः"—इस मन्त्र से धूब घच्छी तरह जलती हुई बिना धूँआ वाली अग्नि में अपने अभीष्ट मनोरथ की सिद्धि के लिये हवन करना चाहिए । जो अग्नि घच्छी तरह प्रवृद्ध (बड़ी हुई) अर्थात् धूब जलने वाली न हो या धूम के सहित हो उसमें होम सिद्धि देने वाला नहीं होता है ॥ ६-७ ॥ जो अग्नि स्निग्ध अर्थात् स्नेह युक्त हो और

दक्षिण की ओर वहनशील हो तथा सुगन्ध युक्त हो वही श्रेष्ठ समझा जाता है । जो इसके विपरीत होता है और स्फुलिङ्ग (अग्नि कण) देने वाला होता है तथा भूमि की ओर स्पर्श करने वाला रहता है वह प्रशस्त नहीं होता है ॥८॥

इत्येवमादिभिश्चिन्हैर्हृत्वा शिष्यस्य कल्मषम् ।

पापभक्षणहोमेन दहेद्वातं भवात्मना ॥९॥

द्विजत्वापादनार्थाय तथा रुद्रांशभावेन ।

आहारबीजसशुद्धी गर्भाधानाय सस्थितौ ॥१०॥

सीमन्ते जन्मतो नामकरणाय च होमयेत् ।

शतानि पञ्च मूलेन वीपडादिदशांशतः ॥११॥

शिथिलीभूतबन्धस्य शक्तावुत्कर्षणं च यत् ।

आत्मनो रुद्रपुत्रत्वे गर्भाधानं तदुच्यते ॥१२॥

स्वातन्त्र्यात्मगुणव्यक्तिरिह पुंसवनं मतम् ।

मायात्मनोविवेकज्ञानं सीमन्तवर्धनम् ॥१३॥

शिवादितत्त्वशुद्धस्तु स्वोकारो जननं मतम् ।

बोधनं यच्छिवत्वेन शिवत्वाहंस्य नो मतम् ॥१४॥

संहारमुद्रयाऽऽत्मानं स्फुरद्वह्निकणोपमम् ।

विदधीत समादाय निजे हृदयपङ्कजे ॥१५॥

नतः कुम्भकयोगेन मूलमन्त्रमुदीरयेत् ।

कुर्यात्समरसीभावं तदा च शिवयोर्हृदि ॥१६॥

इस प्रकार के चिन्हों आदि से शिष्य के पाप को हवन करके भव (शिव) स्वरूप पारंभक्षण के लिये तथा रुद्रांश भावेन में आहार बीज की संशुद्धि में गर्भाधान के लिये संस्थिति में, सीमन्त में, जन्म से नाम करण के लिए होम करना चाहिए । पञ्च मूल से सौ आहुतियाँ तथा वीपड आदि से दशांश आहुतियाँ देवे ॥ १०-११ ॥ शिथिली भूत बन्ध की शक्ति में जो उत्कर्षण होता है । आत्मा के रुद्र का पुत्र होने में वह गर्भाधान कहा जाता है ॥ १२ ॥ स्वतन्त्रता में आत्म गुण की जो अभिव्यक्ति होती है वह पुंसवन माना गया है । माया और आत्मा के विवेक से जो ज्ञान है वह

अक्षतों से प्रदक्षिण रेखाएं बनावे ॥ १२ ॥ मध्य से ईशान कोष्ठ में स्थित पूर्ण कुम्भ में भगवान् शिव का यजन करना चाहिए । उसके जलों के द्वारा वास्तु देव का अर्चन करे और कुहाल आदि का मिञ्चन करना चाहिए ॥ १३ ॥ बाहिर के भाग में राक्षस गणों का यजन करके विधि-विधान के साथ दिशाप्रों में बलि का क्षेपण करना चाहिए । भूमि को इसभाति सेवन करके तथा संस्पा-पन करके कुहाल आदि जो निर्माण के साधन हैं उनका पूजन करे ॥ १४ ॥ अन्य कुम्भ को दो वस्त्रों से ढक कर ब्राह्मण के कन्धे पर रखे और फिर गीत-वाद्य आदि ब्रह्म घोष के समाकुलता के साथ कुम्भ में पूजा का समाहरण करके अग्नि काष्ठक में लग्न के प्राप्त होने पर अभियेक किये हुए तथा मधु से अक्त कुहाल से उस भूमि को खुदवाना चाहिए ॥ १५-१६ ॥ खुदाई से जो मिट्टी निकले उसे नैऋत्य दिशा में गिरवावे और जहाँ खोदा जावे उस कुम्भ के जल को ढाल देवे । पुर की पूर्व सीमा के अन्त तक जितना भी अभीष्ट हो ले जावे ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर उसकी रक्षा को स्थित करके पुर के चारों ओर भ्रमण करावे । सीमान्त चिन्हों को सींचते हुए चले जब तक ईशान दिखाई देवे ॥ १८ ॥

अर्घ्यदानमिदं प्रोक्तं तत्र कुम्भपरिभ्रमात् ।
 इत्थं परिग्रहं भूमेः कुर्वीत तदनन्तरम् ॥ १८ ॥
 कर्करान्तं जलान्तं वा शल्यदोषजिघांसया ।
 पानयेद्भूकुमारीं चेद्विधिना शल्यमुद्धरेत् ॥ २० ॥
 अकचटतपयशहान्मानवश्चैत्प्रशनाक्षराणि तु ।
 अग्नेध्वंजादिपतिताः स्वस्थाने शल्यमाख्यान्ति ॥ २१ ॥
 कर्तुं श्वाङ्गविकारेण जानीयात्तत्प्रमाणतः ।
 पश्चादीनां प्रवेशेन कीर्तनैर्विस्तृतिदिशः ॥ २२ ॥
 मातृकामष्टवर्गद्वयां फलके भुवि वा लिखेत् ।
 शल्यज्ञानं वर्गवशात्पूर्वादिशान्ततः क्रमात् ॥ २३ ॥
 अवर्गे चैव लोहं तु षवर्गेऽङ्गारमग्निः ।
 चवर्गे भस्म दक्षे स्याद्वर्गोऽस्य च नैऋते ॥ २४ ॥

तवर्ग चेटकां चाऽऽप्ये कपालं च पवर्गके ।

यवर्गके शवकीटादि शवर्गे लोहमादिशेत् ॥२५॥

वहाँ पर कुम्भ के परिभ्रम से यह अर्घ्य दान कहा गया गया है । यह भूमि के परिग्रहण करने का विधान है और इसी विधि से उसे ग्रहण करना चाहिए । इसके उपरान्त फिर जो भूमिमें शल्य दोष होता है उसका नाश करने के लिये वहाँ बकर के अन्त तक घषवा जन जहाँ निकल भाये वहाँ तक ६ कुमारी को खुदवाना चाहिए । यदि शल्य हो तो उसे विधि से निकाल देवे ॥ १९-२० ॥ यदि मानव हो तो एकचटतपयगृह इनको प्रस्तासरो को अग्नि के ध्वज आदि में पतित होकर अपने म्यान पर शल्य को बताते हैं ॥२१॥ कर्त्ता के अङ्ग के विकार से उसके प्रमाण से जानना चाहिए । पशु आदि के प्रवेश में कीर्त्तनों से और दिशा के शब्दों से जानना चाहिए । अथवा पट्टे पर या जमीन पर ही षष्ठ वर्ग से युक्त मानुष को लिखे वर्ग के वर में पूर्व से ईशान के अन्त तक क्रम से शल्य का ज्ञान करे ॥ २२-२३ ॥ अवर्ग में सोह-पवर्ग में अग्नि से भङ्गार-च वर्ग में भस्म दक्षिण में, ट वर्ग में नेत्र्युत में अस्थि, त वर्ग में इष्ट का (ईंट), वारुण दिशा में प वर्ग में कपाल, य वर्ग में शवकीट आदि और ग वर्ग में लोह कहना चाहिए ॥२४-२५ ॥

हवर्गे रजतं तद्वदवर्गाच्चानयंकरानपि ।

प्रोक्ष्याश्मभिः करापूरैरष्टाङ्गुलमृदन्तरः ॥२६॥

पादोनं छांनमापूर्यं सजलमुदगराहतैः ।

लिप्तां समप्लवां तव कारयित्वा भूर्व गुरुः ॥२७॥

सामान्यार्घ्यं करो यायान्मण्डपं वक्ष्यमाणकम् ।

तारणद्वापतीनिष्ट्वा प्रत्यग्द्वारेण संविशेत् ॥२८॥

कुर्यात्तस्याऽऽत्मशुद्ध्यादिकुण्डमण्डपसंस्कृतिम् ।

कलशं वधनोसक्तं सौकपालाशिवाचनम् ॥२९॥

अग्नेर्ज्वलनपूजादि सर्वं पूर्ववदाचरेत् ।

यजमानान्वितो यायाच्छित्तानां स्नानमण्डपम् ॥३०॥

शिलाः प्रासादलिङ्गस्य पादा धर्मादिसंज्ञकाः ।
 अष्टाङ्गुलोच्छ्रिताः शस्ताश्चतुरस्ताः करायताः ॥३१॥
 पाषाणानां शिलाः कार्या इष्टकानां तदर्धतः ।
 प्रासादेऽश्मशिलाः शैल इष्टका इष्टकामये ॥३२॥

ह वर्ग में रजत और इसी भाँति अ वर्ग से अनर्थ करने वालों को भी प्रोक्षण करके करापूर पाषाणों से जो आठ अंगुल मिट्टी के अन्तर वाले हों एक पाद कम गड्ढे को भरकर जल के सहित मुद्गर से आहत करके गुरु को फिर समझव तथा लिपी हुई उस भूमि को करानी चाहिए ॥ २६-२७ ॥ इस के अनन्तर सामान्य अर्घ्य कर मे लेकर आगे बताये जाने वाले मण्डप में जाते । तोरण द्वार के पतिष्ठों का यजन करके फिर प्रत्यक् दिशा के द्वार से प्रवेश करे ॥ २८ ॥ वहाँ मण्डप में पहुँच कर आत्म शुद्धि आदि कुण्ड और मण्ड का संस्कार करना चाहिए । कलश, वर्धनीसक्त, लोक पालों और शिव व अर्चन-अग्नि का जलाना तथा पूजा आदि सभी कर्म पूर्व की भाँति ही करना चाहिए । इसके अनन्तर यजमान के सहित शिलाघों के मण्डप में जान चाहिए ॥ २९-३० ॥ प्रासाद लिङ्ग के धर्म आदि संज्ञा वाले पाद शिल आठ अंगुल ऊँचे श्रेष्ठ हैं और एक हाथ आयत चौकोर उत्तम होते हैं ॥ ३१ ॥ पाषाणों की शिला वनवानी चाहिए उसका आधा भाग ईंटों का करावे प्रासाद में अश्मशिला और इष्टकामय में इष्ट का (ईंट) ही शैल हैं ॥३२॥

अङ्किता नववक्राद्यैः पङ्कजाः पङ्कजान्विताः ।
 नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णाख्या पञ्चमी मता ॥३३॥
 आर्सा पद्मो महापद्मः शङ्खो य मकरस्तथा ।
 सनुदश्चेति पञ्चामी तिधिकुम्भाः क्रमादधः ॥३४॥
 नन्दा भद्रा जया पूर्णा अजिता चापराजिता ।
 विजया मङ्गलाख्या च धरणी नवमी शिला ॥३५॥
 सुभद्रश्च विभद्रश्च सुनन्दः पुष्पनन्दकः ।
 जयोऽय विजयश्चैव कुम्भः पूर्णस्तथोत्तरः ॥३६॥

नवानां तु यथासंख्यं निधिकुम्भा अमी नव ।
 आसनं प्रथमं दत्त्वाऽऽताड्योल्लिख्य शराणुना ॥३७॥
 सर्वासामविशेषेण तनुत्वेनावगुण्ठनम् ।
 मृदभिर्गोमयगोमूत्रकषायैर्गन्धवारिणा ॥३८॥
 अस्त्रेण हुफंडन्तेन मलस्नानं समाचरेत् ।
 विधिना पञ्चगव्येन स्नानं पञ्चामृतेन च ॥३९॥
 घन्धतोयान्तरं कुर्याद्विजनाभाङ्किताणुना ।
 फलरत्नसुवर्णानां गोशृङ्गसलिलैस्ततः ॥४०॥

नव वक्राद्यों के द्वारा अङ्कित पङ्कजों से युक्त पङ्कज होने चाहिए ।
 नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा ये पाँच नाम वाली तिथियों के समान
 होनी हैं । इनका जो नीचे का भाग है वहाँ पंच महापद्म, शंख, मकर और
 समुद्र ये क्रम से निधि कुम्भ हैं ॥ ३३-३४ ॥ नन्दा, भद्रा, जया, पूर्णा,
 अजिता, अपराजिता, विजया, मङ्गला और धरणी ये नौ शिलाएँ हैं ॥ ३५ ॥
 इन नौ शिलाओं के यथा संख्य नौ निधि कुम्भ होते हैं । उनके नाम—समुद्र,
 मुनन्द, पुष्प नन्दक, जय, विजय, कुम्भ, पूर्ण, उत्तर ये होते हैं । पहिले
 घासन देकर फिर शर मन्त्र से घाताहन एवं उल्लिखन करे ॥ ३६-३७ ॥ सब
 को मामान्य स्तर से तनुव के द्वारा अवगुण्ठन करे । मिट्टी, गोबर, गोमूत्र और
 कषाय तथा गन्धयुक्त जल से हुंफट् अन्त वाले अस्त्र के द्वारा मल स्नान करना
 चाहिए । विधि के साथ पञ्चगव्य और पञ्चामृत से स्नान कराना चाहिए ।
 ॥ ३९ ॥ फिर अपने नाम से अङ्कित मन्त्र के द्वारा घन्धतोयान्त करे । इसके
 अनन्तर फल, रत्न, सुवर्णों के गो शृङ्ग जलों के द्वारा स्नान करावे ॥ ४० ॥

चन्दनेन समालम्ब्य वस्त्रं राच्छादयेच्छिलाम् ।
 स्वर्णोत्थमासनं दत्त्वा नीत्वा योगं प्रदक्षिणम् ॥४१॥
 शय्यायां कुशतल्पे वा हृदयेन निवेशयेत् ।
 संपूज्य न्यस्य बुद्ध्यादिघरान्तं तत्त्वसंचयम् ॥४२॥
 त्रिखण्डव्यापकं तत्त्वस्य चानुकमान्यसेत् ।
 बुद्ध्यादौ चित्तपर्यन्ते चिन्तातन्मात्रकावधौ ॥४३॥

तन्मात्रादौ धरान्ते च शिवविद्यात्मनां स्थितिः ।

तत्त्वानि निजमन्त्रेण तत्त्वेषांश्च हृदाऽर्चयेत् ॥४४

स्थानेषु पुष्पमालादिचिन्हितेषु यथाक्रमम् ॥४५

ॐ हूं शिवतत्त्वाय नमः । ॐ हूं शिवतत्त्वाधिपतये रुद्राय

नमः । ॐ हां विद्यातत्त्वाय नमः । ॐ हां विद्यात्वाधिपाय

विष्णवे नमः । ॐ हामात्मतत्त्वाय नमः ॥ ॐ हामात्मतः

त्वाधिपतये ब्रह्मणे नमः ॥

४६

क्षमाग्नियजमानाकञ्जिलवातेन्दुवानि च ।

प्रतितत्त्वं न्यसेदष्टौ मूर्तीः प्रति शिलां शिलाम् ॥४७

इसके पश्चात् चन्दन लगा कर शिला को वस्त्रों से आच्छादित कर देवे । स्वर्णोत्थ आदान, समर्पित कर फिर प्रदक्षिण योग लेकर शय्या में अथवा कुशतल्प में हृदय से निवेशित कर देना चाहिए । बुद्धि आदि धरा के अन्त तक तत्त्वों के - संख्य का न्यास करके तथा, भली भाँति पूजन करके त्रिखण्ड में व्याप्त तीन तत्त्वों को अनुक्रम से न्यास करे । बुद्धि आदि में चित पर्यन्त में, चिन्ता तन्मात्र की अवधि में, तन्मात्रादि में और धरान्त में शिव विद्यात्माओं की स्थिति है । निज मन्त्रों से तत्त्वों का और तत्त्वों के स्वामियों का हृदय से अर्चन करना चाहिए ॥ ४१-४२-४३-४४ ॥ पुष्पमाला आदि से चिह्नित वाले स्थानों में क्रम के अनुसार अर्चन निम्नलिखित मन्त्रों द्वारा करे— ॐ हूं शिवतत्त्वाय नमः । ॐ हूं शिव तत्त्वाधिपतये नमः । ॐ हां विद्यातत्त्वाय नमः । ॐ हां विद्या तत्त्वाधिपाय नमः । ॐ हामात्म तत्त्वाय नमः । ॐ हामात्म तत्त्वाधिपतये नमः ॥ ४५-४६ ॥ पृथ्वी, अग्नि, यजमान, अर्क, जल, वायु, इन्द्र और आकाश प्रत्येक तत्त्व में और प्रतिशिला-शिला आठ मूर्तिमों का न्यास करना चाहिए ॥ ४७ ॥

सर्वं पशुपति चोग्रं रुद्रं भवमथेश्वरम् ।

महादेवं च भीमं च मूर्तीणांश्च यथाक्रमात् ॥४८

ओ३म् धराभूतये नमः । ओ३म् धराधिपतये नमः ॥

इत्यादिमन्त्रां ह्येकपालान्यथासंख्यं निजाणुभिः ।

विन्यस्य पूजयेत्कुम्भास्तन्मन्त्रैर्वा निजाणुभिः ॥

इन्द्रादीनां तु बीजानि वक्ष्यमाणक्रमेण तु ॥५०॥

लूँ रूँ शूँ पूँ वूँ यूँ मूँ हूं क्षमिति ॥५१॥

उक्तो नवशिलापक्षः शिला पञ्चपदा तथा ।

प्रतितत्त्वं न्यसेन्मूर्तीः सृष्ट्या पञ्च घरादिकाः ॥५२॥

ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्र ईश्वरश्च सदाशिवः ।

एते च पञ्च मूर्तीनां यष्ट्यास्तासु पूर्ववत् ॥५३॥

ॐ पृथ्वीमूर्तये नमः । ॐ पृथ्वीमूर्त्यधिपतये ब्रह्मणे नमः ।

इत्यादिमन्त्राः ॥

५४

संपूज्य कलशान्पञ्च क्रमेण निजनामभिः ।

निरुन्धीत विधानेन न्यासो मध्यशिलाक्रमात् ॥५५॥

कुर्यात्प्राकारमन्त्रेण भूतिदर्भेस्तिलस्ततः ।

कुण्डेषु धारिकां शक्तिं विन्यस्याभ्यर्च्य तर्पयेत् ॥५६॥

तत्त्वं तत्त्वाधिपान्मूर्तिमूर्तीनां च धृतादिभिः ।

ततो ब्रह्मांशशुद्धयर्थं मूलाङ्गं ब्रह्मभिः क्रमात् ॥५७॥

कृत्वा शतादिपूरान्ति प्रोक्ष्य शान्तिजलैः शिलाः ।

पूजयेच्च कुशैः स्पृष्ट्वा प्रतितत्त्वमनुक्रमात् ॥५८॥

सर्व-पशुपति, उग्र, रुद्र, भव, मयेश्वर, महादेव, भीम इन मूर्ति के ईशों का यथा क्रम न्यास करे । मन्त्र इस निम्न क्रम से सब के होने चाहिए यथा—
 “ओ३म् घरा मूर्तये नमः । ओ३म् घराधिपतये नमः ।” इसी प्रकार घग्नि
 घादि के भी मन्त्रों का क्रम समझ लेना चाहिए ॥ ४८-४९ ॥ इत्यादि मन्त्रों
 से न्यास करे । त्यों लोकपालों को यथा संख्या निज मन्त्रों से न्यास करे
 उनके मन्त्रों से अथवा निज मन्त्रों से कुम्भों का पूजन करे । इन्द्रादि के बीज
 वक्ष्यमाण क्रम से इस भाँति हैं ॥ ५० ॥ इन्द्रादि के बीज—“लूँ रूँ शूँ
 पूँ वूँ यूँ मूँ हूं क्षूँ” ये हैं । नव शिला का पक्ष बता दिया गया है तथा
 पञ्चपदा शिला भी कह दी गई है । प्रति तत्त्व में मूर्तियों का न्यास करे जो

किं सृष्टि से पञ्च घरा आदिक है । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, ये पाँच मूर्तीश होते हैं । उनमें पहिले की तरह इनका यजन करना चाहिए । ॥ ५१-५२-५३ ॥ "ओ३म् पृथ्वी मूर्तये नमः । ओ३म् पृथ्वी मूर्त्यधिपतये ब्रह्मणे नमः" इस प्रकार से इत्यादि मन्त्र होते हैं ॥ ५४ ॥ पाँच कलशों को क्रम से निज नामों से भली भाँति पूजन करके मध्य शिला के क्रम से विद्यान के द्वारा न्यास को निरुन्वित करे ॥ ५५ ॥ इसके उपरान्त प्राकार मन्त्र के द्वारा भूति और ढाभ तथा तिलों के द्वारा कुण्डों में धारिका शक्ति का विन्यास करके, पूजन करके तर्पण करना चाहिए ॥ ५६ ॥ तत्त्वों और तत्त्वों के स्वामी, मूर्तियों और मूर्तियों के अधिपतियों को धृत आदि के द्वारा फिर ब्रह्मांश की शुद्धि के लिये मूल अङ्ग को ब्रह्म के द्वारा क्रम से न्यासाचंनानादि करके अतादि से ऊर्णान्त तक शिलाओं को शान्ति जलों के द्वारा प्रोक्षण करके धनुक्रम से प्रत्येक तत्त्व को कुशाग्रों से स्पर्श करके पूजन करना चाहिए । ॥ ५७-५८ ॥

सांनिध्यमय सध्यानं कृत्वा शुद्धं पुनर्न्यसेत् ।
 एवं भागस्ये कर्म गत्वा गत्वा समाचरेत् ॥ ५९ ॥
 ॐ, आम्, ईम्, आत्मतत्त्वविद्यातत्त्वाभ्यां नम इति ॥ ६० ॥
 संस्पृशेद्दर्भमूलाद्यं ब्रह्माङ्गादिस्यं क्रमात् ।
 कुर्यात्तन्वानुसंधानं ह्रस्वदीर्घप्रयोगतः ॥ ६१ ॥
 ओ३म् हाम्, ऊं विद्यातत्त्वशिवतत्त्वाभ्यां नमः ॥ ६२ ॥
 धृतेन मधुना पूर्णास्ताम्रकुम्भान्सरत्नकान् ।
 पञ्चगव्यार्घ्यसंमिक्ताल्लोकपालाधिदेवतान् ॥ ६३ ॥
 पूजयित्वा निर्जमन्त्रैः सनिधौ होममाचरेत् ।
 शिलानामय सर्वासां संस्मरेदधिदेवताः ॥ ६४ ॥
 विद्यारूपाः कृतस्नाना हेमवर्णाः शिलाम्बराः ।
 न्यूनादिदोषमोषार्थं वास्तुभूमेश्च शुद्धये ॥
 यजेदग्रेण भूर्घान्तमाहुतीनां शतं शतम् ॥ ६५ ॥

इसके पश्चात् सांनिध्य और संधान करके शुद्ध का फिर न्यास करना चाहिए । इस तरह से तीनों भागों में जा-जा करके कर्म का समापन करे ॥ ५९

इसका मन्त्र—‘ओ३म्, आम्, ईम्, आत्म तत्त्व विद्या तत्त्वाभ्यां नमः’ इति पही है ॥ ६० ॥ फिर क्रम से डाम के मूलादि से ब्रह्म के तीनों घट्टों को स्पर्श करे । ह्रस्व और दीर्घ के प्रयोग से तत्त्वों का अनुगन्धान करना चाहिए ॥ ६१ ॥ “ॐ, हाम्, ऊं विद्या तत्त्व शिव तत्त्वाभ्यां नमः ।” यह मन्त्र है । ॥ ६२ ॥ घृत और मधु (सहित) से पूर्ण तथा रत्नों के सहित पूर्ण कुम्भों को जो पक्ष गव्य और अर्घ्य से सुसज्ज हैं और जिनके लोकपाल अग्नि देवता हैं, उन सब का निज मन्त्रों के द्वारा पूजन करके उनकी सन्निधि में होम करना चाहिए । समस्त शिलाओं के अग्नि देवताओं का भली भाँति स्मरण करे । ॥ ६३-६४ ॥ विद्या के स्वरूप वाले, स्नान कराये हुए तथा हेम के वर्ण वाले शिलाभ्यारों का ग्यून, आदि दोषों के मोचन करने के लिये और वास्तु भूमि की शुद्धि के लिये यजन करना चाहिए और अस्त्र मन्त्र से मूर्धा के अन्त तक सो-सो आहूतियाँ देवे ॥ ६५ ॥



४०—वास्तुप्रतिष्ठाविधि

इन्द्रादिक्रमतो वच्मि ध्वजाद्यष्टौ गृहाप्यहम् ।
 प्रक्षालानुस्रगावासमग्नौ तस्य महानसम् ॥१॥
 याम्ये रसक्रिया शय्या धनुः शस्त्राणि रक्षामि ।
 धनभक्त्यम्बुपेशाद्ये सम्यगन्धौ च मास्ते ॥२॥
 सौम्ये घनपशू कुर्याद्रीषो दीक्षावराज्यम् ।
 स्वामिहस्तमितं वेद्यं विस्तारायामिर्निश्चिन्तम् ॥३॥
 सिग्गुणं हस्तसंयुक्तं कृत्वाऽन्तर्गर्हं च कृत्वा ।
 तच्छेषोऽयं स्थितस्तेन वायमान् स्थापयिष्ये ॥४॥
 त्रयः पक्षाग्निवेदेषु रसदिक्षुः सन्ति ।
 सर्वनाशकरं वेद्यं सन्ति च त्रिभिः ॥५॥
 तस्माच्च नश्ये सन्ति च त्रिभिः ॥६॥
 तन्मध्यं नश्ये सन्ति च त्रिभिः ॥७॥

प्रबन्धनगरादि वास्तु का वर्णन किया जाता है ।- इन्द्र आदि के क्रम से
 मैं ध्वजादि आठ गृहों को बतलाता हूँ । अग्नि दिशा में प्रक्षालन अनु सक् और
 आवास करे उसकी रसोई दक्षिण में, रस क्रिया, शय्या, घनुप, शास्त्र राक्षसादि
 दिशा में, अम्बुपेश नामक में धन भक्ति, सभ्य गन्धामास्त मे, सीम्य दिशा में
 धन और पशु तथा ईशान में दीक्षा तथा बरालय कराना चाहिए । स्वामी
 धर्मात् छे हाथ प्रमाण वाला विस्तार एवं आयाम से युक्त एवं पिण्डिकर वेश्म
 होना चाहिए ॥ १-२-६ ॥ तिगुना हस्त, संयुक्त करके आठ अंशों से भाग
 देवे, उसका शेष जो यह हो, उस से वायसान्त ध्वजादिक करे ॥ ४ ॥ दो-तीन
 चार छे-सात और आठ से जो घर होता है तथा मध्य में और अन्त में स्थित
 होता है वह सब का नाश करने वाला होना है ॥ ५ ॥ इस से नवम भाग में
 घर शुभ करने वाला माना गया है । उसके मध्य में मण्डप प्रशंसा के योग्य
 होता है या तो वह सम हो या द्विगुण आयत वाला होना चाहिए ॥ ६ ॥

प्रत्यगाप्ये चेन्दुयमे हट्ट एव गृहावली ।
 एकेकभुवनाख्यानि दिक्ष्वष्टाष्टकसंख्यया ॥७॥
 ईशाद्यदितिकान्तिनि फलान्येषां यथाक्रमम् ।
 भयं नारीचलत्वं च जयौ वृद्धिः प्रतापकः ॥८॥
 धर्मः कलिश्च नैख्यं च प्राग्द्वारेष्वेष्टसु द्रुवम् ।
 दाहोऽसुखं सुहृन्नाशो धननाशो भृतिर्धनम् ॥९॥
 शिल्पित्वं तनयः स्याच्च याम्यद्वारफलाष्टकम् ।
 आयुःप्राप्ताज्यसस्यानि धनशान्त्यर्थसंक्षयः ॥१०॥
 शीपं भीमं चापत्यं च जलद्वारफलानि च ।
 रागो मदतिमुख्यत्वं चार्थायुः कृशता मतिः ॥११॥
 मानश्च द्वारतः पूर्व उत्तरस्यां दिशि क्रमात् ॥१२॥

पश्चिम में आप्य और इन्दु यम हट्ट में ही गृहों की कतार होवे और
 एक-एक भुवन के नाम वाले दिशाओं में आठ की संख्या से ईश से आदि
 लेकर घदिति के अन्त तक होने चाहिए । प्रबन्ध सब के क्रम के अनुसार
 पल बताये जाते हैं, भय, नारी चलत्वं, जय, वृद्धि, प्रताप, धर्म, कलि और

नैऋत यह आठ प्राग्वर्गों में निश्चित फल होता है । इसी भाँति याम्य द्वारों का अर्थात् दक्षिण दिशा की ओर द्वारों का फल भी दाह, अनुन्न, मित्तनाश, धन नाश मृत्यु धन, शिथिलता और तनय होता है । अथ जनद्वार अर्थात् पश्चिम की ओर द्वारों का फल आयुः—प्राजापत्य, शम्य, धन, शान्ति, अर्थ संशय, शोष, भोग और अपत्य (सन्तति) होता है । उत्तर दिशा में द्वार का फल रोग, मद, आति (दुःख), अर्थ, आयु, कृपा, मति और मान होता है ॥ ७-८-९-१०-११-१२ ॥



४१-नगरादिकवास्तुकथनम्

नागरादिकवास्तुं च वक्ष्ये राज्यादिवृद्धये ।
 योजनं योजनार्धं वा तदर्थं स्थानमाश्रयेत् ॥१
 अर्ध्यर्ध्यं वास्तुनगरं प्राकाराढ्यं तु कारयेत् ।
 ईशादि त्रिशतदके पूर्वद्वारं च सूर्यके ॥२
 गन्धर्वाभ्यां दक्षिणे स्याद्द्वारग्ये पश्चिमे तथा ।
 सौम्यद्वारं सौम्यपदे कार्या हृष्टास्तु विस्तराः ॥३
 येनेभादि मुखं गच्छेत्कुपादिद्वारं तु पदकरम् ।
 छिन्नकर्णं विभिन्नं च चन्द्रार्धनिपुरं न हि ॥४
 वज्रमूनीमुखं नेष्टं सकृद्द्वित्रिमभागम् ।
 चापानं वज्रनागाभं पुरारम्भे हि शान्तिहृत् ॥५
 प्राच्यं विष्णुहृत्कर्कादीन्दत्वा दद्याद्द्विनि वली ।
 आग्नेये स्वर्णकर्मारान्पुरस्य विनिवेशयेत् ॥६
 दक्षिणे नृत्पवृत्तीनां वेत्याश्नीणां गृहाणि च ।
 नटानां चक्रिकादीनां कंबतदिश्च नैष्टते ॥७
 स्थानं रमायुधानां च कृपाणानां च वारुणे ।
 शौन्दिह्याः कर्मादिहृत्वा याम्यग्ये परिवर्षिणः ॥८

श्री ईश्वर बोले—राज्य आदि की वृद्धि के लिये यह नगर आदि के वास्तु को बतलाऊंगा । एक योजन या आधा योजन उसके लिये स्थान वा आश्रय लेना चाहिए । एक योजन ४ कोश का माना जाता है ॥ १ ॥ वास्तु नगर की भूचना करे और उस प्रकार अर्थात् चारो ओर की दोवार से युक्त बनवाना चाहिए । ईशादि से तीस कदम पर पूर्व में पूर्व द्वार गन्धर्वों से दक्षिण में होवे । उत्तर तथा पश्चिम में सौम्य द्वार हो और सौम्य पद में विस्तार वाले हृद होवे ॥ २-३ ॥ द्वार छे हाथ लम्बे—चौड़े होने चाहिए जिससे हाथी आदि भी सुख पूर्वक चले जावें । छिन्न कर्ण और विभिन्न आधे चन्द्रमा की आभा वाला अर्थात् आधे चन्द्रा जैसे आकार में बना हुआ पुर नहीं होना चाहिए ॥ ४ ॥ वज्र सूची के समान मुख वाला अर्थात् नुकीला और एक, दो या तीन समागम वाला द्वार अच्छा नहीं होता है । घनुष की सी आभा वाला या वज्र नाग के समान आभा से युक्त भी द्वार इष्ट नहीं है । पुर के आरम्भ करने के समय में शान्ति करने वाले को विष्णु, शिव और सूर्य आदि का पूजन करना चाहिए और इनको नमस्कार करके बलि भी देनी चाहिए । नगर में अग्निकोण में सुवर्ण के काम करने वाले लोकों निवेष्टित करना चाहिए । ॥ ५-६ ॥ (नगर की बसावट में दक्षिण दिशा में ऐसे मनुष्यों के गृह होने चाहिए जो नाचने-गाने की रोजी कमाते हों जैसे वेदया आदि होने हैं । नट-चक्रिक (कुम्हार) और कंबत्त जाति एवं व्यवसाय करने वालों को नगर के नैऋत कोण में बसाना चाहिए ॥ ७ ॥) रथ-प्रागुध (हथियार) और कृपाण (तलवार) इनके रहने का स्थान वारुण दिग्भाग में होना चाहिए । शौण्डिक (कलार) अर्थात् मदिरा बेचने वाले कर्माधिकृत अर्थात् नौकरी या मजदूरी करने वाले और परिकर्मियों को वायव्य कोण में बसाना चाहिए ॥ ८ ॥

ग्राहणा यतयः सिद्धाः पुण्यवन्तश्च चोत्तरे ।

फलाद्यादिविक्रयिण ईशाने च वणिग्जनाः ॥

पूर्वतश्च धलाध्यक्षा ग्रामेये विविधं बलम् ।

स्त्रीणां मादेशिनो दक्षे काण्डारान् श्रुते न्यसेत् ॥ १० ॥

पश्चिमे च महामातृग्रान्कोपपालांश्च कारुकान् ।
 उत्तरे दण्डनाथांश्च नायकद्विजसंकुलान् ॥११॥
 पूर्वतः क्षत्रियान्दक्षे वैश्याञ्शूद्रांश्च पश्चिमे ।
 दिक्षु वैद्यान्वाजिनश्च बलानि च चतुर्दिशम् ॥१२॥
 पूर्वेण चरलिङ्ग्यादीञ्शमशानादीनि दक्षिणे ।
 पश्चिमे गोधनाद्यं च कृषिकर्तृस्तथोत्तरे ॥१३॥
 न्यसेन्मलेच्छांश्च कोणेषु ग्रामादिषु तथा स्थितम् ।
 श्रिय वैश्रवणं द्वारि पूर्वतौ पश्यतां श्रियम् ॥१४॥
 देवादीनां पश्चिमतः पूर्वास्यानि गृहाणि हि ।
 पूर्वतः पश्चिमास्यानि दक्षिणे चोत्तराननान् ॥१५॥
 नाकेशविष्ण्वादिधाम रक्षार्थं नगरस्य च ।
 निर्देवतं पुरग्रामदुर्गगृहादिकचवत् ॥१६॥
 भुज्यते तत्पिशाचाद्यं रोगाद्यः परिभूयते ।
 नगरादि सदैवं हि जयदं भुक्तिमुक्तिदम् ॥१७॥

जो ब्राह्मण, यति, सिद्ध और पुण्य वाले लोग हों उन्हें उत्तर दिशा में बसावे । जो फल आदि के बेचने वाले वणिग्जन हों इन्हें ईशान दिशा में रखे ॥ ६ ॥ बल अर्थात् सेना के जो अध्यक्ष हों उन्हें पूर्व दिशा में तथा विभिन्न प्रकार की सेनाओं को आग्नेय दिशा में निवेशित करना चाहिए । जो स्त्रियों को आदेश करने वाले हों उन्हें दक्षिण भाग में और बाण धारियों को नैऋत दिशा में निवेशित करे ॥ १० ॥ पश्चिम दिशा में जो महामातृ अर्थात् प्रधान मन्त्री हों उनकी कोप (खजाना) के पालकों को और कारीगरों को बसावे अर्थात् इनके रहने का स्थान बनावे । उत्तर दिशा में दण्ड देने वाले स्वामियों को और नायक द्विज संकुलों को रखे ॥ ११ ॥ पूर्व में क्षत्रियों को दक्षिण में वैश्यों को और पश्चिम में शूद्रों को रखे । वैद्य-घोड़े और बल अर्थात् सेनाओं को चारों दिशाओं में रखना चाहिए ॥ १२ ॥ चरलिङ्गी आदि को पूर्व में और शमशान आदि को दक्षिण में स्थान देना चाहिए । शोधन आदि के लिये पश्चिम में और जो खेती के काम में परायण हों उन्हें उत्तर बिना में

स्थान देवे ॥ १३ ॥ म्लेच्छों को कोणों में रखने । ग्रामादि में भी इसी तरह की स्थिति करनी चाहिए । श्री को श्रीर कुवेर को पूर्व द्वार में स्थित करे । वे दोनों श्री को देखते रहें ॥ १४ ॥ देवादिका पश्चिम में पूर्व की ओर मुख वाले गृहादि होने चाहिए तथा पश्चिम की ओर मुख से युक्त पूर्व में हों श्रीर दक्षिण में जो हों उनके मुख उत्तर की ओर होने चाहिए ॥ १५ ॥ स्वर्ग के स्वामी इन्द्र और भगवान् विष्णु आदि के धाम नगर की रक्षा करने के लिये अत्यन्त आवश्यक होते हैं । कोई नगर हो या ग्राम-दुर्ग तथा गृह हो जिनमें कोई भी देवता का धाम नहीं है वह शिशाच आदि के द्वारा भोग के योग्य होता है और सदा रोग आदि के द्वारा अभिभूत रहा करते हैं । इस प्रकार से बसाये हुए नगर आदि सदा जय के देने वाले और भोग तथा मोक्ष के देने वाले हुआ करते हैं ॥ १६-१७ ॥

पूर्वेहि श्रीगृह प्रोक्तमानेय्यां वै महानसम् ।
 शयनं दक्षिणस्यां तु नैऋत्यामायुधाश्रयम् ॥१८॥
 भोजनं पश्चिमाया तु वायव्यां धान्यसंग्रहः ।
 उत्तरे द्रव्यसंस्थानमैशान्यां देवतागृहम् ॥१९॥
 चतुःशालं विशालं वा द्विशालं चैकशालकम् ।
 चतुःशालगृहाणां तु शालालिन्दकभेदतः ॥२०॥
 शतद्वयं तु जायन्ते पञ्चाशत्पञ्च तेष्वपि ।
 त्रिशालानि तु चत्वारि द्विशालानि तु पञ्चदश ॥२१॥
 एकशालानि चत्वारि एकालिन्दानि वच्मि च ।
 अष्टाविंशदलिन्दानि गृहाणि नगराणि च ॥२२॥
 चतुर्भिः सप्तभिश्चैव पञ्चपञ्चाशदेव तु ।
 षडलिन्दानि विंशैव अष्टाभिर्विंश एव हि ॥२३॥
 अष्टालिन्दं भवेदेवं नगरादौ गृहाणि हि ॥२४॥

पूर्व दिशा में श्री गृह अताया गया है । घर में सदा आग्नेय कोण में रखोई घर बनवाना चाहिए । शयन करने का घर दक्षिण दिशा में होवे और आयुष्यों के रखने का स्थान हमेशा नैऋत्य दिशा में रखना चाहिए ॥ १८ ॥

पश्चिम दिशा में भोजन करने का स्थान और धान्य आदि का संग्रह अर्थात् भाण्डार वायव्य कोण में रखना चाहिए । द्रव्यों के रहने का स्थान उत्तर में रखे और देवों का गृह ईशान कोण में बनाना चाहिए ॥ १६ ॥ चार शाला से युक्त, त्रिशाल, द्विशाल और एक शाल ऐसे चतुःशालाओं के गृहों के शाला और अलिन्द (दहलीज) के भेद से दो सौ होते हैं । उनमें भी पचपन त्रिशालाएँ होती हैं । चार द्विशालाएँ—पाँच प्रकार की एक शाला और चार एक अलिन्द वाली होती हैं । अष्टाईश अलिन्द हैं, गृह तथा नगर हैं जिन्हें बनला रहा है । चार और मात से पचपन ही छे अलिन्द अष्टाईश ही होते हैं । इस तरह से आठ अलिन्द होते हैं जो कि नगर आदि में गृह होते हैं । ॥ २०-२१-२२-२३-२४ ॥



४२—स्वायंभुवसर्गकथनम्

वश्ये भुवनकोपं च पृथ्वद्वीपादिलक्षणम् ।
 अग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च वपुष्मान्द्युतिमांस्तथा ॥१॥
 मेघा मेघातिथिर्भव्यः सवनः पुन एव च ।
 ज्योतिष्मान्दशमस्तेपां सत्यनामा सुतोऽभवत् ॥२॥
 प्रियव्रतसुताः ख्याताः सप्त द्वीपान्ददौ पिता ।
 जम्बूद्वीपमयाग्नीध्रे प्लक्षं मेघातिथेर्ददौ ॥३॥
 वपुष्मते शाल्मलं च ज्योतिष्मते कुशाह्वयम् ।
 क्रौञ्चद्वीपं द्युतिमते शाकं भव्याय दत्तवान् ॥४॥
 पुष्करं सवनायादादग्नीध्रोऽद्रासुते शतम् ।
 जम्बूद्वीपं पिता लक्षं तोभेर्दत्तं हिमाह्वयम् ॥५॥
 हेमकूटं किपुरुषे हरिवर्षाय नैपद्यम् ।
 इलावृते मेरुमध्यं रम्ये नीलाचलाश्रितम् ॥६॥
 हिरण्वते श्वेतवर्षं कुरूंस्तु कुरवे ददौ ।
 भद्राश्वाय च भद्राश्वं केतुमालाय पश्चिमम् ॥७॥

मेरोः प्रियव्रतः पुत्रानभिपिच्य ययौ वनम् ।

शालग्रामे तपस्तप्त्वा ययौ विष्ण्वालय नृपः ॥८॥

श्री अग्निदेव ने कहा—अब मैं स्वायम्भुव सगं का वर्णन बताऊँगा जिसमें भुवन कोष है और पृथिवी द्वीप आदि का लक्षण है । अग्नीध्र, अग्नि वाहु, वपुष्मान्, द्युतिमान्, मेघा, मेघातिथि, भव्य, सवन—ज्योतिष्मान् और दशम पुत्र सत्य नाम वाला हुआ था ॥ १-२ ॥ ये सब प्रिय व्रत राजा के पुत्र प्रसिद्ध हुए थे । इनको इनके पिता ने सात द्वीप दे दिये थे । अग्नीध्र को जम्बू द्वीप दे दिया था । लक्ष मेघातिथि को दिया था । वपुष्मान् पुत्र को शाल्मल द्वीप दिया था । ज्योतिष्मान् को कुशद्वीप दिया था । द्युतिमान् कौश्वद्वीप और भव्य को शाक द्वीप दिया ॥ ३-४ ॥ सवन नामक पुत्र को पुष्कर द्वीप दिया था । अग्नीध्र ने पुत्र को शत दिया । पिताने लक्ष जम्बूद्वीप दिया था नाभि को हिम नामक द्वीप दिया ॥ ५ ॥ किम्पुरुष को हेमभूम और हरि वर्ण के लिये नैपथ दिया था । सुन्दर इलावृत में नील पर्वत के आश्रित मेरु मध्य है ॥ ६ ॥ हिरण्वान् को श्वेत वर्ण और कुरु के लिये कुरुभों को दिया था । भद्राश्व के लिये भद्राश्व और केतुमाल के लिये पश्चिम दिया था ॥ ७ ॥ इस तरह से राजा प्रियव्रत अपने पुत्रों को अभिषिक्त करके मेरु के वन में चला गया था । शालग्राम में तपस्या करके फिर अन्त में राजा भगवान् विष्णु के धाम को चला गया था ॥ ८ ॥

यानि किंपुरुषाद्यानि ह्यष्ट वर्षाणि सत्तम ।

तेषां स्वाभाविकी सिद्धिः सुखप्राया ह्यत्यन्तः ॥९॥

जरामृत्युभयं नास्ति धर्माधर्मौ युगादिकम् ।

नाधर्मं मध्यमं तुल्या हिमाद्देशात्तु नाभितः ॥१०॥

ऋषभो मेरुदेव्यां च ऋषभाद्भरतोऽभवत् ।

ऋषभो दत्तश्रीः पुत्रे शालग्रामे हरि गतः ॥११॥

भरताद्भारतं वर्षं भरतात्सुमतिस्त्वभूत् ।

भरतो दत्तलक्ष्मोकः शालग्रामे हरि गतः ॥१२॥

स योगी योगप्रस्थाने वक्ष्ये तच्चरितं पुनः ।
 सुमतेस्तेजसस्तस्मादिन्द्रद्युम्नो व्यजायत ॥१३॥
 परमेष्ठी ततस्तस्मात्प्रतीहारस्तदन्वयः ।
 प्रतीहारात्प्रतीहर्ता प्रतिहतुर्भुवस्ततः ॥१४॥
 उद्गीतोऽथ च प्रस्तारो विभुः प्रस्तारतः सुतः ।
 पृथुश्चैव ततो नक्तो नक्तस्यापि गवः सुतः ॥१५॥

जो किम्पुरुष आदि हैं वे आठ वर्ष होते हैं । हे सत्तम ! उसकी बिना ही मल के सुख प्राया स्वभाव से ही होने वाली मिट्टि हुमा करती है ॥ ६ ॥ वहां बुझाये और मौत का कोई भय नहीं होता है । धर्म और अधर्म और युग आदि भी नहीं है । न वहां कोई अधर्म है और न मध्यम अर्थात् सभी उत्तम एवं समाज श्रेणी वाले हुमा करते हैं । हिम देश से नाभि और नाभि से मेरु देवी में ऋषभ हुमा । फिर ऋषभ से भरत हुमा था । ऋषभ ने अपनी सारी श्री पुत्र को दे दी और वह शालग्राम में हरि की शरण चला गया था ॥ १०-११ ॥ फिर भरत से ही यह भारत वर्ष हुआ था । भरत के सुमति पुत्र उत्पन्न हुआ । भरत भी अपना सर्वस्व पुत्र को देकर शालग्राम में हरि के शरण में चला गया था । वह योगी था और उसने योग में प्रस्थान किया था । उसका चरित बतलाऊंगा । प्रतीहार से प्रतीहर्ता हुमा । प्रतीहर्ता का पुत्र उद्गीत और प्रस्तार हुमा । प्रस्तार का पुत्र विभु उत्पन्न हुआ । उसका पुत्र पृथु और पृथु में नक्त हुमा । नक्त का पुत्र गव नाम का उत्पन्न हुआ था । ॥ १२-१३-१४-१५ ॥

नरो गयस्य तनयस्तत्पुत्रोऽभूद्विराट् ततः ।
 तस्य पुत्रो महावीर्यो धीमांस्तस्मादजायत ॥१६॥
 महान्तस्तत्सुतश्चाभून्मनस्यस्तस्य चाऽऽत्मजः ।
 त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजा रजा तस्याप्यभूत्सुतः ॥१७॥
 सत्यजिद्रजस्तस्य जज्ञे पुत्रशतं मुने ।
 विश्वज्योतिः प्रधानास्ते भारतं संविधायितम् ॥१८॥
 कृतसेतादिसर्गेण सर्गः स्वायंभुवः स्मृतः ॥१९॥

गय का पुत्र नर उत्पन्न हुआ था और फिर उसका पुत्र विराट् नाम वाला हुआ । विराट् का पुत्र महावीर्यं हुआ और इसका पुत्र धीमान् पैदा हुआ था ॥ १६ ॥ उस धीमान् का पुत्र महान्त नाम वाला हुआ और इसका पुत्र मनस्य नाम धारी उत्पन्न हुआ था । इनका पुत्र त्वष्टा हुआ और त्वष्टा का विरजा पुत्र हुआ । विरजा का रज नामक पुत्र हुआ ॥ १७ ॥ रज का पुत्र सत्यजित् हुआ और उस सत्यजित् के सौ पुत्र उत्पन्न हुए । उनमें विश्वज्योति प्रधान था । इन्होंने इस भारत को बड़ा दिया था ॥ १८ ॥ इस प्रकार सत्ययुग और त्रेता आदि के सर्ग से स्वायम्भुव सर्ग कहा गया है ॥ १९ ॥



४३-भुवनकोशकथनम्

जम्बूद्वीपाद्द्वीपो शाल्मलिश्चापरो महान् ।
 कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चेति सप्तमः ॥१॥
 एते द्वीपाः समुद्रंस्तु सप्त सप्तभिरावृताः ।
 लवणेषुधुमुरासपिर्दधिदुग्धजलैः समम् ॥२॥
 जम्बूद्वीपा द्वीपमध्ये तन्मध्ये मेरुश्चिह्नितः ।
 चतुरसीतिसाहस्रो भूयिष्ठः षोडशाद्रिराट् ॥३॥
 द्वाविंशन्मूध्नि विस्तारात्षोडशाय सहस्रवान् ।
 भूयस्तस्यस्य शलोऽसी कणिकाकारसंस्थितः ॥४॥
 हिमवान्हेमकूटश्च निपद्यश्चास्य दक्षिणे ।
 नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः ॥५॥
 लक्षप्रमाणी द्वौ मध्ये दश हीनास्तथाऽगरे ।
 सहस्र द्वितयोच्छ्रायास्तावद्विस्तारिणश्च ते ॥६॥
 भारतं प्रथम वर्षं ततः किंपुर्यं स्मृतम् ।
 हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरादक्षिणतो द्विज ॥७॥
 रम्पकं चोत्तरे वर्षं तथैवान्याद्विर्गमयम् ।
 उत्तराः कुरवश्चैव यथा ये भारतं तथा ॥८॥

अब भुवन कोश का वर्णन किया जाता है । अग्निदेव बोले—जम्बू और लक्ष नामों वाले दो द्वीप हैं और एक तीसरा शात्मलि नाम का महान् द्वीप है । इनके अतिरिक्त कुश, क्रौञ्च, शक्र और सातवां पुष्करद्वीप है । ॥ १ ॥ ये सात द्वीप मान समुद्रों से आवृत (घिरे हुए) हैं । ये सात समुद्र हैं लवण सागर अर्थात् खारी जल वाला समुद्र सब से पहिला है । इसके बाद ईक्ष का अर्थात् ईश्वर के रेन का नागर, मुरा का समुद्र, घृत समुद्र, दही का सागर, दूध का समुद्र और फिर जल का सागर है । इस तरह सात समुद्र हैं ॥ २ ॥ समस्त द्वीपों के मध्य में जम्बू द्वीप है । उस द्वीप के मध्य में बहुत ऊँचा मेरु है । यह बहुत बड़ा चौरामी महान्न वाला है और मोलह पर्वतों का राजा है ॥ ३ ॥ मस्तक पर वस्त्रोप विस्तार में मोलह महान्न वाला है । फिर इस का यह पर्वत है जो कृषिका के आकार से युक्त होकर स्थित रहता है । ॥ ४ ॥ हिमवान्-हेमकूट और निषध इसके दक्षिण में हैं । नील-श्वेत और शृङ्गी पर्वत इसके उत्तर में विद्यमान रहते हैं ॥ ५ ॥ एक लक्ष प्रमाण वाले दो मध्य में हैं । दश कुछ कम प्रमाण वाले हैं तथा दूसरे दो महान्न ऊँचाई हैं और वे उतने ही विस्तार वाले हैं ॥ ६ ॥ सब से प्रथम भारत वर्ष है । उसके पश्चात् किम्पुरुष नामक वर्ष है । हे द्विज ! उभी प्रकार फिर अन्य हरि वर्ष हैं जोकि मेरु के दक्षिण में स्थित हैं ॥ ७ ॥ रम्यक वर्ष उत्तर दिशा में है और इसी भाँति दूसरा हिरण्यक वर्ष नामक एक वर्ष है । जिस प्रकार से भारत वर्ष है उसी तरह उत्तरा और कुरा वर्ष हैं ॥ ८ ॥

नवसाहस्रमेकैव मेतेषां मुनिमत्तम ।

इलावृतं च तन्मध्ये सौवर्णो मेरुश्च्छ्रुतः ॥९॥

मेरोश्चतुर्दिश तस्य नवसाहस्रविस्तृतम् ।

इलावृतं महाभाग चत्वारश्वाक्ष पर्वताः ॥१०॥

विष्कम्भा रचिता मेरोर्योजनायुनविस्तृताः ।

पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः ॥११॥

विपुलः पश्चिमे पार्श्वे मुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृतः ।

कदम्बस्तेषु जम्बूश्च विप्लो वट एव च ॥१२॥

एकादशशतायामाः पादपा गिरिकैतवः ।

जम्बूद्वीपेति संज्ञा स्यात्फलं जम्बूवा गजोपमम् ॥१३॥

जम्बूनदी रसेनास्यास्तिवदं जाम्बूनद परम् ।

सुपाश्वं पूर्वतो मेरोः केतुमालस्तु पश्चिमे ॥१४॥

वनं चैत्ररथं पूर्वे दक्षिणे गन्धमादनः ।

सिताम्भश्चक्रमुज्जाद्याः पूर्वतः केशराचलाः ॥१५॥

हे मुनि श्रेष्ठ ! इन में एक-एक का नी सहस्र प्रमाण होता है और इलायत है इसके मध्य में सुवर्ण का ऊँचा मेरु पर्वत है ॥ ९ ॥ मेरु की चारों दिशाओं में वहाँ पर नी सहस्र विस्तार वाला इलायत है । हे महाभाग ! वहाँ चार अद्व पर्वत हैं ॥ १० ॥ दश सहस्र योजन के विस्तार वाले मेरु के निर्मित विष्कम्भ (अर्गला) हैं । इसके पूर्व दिशा की ओर मन्दर पर्वत है और दक्षिण दिशा में गन्ध मादन नाम वाला पर्वत स्थित रहता है ॥ १० ॥ पश्चिम दिशा में विपुल नाम वाला और पार्श्व में उत्तर में सुपाश्व नामक विद्यमान है । उन में ग्यांगह सी आयाम (फंलाव) वाले पर्वत के केतु स्वरूप में स्थित कदम्ब, जामुन, पीपल और वट ये वृक्ष हैं । वहाँ जम्बू द्वीप में हाथी के समान जामुन के फल होते हैं इसी लिये इस द्वीप का नाम भी जम्बू द्वीप पड गया है ॥ १२-१३ ॥ इसके विशाल फलों के रस से जम्बू नदी बन जाती है और यह फिर महान् जम्बू नदी हो जाना है । मेरु के पूर्व में सुपाश्व है और पश्चिम में केतुमाल स्थित है ॥ १४ ॥ पूर्व दिशा में चैत्ररथ नामक एक वन है तथा दक्षिण दिशा में गन्धमादन पर्वत है । पश्चिम दिशा में वैभ्राज नामक पर्वत है और सौम्य दिशा में मन्दन वन है और सरोवर हैं ॥ १५ ॥ उन सरोवरों के नाम अरुणोद्, महाभद्र, शीतोद, मानस, सिताम्भ, चक्र मुञ्ज आदि हैं । पूर्व की ओर केशर नामक पर्वत है ॥ १६ ॥

दक्षिणेऽद्रेस्त्रिकूटाद्याः शिखिवासमुखा जले ।

शंखकू-।दयः सौम्ये मेरो च ब्रह्माणः पुरी ॥१७॥

चतुर्दश सहस्राणि योजनानां च दिक्षु च ।

इन्द्रादिलोकपालानां समन्ताद् ब्रह्माणः पुरी ॥१८॥

विष्णुपादात्प्लावयित्वा चन्द्रं स्वगत्पितृत्यपि ।
 पूर्वेण शीता भद्राश्वाच्छैलाच्छैलाद्गताऽर्णवम् ॥१६॥
 तथैवालकनन्दाऽपि दक्षिणेनैव भारतम् ।
 प्रयाति सागरं कृत्वा सप्तभेदाऽथ पश्चिमम् ॥१७॥
 अग्निं च चक्षुः सौम्याऽग्निं भद्रोत्तरकुरुनपि ।
 आनीलनिपधायामौ माल्यवद्गन्धमादनौ ॥१८॥
 तयोर्मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः ।
 भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा ॥१९॥
 पत्राणि लोकपद्मस्य मर्यादाशैलब्राह्मणतः ।
 जठरो देवकुण्ठश्च मर्यादापर्वतावुभौ ॥२०॥
 तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिपधायतौ ।
 गन्धमादनकंलासी पूर्ववच्चाऽऽयतावुभौ ॥२१॥

पर्वत के अर्थात् मेरु गिरि के दक्षिण में चित्रकूट आदि हैं और वरुण
 की ओर शिखिवास मुख हैं । सौम्य अर्थात् पूर्व दिशा में शंख क्रूर आदि हैं
 और मेरु में ब्रह्मा की पुत्री स्थित है ॥ १७ ॥ दिशाओं में चौदह हजार योजन
 तक इन्द्र आदि लोकपालों के पुर ब्रह्मा की पुरी के चारों ओर स्थित हैं ।
 ॥ १८ ॥ भगवान् विष्णु के चरण से निकल कर पूर्व दिशा से चन्द्रमा को
 प्लावित करके स्वर्ग से शीता गिरती है फिर भद्राश्च पर्वत पर आकर उस से
 बढ़कर समुद्र में गई है ॥ १९ ॥ उसी भाँति से दक्षिण दिशा की ओर से
 अलकनन्दा नदी भारत वर्ष को जाती है और सात भेदों वाली यह सागर को
 भी सात प्रकार का कर देती है । पश्चिम, अग्नि, चक्षुः सौम्याग्नि, भद्र,
 उत्तर, कुरु ये उनके नाम हैं । नील और निपघ तक आयाम (विस्तार)
 वाले माल्यवान् और गन्धमादन ये दो पर्वत हैं ॥ २०-२१ ॥ इन दोनों के
 बीच में रहने वाला मेरु पर्वत है जो कर्णिका के आकार से संस्थित रहता है ।
 भारत, केतुमाल, भद्राश्च और कुछ ये इस लोक रूपी कमल के पत्र यानी दल
 हैं और बाहिर से पर्वत ही मर्यादा स्वरूप हैं । जठर और देव कुण्ठ ये दो
 पर्वत होते हैं ॥ २२-२३ ॥ वे दोनों दक्षिण और उत्तर तक आयाम वाले

तथा नील और निपद्य पर्यन्त चौड़े है । गन्धमादन तथा कैलाश भी पूर्व की भाँति दोनों ग्राह्य (विस्तृत) हैं ॥ २४ ॥

अशीतियोजनायामावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ।

निपद्यः पारियात्रश्च मर्यादापर्वतादुभौ ॥२५॥

मेरोः पश्चिमदिग्भागे यथा पूर्वं तथा स्थितौ ।

द्विशृङ्गी रुधिरश्चैव उत्तरो वर्षपर्वतौ ॥२६॥

पूर्वपश्चाद्यतावेतावणवान्तर्व्यवस्थितौ ।

जाठराद्याश्च मर्यादाशैला मेरोश्चतुर्दिशम् ॥२७॥

केशरादिपु याः श्रेण्यस्तासु सन्ति पुराणि हि ।

लक्ष्मीविष्णवग्निसूर्यादिदेवानां मुनिसत्तम ॥२८॥

भीमानां स्वर्गधमर्णां न पापास्तत्र यान्ति च ।

भद्रश्चेऽस्ति हयग्रीवो वराहः केतुमालके ॥२९॥

भारते कूर्मरूपी च मत्स्यरूपः कुरुष्वपि ।

विश्वरूपेण सवत् पूज्यते भगवान्ह्रिः ॥३०॥

किपुरुषाद्यष्टसु क्षुद्भीतिशोकादिकं न च ।

चतुर्विंशतिसाहस्रं प्रजा जीवन्त्यनामयाः ॥३१॥

कृतादिकल्पना नास्ति भीमान्यम्भांसि नाम्बुदाः ।

सर्वेष्वेतेषु वर्षेषु सप्त सप्त कुलाचलाः ॥३२॥

नद्यश्च शतशस्तेभ्यस्तीर्थभूताः प्रजज्ञिरे ।

भारते यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि वच्मि ते ॥३३॥

पश्ची योजन आयाम वाले तथा समुद्र के अन्तर्व्यवस्थित अर्थात् सागर के मध्य में स्थित निपद्य और पारियात्र दो मर्यादा पर्वत हैं ॥ २५ ॥ जैसे पूर्व में स्थित हैं । वैसे ही मेरु के पश्चिम दिशा के भाग में भी स्थित होते हैं । विशृङ्ग और रुधिर ये उत्तर के पर्व पर्वत हैं ॥ २६ ॥ ये दोनों समुद्र के मध्य में व्यवस्थित पूर्व और पश्चिम तक विस्तृत हैं और जाठर आदि मर्यादा बनाने वाले पर्वत मेरु गिरि के भागों और स्थित हैं ॥ २७ ॥ हे मुनियों में परम श्रेष्ठ ! केशर आदि में जो श्रेणियाँ हैं उन जतारों में लक्ष्मी, विष्णु,

अग्नि घोर सूर्य आदि देवताओं के पुर होने हैं अर्थात् निवाम के नगर स्थित रहते हैं ॥ २८ ॥ भूमि में होने वालों के पात्र इन स्वर्ग के घर्म वालों के निकट नहीं पहुँचते हैं । भद्राश्व में हयग्रीव भगवान् हैं और केतुमाल में वराह भगवान् स्थित रहते हैं ॥ २९ ॥ इस भारत वर्ष में कूर्म का रूप धारण करने वाले भगवान् रहा करते हैं और कुछ वर्षों में मत्स्यावतार धारण करने वाले मत्स्य के रूप में स्थित रहते हैं । विश्व के रूप से तो भगवान् हरि मभी जगहों में पूजे जाया करते हैं ॥ ३० ॥ किम्पुह्य आदि आठों में भूव-भय और शोक आदि नहीं होने हैं । चौबीस हजार वर्ष पर्यन्त प्रजा बिना किसी भी रोग प्रादि के जीवित रहा करती हैं ॥ ३१ ॥ वहाँ कृत्त युग प्रादि की कोई भी कल्पना नहीं होती है और भूमि में होने वाले जल तथा अम्बुद (मेघ) भी नहीं हैं । इन सम्पन्न वर्षों में सात-आठ कुलाचल अर्थात् कुल पर्वत होने हैं ॥ ३२ ॥ और उन पर्वतों में संकड़ों तीर्थों के स्वरूप में रहने वाली नदियाँ ममृताम्बु हुई हैं । अब मैं जो इस भारत वर्ष में तीर्थ हैं उनके विषय में वर्णन करता हूँ कि कौन-कौन से तीर्थ यहां पर विद्यमान हैं ॥ ३३ ॥



४४—तीर्थमाहात्म्यम्

माहात्म्यं सर्वतोर्थाणां वक्ष्ये यद् भुक्तिमुक्तिदम् ।
यस्य हस्ती च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ॥१॥
विद्या तपश्च कीर्तिञ्च स तीर्थफलमश्नुते ।
प्रतिग्रहादुपावृत्तो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ॥२॥
निष्पापस्तीर्थयात्री तु सर्वयज्ञफलं लभेत् ।
अनुषोष्य त्रिरात्राणि तीर्थान्यनभिगम्य च ॥३॥
अदत्त्वा काञ्चन गाश्च दरिद्रो नाम जायते ।
तोर्थाभिगमने तत्स्याद्यद्यत्नेनाऽऽप्यते फलम् ॥४॥
पुष्करं परमं तीर्थं सांनिध्यं हि तिसंध्यकम् ।
दशकोटिसहस्राणि तीर्थानां विप्र पुष्करे ॥५॥

ब्रह्मा सह सुरैरास्ते मुनयः सर्वमिच्छन्तः ।

देवाः प्राप्ताः सिद्धिमल्ल स्नाताः पितृसुरार्चकाः ॥६॥

अश्वमेधफलं प्राप्य ब्रह्मलोकं प्रयान्त ते ।

कातिक्यामन्नदानाञ्च निर्मलो ब्रह्मलोकभाक् ॥७॥

पुष्करे दुष्कर गन्तुं पुष्करे दुष्कर तपः ।

दुष्करं पुष्करे दानं वस्तु चैव सुदुष्करम् ॥८॥

श्री अग्नि देव ने कहा—अब मैं समस्त तीर्थों का माहात्म्य बतलाता हूँ जो सभी प्रकार के भोगों का तथा मोक्ष के देने वाले हैं । जिस मानव के दोनों हाथ—दोनों पैर और मूली भाँति सयम में रहने वाला मन होता है तथा विद्या तप और कीर्ति भी विद्यमान है वही तीर्थों के फलों की प्राप्ति किया करता है । प्रतिग्रह धर्मात् दूसरों के द्वारा दिया हुआ दान से उपावृत्त है यानी दान ग्रहण करने वाला नहीं है तथा थोड़ा हलका आहार करने वाला और इन्द्रियों को जीत कर अपने वश में रखने वाला होता है वह समस्त पापों से रहित तीर्थों की यात्रा करने वाला सभी यज्ञों का फल प्राप्त किया करता है । तीन रात्रि तक व्रतोपवाम न करके और तीर्थों की यात्रा न करके तथा सुवर्ण एवं गोश्रोत्र का दान न करके ही मनुष्य दरिद्र हुआ करता है । तात्पर्य यह है कि दरिद्रता भगाने के लिये इन सब का करना परम आवश्यक है । तीर्थों की गमन करने से जो परम फल प्राप्त हुआ करता है वह यज्ञों के करने के समान होना है धर्मात् जो यज्ञ से फल मिलता है वही तीर्थाभिगमन से मिला करता है ॥ १-२-३-४ ॥ हे विप्र ! पुष्कर परम उत्तम तीर्थ है । इसमें तीन सन्ध्या तक रहना अत्यन्त फल देने वाला होता है । पुष्कर में दस करोड़ गहस तीर्थ निवास किया करते हैं धर्मात् इन सब का फल यहाँ प्राप्त हो जाता है ॥ ५ ॥ यहाँ देवों के साथ ब्रह्मा जी रहते हैं । गर्वें कुछ की इच्छा रखने वाले मुनिगण देव वृन्द यहाँ पर स्नान कर . और पितर तथा गुरों का अर्चन करके तिष्ठि को प्राप्त कर चुके हैं । ६ ॥ वे सभी अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त कर गीये ब्रह्म लोक में जाया करते हैं जो कात्तिक मास की पूर्णिमा तिथि में यज्ञ का दान यहाँ करते हैं । ऐसे पुरुष निर्मल होकर ब्रह्मलोक के गमन के

पूरे अधिकारी बन जाते हैं ॥ ७ ॥ पुष्कर में गमन करना बड़ा कठिन है—
पुष्कर में तप करना भी बहुत कठिन होता है । पुष्कर तीर्थ में दान देना और
वहाँ निवास करना महान् कठिन कार्य है ॥ ८ ॥

तत्र वासाञ्जवाच्छ्राद्धात्कुलानां शनमुद्धरेत् ।
जम्बूमागं च तत्रैव तीर्थं तण्डुलिकायमम् ॥८॥
कण्वाश्रमं कोटितीर्थं नर्मदा चाबुदं परम् ।
तीर्थं चर्मण्वती सिन्धुः सोमनाथः प्रभासकम् ॥९॥
सरस्वत्यङ्घ्रिसङ्गश्च सागरं तीर्थमुत्तमम् ।
पिण्डारकं द्वारका च गोमती सर्वसिद्धिदा ॥१०॥
भूमितीर्थं ब्रह्मतुङ्गं तीर्थं पञ्चनदं परम् ।
भीमतीर्थं गिरान्द्रश्च देविका पापनाशिनी ॥११॥
तीर्थं विनशनं पुण्यं नागोद्भेदमघार्दनम् ।
तीर्थं कुमारकोटिश्च सर्वदानीरितानि च ॥१२॥
कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम् ।
य एवं सततं ब्रूयात्सोऽमलः प्राप्नुयाद्विभम् ॥१३॥
तत्र विष्णुवादयो देवास्तत्र वासादरि व्रजेत् ।
सरस्त्वयां संनिहित्यां स्नानकृद्ब्रह्मलोकभाक् ॥१४॥

वहाँ पुष्कर तीर्थ में निवास करने से तथा पुष्कर में रह कर मन्त्र जाप करने से एवं यहाँ पर रह कर श्राद्ध करने से मनुष्य अपने सौ कुलों का उद्धार कर दिया करता है । वहाँ पर ही जम्बू मागं है तथा तण्डुलिकायम तीर्थ भी स्थित रहता है ॥ ८ ॥ पुष्कर में कण्वाश्रम है—कोटि तीर्थ है, नर्मदा और परम अबुद है । पुष्कर राज में चर्मण्वती तीर्थ है, सिन्धु—सोमनाथ और प्रभाम तीर्थ भी विद्यमान है ॥ ९ ॥ सरस्वती और समस्त मिद्वियों की देने वाली गोमती—भूमि तीर्थ, ब्रह्म तुङ्ग और पञ्चनद परम तीर्थ, भीम तीर्थ, गिरीन्द्र, पापों के नाश करने वाली देविका ये सब तीर्थ विद्यमान हैं ॥ १०—१२ ॥ विनशन तीर्थ—नागोद्भेदमघार्दन पुण्य तीर्थ अर्थात् पाप नाशक नागोद्भेद कुमार कोटि तीर्थ है जो सब कुल प्रदान करने वाले कहे गये हैं ॥ १३ ॥ कुरु

क्षेत्र तीर्थ में जाऊँगा और कुरुक्षेत्र में निवास करूँगा या करता हूँ जो इस तरह सबंदा कहता है वह मलों से रहित हो जाता है और उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुआ करती है ॥ १४ ॥ यहाँ पर विष्णु आदि समस्त देव विराजमान रहते हैं । वहाँ वास करने से हरि की सन्निधि प्राप्त होती है । समीप में स्थित सरस्वती नदी में स्नान करके वाला ब्रह्मलोक को जाता है ॥ १५ ॥

पांशवोऽपि कुरुक्षेत्रे नयन्ति परमां गतिम् ।
 धर्मतीर्थं सुवर्णाख्यं गङ्गाद्वारमनुत्तमम् ॥१६
 तीर्थं कनखलं पुण्यं भद्रकर्णहृदं तथा ।
 गङ्गासरस्वतीसङ्गं ब्रह्मावर्तमघादनम् ॥१७
 भृगुतुङ्गं च कुब्जाग्रं गङ्गोद्भेदमघान्तकम् ।
 वाराणसी वर तीर्थं मविमुक्तमनुत्तमम् ॥१८
 कपालमोचन तीर्थं तीर्थराज प्रयागकम् ।
 गोमतीगङ्गायाः सङ्गं गङ्गा सर्वत्र नाकदा ॥१९
 तीर्थं राजगृहं पुण्यं शालग्राममघान्तकम् ।
 वटेशं वामन तीर्थं कालिकासङ्गमुत्तमम् ॥२०
 लीहित्यं करतोयाख्यं शोणं चाथर्पण परम् ।
 श्रीपर्वतं कोल्लगिरिः सह्याद्रिमलयो गिरिः ॥२१
 गोदावरी तुङ्गभद्रा कावेरी वरदा नदी ।
 तापी पयोष्णी रेवा च दण्डकारण्यमुत्तमम् ॥२२
 कालंजर मुञ्जवटं तीर्थं सूर्पारकं परम् ।
 मन्दाकिनी चित्रवूटं शृङ्गवेरपुरं परम् ॥२३
 अयन्ती परमं तीर्थं मयोध्या पापनाशिनी ।
 नैमिषं परमं तीर्थं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥२४

जो नोपातिनीय कर्म करने वाले होते हैं वे भी कुरुक्षेत्र में निवास करने से परम गति को प्राप्त होते हैं । धर्म तीर्थ—सुवर्ण नामक दक्ष गङ्गा द्वार—जनखल तीर्थ—परम पुण्य भद्रकर्ण हृद—गङ्गा और सरस्वती का सङ्गम—ब्रह्मावर्त मघादन तीर्थ, भृगु तुङ्ग, कुब्जाग्र, गङ्गोद्भेद मघान्तक, पाप नाशक

गङ्गोद्बेद तीर्थं, वाराणसी श्रेष्ठ तीर्थं जो अविमुक्त लोगों के लिये परम श्रेष्ठ है । कपाल मोचन तीर्थं, तीर्थों का राजा प्रयाग-गोमती और गङ्गा दोनों का सङ्गम वाला तीर्थ है । गङ्गा सभी जगह स्वर्ग प्रदान करने वाली नदी है ॥ १६-१७-१८-१९ ॥ राजगृह पुण्य तीर्थं-शालग्राम तीर्थं जो अघों (पापों) का नाशक है । वटेश-वामन तीर्थं, उत्तम कालिका का सङ्गम, लोहित्य, करतोय नामक तीर्थं, शोण-ऋषभ, श्री पर्वत, कोल्लगिरि, सह्याद्रि, मलय गिरि, गोदावरी, तुङ्गभद्रा, कावेरी, वरदा नदी, तापी, पयोप्प्ली, रेवा और परम उत्तम दण्डकारण्य, कालञ्जर, - मुञ्जवट, सूर्पारिक, - मन्दाकिनी, चित्रकूट, शृङ्गवेरपुर, परम तीर्थं अवन्ती पापों के नाश करने वाली अयोध्या, नैमिष परम तीर्थं जो भोग और मोक्ष दोनों का देने वाला है । इस प्रकार से ये सब अनेक तीर्थं भारत वर्ष में हैं जिन में जाने से समस्त पापों का क्षय होता है ॥ २०-२१-२२-२३-२४ ॥



४५-गङ्गा-माहात्म्यम्

गङ्गा-माहात्म्यमाध्यास्ये सेव्या सा भुक्तिमुक्तिदा ।

येषां मध्ये याति गङ्गा ते देशाः पावना वराः ॥१

गतिर्गङ्गा तु भूतानां गतिमन्वेपतां सदा ।

गङ्गा तारयते चाभी वंशो नित्यं हि सेविता ॥२

चान्दायणसहस्राच्च गङ्गाम्भः पानमुत्तमम् ।

गङ्गा मासं तु ससेव्य सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥ ३

सकलाघहरी देवी स्वर्गलोकप्रदायिनी ।

यावदस्मि च गङ्गायां तावत्स्वर्गे स तिष्ठति ॥४

अन्धादयस्तु तां सेव्य देव्यं गच्छन्ति तुल्यताम् ।

गङ्गातीर्थं समुद्रमृतमृद्धारी सोऽघहाज्ज्वत् ॥५

दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तया गतेतिकीर्तनात् ।

पुनाति पुण्यपुरुषाञ्छतशोऽय सहस्रशः ॥६

श्री अग्निदेव ने कहा—अब श्री गङ्गा का माहात्म्य कहूँगा जो गङ्गा सेवन करने के योग्य है और भोगों तथा मोक्ष दोनों के प्रदान करने वाली है। जिन देशों में होकर गङ्गा नदी जाया करती है वे देश परम पावन देश तथा श्रेष्ठ देश हो जाते हैं ॥ १ ॥ जो प्राणी अपने उद्धार की खोज किया करते हैं उन समस्त प्राणियों के लिये गङ्गा सर्वदा गति देने वाली होती है। नित्य जो गङ्गा के जल का सेवन किया करते हैं उनके दोनों वंशों को गङ्गा तार देती है ॥ २ ॥ जो पापों का प्रायश्चित्त एक सहस्र चान्द्रायण व्रत करने से होता है उससे भी उत्तम श्री गंगा के जल का पात्र है अर्थात् उस एक हजार चान्द्रायण व्रत से अधिक इसका फल होता है। एक मास तक गंगा नदी के जल का सेवन करना चाहिए। इससे समस्त यज्ञों का फल प्राप्त हो जाता है ॥ ३ ॥ गंगा समस्त पापों का हरण करने वाली है। गंगा स्वर्ग लोक प्रदान करती है। गंगा नदी में मृत प्राणी की हड्डी जब तक रहती है तब तक वह प्राणी स्वर्गलोक में निवास किया करता है ॥ ४ ॥ जो नेत्रों से अन्धे तथा अन्य अंगों से हीन होते हैं वे इस गंगा का सेवन करके देवों के तुल्य सुन्दर शरीर वाले हो जाया करते हैं। गंगा तीर्थ से उत्पन्न मृत्तिका को धारण करने वाला व्यक्ति पापों का नाश करने वाला सूर्य के समान होता है। ॥ ५ ॥ गंगा के दर्शन से तथा गंगा जल के स्पर्श करने से और गंगा जल के पान करने से एवं मुख से 'गंगा' इत नाम के उच्चारण मात्र से गंगा सर्वत्र एवं गह्वरों पूष्यवान् पुष्पों को पवित्र कर देती है ॥ ६ ॥



४६-प्रयागमाहात्म्यम्

यक्ष्ये प्रयागमाहात्म्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं परम् ।
 प्रयागे ब्रह्मविष्णवाद्या देवा मुनियराः स्थिताः ॥१॥
 गरितः गामराः सिद्धा गन्धर्वाप्सरसरसया ।
 सप्त त्रीण्यग्निगुण्टानि तैरां मध्ये तु आहूयौ ॥२॥

वेगेन समतिक्रान्ता सर्वतीर्थपुरस्कृता ।
 तपनस्य सुता तत्र त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥३॥
 गङ्गाप्रमुखायोर्मध्यं पृथिव्या जघनं स्मृतम् ।
 प्रयाग जघनस्यान्तरूपस्थमृषयो विदुः ॥४॥
 प्रयागं सप्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतरावुभौ ।
 तीर्थं भोगवती चं व वेदी प्रोक्ता प्रजापतेः ॥५॥
 तत्र वेदाश्च यज्ञाश्च मूर्तिमन्तः प्रयागके ।
 स्तवनादस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि ॥६॥
 मृत्तिकालम्भनाद्वाऽपि सर्वपापं प्रमुच्यते ।
 प्रयागे संगमे दानं श्राद्धं जप्यादि चाक्षयम् ॥७॥

श्री अग्निदेव बोले—अब मैं परम भुक्त और मुक्ति को प्रदान करने वाले प्रयाग के माहात्म्य को बताऊँगा । प्रयागराज में ब्रह्मा-विष्णु आदि समस्त देव गण और मुनिवर स्थित रहा करते हैं ॥ १॥ देवों के सहित समस्त नदियाँ, सिद्धगण, गन्धर्व, अश्वरायें प्रयाग में विद्यमान रहा करते हैं । वहाँ पर तीन अग्निकुण्ड हैं । उनसे मध्य में जाह्नवी स्थित है ॥ २॥ यह बड़े तेज वेग से वहाँ बह रही है और समस्त तीर्थ उसके साथ रहा करते हैं । वहाँ सूर्य की पुत्री यमुना भी बहती है जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥ ३॥ गंगा और यमुना इन दोनों नदियों के बह कर चलने में इनके मध्य का भाग जो होता है वह पृथ्वी का जघन (जाँघ) कहा गया है । उन जघनों के बीच में प्रयाग उपस्थ है (जननेन्द्रिय) उप अर्थात् समीप में रहने वाली इन्द्रिय ही उपस्थ कहा जाता है । ऐसा ऋषिगण कहते हैं ॥ ४॥ प्रयागराज एक अत्यन्त अच्छी प्रतिष्ठा का स्थान है । उसके कम्बल और अश्वतर—ये पुत्र हैं । यह तीर्थ को भोगने वाली प्रजापति की वेदी बताई गई है ॥ ५॥ उस प्रयागराज में समस्त वेद और यज्ञ मूर्तिमान् होकर विराजमान रहा करते हैं । इस सर्व महान् तीर्थ की स्तुति करने से तथा केवल इसके नाम का स्मरण करने से भी तथा यहाँ की मिट्टी को लेकर उसका शरीर पर मल देने या लगाने से भी मानव समस्त पापों से छुटकारा पा जाता है । प्रयागराज

महान् तीर्थं में जहां दोनों-तीनों नदियों का संगम होता है, दान जो भी कुछ किया जावे या श्राद्ध एवं जाप किया जावे वह प्रक्षय होता है ॥ ६-७ ॥

न वेदवचनाद्विप्रः न लोकवचनादपि ।
 मतिरुत्क्रमणीयाऽन्ते प्रयागे मरणं प्रति ॥३
 दश तोयं सहस्राणि पष्टिकोऽथस्तथाऽपराः ।
 तेषां सान्निध्यमथैव प्रयागं परमं ततः ॥४
 वासुकेर्भोगवत्यत्र हंसप्रपतनं परम् ।
 गवां कोटिप्रदानाद्यश्वह स्नानस्य तत्फलम् ॥९०
 प्रयागे माघभासे तु एवमाहुर्मनोविणः ।
 सर्वत्र मुलभा गङ्गा त्रिपु स्थानेषु दुर्लभा ॥९१
 गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसंगमे ।
 अत्र दानादिव याति राजेन्द्रो जायतेऽत्र च ॥९२
 वटमूले संगमादौ मृतो विष्णुपुरी व्रजेत् ।
 उवंशीपुलिनं रम्यं तोयं संध्यावटस्तथा ॥९३
 कोटितोयं चाश्वमेधं गङ्गायामुनमुत्तमम् ।
 मानसं रजसा हीनं तोयं वामरकं परम् ॥९४

हे विप्र ! वेदों के वचन से और लोक के प्रवचन से अर्थात् कथन से भी प्रयाग में अन्त समय में मृत्यु के उपस्थित होने पर अपनी बुद्धि का उत्क्रमण नहीं करना चाहिए अर्थात् बुद्धि को हटाना नहीं चाहिए चाहे कोई कुछ भी कहे अन्त समय में वहां पर ही निवास रखे और मृत्यु प्राप्त करे । ॥ ८ ॥ प्रयागराज एक ऐसा महान् तीर्थ है जहां पर दश हजार तीर्थ निवास किया करते हैं और इनके भी अतिरिक्त साठ करोड़ अग्न्य तीर्थ रहते हैं । इन सब का प्रयाग में ही सान्निध्य है । इसी लिये प्रयाग परम महान् तीर्थ माना है ॥ ९ ॥ यहां पर वासुकि की भोगवती है और यहां हंस का प्रपतन है । एक करोड़ गौओं के दान का जो फल होता है उससे भी अधिक फल यहां तीन दिन के स्नान से हुआ करता है ॥ १० ॥ प्रयाग में माघ महीने में तो विद्वान् लोग ऐसा विशेष महत्त्व बतलाते हैं कि अग्न्य मय स्थलों में गंगा मुल

हो जाती है किन्तु गंगा द्वार में अर्थात् गंगा के प्रकट होने के स्थान में और प्रयाग में तथा गंगा और सागर के सङ्गम में अत्यन्त दुर्लभ होती है । तात्पर्य यह है कि किसी महान् पुण्य से ही मिल पाती है । यहाँ पर उस समय में दान करने से सीधा स्वर्ग को जाया करता है और भगले जन्म में महान् राजा होता है ॥ ११-१२ ॥ संगम आदि में बट के मूल में जो मृत्यु को प्राप्त होता है वह विष्णुपुरी में जाता है । उर्वशी का पुलिन रम्य तीर्थ तथा सन्ध्याबट करोड़ तीर्थ और अश्वमेध यज्ञ के सुत्य हैं जो कि उत्तम गंगा और यमुना का संगम होता है । एक दिन भी इस परम पुण्य तीर्थ में रहने से मनको रजो गुण से रहित बना देता है ॥ १२-१४ ॥



४७-वाराणसीमाहात्म्यम्

वाराणसी परं तीर्थं गौर्ये प्राह महेश्वरः ।
 भुक्तिमुक्तिप्रदं पुण्यं वसतां गृणतां हरिम् ॥१
 गौरि क्षेत्रं न मुक्तं वै अविमुक्तं ततः स्मृतम् ।
 जप्तं तप्तं हुतं दत्तमविमुक्ते किलाक्षयम् ॥२
 अश्मना चरणी हत्वा वसेत्काशीं न हित्यजेत् ।
 हरिश्चन्द्रं परं गुह्यं गुह्यमाभ्रातकेश्वरम् ॥३
 जप्येश्वरं परं गुह्यं गुह्यं श्रीपञ्चरं तथा ।
 महालयं परं गुह्यं भूमिचण्डेश्वरं तथा ॥४
 केदारं परमं गुह्यमष्टौ सन्त्यविभक्तके ।
 गुह्यानां परमं 'गुह्यमविमुक्तं' परं मम ॥५
 द्वियोजनं तु पूर्वं स्याद्योजनार्धं तदन्यथा ।
 चरणा च नदी नासी मध्ये वाराणसी तयोः ॥६
 अत्र स्नानं जपो होमो मरणं देवपूजनम् ।
 श्राद्धं दानं निवामश्च यद्यत्स्यान्भुक्तिमुक्तिदम् ॥७

अब वाराणसी के माहात्म्य का यगुन किया जाता है । अग्नि ने कहा—वाराणसी (बनारस-काशी) सर्व श्रेष्ठ तीर्थ है --ऐसा महादेव ने पार्वती से कहा था । जो वाराणसी में निवास करने हैं और हरि का भजन किया करते हैं उन्हें समस्त भोग और मुक्ति धर्मान् मगार के प्राप्तागमन में छुटकारा प्राप्त हो जाता है ॥ १ ॥ रुद्रदेव ने कहा हे गौरि ! इन क्षेत्र को कभी न छोड़े और सर्वदा इससे अविमुक्त रहना चाहिए । यहां अविमुक्त रहने हर जाप-तप, हवन और दान निश्चय ही अक्षय हुआ करता है ॥ २ ॥ पत्थर से चरणों को नोड कर काशी में वाम करना चाहिए और उमें कभी भी नहीं त्यागना चाहिए । यहां पर हृदिचन्द्र तथा धाम्न तक्षर ये दोन स्थान अत्यन्त गोपनीय है ॥ ३ ॥ इनके अतिरिक्त जप्पेश्वर, श्रीपर्वन, महान और भूमि चण्डेश्वर ये स्थान भी अत्यन्त गोपनीय है ॥ ४ ॥ वे द्वार परम गुह्य है । ऐसे ये आठ स्थान गुह्य होते हैं जो कि अविभक्त है किन्तु इन मन्त्र गुह्यों में भी परम गुह्य मेरा अविमुक्त स्थल है ॥ ५ ॥ पूर्व में दो योजन और उस से अन्य दिशा में आधा योजन वाराणा नदी है और नागी है । मध्य में उन दोनों के वाराणसी स्थित है ॥ ६ ॥ यहां पर वाराणसी में स्नान करना, मन्त्रों का जाप करना, मृत्यु को प्राप्त होना, देवों का पूजन करना, पितरों के निमित्त श्राद्ध करना, दान देना और वाराणसी आकर निवास करना इनमें सब में जो-जो भी कोई एक होता है और बन पडता है वह मुक्ति (भोगों का प्राप्त करना) और मुक्ति (संसार में बार २ जन्म ग्रहण करने से छुटकारा) इन दोनों को प्राप्त करता है ॥ ७ ॥



४८-नर्मदामाहात्म्यम्

नर्मदादिकमाहात्म्यं वक्ष्येऽहं नर्मदा पयाम् ।

सद्यः पुनाति गाङ्गायें दर्शनाद्वारि नार्मदम् ॥१॥

विस्तराद्योज शतं योजनद्वयमायतम् ।

पट्टिस्तीर्थसहस्राणि पट्टिकोट्यस्तथाऽपराः ॥२॥

पर्वतस्य समन्तात् तिष्ठन्त्यमरकण्डके ।
 कावेरीसंगमं पुण्यं श्रीपर्वतमतः शृणु ॥३॥
 गौरी श्रीरूपिणी तेपे तपस्तामन्नबोद्धरिः ।
 अवाप्स्यसि त्वमध्यात्म नाम्ना श्रीपर्वतस्तव ॥४॥
 समन्ताद्योजनशतं महापुण्यं भविष्यति ।
 अत्र दानं तपो जप्यं श्राद्धं सर्वमयाक्षयम् ॥५॥
 मरणं शिवलोकाय सर्वदं तीर्थमुत्तमम् ।
 हरोऽत्र क्रीडते देव्या हिरण्यकशिपुस्तथा ॥६॥
 तपस्तप्त्वा बली चाभून्मुनयः सिद्धिमाप्नुवन् ॥७॥

श्री अग्नि ने कहा—अब नर्मदा आदि के माहात्म्य को तथा परम पुण्यमयी नर्मदा के विषय में बतलाऊंगा । नर्मदा का जल के दर्शन से ही यह गङ्गा भी ही मानवों को पवित्र कर दिया करती है ॥ १ ॥ अमरकण्डक में पर्वत के चारों ओर सौ योजन विस्तार तथा दो यात्रेन आयत में साठ हजार तीर्थ तथा अन्य साठ करोड़ पवित्र धाम स्थित हैं । कावेरी का मङ्गल परम पुण्यमय है । अब श्री पर्वत के विषय में सुनो ॥ २-३ ॥ वहाँ पर सङ्गी के रूप वाली गौरी तपस्या करती थी । उनसे हरि ने कहा—तुम अब इस तपश्चर्या के प्रभाव से अध्यात्म को प्राप्त करोगी और यह पर्वत तुम्हारे ही नाम से श्री पर्वत कहा जायगा ॥ ४ ॥ चारों ओर सौ योजन पर्वत यह स्थल महान् पुण्यमय हो जायगा । यहाँ पर जो भी कोई दान देगा वह दानमन्त्रों का लाभ, तपश्चर्या, श्राद्ध ये सभी क्षय रहित हो जाया करेगा ॥ ५ ॥ यहाँ मृत्यु होने पर शिवलोक की प्राप्ति होगी । यहाँ उत्तम तीर्थ सभी कुछ प्रदान करने वाला है । यहाँ पर शिव स्वयं देवी गौरी के साथ क्रीड़ा किया करते हैं । यहाँ पर दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने सिद्धि प्राप्त करने के लिये तपस्या की थी और वह परम बलवान् हो गया था । बहुत से मुनियों ने भी यहाँ तप के द्वारा सिद्धियों का लाभ किया था ॥ ६-७ ॥



४६—श्राद्धकल्प

कात्यायनो मुनीनाह यथा श्राद्धं तथा वदे ।
 गयादौ श्राद्धं कुर्वीत संक्रान्त्यादौ विशेषतः ॥१॥
 काले चापरपक्षे च चतुर्थ्यामूर्ध्वमेव वा ।
 संपाद्य च पदक्षे च पूर्वद्युश्च निमन्त्रयेत् ॥२॥
 यतीन्गृहस्थसाधून्वा स्नातकाञ्छ्रोत्रियान्द्विजान् ।
 अनवद्यान्कर्मनिष्ठाञ्छिष्टानाचारसयुतान् ॥३॥
 वर्गयेच्छिवत्तिकुष्ठादीन् गृह्णीयान्निमन्त्रितान् ।
 स्नाताञ्छुचींस्तथाऽऽनान्तान्गण्ड्मुखान्देवकर्मणि ॥४॥
 उपवेशयेत्त्रीन्पित्र्यानेकैकमुभयत्र वा ।
 एवं मातामहादेश्च शाकैरपि च कारयेत् ॥५॥
 तदह्नि ब्रह्मचारो स्यादकोपोऽस्वरितो मृदुः ।
 सत्योऽप्रमत्तोऽनध्वन्यो ह्यस्वाध्यायश्च वाग्यतः ॥६॥
 सर्वाश्च पङ्क्तिमूर्धन्यान्पृच्छेत्प्रश्ने तथाऽऽसने ।
 दर्भान्नास्तीर्य द्विगुणान्पित्र्ये दैवादिकं चरेत् ॥७॥
 विश्वान्देवानावाहयिष्ये पृच्छेदावाहयेति च ।
 विश्वे देवास आवाह्य विकीर्याथ यवाञ्जपेत् ॥८॥

यथ श्राद्ध कल्प के विषय में बतलाया जाता है । श्री अग्निदेव ने कहा —जिस प्रकार से कात्यायन ने मुनियों से कहा था उसी तरह मैं श्राद्ध के विषय में बताता हूँ । गया आदि में विशेष रूप से संक्रान्ति आदि के समय पर श्राद्ध करना चाहिए ॥ १ ॥ समय पर और दूसरे पक्ष में चतुर्थी तिथि में अथवा उसके ऊपर सब सम्पादन करे पदक्षं ने और पहिले दिन में निमन्त्रण देना चाहिए । निमन्त्रण के पात्र कौन हैं—यह भली भाँति बतलाया जाता है जिन्हें निमन्त्रण देवे या नो यति हों, गृहस्थ, साधु हों अथवा स्नानक, श्रोत्रिय द्विज हों जो भी हों समस्त दोषों से रहित निर्दोष होने चाहिए । अपने कर्म के करने में पूर्ण निष्ठा रखने वाले हों और शिष्टता से सम्पन्न हों, सदाचार से युक्त भी हों ऐसे लोगों को निमन्त्रण देना चाहिए ॥ २-३ ॥ जिसको दिव्य

अर्पान् सफेद कोड़ हो ऐमों को कभी नहीं आमन्त्रित करे और यदि भूल से निमन्त्रित भी हों तो कभी ऐसे लोगों को ग्रहण नहीं करे । देव कर्म में जो भी हों वे स्नान किये हुए—पवित्र और भावमन करके प्रवृत्त होने वाले होवें तथा पूर्व की ओर मुख करके स्थित रहें ॥ ४ ॥ तीन पितृ गण में से एक—एक को उपवेष्टित करे अथवा दोनों में करे इसी प्रकार से मानामह आदि का पालन करने वाला रहे । उस दिन भूल कर भी किसी पर क्रोध न करे । किसी भी काम को शीघ्रता में न करे और सभी व्यवहारों में सदा मृदुता रखे । सत्य व्यवहार और भाषण करे । किसी भी काम में प्रमाद न करे तथा मार्ग गमन करने वाला न होवे । स्वाध्याय श्राद्ध के दिन न करके मौन व्रत से रहना चाहिए ॥ ६ ॥ प्रश्न में जो शिरोमणि हों उनसे पूछे तथा आमन पर दुग्धनी ढाभों को फैला कर पितृ कर्म में दैवादिक का समाचरण करना चाहिए ॥ ७ ॥ मैं विश्वे देवों का आवाहन करूँगा । ऐसा पूछना चाहिए । आवाहन करो—इम उत्तर पर उमे फिर विश्वेदेवाग्र्यो का आवाहन करके यवों को फैला कर जप करना चाहिए ॥ ८ ॥

विश्वे देवाः शृणुतेमं पितृश्रुतावाहयिष्येति ।

पृच्छेदावापयेत्युक्त उशन्तस्त्वा समाह्वयेत् । ८

तिलान्विकीर्याथ जपेदापस्त्रित्यादि पात्रके ।

सपवित्रे निपिच्छेद्वा श न्नो देवीरिति ह्यृचा ॥१०

यवोऽप्नोति यवान्दत्त्वा पित्रे सर्वत्र वै तिलान् ।

तिन्नोऽसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिमित्तः ॥११

प्रत्नवद्भिः प्रतः स्वधया पितृ निमा

ह्लोकान्प्रीणया हि नः स्वधेति ।

श्रीश्च तेति ददेत्पुष्पं पात्रे हैमेऽथ राजते ॥१२

औदुम्बरे वा खड्गे वा पर्णपात्रे प्रदक्षिणम् ।

देवानामपमव्यं तु पितृणां सव्यमाचरेत् ॥

एकेकस्य एकेकेन सर्पवित्रकरेण च ॥१३

या दिव्या आपः पयसा संवभ्रूयुर्वा
अन्तरिक्षा उत पार्थिवीर्याः ।

हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥१४

विश्वे देवा एष वोऽर्धः स्वाहा च पितरेष ते ।

स्वध्रुवं पिनामहादेः संस्तवान्प्रथमे चरेन् ॥१५

हे विश्वे देवा ! आप श्रवण कीजिए—मैं इन पितृगण का आवाहन करूँगा, ऐसा पूछना चाहिए, जब आवाहन करो ऐसा कहा जावे तो 'उशनस्तस्त्वा'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा आवाहन करना चाहिए ॥ ९ ॥ तिलों को फेंका कर आपस्वित्यादि का जप करे पवित्री के सहित पात्र में 'शमो देवी' इत्यादि ऋचा से निषिञ्चन करना चाहिए ॥ १९ ॥ 'यवोऽसि'—इससे यवों को देकर पितर के लिये यव जगह तिलों को 'तिलोऽसि मोमदेवस्यो ! गोमवे देवे निर्मितः । प्रस्तवद्विः प्रस्त स्वधया पितृल्लोकान् प्रीणया हि नः स्वया' इम मन्त्र से और श्रोत्र च ते' इमसे मुवणं निर्मित अथवा रजत निर्मित पात्र में पुष्प देना चाहिए ॥ ११-१२ ॥ ग्रीडुम्बर अर्थात् मूलर के अथवा खड्ग पर्ण पात्र में प्रदक्षिणा करे । देवा का तो अप सव्य होकर करे और पितरों का सव्य होकर करना चाहिए । दक्षिण और वाम को सव्य तथा अपसव्य कहने हैं । एक-एक को एक-एक से पवित्री सहित करे ॥ १३ ॥ उसका मन्त्र—'या दिव्या आपः पयसा संवभ्रूयुर्वा अन्तरिक्षा उत पार्थिवीर्याः । हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु' । फिर 'विश्वे देवा एष वोऽर्धः स्वाहा'—यह उच्चारण करके विश्वे देवाओं को देवे । 'पितरेष ते स्वया'—यह कह कर पितामह आदि के लिये संस्तव प्रथम में करना चाहिए ॥ १४-१५ ॥

पितृभ्यः स्यान्ममसीति न्युज्जं पात्रं करोत्यधः ।

अथगन्धपुष्पगुपदीपाच्छादनदानकम् ॥१६

घृताक्तपन्नमुद्धृत्य पृच्छत्यग्नौ करिष्येति ।

कुरध्वेत्यभ्यनुज्ञानो जुहुयात्साग्निहोऽनले ॥१७

अग्निकः पितृहस्ते सपवित्रे तु मन्त्रतः ।
 अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहेति प्रथमाऽऽहुतिः ॥१८॥
 सोमाय पितृमतेऽय यमायाङ्गिरसेऽपरे ।
 हवनशेषं चान्नं पाले दत्त्वा पालं समालभेत् ॥१९॥
 पृथिवी ते पालं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य
 मुखेऽमृतेऽमृतं जुहोमि स्वाहेति ॥
 जप्त्वेद विष्णुरित्यन्ते द्विजांगुष्ठं निवेशयेत् ॥२०॥

“पितृभ्यः स्नानममि” इस मन्त्र से ग्नुञ्च पात्र को नीचे करे । इसमें गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, आच्छादन, दात, धृत से अन्न अन्न को उद्धरण कर पूछे—अग्नि में कर्वां गा, उत्तर में, करो, इस तरह आज्ञा प्राप्त किया हुआ होकर माग्निक अन्न में हवन करना चाहिए ॥ १६-१७ ॥ अग्निक पितृ के हाथ में जिनमें पवित्री हो निम्न मन्त्र से प्रथम आहुति देनी चाहिए, मन्त्र—
 “अग्नये कव्य वाहनाय स्वाहा” —इसमें आहुति देवे ॥ १८ ॥ पितृनाम् सोम के लिये तथा आङ्गिरस यम के लिये अन्य आहुतियाँ देवे । हवन से बचा हुआ जो कुछ रहे उसे पात्र में देकर पात्र का मन्त्रालम्बन करना चाहिए ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर—“पृथिवी ते पालं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखेऽमृतेऽमृतं जुहोमि स्वाहा”,—इस मन्त्र का जब कण्ठे “इदं विष्णुः” इस मन्त्र से अन्न में ब्राह्मण का अंगुष्ठ निवेशित करना चाहिए । “अहव” —इत्यादि मन्त्र से निषों को फँसा कर अन्न दिलवाना चाहिए ‘जुष्वम्’ अर्थात् सेवन करो यह कह कर इसके पदचान् गायत्री आदि का जा करना चाहिए ॥ २० ॥

अपहतेति च तिलान्विकीर्णं प्रदापयेत् ।
 जुष्वमिनि चोक्त्वाऽथ गायत्र्यादि तनो जपेत् ॥२१॥
 देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च ।
 नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव नमो नमः ॥२२॥
 तृमाञ्जात्वाऽन्नं विकिरेदपो दशात्मकृत्यकृत् ।
 गायत्री पूर्ववज्जप्त्वा मधु वातेति वै जपेत् ॥२३॥

तृप्ताः स्य इति संपृच्छेत्तृप्ताः स्म इति वै वदेत् ।

शेषमन्नमनुज्ञाप्य सर्वमन्नमथैकतः ॥२४॥

उद्धृत्योच्छिष्टपार्श्वे तु कृत्वा चंदावनेजनम् ।

दद्यात्कुशेषु क्षीन्पिष्टानाचान्तेषु परे जगुः ॥२५॥

आचान्तेषूदकं पुष्पाण्यक्षतानि प्रदापयेत् ।

अक्षय्योदकमेवाथ आशिपः प्रार्थयेन्नरः ॥२६॥

अधोराः पितरः सन्तु गोप्त नो वर्धतां सदा ।

दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेव च ॥२७॥

श्रद्धा च नो मा व्यगमद्ब्रह्म देयं च नोऽस्तिवति ।

अन्नं च नो बहु भवेदतिथीश्च लभेमहि ॥२८॥

देवताओं के लिये नमस्कार है । पितृगणों के लिये नमस्कार है । महान् योगियों के लिये नमस्कार है । स्वाहा और स्वधा के लिये नित्य ही धार-वार नमस्कार है । इस के अनन्तर जब यह जान ले कि सब पूर्णतया तृप्त हो गये हैं तो फिर अन्न का विकिरण करे और एक-एक बार जल देना चाहिए । इसके उपरान्त पड़िली तरह गायत्री मन्त्र का जाप करके फिर "अधुवात" इत्यादि मन्त्र का जप करना चाहिए ॥ २२-२३ ॥ आप तृप्त हो गये हैं—यह पूछना चाहिए । इसके उत्तर में उन्हें हम पूर्णतया तृप्त हो गये हैं यह उत्तर देना चाहिए । उनके भोजन के पश्चात् जो अन्न दोष रह गया है उसे प्राज्ञा प्राप्त करके समस्त अन्न को एक जगह कर लेवे जो उच्छिष्ट हो उसको पार्श्व में करके अवनेजन देना चाहिए । आचान्तो पर कुशों में तीन पिण्ड देवे ऐसा कुछ विद्वानों का कथन है ॥ २४-२५ ॥ ब्राह्मणों के आचमन कर लेने पर उदक-पुष्प और अक्षत दितवाना चाहिए । अक्षय्य उदक देकर श्राद्ध करने वाले को फिर प्राणीवैद प्राप्त करने के लिये प्रार्थना करनी चाहिए ॥ २६ ॥ मेरे पितृगण अधोर होवें और हमारा गोत्र सदा वृद्धि की प्राप्ति होना रहे । हमारे दाताओं का अभिवर्धन होवे, सन्तति बढ़े वेदों का ज्ञान समृद्ध होवे ॥ २७ ॥ हमारी श्रद्धा का लोप न होवे और हमारे अन्धर

अधिक दान की भावना बढ़ती रहे । हमारे यहाँ अधिक अन्न की उपज होवे और हमारे यहाँ समागत अतिथि गण बराबर सम्मान प्राप्त करते रहें ॥२८॥

याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कंचन ।
स्वधावाचनीयान्कुशानास्तीर्य सपवित्रकान् ॥२९॥
स्वधां वाचयिष्ये पृच्छेदनुज्ञातश्च वाच्यताम् ।
पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहमुख्यके ॥३०॥
स्वधोच्यतामस्तु स्वधा उच्यमानस्तथैव च ।
अपो निपिञ्चेदुत्तानं पात्रं कृत्वाऽय दक्षिणम् ॥३१॥
ययाशक्तिं प्रदद्याच्च देवे पित्र्येऽथ वाचयेत् ।
विश्वे देवाः प्रीयन्तां च वाजे वाजे विसर्जयेत् ॥३२॥
आ मा वाजस्येत्यनुब्रज्य कृत्वा विप्रान्प्रदक्षिणम् ।
गृहे विशेषमावास्यां मासि मासि चरेत्तथा ॥३३॥
एकाद्विष्टं प्रवक्ष्यामि श्राद्धं पूर्ववदाचरेत् ।
एकं पवित्रमेकाधंमेकं पिण्डं प्रदापयेत् ॥३४॥

हमारी ऐसी परिस्थिति होवे कि हमारे याचना करने वाले मर्बदा आते रहें किन्तु कभी ऐसा अवसर न होवे कि हम किसी के द्वार पर जाकर याचक बनें । इस प्रकार से ब्राह्मणों से प्रार्थना करने के अनन्तर स्वधा वाचनीय कुशाग्रों को फेंका कर जो कि पवित्री के सहित हों, फिर पूछे कि मैं स्वधा का वाचन करूँगा । जब स्वधा का वाचन करो—इस प्रकार की अनुज्ञा प्राप्त हो जावे तो पितृवर्ग के लिये अर्घा पिता के लिये तथा पि.महों के लिये और प्रपिता महों के लिये स्वधा का उच्चारण करे और स्वधा के उच्यमान होने के पश्चात् जल का सिञ्चन करे । पात्र को उत्तन (उठा हुआ) करके प्रदक्षिण करे और देव और पित्र में ययाशक्ति दान करे । इसके पश्चात् विश्वे देवा प्रसन्न हों । यह कहने हुए बाजे-बाजे विसर्जन कर देना चाहिए ॥ २९-३०-३१-३२ ॥ इस कर्म के करने के अनन्तर “आमा वाजस्य”—इस से कुछ दूर तक अनुगमन करके ब्राह्मणों की परिक्रमा करके

ब्राह्मणों की परिक्रमा करके उन्हें विदा करे और घान स्वयं अपने घर में वापिस आकर प्रवेश करे । इस रीति से प्रत्येक मास की अमावस्या तिथि में करना चाहिए ॥ ३३ ॥ अब एकोद्दिष्ट श्राद्ध के विषय में बताऊँगा । यह श्राद्ध भी पूर्व की भाँति करना चाहिए । इसमें एक पवित्र एक अर्घ्य और एक ही पिण्ड प्रदायित करना चाहिए ॥ ३४ ॥

नावाहनाग्नौकरणं विश्वे देवा न चात्र हि ।
 तृप्तिप्रश्ने स्वदितमिति यदेत्सुस्वादत् द्विजः ॥३५॥
 उपतिष्ठतामित्यक्षय्ये विसर्गे चाभिरभ्यताम् ।
 अभिरताः स्म इत्यपरे शेषं पूर्ववदाचरेत् ॥३६॥
 सपिण्डीकरणं वक्ष्ये अब्दान्ते मध्यमनोऽपि वा ।
 पितृशृणां श्लोणि पात्राणि एकं प्रेतस्य पात्रकम् ॥३७॥
 सपविलाणि चत्वारि तिलपुष्पयुतानि च ।
 गन्धोदकेन युक्तानि पूरयित्वाऽभिषिञ्चति ॥३८॥
 प्रेतपालं पितृपालं ये सम ना इति द्वायात् ।
 पूर्ववत्पिण्डदानादि प्रेतानां पितृता भवेत् ॥३९॥

इसमें न तो आवाहन होता है और न अग्नि में किया हाती है तथा इसमें विश्वेदेवा नहीं होते हैं । जहाँ श्राद्ध में तृप्ति का प्रश्न होता है वहाँ 'स्वदितम्'—ऐसा प्रश्न करना चाहिए और ब्राह्मण उसके उत्तर में "सु स्वादितम्" कहे ॥ ३५ ॥ अक्षय्य में 'उपतिष्ठताम्'—यह और विसर्ग में 'अभिरभ्यताम्'—यह कहना चाहिए । उत्तर में—'अभिरताः स्म' अर्थात् हम अभिरत हो गये हैं, यह कहना चाहिए । इसके अतिरिक्त शेष पूर्ववत् करना चाहिए ॥ ३६ ॥ अब सपिण्डी करण के विषय में बताऊँगा । वर्ष के अन्त में अथवा मध्य में पितरों के तीन पात्र होते हैं और एक पात्र पुत्र का होता है ॥ ३७ ॥ ये चारों पात्र गवित्त के सहित होते हैं और तिल तथा पुष्पों से भी युक्त रहते हैं । गन्ध से युक्त उदक से पूरा करके अर्थात् भर कर फिर अभिषिञ्चन किया जाता है ॥ ३८ ॥ 'ये समाना' इन दो से प्रेत पात्र को पितृ पात्र में करे और पूर्व की भाँति पिण्ड दान आदि कर्म करे तो इसके करके

मे मृत पुरुषों की जो प्रेतता होती है वह नष्ट होकर फिर उनकी पितृता पद की प्राप्ति हो जाया करती है अर्थात् वे प्रेत न रह कर पितृ गण बन जाया करते हैं । यहाँ इस सपिण्डी करण का प्रमुख कार्य होता है और प्रेत भाव छुड़ा कर पितर बनाने के लिए यह कर्म किया जाता है । पितर होकर फिर श्राद्ध के पूर्ण अधिकारी हो जाते हैं ॥ ३६ ॥

अथाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धं वक्ष्ये सर्वं तु पूर्ववत् ।
जपेत्पितृमन्त्रवर्जं पूर्वाह्णे तत्प्रदक्षिणम् ॥४०॥
उपचारा ऋजुकुशास्तिलार्थश्च यवैरिह ।
तृप्तिप्रश्नस्तु सपन्नं सुसंपन्नं वदेद् द्विजः ॥४१॥
दध्यक्षतवदराद्याः पिण्डा नान्दीमुखान्पितृशृणु ।
आवाहयिष्ये पृच्छेच्च प्रीयतामिति चाक्षये ॥४२॥
नान्दीमुखाश्च पितरो वाचयिष्येऽथ पृच्छति ।
नान्दीत्मुखान्पितृगणान्प्रीयन्तामित्यथो वदेत् ॥४३॥
नान्दीमुखाश्च पितरस्तत्पिता प्रपितामहः ।
मानामहः प्रमातामहो वृद्धप्रमातृकामहः ॥४४॥
स्वघाकारान्न युञ्जीत युग्मान्विप्रांश्च भोजयेत् ।
तृप्तिं वक्ष्ये पितृशृणां च ग्राम्येरोपधिभिस्तथा ॥४५॥

अब अभ्युदयिक श्राद्ध के विषय में बतलाऊंगा । इस श्राद्ध में अन्य तो समस्त क्रिया कलाप पूर्व की ही भांति किया जाता है । पितृ-मन्त्र को वर्जित करके जप करना चाहिए । पूर्वाह्ण में प्रदक्षिणा करे ॥ ४० ॥ सीधे कुशाभ्रों वाले ही समस्त उपचार इस श्राद्ध में होते हैं और तिलों के अर्थ यवों (जी) से किये जाते हैं । तृप्ति का जिस प्रकार प्रश्न होता है उसके स्थान पर इस अभ्युदयिक श्राद्ध में 'सम्पन्न'—इस शब्द से पूछा जाया करता है और ब्राह्मण का उत्तर होना है—'सुसम्पन्नम्' इस भांति का ॥ ४१ ॥ दधि, अक्षत, बदरी आदि के पिण्ड नान्दी मुख वाले पितरों के लिये होते हैं । आवाहयिष्ये—अर्थात् आवाहन करूँगा यह पूछे और अक्षय में "प्रीयताम्"—यह

कहे । नान्दी मुख जो पितर हैं उन्हें “वाचयिष्ये”—इम रीति से पूछा जाना है और नान्दी मुख पितृगणों को “प्रीयन्ताम्” अर्थात् प्रमत्त होइये, ऐसा बोलना चाहिए ॥ ४२-४३ ॥ नान्दी मुख श्राद्ध में पिता-पितामह और प्रपितामह ये होते हैं और मातामह (नाना) प्रमातामह तथा वृद्ध प्रमातामह ये हुमा करते हैं । इन अम्युदयिक श्राद्ध में स्वधा कारों का प्रयोग नहीं करना चाहिए तथा केवल दो ही ब्राह्मणों का भोजन करावे । अब पितृगणों की तृप्ति के विषय में बताऊँगा जो कि तृप्ति ग्राम्य अर्थात् ग्राम में होने वाली श्रीयधियों से की जाय करती है ॥ ४४-४५ ॥

काम्यानां कल्पमाख्यास्ये प्रतिपत्सु धनं बहु ।
 त्रियः परा द्वितीयायां चतुर्थ्यां धर्मकामदः ॥४६॥
 पञ्चम्यां पुनरामस्तु षष्ठ्यां च श्रेष्ठ्यभागपि ।
 कृपिभागा च सप्तम्यामष्टम्यामर्थलाभकः ॥४७॥
 नवम्यां च एकशका दशम्यां गोगणो भवेत् ।
 एकादश्यां परोवारा द्वादश्यां धनधान्यकम् ॥४८॥
 जातिश्रेष्ठ्य त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां च शस्त्रतः ।
 मृतानां श्राद्धं सर्वात्ममवास्यां समीरितम् ॥४९॥

इसके अनन्तर काम्यों के कल्प को बताया जायगा । किन्-किन तिथियों में श्राद्ध करने का क्या-क्या फल होता है । प्रतिपदा तिथि में श्राद्ध करने का फल बहुत धन का होना होता है । द्वितीया तिथि में अर्थात् दोज में श्राद्ध का फल परम सुन्दरी स्त्रियों की प्राप्ति होता है । चतुर्थी (चौथ) तिथि में श्राद्ध में धर्म और काम दोनों का लाभ होता है ॥ ४६ ॥ पुत्र के प्राप्ति की कामना रखने वाले को पञ्चमी तिथि में श्राद्ध करना चाहिए । षष्ठी तिथि में परम श्रेष्ठ भाग्य का लाभ होता है । सप्तमी तिथि के श्राद्ध करने का फल अधिक धन का लाभ होता है ॥ ४७ ॥ नवमी तिथि में श्राद्ध का फल एक शक अर्थात् एक खुर वालों का लाभ होता है । तथा दशमी तिथि में श्राद्ध का फल घोड़ों का समूह होता है । एकादशी तिथि में, परिवार

की प्राप्ति का फल होता है । द्वादशी तिथि में थाढ़ बनने का पल घन तथा घान्य दोनों की वृद्धि हुआ करना है । त्रयोदशी में थाढ़ से अपनी ज्ञाति में परम श्रेष्ठता की प्राप्ति और चतुर्दशी में शास्त्रों का लाभ होता है । अमावस्या में मृत पुरुषों के थाढ़ करने से सभी कुछ की प्राप्ति होती है और सर्वश्रेष्ठ थाढ़ कहा गया है ॥८८॥१९॥



४०-भारतवर्षवर्णनम्

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्षं तद्भारतं नाम नवसाहस्रविस्तृतम् ॥१॥
कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गं च गच्छताम् ।
महेन्द्रा मलयः सह्याः शक्तिमान्हे (न्हि ?) मपर्वतः ॥२॥
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ।
इन्द्रदोपः कसेरुश्च ताम्रवर्णो गमस्तिमान् ॥३॥
नागद्वीपस्तथा सौन्यो गान्धर्वस्तथ वारुणः ।
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ॥४॥
योजनानां सहस्राणि द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात् ।
नव भेदा भारतस्य मध्यभेदेऽथ पर्वतः ॥५॥
किराता यवनाश्चापि ब्राह्मणाद्याश्च मध्यतः ।
वेदस्मृतिमुखा नद्यः पारियात्रोद्भवास्तथा ॥६॥
विन्ध्याच्च नर्मदाद्याः न्युः सह्यात्तापो पयोष्णिक्का ।
गोदावरी भीमरथी कृष्णवेणादिकास्तथा ॥७॥
मलयात्कलतमालाद्यास्त्रिसामाद्या महेन्द्रजाः ।
कुमाराद्याः शक्तिमतो हिमाद्रेश्चन्द्रभागका ॥
पश्चिमे कुरुपाञ्चालमध्यदेशादयः स्थिताः ॥८॥

अब भारतवर्ष का वर्णन किया जाता है । समुद्र के उत्तर में हिमालय के दक्षिण में जो वर्ष है वह भारत नाम वाला वर्ष है । विस्तार भी सहस्र योजन बताया जाता है ॥१॥ यह भारतवर्ष कर्मों

की भूमि कही जाती है जो स्वर्ग जाने के इच्छुक हैं अथवा अपवर्ग (मोक्ष) प्राप्त करना चाहते हैं वे यहाँ पर ही कर्मों का सम्पादन करने के लिये उत्पन्न हुआ करते हैं । यहाँ पर भारतवर्ष में सात कुल पर्वत हैं । जिनके नाम—महेन्द्र-मलय-सह्य-शुक्तिमान्-हिमालय-विन्ध्य और पारियात्र होते हैं । घाठ द्वीप और भी हैं जिनके नाम—इन्द्रद्वीप-कसेरु-ताम्रवर्ण-गभस्तिमान्-नागद्वीप-सौम्य-गान्धर्व और वारुण ये हैं किन्तु यह उनमें नवम द्वीप जो कि समुद्र से घिरा हुआ है ॥२॥३॥४॥ यह द्वीप दक्षिण-उत्तर से एक महान् योजन विस्तार वाला है । भारत के तीनों भेद होते हैं । मध्य भेद में पूर्व से किरात-यवन और ब्राह्मण आदि रहते हैं । मध्य से वेद और स्मृति के मुख वाली नदियाँ हैं जो पारियात्र पर्वत से जन्म लिया करती हैं तथा विन्ध्य गिरि से नर्मदा आदि नदियाँ निकलती हैं । सह्य पर्वत से तापी-पयोष्णिक्-गोदावरी-भीमरथी तथा कृष्णवेणा आदि प्रकट होनी हैं ॥५॥६॥७॥ मलय गिरि से कृतमाला आदि नदियाँ निकलती हैं और महेन्द्र पर्वत से त्रिसामा प्रभृति नदियों का उद्भव होता है । शुक्तिमान् पर्वत से कुमारिदि उत्पन्न होती हैं और हिमालय से चन्द्रमाला उत्पन्न होनी है । इसके पश्चिम भाग में कुरु-पांचाल और मध्यदेश आदि स्थित हैं ॥८॥



४१-महाद्वीपादिवर्णनम्

लक्षयोजनविस्तारं जम्बूद्वीपं समावृतम् ।
 लक्षयोजनमानेन क्षारोदेन समन्ततः ॥१॥
 संवेष्ट्य क्षारमुदधिं प्लक्षद्वीपस्तथा स्थितः ।
 स तमेधातिथेः पुत्राः पक्षद्वीपेश्वरास्तथा ॥२॥
 स्याच्छान्तभयः शिशिरः सुखोदय इतः परः ।
 आनन्दश्च शिवः क्षेमो ध्रुवस्तन्नाम वर्षकम् ॥३॥
 मर्यादाशैलो गोमेधश्चन्द्रो नारददुन्दुभी ।
 सोमकः सुमनाः शैलो वैभ्राजास्तर्जनाः शुभाः ॥४॥
 नद्यः प्रधानाः सप्तात्र प्लक्षाच्छाकान्तिकेषु च ।

जावनं पञ्चसाहस्र धर्मो वर्णाश्रमात्मकः ॥५॥
 आर्यकाः कुरवश्चैव विविशा भाविनश्च ते ।
 विप्रः क्षास्तेश्च सोमोऽर्च्यो द्विलक्षश्चैव प्लक्षकः ॥६॥
 मानेनेक्षुरसोदेन वृतो द्विगुणशात्मलः ।
 वपुष्मतः सप्त पुत्राः शात्मलेशारतथाऽभवन् ॥७॥
 श्वेनोऽथ हरितश्चैव जीमूतो लोहितः क्रमात् ।
 वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रमो नाम वर्षकः ॥८॥

अब महादीप आदि का वर्णन किया जाता है । अग्निदेव ने कहा—
 जम्बूद्वीप एक लक्ष योजन के विस्तार वाला है चारों ओर से एक लक्ष योजन
 के मान वाले क्षार समुद्र से समावृत है ॥१॥ प्लक्ष द्वीप क्षार समुद्र को वेष्टित
 करके विद्यमान है । मेघा तिथि के सात पुत्र थे जो पक्षद्वीप के स्वामी थे ॥२॥
 शान्तभय तथा—शिशिर—मुखोदय—मानन्द—शिव—क्षेम—और ध्रुव में उन सातों
 के नाम थे । उनके नाम से वर्ष है ॥३॥ मर्यादाशैल—गोमेघ—चन्द्र नारद—
 दुन्दुभि—सोमक—सुमना शैल—विभ्राज—तर्जन शुभ ये पर्वत हैं । यहाँ सात
 प्रधान नदियाँ हैं जो प्लक्षसे शाकान्तिकों में हैं । पाँच हजार वर्ष पर्यन्त यहाँ
 जीवन होता है । वर्यों ओर आश्रमों से युक्त यहाँ धर्म है ॥४॥५॥ आर्यक—
 कुरु—विविध और भावी विप्र आदि यहाँ निवास किया करते हैं । इनके द्वारा
 सोम (चन्द्र) की पूजा की जाती है । प्लक्षक दो लाख योजन के विस्तार से
 युक्त है और यह इमी मान वाले ईक्ष के रस वाले सागर से आवृत है । शात्मल
 इस प्लक्ष से दुगुना होता है वपुष्मान् के सात पुत्र थे जोकि शात्मल के अधिपति
 हुए थे ॥६॥७॥ उनके नाम श्वेत—हरित—जीमूत—लोहित—वैद्युत—मानस और
 सुप्रम थे । इनके नाम से ही सात वर्षों की रचना हुई थी ॥८॥

द्विगुणो द्विगुणेनैव सुरोदेन समावृतः ।
 कुमुदश्चानलश्चैव तृतीयस्तु बलाहकः ॥९॥
 द्रोणः कङ्कोऽथ महिषः ककुद्धान्सप्त निम्नगाः ।
 कपिलाश्चारुणाः पोताः कृष्णा स्युर्ब्रह्मणादयः ॥१०॥
 वायुरूपं यजन्ति स्म सुरोदेनायमावृतः ।

ज्यांतिष्मतः कुशेशाः स्युर्दभिदो वेणुमान्सुतः ॥११
 द्वैरथी लम्बनी धैर्यः कपिलश्च प्रभाकरः ।
 विप्राद्या दमिमुख्यास्तु ब्रह्मरूप यजन्ति ते ॥१२
 विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान्पुष्पवांस्तथा ।
 कुशेशयो हरिः शला वर्षार्थं मन्दराचलः ॥१३
 वेष्टितोऽयं धृतोदेन क्रौञ्चद्वापेन सोऽप्यथ ।
 क्रौञ्चेश्वरा द्युतिमतः पुत्रास्तन्नामवर्षकाः ॥१४
 (* कुशलो मनोनुगश्चाणः प्रधानोऽथान्धकारकः ।
 मुनिश्च दुन्दुभिः सप्त सप्त शैलाश्च निम्नगाः) ॥१५
 क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारकः ।
 देवावृतपुण्डरीकश्च दुन्दुभिर्द्विगुणो मिथः ॥१६
 द्वीपा द्वीपेषु ये शैला यथा द्वीपानि ते तथा ।
 पुष्कराः पुष्कला धन्यास्तिथ्यां विप्रादया हरिम् ॥१७
 यजन्ति क्रौञ्चद्वीपस्तु दधिमण्डोदकावृतः ।
 संवृतः शाकद्वीपेन भव्याच्छाकेश्वराः सुतसः ॥१८

यह दुगुना या घोर दुगुने ही सुरोदधि से समावृत (घिरा हुआ)
 था । इसके कुमुद-घनल-बलाहक-द्रोण-कङ्क-महिष-ककुब्जान ये सात पुत्र
 थे । कपिला-मरुण-पीता-कृष्णा ये नदियाँ वहाँ पर हैं । ब्राह्मण प्रभृति
 लोग वहाँ पर वायु रूप देव का यजन करते थे । यह मुरा के सागर से आवृत
 होता है । ज्योतिष्मान् के कुशेश थे । उद्भिद का वेणुमान् पुत्र था ॥११॥
 ॥११॥ द्वैरथी-लम्बनी-धैर्य-कपिल और प्रभाकर ये भी पुत्र थे । दमिमुख्य
 ब्राह्मण प्रभृति वहाँ रहते हैं जो कि ब्रह्मरूप वाले का यजन किया करते
 हैं ॥१२॥ विद्रुम-हेमशैल-द्युतिमान्-पुष्पवान्-कुशेश और हरि शैल ये
 पर्वत हैं और वर्षा के लिये वहाँ मन्दराचल है ॥१३॥ यह पर्वत क उदधि से
 वेष्टित रहता है और वहाँ क्रौञ्च द्वीप से भी आवृत रहता है । क्रौञ्च के दधि-
 पति द्युतिमान् के पुत्र होते हैं और उन्हीं के नाम से वर्ष भी हैं ॥ १४ ॥

कुशव-मनोनुग-ग्रन्थकारक-प्रधान-उष्ण-मुनि और दुन्दुभि ये सात-सात पर्वत हैं तथा नदियाँ भी हैं ॥ १५ ॥ क्रौञ्च-वामन-तामरा ग्रन्थकारक-देववृत्-पुण्डरीक-दुन्दुभि और द्विगुण ये द्वीप है और द्वीप में शैल (पर्वत) हैं । जैसे द्वीप है वैसे ही शैल भी होते हैं । पुष्कर-पुष्कल-धन्या तिथ्य और ब्राह्मण आदि वहाँ हरि का भजन किया करते हैं । क्रीञ्च द्वीप तो दही-मण्ड उदक से आवृत होता है । शक द्वीप से भी घिरा हुआ है और भव्य से शकेश्वर पुत्र हुए थे ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मणीचकः ।

कुशात्तरथा (राश्व) मोदाकी द्रुमस्तन्नामवर्षकाः ॥ १९ ॥

उदयाख्या जलधरो रैवतः श्यामकोद्रकी ।

आम्ब्रकयस्नथा रम्यः केशरी सप्त निम्नगाः ॥ २० ॥

मगा मगधमानस्यामन्दगाश्च द्विजातयः ।

यजन्ति सूर्यरूपं तु शाकः क्षीराब्धिनाऽऽवृतः ॥ २१ ॥

पुष्करेणाऽऽवृतः साऽपि द्वौ पुष्पौ सवनस्य च ।

महावोतो धातकिश्च वर्षे द्वे नामचिन्हिते ॥ २२ ॥

एकोऽद्रिर्मनिसाग्रोऽन्न मद्यतो बलयाकृतिः ।

योजनानां सहस्राणि विस्तारोच्छ्रायतः समः ॥ २३ ॥

जीवन दशसात् सूर्यं ह्याऽन्न पूज्यते ।

स्वादूदकेनोदधिना वेष्टितो द्वीपमानतः ॥ २४ ॥

ऊनानिरिक्तता चापा समुद्रपु न जायते ।

उदयास्तमनेष्विन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥ २५ ॥

दशोत्तराणि पञ्चैव अङ्ग लानां शतानि वै ।

अर्पा वृद्धिक्षयी दृष्टौ सामुद्रीणां महामुने ॥ २६ ॥

स्वादूदकात्तु द्विगुणा भूर्हमी जन्तुवजिता ।

लोकालोकस्ततः शैलो योजनायुतविस्तृतः ॥ २७ ॥

लोकालोकस्तु तमसाऽऽवृतोऽथाण्डकटाहतः ।

भूमिः साऽण्डकटाहेन पञ्चाशत्कोटिविस्तरा ॥ २८ ॥

उन पुत्रों के नाम जलद-कुमार-सुकुमार-मणीचक-कुशोत्तर-मोदाकी और द्रुम ये थे और इनके नामों से ही वर्ष हैं ॥ १९ ॥ उदय—जनघर—रैवत—श्यामक—उद्रक—आम्बिकेय—रम्य और केशरी सात नदिया हैं ॥ २० ॥ मग—मगधमान—अमन्दग ये द्विजातियों हैं । ये सूर्य रूप देव का वहाँ यजन किया करते हैं । शाक क्षीर समुद्र से आवृत है ॥ २१ ॥ वह पुष्कर से भी घिरा हुआ है । सवन के दो पुत्र थे जिनके नाम महावीर और घानकि थे । इनके नामों से वर्ष थे ॥ २२ ॥ यहाँ एक पर्वत मानस नाम वाला है जो मध्य में बलय (कड़ा) की आकृति वाला है । एक सहस्र योजन विस्तार और ऊँचाई वाला समान है ॥ २३ ॥ यहाँ पर एक सहस्र वर्ष का जीवन काल होता है और देवों के द्वारा ब्रह्मा की पूजा की जाती है । द्वीप के मान से यह स्वादिष्ट जल के समुद्र से वेष्टित रहता है ॥ २४ ॥ समुद्रों में जल की कमी या अतिरिक्तता (अधिकता) नहीं हुआ करती है । बहुधा चन्द्रमा के उदय और अस्त होने के शुक्ल तथा कृष्ण पक्षों में समुद्र का जल बढ़ा करता है । किन्तु हे महामुने ! पन्द्रह सो अङ्गुल तक जल की वृद्धि और क्षय समुद्र के जलों में देखा गया है । बग यही कमी और वृद्धि होती है ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ स्वादिष्ट जल से दुगुनी भूमि है जो हेममयी है और उस पर कोई भी जन्तु नहीं है । इसके आगे लोकालोक पर्वत है जो दश हजार योजन के विस्तार से युक्त है ॥ २७ ॥ लोकालोक पर्वत अन्धकार से और अण्डकटाह से आवृत रहता है । वहा अण्डकटाह से पचाम करोड़ विस्तार वाली भूमि है ॥ २८ ॥



५२—ज्योतिःशास्त्रकथनम्

ज्योतिःशास्त्रं प्रवक्ष्यामि शुभाशुभविवेकदम् ।
 चातुर्लक्षस्य सारं यत्तज्ज्ञात्वा सर्वविद्भवेत् ॥१॥
 षट्काष्ठके विधाहो न न च द्विर्द्विदशे स्त्रियाः
 न त्रिकोणे ह्यत्र प्रीतिः शेषे च समसप्तके ॥२॥

द्विर्द्वादशे त्रिकोण व मंली क्षेत्रगयोयंदि ।

भवेदेकाधित्यं च ताराप्रोतिरथापि वा ॥३॥

तथाऽपि कार्यः संयोगो न तु पटकाष्टके पुनः ।

जावे भृगो चास्तमिते म्रियते च पुमान्स्त्रियाः ॥४॥

गुरुक्षेत्रगते सूर्ये सूर्यक्षेत्रगते गुरो ।

विवाहं न प्रशसन्ति कन्याबंधव्यकृद्भवेत् ॥५॥

अतिचारे त्रिपक्षं स्याद्वके मासचतुष्टयम् ।

व्रतोद्वाही न कुर्वीत गुरोर्वका (वक्रिधा) तिचारयोः ॥६॥

चंत्वे पीये न रिक्तासु हरी सुप्ते कुजे रवी ।

चन्द्रक्षये चाशुभ स्यात्संख्याकालः शुभावहः ॥७॥

रोहिणी चोत्तरा मूल स्वाती हस्तोऽथ रेवता ।

तुले च मिथुने शस्ता विवाहः परिकीर्तितः ॥८॥

श्री अग्निदेव ने कहा — ध्रुव मैं शुभ और अशुभ का विवेचन करने वाले ज्योतिष-शास्त्र के विषय में वर्णन करूँगा । चार लाख के सार को जान कर मानव सबका ज्ञाता हो जाता है ॥ १ ॥ पडाष्टक में कन्या तथा वर का विवाह नहीं किया जाता है ; एक राशि से छठवीं राशि आने पर पडाष्टक होता है । स्त्री के दूसरे और बारहवें सूर्य होने पर विवाह नहीं होता है । त्रिकोण गत सूर्य के रहने पर भी प्रीतियोग भ्रष्टा विवाह नहीं होता है । बाकी अन्य घरों में रहने पर विवाह शुभ है । जो कि मात घर ममान माने जाते हैं । दूसरे और बारहवें घर में तथा त्रिकोण में यदि क्षेत्रपों ग्रहों की आपस में मैत्री हो अथवा दोनों का एक ही ग्रह स्वामी हो अथवा तारा प्रीति हो तो विवाह का संयोग बना लेना चाहिए । किन्तु पडाष्टक में फिर भी कभी नहीं करना चाहिए । गुरु और शुक्र अस्त हों तो विवाह नहीं करना चाहिए । यदि कोई विवाह कर लेता है तो उस स्त्री का पुरुष मर जाता है ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ सूर्य के घर में गुरु हो और गुरु के घर में सूर्य हो तो भी सौम्य ऐसे योग के पड़ने पर विवाह को शुभ नहीं बतलावे हैं क्योंकि ऐसा

कन्या को विधवा बना देने वाला होता है ॥ ५ ॥ ग्रहों का अतिचार यदि हो जावे अर्थात् अपनी योगित गति से ग्रह की गति अधिक हो जावे तो तीन णक्ष तक और ग्रह वक्र गति वाला हो जावे तो चार मास तक और उसे विवाह नहीं करना चाहिए । वक्र गति में ग्रह पुनः पीछे की ओर अपनी गति किया करता है । यहाँ गुरु के अनिचार तथा वक्र गति में विचार करना चाहिए ॥ ६ ॥ चैत्र और पौष मास में—रिक्ता तिथियों में—देवशयन के समय में—मङ्गल और रवि में—चन्द्रमा के क्षय काल में विवाह कार्य अशुभ होता है । विवाह के लिए सन्ध्या का समय शुभ माना गया है ॥ ७ ॥ विवाह के कुछ नक्षत्र भी निश्चित हैं जिनको वैवाहिक नक्षत्र कहते हैं वे रोहिणी—उत्तरा—मूल—स्वानी—हस्त और रेवती ये होते हैं । तुला और मिथुन में विवाह बहुत अच्छा बताया गया है ॥ ८ ॥

विवाहे कर्णवेधे च व्रते पुंसवने तथा ।
 प्राशने चाऽऽचूडाया विदध्या च विवदयेत् ॥१८॥
 श्रवणे मूलपुष्ये च सूर्यमङ्गलजीवके ।
 कुम्भे सिंहे च मिथुने कर्मे पुंसवन स्मृतम् ॥१९॥
 हस्ते मूले मृगे पीष्णे बुधे शुक्रे च निष्कृतिः ।
 अर्कन्दुजीवभृगुजे मूले ताम्बूलभक्षणम् ॥२०॥
 अन्नस्य प्राशनं शुक्रे जीवे मृगे च मीनके ।
 हस्तादिपञ्चके पुष्ये कृत्तिकादिपत्रे तथा ॥२१॥
 अश्विन्यामथ रेवत्यां नवाग्रफलभक्षणम् ।
 पुष्यो हस्तस्तथा ज्येष्ठा राहिणी श्रवणाश्विनौ ॥२२॥
 स्वातिमौम्ये च भर्गज्यं कुर्यादग्न्यत्र वर्जयेत् ।
 पूर्वाश्रयं मघा याम्यं पावनं श्रवणस्यम् ॥२३॥
 भौमादित्यगनेधरि स्नानार्थं रोगमुक्तिनः ।
 पापिवे द्वाष्टहीकारं मध्ये नाभ च दिधु च ॥२४॥
 ह्रीं पुटं पापिवे दिधु ह्रीं विदिधु तिर्यङ्मून् ।
 गौरोगनाकुं कुमेन भूर्जं वस्त्रे गते धृतम् ॥२५॥

शत्रवो वशमायान्ति मन्त्रेणानेन निश्चितम् ।

श्रीं ह्रीं संपुटं नाम श्रीं ह्रीं (च) पञ्चाष्टके क्रमात् ॥१७

विवाह—कर्णवेध—व्रत—पुंसवन—घनप्राशन और चूड़ा कर्म में विद्व नक्षत्र को विवर्जित करना चाहिए । श्रवण, मूल और पुष्य में, रवि, भौम और गुरु में, कुम्भ, सिंह और मिथुन में, पुंसवन बनाया गया है । हस्त, मूल, मृगशिरा और पौष में, बुध और शुक्र में निष्क्रमण करना चाहिए अर्थात् घर में बाहर निकालना चाहिए । नूरां, चन्द्र, गुरु और मृगु में मूल नक्षत्र में ताम्बूल भक्षण करना चाहिए ॥ ६ ॥ १० ॥ ११ ॥ अन्न का प्राशन जो नवजात को आरम्भ में ही कराया जाता है वह शुक्र और जीव में, मृगशिरा और मीन में हस्त में आदि लेकर पांचों में तथा वृत्तिका में आदि तीना नक्षत्रों में, अश्विनी तथा रेवती में नवान्न और फल का भक्षण करना चाहिए । पुष्य, हस्त, ज्येष्ठा, रोहिणी, श्रवण, अश्विनी, स्वाति, भौम्य में औषध ग्रहण करना चाहिए अन्य समय इसके लिए वर्जित है । तीनों पूर्वा नक्षत्र, मघा, याम्य, श्रवण से तीन नक्षत्र पावन है । भौम, रवि और शनिवार रोग में मुक्त होने पर स्नान करने के लिए श्रेष्ठ होते हैं । पारिव में घाठ 'ह्रीं' यह बीज—मध्य में नाम, और दिशाओं में ह्रीं पुट—पारिव में, दिशाओं में तथा विदिशाओं में वमुओं को निवे । गौरोचन और कुंकुम से भोजपत्र पर लिखकर वस्त्र से गले में बांधे तो ममस्त शत्रुगण वश में आ जाते हैं । इन मन्त्र का यह निश्चित प्रभाव है । इन मन्त्र का नाम—श्री-ह्रीं-संपुट-नाम-श्री ह्रीं, यह पञ्चाष्टक में होता है ॥१२॥१३॥१४॥१५॥१६॥१७॥

गौरोचनाकुंकुमेन (✽ भूर्जोऽयं मुभगावृते ।

गोमध्यवागमः पक्षे हरिद्राया रमेन च ॥१८

शिनापट्टेऽरोन्मन्मयति भूमावधोनुधीकृतम् ।

ॐ ह्रीं मः संपुटं नाम ओं ह्रीं सः पञ्चाष्टके क्रमात् ॥१९

गोरोचनाकुंकुमेन) भूर्जे मृत्युनिवारणम् ।

एकपञ्चनव प्रोत्यै द्विपट्टादश योगकाः ॥२०॥

द्विसप्तकादशे लाभो वेदाष्टद्वादशे रिपुः ।

तनुर्धनं च सहजः सुहृत्सुनो रिपुस्तथा ॥२१॥

जाया निधनधर्मो च वर्माऽऽव्ययं कं क्रमात् ।

स्फुटं मेपादिलग्नेषु नवतारावलं वदेत् ॥२२॥

जन्म संपद्विपत्क्षेम प्रत्यरिः साधकः क्रमात् ।

निधनं मित्रपरममित्रं तारावलं विदुः ॥२३॥

वारे जगुरुशुकाणां सूर्याचन्द्रमसोऽस्तथा ।

माघादिमासपट्टके तु क्षीरमाद्यं प्रशस्यते ॥२४॥

कर्णवेधो बुधे जीवे पुष्ये श्रवणचित्रयोः ।

पञ्चमेऽब्दे चाध्ययनं पक्षीप्रतिपद त्यजेत् ॥२५॥

गोरोचन कुंकुम से मुभगावृत्त भोजपत्र पर गोमध्यवागम हरिद्रा के रम से लिखे और शिलापट्ट पर लिखने से शत्रुघ्नों का स्तम्भन करता है । इसे भूमि की ओर अधोमुखी करण कर देवे । मन्त्र—“ग्रो हूं मः संपुट नाम ग्रो हूं सः” पवाष्टक में क्रम से लिखे ॥ १६ ॥ गोरोचन कुंकुम से भोज पत्र पर मृत्यु का निवारक है । एक-पाच नौ प्रीति के लिये—दो छै बारह योगक—तीन—सात ग्यारह लाभ—चार—आठ बारह शत्रु ! अब कुण्डली के बारह घरों के नाम—तनु-धन-सहज-सुहृत्-सुत-रिपु-जात-निधन-धर्म-कर्म आद्य-व्यय हैं । मेघ आदि लग्नों में नव तारा (ग्रह) का बल बताव । जन्म सम्पत्ति, विपत्ति क्षेम प्रत्यरि-साधक-निधन मित्र-परम मित्र ये सब तारा बल से जाने जाते हैं । १८ । १९ । २० । २१ । २२ । २३ ॥ नवजात शिशु का सर्व प्रथम क्षीर कर्म अर्थात् मुण्डन संस्कार माघ से लेकर छै मासों में और बुध-गुरु-शुक्र तथा चन्द्र एवं रविवार में कराना प्रशस्त माना जाता है ॥ २४ ॥ कानों के छेदन का कर्ण वेध संस्कार बालकों का किया जाता है । यह संस्कार गुरु वात या बुधवार में और पुष्य-चित्रा तथा श्रवण नक्षत्र में कराना

चाहिए । जब बालक का पाँचवाँ वर्ष आरम्भ हो जावे तभी तमका विद्यारम्भ संस्कार कराना चाहिए । इसमें यह ध्यान रखना चाहिए कि पक्ष और प्रतिपदा तिथि न हो । विद्यारम्भ में इन दोनों तिथियों को त्याग देना चाहिए ॥ २५ ॥

रिक्ता पञ्चदशी भीमं प्राच्यं वाणीं हरि श्रियम् ।

माघादिमासपट्के तु मेखलावन्धनं शुभम् ॥२६

चूडाकरणमाद्यं च श्रावणादौ न शस्यते ।

अस्तं याते गुरौ शुक्रे क्षीणे च शशलाञ्छने ॥२७

उपनीतस्य विप्रस्य मृत्युं जाड्यं विनिदिशेत् ।

क्षौरक्षौ शुभवारे च समावर्तनमिष्यते ॥२८

शुभक्षेत्रे विलग्नेषु शुभयुक्तेक्षितेषु च ।

अश्विनीमघाचित्रासु स्वातीयाम्योत्तरासु च ॥२९

पुनर्वसौ तथा पुष्ये धनुर्वेदः प्रशस्यते ।

भरण्यार्द्रा मघाऽश्लेषा बन्हिमगर्क्षयोस्तथा ॥३०

जिजीविषुर्न कुर्वीत वस्त्रप्रावरणं नरः ।

गुरौ शुक्रे बुधे वस्त्रं त्रिवाहादौ न भादिकम् ॥३१

रिक्ता तिथि तथा पञ्चदशी भीम वार में नरस्वनी-लक्ष्मी और भगवान् हरि का अर्चन करके आरम्भ करे माघ मास से लेकर छै मास तक मेखला बन्धन का संस्कार परम शुभ माना जाता है ॥ २६ ॥ आद्य चूडाकरण संस्कार श्रावण आदि मासों में अच्छा नहीं माना गया है । गुरु और शुक्र के अस्त हो जाने के समय में तथा चन्द्रमा के क्षीण होने के अग्रपर पर जो ब्राह्मण का उपनयन संस्कार किया जाता है वह उसको जड़ता देने वाला तथा मृत्यु कारक भी होता है । क्षौर कराने के नक्षत्र में तथा किसी शुभ वार में समावर्तन संस्कार अभीष्ट माना गया है । यह वह संस्कार है जो उपनयन तथा वेदारम्भ के पश्चात् ब्रह्मवर्ष आश्रम समाप्त कर पुनः गृह स्थाश्रम में प्रविष्ट होने के लिये किया जाता है ॥ २७-२८ ॥ किसी शुभ क्षेत्र में विशेष लग्नों में

रेवती और वारुण यथा हरि मे खरीदी हुई वस्तु या द्रव्य लाभ देने वाला होता है और इन उक्त नक्षत्रादि में विक्रय किया जावे तो हानि हुआ करती है ॥ ३४ ॥ भरणी और तीनों पूर्वा अर्थात् पूर्वा फाल्गुनी-पूर्वाषाढा और पूर्वा-भाद्रपदा-भाद्रा-आश्लेषा--मघा और अनिल-बह्नि-ज्येष्ठा और विशाखा इन नक्षत्रों में दिया हुआ धन तथा किसी काम में प्रयोग किया धन या धरोहर के रूप में रखा हुआ धन स्वामी का नहीं रहा करना है । उत्तराश्रवण और शक्र में अर्थात् इन तीनों नक्षत्रों में राजा का अभिषेक करना चाहिए ॥ ३५ ३६ ॥ चैत्र-ज्येष्ठ-भाद्रपद-भाश्विन-पौष और माघ इन मासों का त्याग करके अन्य मासों में गृह निर्माण कराना तथा प्रवेश करना शुभ होता है ॥ ३७ ॥

अश्विनो रोहिणी मूलमुत्तराश्रयमन्दवम् ।

स्वाती हस्तोऽनुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते ॥३८

आदित्यभौमवर्जं तु वापोप्रासादके तथा ।

सिहराशिगते जीवे गुर्वादित्ये मलिग्लुचे ॥३९

वाले वृद्धेऽस्तगे शुक्रे गृहकर्म विवर्जयेत् ।

अग्निदाहो भयं रोगो राजपीडा घनक्षतिः ॥४०

संग्रहे तृणकाष्ठानां कृते श्रवणपञ्चके ।

गृहप्रवेशनं कुर्याद्विष्टोत्तरवारुणे ॥४१

नौकाया घटने द्विविपञ्चसप्तत्रयोदशी ।

नृपदशौ घनिष्ठासु हस्तपौष्णाश्विनीषु च ॥४२

पूर्वाश्रयं घनिष्ठाऽऽर्द्रा बन्धिः स्तम्भविशाखयोः ।

आश्लेषा चाश्विनो चैव यात्रामिद्विस्तु संपदा ॥४३

गृह के आरम्भ करने में अश्विनी-रोहिणी-मूल और तीनों उत्तरा अर्थात् उत्तरा फाल्गुनी—उत्तराषाढा और उत्तरा भाद्रपदा—ऐन्दव-स्वाति-हस्त और अनुराधा ये गृह के आरम्भ में शुभ होने हैं ॥ ३८ ॥ वावड़ो और प्रमाद के निर्माण करने में रविवार और भौमवार वा वर्जन कर देना चाहिए गुह के सिंह राशि पर स्थित होने पर तथा गुरु और मूय के मनिष्ठुच होने

पर एवं शुक्र के बाल तथा वृद्ध रूप में भस्म हो जाने पर गृह कर्म नहीं करना चाहिए । इस प्रतिकूल समय में गृहारम्भ करने से भ्रमिदाह-भय-रोग-राजा की ओर से पीडा और धन का नाश ये कुफल होते हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ श्रवण से आदि लेकर पञ्चमी में तृण और काष्ठ का संग्रह करे । धनिष्ठा और उत्तर वारुण में गृह में प्रवेश करना चाहिए । नौका के घटन में दोज-तृतीया-पञ्चमी-सप्तमी और त्रयोदशी तिथियाँ श्रेष्ठ होती हैं । नृप का दर्शन धनिष्ठा-हस्त-पुण्य और अश्विनी नक्षत्रों में करना चाहिए अर्थात् उक्त नक्षत्रों में राजा से भेंट करना उत्तम होता है । तीनों पूर्वा (पूर्वा फाल्गुनी पूर्वाषाढा-पूर्वाभाद्रपद । — धनिष्ठा-आर्द्रा-वह्नि-स्तैम्य-विशाखा-आश्लेषा और अश्विनी इन नक्षत्रों में यात्रा करने से सिद्धि होती है और धन की प्राप्ति भी होती है ॥ ४१-४२-४३ ॥

त्रिपुत्तरेषु रोहिण्यां मिनीवालो चतुर्दशी ।

श्रवणा चैव हस्ता च चित्रा चवाष्टमी तथा ॥४४

गोषु यात्रां न कुर्वीत प्रवेशं नैव कारयेत् ।

अनिलोत्तरोहिण्यां मृगमूलपुनर्वसौ ॥४५

पुष्यश्रवणहस्तेषु कृपिकर्म समाचरेत् ।

पुनर्वसूत्तरास्वातीभगमूलेन्द्रवारुणे ॥४६

गुरोः शुक्रस्य वारे वा वारे च सोमभास्वतोः ।

वृषलग्ने च कर्त्तव्यं कन्यायां मिथुने तथा ॥४७

द्विपञ्चदशमी सप्ततृतीया च त्रयोदशी ।

रेवती रोहिणोन्द्राग्निहस्तमैत्रोत्तरेषु च ॥४८

मन्दारवर्जं बीजानि धापयेत्संपदर्थं पि ।

रेवतीहस्तमूलेषु श्रवणे भगमेतयोः ॥४९

तीनों उत्तराश्रों में—रोहिणी—घमावस्या और चतुर्दशी तिथि—श्रवण-हस्त चित्रा नक्षत्रों से युक्त अष्टमी में गोश्रों में यात्रा नहीं करे तथा प्रवेश भी नहीं कराना चाहिए । अनिल-उत्तरा—रोहिणी—मृगशिरा-मूल

पुनर्वसू—मृत्स्य—श्रवण और हस्त इन नक्षत्रों कृषि का काम करना चाहिए ।
 पुनर्वसू—उत्तरा—स्वाती—भग—मूल इन्द्र वारुण नक्षत्रों में, गुरु शुक्र—सोम
 और रविवार इन वारों में, वृष—कन्या—मिथुन इन लग्नों में दोष—पञ्चमी—
 दशमी—सप्तमी—तृतीया और त्रयोदशी इन तिथियों में तथा रेवती—रोहिणी
 इन्द्र—अग्नि—हस्त—मंग और उत्तर में मन्दार को छोड़ कर बीजों का वपन
 कराना चाहिए । जिनमें सम्पदा की प्राप्ति होगी है । रेवती—हस्त—मूल—
 श्रवण—भग और मंग इन नक्षत्रों में पितृ कर्म—देवकर्म और सौम्य कार्य
 करना चाहिए । धान्य का छेदन मृगोदय में करे । हस्त—चित्रा—अदिति—
 स्वाती—रेवती और श्रवण से लेकर तीन नक्षत्रों में तथा लग्न जब स्थिर हो
 तब और गुरुवार—चन्द्र तथा शुक्रवारों में—याम्य—अदिति—ज्येष्ठा और
 उत्तरा में प्रवेश कराना चाहिए ॥ ४४—४६—५० ॥

पितृदेवे तथा सौम्ये ॐ धान्यच्छदं मृगोदये ।

हस्तचित्रादितिस्वातीरेवत्या श्रवणत्रये ॥५०

स्थिरे लग्ने गुरोर्वारोऽथ वा भार्गवसौम्ययोः ।

याम्यादितिमथाज्येष्ठासूत्तरेषु प्रवेशयेत् ॥५१

ॐ धनदाय सर्वघनेशाय देहि मे धनं स्वाहा ।

ॐ नवे हर्षे, इनादेवि लोकसंवर्धिनि कामरूपिणि देहि मे

धनं स्वाहा ॥५२

पक्षस्थ निवृत्तं धान्यराशिस्थं धान्यवर्धनम् ।

त्रिपूर्वाणु विशाखायां घनिष्ठावारुणेऽपि च ॥५३

एतेषु षट्षु विज्ञेय धान्यनिष्क्रमणं बुधैः ।

देवतारामवाप्यादिप्रतिष्ठोदङ्मुखे रवौ ॥५४

मिथुनस्थे रवौ दर्शाद्यदि स्याद्द्वादशी तिथिः ।

मदा तत्रैव कर्तव्यं शयनं चक्रपाणिनः ॥५५

सिंहतूलीगते चार्के दर्शाद्यद्द्वादशीद्वयम् ।

आदाविन्द्रसमुत्थानं प्रबोधश्च हरेः क्रमात् ॥५६

“ओ धनदाय सर्वं धनेशाय देहि मे धनं स्वाहा । ओ नवे हव्ये, इला-
देवि ! लोक संवधिनि ! काम रूपिणि ! देहि मे धनं स्वाहा” — इस मन्त्र को
पत्र पर लिखकर धान्य की राशि पर रखद तो धान्य की वृद्धि हो जाती है ।
तीनों पूर्वाश्वी में विशाखा — धनिष्ठा — वरुण इन छँ नक्षत्रों में विद्वानों के
द्वारा धान्य का निष्क्रमण करना चाहिए । रवि के उत्तरायण होने पर देवता
आराम— (बाग) और बापी आदि की प्रतिष्ठा करे । मिथुन पर रवि के
होने पर यदि अमावस्या से द्वादशी तिथि हो तो सदा वहाँ पर ही विष्णु का
शयन कराना चाहिए ॥ ५१-५२-५३-५४ ॥ तिह और तुला पर सूर्य हो
और अमावस्या से द्वादशीद्वय हो तब आदि में इन्द्र देव का समुत्थान करे
और फिर क्रम से भगवान् हरि का प्रबोधन करना चाहिए ॥ ५५ ॥ इसी
प्रकार से कन्या राशि पर सूर्य के स्थित होने पर तथा त्रिपाद नक्षत्रों में
जब भद्रा तिथि हो अष्टमी में दुर्गा का उत्थापन करे ॥ ५६ ॥

तथा कन्यागते भानौ दुर्गेत्थाने तथाऽष्टमी ।
त्रिपादेषु च ऋक्षेषु यदा भद्रा तिथिर्भवेत् ॥५७
भौमादित्यशनेश्वरी विज्ञेयं तत्त्रिपुष्करम् ।
सर्वकर्मण्युपादेया विशुद्धिश्चन्द्रतारयोः ॥५८
जन्माश्रितस्त्रिपष्ठश्च सप्तमी दशमस्तथा ।
एकादशः शशी येषां तेषामेव शुभ वदेत् ॥५९
शुक्लपक्षे द्वितीयकृश्च पञ्चमो नवमः शुभः ।
मित्रातिमित्रमाघकसंपत्क्षेमादितारिकाः ॥६०
जन्मना मृत्युमाप्नोति विपदा धनसंक्षयम् ।
प्रत्यरी मरण विद्यान्निघने याति पंचताम् ॥६१
कृष्णाष्टमीदिनादूर्ध्वं यावच्छुक्लाष्टमीदिनम् ।
तावत्काल शशी क्षीणः पूर्णस्तक्षोपरि स्मृतः ॥६२

मङ्गल—रवि और शनि यह कि पुष्कर जानना चाहिए । समस्त कर्मों
में चन्द्र और तारा की विशेष शुद्धि उपादेय होती है ॥ ५७ ॥ चन्द्रमा लग्न

“ओं धनदाय सर्वं धनेशाय देहि मे धनं स्वाहा । ओं नवे हर्षे, इला-
देवि ! लोक संवर्धनि ! काम रूपिणि ! देहि मे धनं स्वाहा”—इस मन्त्र को
पत्र पर लिखकर धान्य की राशि पर रखद तो धान्य की वृद्धि हो जाती है ।
तीनों पूर्वाग्रों में विशाखा—घनिष्ठा—व्रुण इन छैनक्षत्रों में विद्वानों के
द्वारा धान्य का निष्क्रमण करना चाहिए । रवि के उत्तरायण होने पर देवता
आराम—(वाग) और वापी आदि की प्रतिष्ठा करे । मिथुन पर रवि के
होने पर यदि शमावस्या से द्वादशी तिथि हो तो सदा वहाँ पर ही विष्णु का
शयन कराना चाहिए ॥ ५१-५२-५३-५४ ॥ सिंह और तुला पर सूर्य हो
और शमावस्या में द्वादशीद्वय हो तब आदि में इन्द्र देव का समुत्थान करे
और फिर क्रम से भगवान् हरि का प्रबोधन करना चाहिए ॥ ५५ ॥ इसी
प्रकार से कन्या राशि पर सूर्य के स्थित होने पर तथा त्रिपाद नक्षत्रों में
जब भद्रा तिथि हो अष्टमी में दुर्गा का उत्थापन करे ॥ ५६ ॥

तथा कन्यागते भानी दुर्गात्थाने तथाऽष्टमी ।
त्रिपादेपु च ऋक्षेपु यदा भद्रा तिथिर्भवेत् ॥५७
भीमादित्यशनश्चारी विज्ञेयं तत्त्रिपुष्करम् ।
सर्वकर्मण्युपादेया विष्णुद्विचन्द्रतारयोः ॥५८
जन्माश्रितन्त्रिपुष्पश्च सप्तमो दशः स तथा ।
एकादशः दशो येषां तेषामेव शुभं वदेत् ॥५९
शुक्लपक्षे द्वितीयकृश्च पञ्चमो नवमः शुभः ।
मिषातिमिषमाघकसंपरक्षमादितारिकाः ॥६०
जन्मना मृत्युमाप्नोति विपदा धनसंक्षयम् ।
प्रत्यरो मरणं विद्यान्निघने याति पंचताम् ॥६१
कृष्णाष्टमीदिनादूर्ध्वं यावच्छुक्लाष्टमीदिनम् ।
तान्तकालं दशो दशैः पूर्णस्तस्रोपरि स्मृतः ॥६२

मङ्गल—रवि और शनि यह कि पुष्कर जानना चाहिए । तमस्त वर्मों
में चन्द्र और तारा की विशेष शुद्धि उपादेय होती है ॥ ५७ ॥ चन्द्रमा लग्न

में स्थित हो—तीसरे—छठे—सातवें—दशवें और ग्यारहवें गृह में स्थित हो तो उसे शुभ कहना चाहिए ॥५८॥ शुक्ल पक्ष में दूसरा—पाँचवाँ और नवम चन्द्रमा शुभ होता है । मित्र—अतिमित्र—साधक—सम्पत्—क्षेम आदि तारका होते हैं । जन्म से मृत्यु को प्राप्त होता है । विपद से धन का नाश होता है । प्रत्यरि में मरण होता है और निघन में पञ्चता को प्राप्त होता है ॥५९॥ ६०॥ मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी से आगे जब तक शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि होती है उतने समय तक क्षीण चन्द्रमा माना जाता है । इससे ऊपर के समय में अर्थात् शुक्ल पक्ष की नवमी से आगे पूर्ण चन्द्र बताया गया है ॥६१॥ ६२॥

वृषे च मिथुने भानौ जीवे चन्द्रेन्द्रदेवते ।

पौर्णमासी गुरोवरि महाज्येष्ठी प्रकीर्तिता ॥६३॥

ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्राजापस्ते रविस्तथा ।

पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य महाज्येष्ठी प्रकीर्तिता ॥६४॥

स्वात्यन्तरे यन्त्रनिष्ठे शक्रस्योत्थापयद्देवजम् ।

हयक्षपादे चाश्विन्यां सप्ताहान्ते विसर्जयेत् ॥६५॥

सर्वं हेमसमं दानं सर्वं ब्रह्मसमा द्विजाः ।

सर्वं गङ्गासमं तोयं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥६६॥

ध्वाङ्क्षी महोदरी घोरा मन्दा मन्दाकिनी तिला ।

राक्षसी च क्रमेणाकृतसंक्रान्तिर्नामभिः स्मृता ॥६७॥

वालवे कोलवे नागे तैतिले करणे यदि ।

उत्तिष्ठन्संक्रमत्यकंस्तदा लोकः सुखी भवेत् ॥६८॥

गरे ववे वणिग्विष्टौ किंस्तुघ्ने शकुनी व्रजेत् ।

राज्ञो दोषेण लोकोऽयं पीड्यते संपदा समम् ॥६९॥

चतुष्पाद्विष्टिवाणिज्ये शयितः संक्रमेद्रविः ।

दुर्भिक्षं राजसङ्ग्रामो दंष्टयोः गंतव्यो भवेत् ॥७०॥

“ओं धनदाय सर्वं धनेशाय देहि मे धनं स्वाहा । ओं नवे हर्षे, इला-
देवि ! लोक संवर्धनि ! काम रूपिणि ! देहि मे धनं स्वाहा” — इस मन्त्र को
पत्र पर लिखकर धान्य की राशि पर रखद नो धान्य की वृद्धि हो जाती है ।
तीनों पूर्वाग्रों में विशाखा — धनिष्ठा — वरुण इन छँ नक्षत्रों में विद्वानों के
द्वारा धान्य का निष्क्रमण करना चाहिए । रवि के उत्तरायण होने पर देवता
आराम— (बाग) घोर वापी आदि की प्रतिष्ठा करे । मिथुन पर रवि के
होने पर यदि अमावस्या से द्वादशी तिथि हो तो सदा वहाँ पर ही विष्णु का
शयन कराना चाहिए ॥ ५१-५२-५३-५४ ॥ सिंह और तुला पर सूर्य हो
और अमावस्या से द्वादशीद्वय हो तब आदि में इन्द्र देव का समुत्थान करे
और फिर क्रम से भगवान् हरि का प्रबोधन करना चाहिए ॥ ५५ ॥ इसी
प्रकार से कन्या राशि पर सूर्य के स्थित होने पर तथा त्रिषाद नक्षत्रों में
जब भद्रा तिथि हो अष्टमी में दुर्गा का उत्थापन करे ॥ ५६ ॥

तथा कन्यागते भानौ दुर्गोत्थाने तथाऽष्टमी ।
त्रिषादेषु च ऋक्षेषु यदा भद्रा तिथिर्भवेत् ॥५७
भीमादित्यशनैश्चारी विज्ञेयं तत्त्रिपुष्करम् ।
सर्वकर्मण्युपादेया विशुद्धिश्चन्द्रतारयोः ॥५८
जन्माश्रितस्त्रिपष्ठश्च सप्तमो दशमस्तथा ।
एकादशः शशी तेषां तेषामेव शुभं वदेत् ॥५९
शुक्लपक्षे द्वितीयकृश्च पञ्चमो नवमः शुभः ।
मिक्षातिमिलमाधकसंपत्क्षेमादितारिकाः ॥६०
जन्मना मृत्युमाप्नोति विषदा धनसंक्षयम् ।
प्रत्यरो मरणं विद्यान्निधने याति पंचताम् ॥६१
कृष्णाष्टमीदिनादूर्ध्वं यावच्छुक्लाष्टमीदिनम् ।
तावत्कालं शशी क्षीणः पूर्णस्ततोपरि स्मृतः ॥६२

मङ्गल—रवि और शनि यह कि पुष्कर जानना चाहिए । समस्त वर्षों
में चन्द्र और तारा की विशेष शुद्धि उपादेय होती है ॥ ५७ ॥ चन्द्रमा सप्त

में स्थित हो—तीसरे—छठे—गातवें—दशवें और ग्यारहवें ग्रह में स्थित हो तो उसे शुभ कहना चाहिए ॥५८॥ शुक्ल पक्ष में दूसरा—पाँचवाँ और नवम चन्द्रमा शुभ होता है । मित्र—अतिमित्र—साधक—सम्पत्—क्षेम आदि सारका होते हैं । जन्म से मृत्यु को प्राप्त होता है । विपद से धन का नाश होता है । प्रत्यारि में मरण होता है और निघन में पश्चता को प्राप्त होता है ॥५९॥ ६०॥ मारु की कृष्ण पक्ष की अष्टमी से आगे जब तक शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि होती है उनसे समय तक क्षीण चन्द्रमा माना जाता है । इससे ऊपर के समय में अर्थात् शुक्ल पक्ष की नवमी से आगे पूर्ण चन्द्र बताया गया है ॥६१॥ ६२॥

वृषे च मिथुने भानी जीवे चन्द्रेन्द्रदेवते ।

पौर्णमासी गुरोवरि महाज्यंष्टी प्रकीर्तिता ॥६३॥

ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्राजापत्ये रविस्तथा ।

पूणिमा ज्येष्ठमासस्य महाज्यंष्टी प्रकीर्तिता ॥६४॥

स्वात्यन्तरे यन्त्रनिष्ठे शक्रस्योत्थापयद्देवजम् ।

ह्युक्षपादे चाश्विन्यां मत्ताहान्ते विसर्जयेत् ॥६५॥

सर्वं हेमसमं दानं सर्वं ब्रह्मसमा द्विजाः ।

सर्वं गङ्गासमं त्रियं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥६६॥

ध्वाङ्क्षी महोदरी घोरा मन्दा मन्दाकिनी तिला ।

राक्षसी च क्रमेणास्ति संक्रान्तिर्नामभिः स्मृता ॥६७॥

यालवे कोलवे नागे तैतिले करणे यदि ।

उत्तिष्ठन्संक्रमत्यकंस्तदा लोकः सुखी भवेत् ॥६८॥

गरे ववे वणिग्विष्टी किंस्तुघ्ने शकुनी व्रजेत् ।

राज्ञो दोषेण लोकोऽयं पीड्यते संपदा गमम् ॥६९॥

चतुष्पाद्विष्टिवाणिज्ये शयितः संक्रमेद्विः ।

दुर्भिक्षं राजगडग्रामो दंपत्योः मंगयो भवेत् ॥७०॥

वृष राशि तथा मिथुन राशि में सूर्य स्थित हो और चन्द्रेन्द्र देवत जीव के होने पर पूर्णिमा तिथि शुक्रवार की हो तो महा ज्येष्ठी योग कहा गया है ॥६३॥ स्वाति के अन्तर के यन्त्रनिष्ठ होने पर शुक्र के द्यज को उठाना चाहिए और हयंश पाद में अश्विनी नक्षत्र में सप्ताह । अन्त हो जाने पर उसका विराजंन करना चाहिए ॥६४॥ जित्त समय सूर्य राहु के द्वारा ग्रस्त हो अर्थात् सूर्य के ग्रहण के समय में कुछ भी दान दिया जावे वह सभी सुवर्ण के समान होता है अर्थात् सुवर्ण के दान के तुल्य फल देने वाला माना जाता है । ग्रहण के समय में यह भी विचार नहीं किया जाता है कि ब्राह्मण ही दान देने के अधिकारी है । उस समय तो जो भी कोई वर्ण या जाति का हो सभी ब्राह्मण के समान होने है अर्थात् किसी को भी जो दान दिया जाता है वह ब्राह्मण को दिए हुए दान के समान ही फल देने वाला होता है । समस्त जल ग्रहण के समय गङ्गाजल के तुल्य पवित्र माना जाता है । द्वाङ्क्षी—महोदरी—घोरा—मन्दा—मन्दाकिनी—तिला और राक्षसो ये क्रम से सूर्य से नामों के द्वारा संक्रान्ति कही गई है ॥६५॥६६॥ बालव—कौलव—नाग—तैलिल करणों में यदि उठता हुआ सूर्य संक्रमण करता है तो समस्त लोक को अधिक सुख होता है ॥६७॥ गर—वव—वाणक्—विष्टि—विस्तुध्न और शकुनि करणों में सूर्य संक्रमण करता है तो राजा के दोष से यह लोक सम्पदा के साथ पीडित होता है ॥६८,६९॥ चतुष्पाद विष्टि और वाणिज्य में शयन करता हुआ सूर्य यदि संक्रमण करे तो दुर्भिक्ष (अकाल—राजामो म युद्ध और दम्पति में सशय होता है ॥७०॥

कृत्तिकायां नवदिन तिरासं रोहिणीषु च ।

मृगशिरः पञ्चरात्रमाद्रासु प्राणनाशनम् ॥७१॥

पुनर्वसो च पुष्ये च सप्तरात्र विधीयते ।

नवरात्रं तथाऽश्लेषा शमशानान्त मघासु च ॥७२॥

द्वौ मासौ पूर्वफाल्गुन्यामुत्तरासु सिपञ्चकम् ।

हस्ते तु दृश्यते चित्रास्वर्धमासं तु पीडनम् ॥७३॥

मासद्वयं तथा स्वातिविशाखा विशतिदिनम् ।

मंथ चैव दशाहानि ज्येष्ठास्वेवार्धमासकम् ॥७४॥

मलेन जायते मोक्षः पूर्वाषाढा त्रिपञ्चकम् ।

उत्तरा दिनाविशत्या द्वौ मासौ श्रवणेन च ॥७५॥

५३—कालगणनम्

कालः समागणो वक्ष्ये गणितं कालबुद्धये ।
 कालः सपागणोऽर्कघ्नो मासैश्चैत्रादिभिर्युतः ॥१॥
 द्विघ्नो द्विष्टः सवेदः स्यात्पचाङ्गाष्टयुतो गुणः ।
 त्रिष्टो मध्यो वसुगणः पुनर्वेदगुणश्च सः ॥२॥
 अष्टरन्ध्रामिहीनः स्यादधः सैकरसाष्टकेः ।
 मध्यो हीनः षष्टिहतो लब्धयुक्तरतथोपरि ॥३॥
 न्यूनः सप्तकृतो वारस्तदधस्तिथिनाड्यः ।
 सगुणो दिगुणश्चोर्ध्वं त्रिभिरूनो गुणः पुनः ॥४॥
 अधः खरामसंयुक्तो रसाकर्षिपलैर्युतः ।
 अष्टाविंशच्छेषपिण्डस्तिथिनाड्या अधः स्थितः ॥५॥
 गुणस्तिष्ठतिभिरूनोऽर्धं द्वाभ्यां च गुणयेत्पुनः ।
 मध्ये रुद्रगुणः कार्यो ह्यधः सैको नवाम्निभिः ॥६॥
 लब्धहीनो भवेन्मध्ये द्वाविंशतिविवर्जितः ।
 षष्टिशेष श्रृणु ज्ञेयं लब्धमूर्धं विनिक्षिपेत् ॥७॥
 सप्तविंशतिशेषस्तु ध्रुवो नक्षत्रयोगयोः ।
 मासि मासि क्षिपेद्द्वार द्वाविंशदघटिकास्थितौ ॥८॥

यह काल का वर्णन किया जाता है । अग्निदेव ने कहा— काल
 समागण होता है । उस काल के ज्ञान के लिए गणित को बनलाऊंगा । चैत्रादि
 मासों से युक्त प्रकृष्ट काल समागण होता है ॥१॥ दो से निघ्न दो में स्थित
 सवेद होता है । पंचाङ्गाष्ट से युक्त गुण होता है । तीन में स्थित मध्य वसुगण
 होता है और फिर वह वेद गुण होता है ॥२॥ अष्ट रन्ध्र और अग्नि से हीन
 होता है । नीचे एक छे और आठ से मध्य हीन होता है । साठ से हत लब्ध से
 युक्त तथा ऊपर में न्यून होता है । सात से किया हुआ वार है और उसके नीचे
 निथियों की नाडियाँ होती हैं । सगुण-द्विगुण और ऊपर तीन से ऊन फिर गुण
 होता है ॥३॥४॥ नीचे खराम संयुक्त छे—वारह और घाट फलों से युक्त

अष्टादश शेष पिण्ड त्रिंशद्वाही के नीचे स्थित हैं ॥१॥ तीन से कम आधे का गुणा करे और फिर दो से गुणा करना चाहिए । मध्य में रुद्र गुण भर्त्ता ग्यारह से गुणा करना चाहिए । नीचे एक के साथ नवाग्नियों से करे ॥६॥ जो लब्ध होता है उससे होन मध्य होता है जोकि बाईस से रहित है । साठ से शेष ऋण जानना चाहिए । जो लब्ध हो उसे ऊर्ध्व भाग में निक्षिप्त करे ॥७॥ जो सत्ताईस शेष है वह नक्षत्र और योग का ध्रुव है । भास-भास में बत्तीस घड़ी की स्थिति में बार का शेष करना चाहिए ॥८॥

द्वे पिण्डे द्वे च नक्षत्रे नाड्य एकादश ह्यणे ।
चारथाने त्रिंशद्वाह्यत्सप्तभिर्भागमाहरेत् ॥९॥
शेषवाराश्च सूर्याद्या घटिकासु च पातयेत् ।
पिण्डकेषु त्रिंशद्वाह्यत्सप्तभिर्भागमाहरेत् ॥१०॥
ऋणं धनं धनमृणं क्रमाज्जयेत् चतुर्दश ।
प्रथमे त्रयोदशे पञ्च द्वितीयद्वादशे दश । ११
पञ्चदश तृतीये च तथा चैकादशे स्मृतम् ।
चतुर्थे दशमे चैव भवेदेकोनविंशतिः ॥१२॥
पंचमे नवमे चैव द्वाविंशतिरुदाहृताः ।
षष्ठाष्टमे त्वष्टकाः स्युश्चतुर्विंशतिरेव च ॥१३॥
सप्तमे पञ्चविंशः स्यात्षष्ठ्यष्टकः पिण्डकाद्भवेत् ।
ककंटादी हरेद्राशिमतवेदक्षयः क्रमात् ॥१४॥
तुलादी प्रातिलोम्येन त्रयो वेदरमाः क्रमात् ।
मकरादी दीयते (न्ते) च रसदेदक्षयः क्रमात् ॥१५॥
मेघादी प्रातिलोम्येन त्रयो वेदरमाः क्रमात् ।
शेषव खगुणा मेघं मेघादी विकला धनम् ॥१६॥
ककंटे प्रातिलोम्यं स्यादृणमेतत्तुलादिकं ।
चतुर्गुणा त्रिंशद्वाह्यत्सप्तभिर्भागमाहरेत् सर्वदा ॥१७॥

दो पिण्ड, दो नक्षत्र और एकादश नाड्यी और बार स्थान में त्रिंशद्वाही देवे फिर साठ से भाग करे ॥९॥ सूर्य आदि शेष बारों को घटिकाओं में

डाल देवे । पिण्डको में तिथि को दे देवे और चौदह से हरण करे ॥१०॥ धन ऋण और ऋण धन क्रम से चौदह समझना चाहिए । प्रथम और तेरह में पांच, द्वितीय और द्वादश में दश, तृतीय में और एकादश में पञ्चादश, चतुर्थ और दशम में इक्कीस होता है । पञ्चम और नवम में बाईस बहे गये हैं । छठे और आठवे में अलण्ड (सम्पूर्ण) चौबीस होते हैं ॥११॥१२॥१३॥ सप्तम में पच्चीस इस प्रकार से खण्ड-खण्ड करने पर पिण्डकस होता है । कर्कट आदि में राशि को ऋतु (छै) चार और तीन से हरण करना चाहिए ॥१४॥ तुला आदि में प्रतिलोम्य अर्थात् विपरीत क्रम से तीन, चार, छै से करे । मकर आदि में छै, चार और तीन क्रम से दिये जाते हैं ॥१५॥ मेष आदि में फिर प्रतिलोम्य से तीन—चार और छै के क्रम से करना चाहिए । शेषव खगुण मंत्र हैं और मेष आदि विकला धन होता है । कर्कट अर्थात् कर्क में इनके विपरीत होता है । तुला आदि में यह ऋण होता है । तिथि चौगुनी जाननी चाहिए और यहाँ सर्वदा विकला ही हैं ॥१६॥१७॥

हन्यालिप्ता गतागामिपिण्डस व्याफ नान्तरैः ।
 पष्ट्याऽऽप्तं प्रथमोच्चाये हानौ देय धने धनम् ॥१८॥
 द्वितीयोच्चरिते वर्गे वंपरीत्यमिति स्थितिः ।
 तिथिद्विगुणिता कार्या षड्भागपरिवर्जिता ॥१९॥
 रविकर्मविपरीता तिथिनाडीसमायुता ।
 ऋणे शुद्धे तु नाड्यः रयुः ऋण शुध्येत नो यदा ॥२०॥
 सपष्टिकं प्रदेयं नत्पञ्चाधिक्ये च तत्त्यजेत् ।
 नक्षत्रं तिथिमिश्रं रयाच्चतुर्भिगुणिता तिथिः ॥२१॥
 तिथिस्त्रिभागसंयुक्ता ऋणेन च तथाऽन्विता ।
 तिथिरत्र चिता कार्या तद्वेदाद्योगशोधनम् ॥२२॥
 रविचन्द्री समौ कृत्वा योगो भवति निश्चलः ।
 एकोना तिथिद्विगुणा सप्तभिन्नाकृतिद्विधा ॥२३॥
 तिथिश्च द्विगुणेकोना कृताङ्गः करणं निशि ।
 कृष्णचतुर्दश्यन्ते शकुनिः पर्वणीह चतुष्पदम् ॥
 प्रथमे तिथ्यधंतो हि किस्तुघ्नं प्रतिपन्मुषे ॥

गत (च्युतीन हुए) और आगामी आगे जाने वाले) पिण्डों की संख्या के फलों के अन्तर हों उनसे लिप्टों का हनन करना चाहिए । प्रथम उच्चार्य में छठी ने प्राप्त को हानि में दे देवे और धन को धन देना चाहिए ॥१८॥ द्वितीय उच्चारित वर्णों में विपरीतता होती है ऐसी ही स्थिति बननी है । त्रिपि को दुगुनी कर लेनी चाहिए और वह छ के भाग परिवर्द्धित होनी चाहिए ॥१९॥ सूर्य के कर्म से विपरीत और त्रिपि नाही से युक्त ऋण के शुद्ध होने पर नाड़ियाँ होनी हैं । अब ऋण शुद्ध न होवे तो उसे साठ के सहित देना चाहिए जो साठ से अधिक हो तो उस अधिकता में उसे त्याग देना चाहिए । नक्षत्र त्रिपि से मिला हुआ ही होगा । त्रिपि चार से गुणा की हुई करे ॥२०॥२१॥ तीन भाग से संयुता त्रिपि तथा वह ऋण से भी युक्त हो यहाँ पर त्रिपि को चिता करना चाहिए यह वेद से योग शोधन होता है ॥२२॥ सूर्य और चन्द्र दोनों का समान करने पर निश्चित योग होता है । एक में कम त्रिपि मात्र से भिन्न आकृति वाली दुगुनी दो प्रकार से होती है । एक में ऊन द्विगुणा त्रिपि रात में कृताज्ञों में करण होती है , कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के अन्त में शकुनि और इन पर्व में चतुष्पद होता है । प्रथम में त्रिपि के अर्थ से प्रतिपदा के मुख में किस्तुष्ण होता है ॥२३॥२४॥

५४—युद्धजयावर्णज्योतिःशास्त्रसारः

ज्योतिःशास्त्रादिमारं च वक्ष्ये युद्धजयावर्णवे ।
 वेलाभन्वोपधाद्यं च यथोमामीश्वरोज्ज्वली ॥१॥
 देवर्जिना दानवाश्च येनोपायेन तद्धृद ।
 शुभाशुभनिर्विघ्नाद्यं ज्ञानं युद्धजयावर्णवे ॥२॥
 भूलदेवेच्छया जाता शक्तिः पञ्चदशाक्षरा ।
 चराचरं ततो जातं यामाराध्याखिलार्थवित् ॥
 मन्त्रपीठं प्रवक्ष्यामि पञ्चमन्त्रसममुद्भवम् ।
 ते मन्त्राः सर्वमन्त्राणां जीविते मरणे स्थिताः ॥४॥

ऋग्यजुःसामाथर्वण्यवदमन्त्राः क्रमेण ते ।
 सद्योजातादयो मन्त्रा ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रकः ॥ ५
 ईशः सप्तशिखा देवाः शब्दाद्याः पञ्च च स्वराः ।
 अ इ उ ए ओ कलाश्च मूलं ब्रह्मेति कीर्तिमम् ॥ ६
 काष्ठमध्ये यथा वह्निरप्रवृद्धो न दृश्यते ।
 विद्यमाना तथा देहे शिवशक्तिर्न दृश्यते ॥ ७
 आदौ शक्तिः समुत्पन्ना ओंकारस्वरभूषिता ।
 ततो बिन्दुर्महादेवि एकारेण व्यवस्थितः ॥ ८

अब युद्ध जयार्णवीय ज्योतिःशास्त्र का सार बताया जाता है । अग्नि ने कहा— मैं युद्ध जयार्णव मे ज्योतिः शास्त्र आदि का सार बताऊँगा । इस विषय में समय-मन्त्र और ओषध आदि से कार्य सम्पन्न होता है । श्री ईश्वर ने उमादेवी से जिस तरह बतलाया था वही मैं कहता हूँ ॥१॥ देवी उमा ने कहा— जिन उपायों के द्वारा देवताओं ने दानवों को युद्ध मे जीता था उस शुभ-अशुभ के विवेक आदि वाले युद्ध जयार्णव के ज्ञान को बतलाइये ॥२॥ इस तरह से प्रश्न करने पर श्री ईश्वर ने कहा— मूलदेव की इच्छा से पञ्च-दश अक्षर वाली शक्ति उत्पन्न हुई थी फिर उसी से यह समस्त चर और अचर उत्पन्न हुआ है । उस शक्ति की आराधना करके समस्त ग्र्यों का ज्ञाता हो जाता है ॥३॥ मैं अब तुमको पञ्चमन्त्रों से उत्पन्न होने वाला मन्त्र पीठ बतलाऊँगा । वे मन्त्र समस्त मन्त्रों के जीवित रहने में तथा मरण मे स्थित रहा करते हैं ॥४॥ ऋक्-यजुः—साम और अथर्व नामो वाले वेद मन्त्र हैं । वे क्रम से सद्योजातादि मन्त्र हैं । ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-ईश-सप्तशिखा देव हैं और अ-इ-उ-ए-ओ ये पाँच स्वर है और कला है । इन सबका मूल ब्रह्म होता है— ऐसा कहा गया है ॥५॥६॥ जिस तरह काष्ठ के बीच मे अप्रवृद्ध दशा में विद्यमान अग्नि दिखलाई नहीं दिया करता है उसी भाँति सबके देह में मौजूद रहने वाली शिव की शक्ति भी किसी को दिखलाई नहीं देती है ॥७॥ हे महादेवि ! सबके आदि मे शक्ति उत्पन्न हुई जो ओङ्कार स्वर से समलंकृत थी । इसके अनन्तर एकाकार से व्यवस्थित बिन्दु उत्पन्न हुआ था ॥८॥

जातो नाद उकारस्तु नदते हृदि संस्थितः ।
 अर्धचन्द्र इकारस्तु मोक्षमार्गस्य बोधकः ॥९॥
 अकारोऽव्यक्त उत्पन्नो भोगमोक्षप्रदः परः ।
 अकार ऐश्वरे भूमिनिवृत्तिश्च कला स्मृता ॥१०॥
 गन्धो न बीजः प्राणाख्य इडा शक्तिः स्थिरा स्मृता ।
 इकारश्च प्रतिष्ठाख्यो रसोयानश्च पिङ्गला ॥११॥
 वरुणा शक्तिरीबीजः स्याद्भवीजोऽग्निरूपवान् ।
 विद्या समाना गान्धारी शक्तिश्च दहनो स्मृता ॥१२॥
 ए शान्तिर्वार्युपस्पर्शो यश्चोदानश्चला क्रिया ।
 ओंकारः शान्त्यतीताख्यः खण्ड्यूथपालिनः ॥१३॥
 पञ्च वर्गाः स्वरा जाताः कुजज्ञगुरुभार्गवाः ।
 शनिः क्रमादकाराद्याः ककाराद्यास्त्वघः स्थिताः ॥१४॥
 एतन्मूलमतः सर्वं जायते सचराचरम् ।
 विद्यापीठ प्रवक्ष्यामि प्रणवः शिव ईरितः ॥१५॥
 उमा सोमः स्वयं शक्तिर्वामा ज्येष्ठा च रौद्रपि ।
 ब्रह्मा विष्णुः क्रमादुरुद्रो गुणाः सर्गादियस्त्रयः ॥१६॥

इसके उपरान्त नाद उत्पन्न हुआ जो ऊँकार हृदय में संस्थित रहना हुआ शब्द किया करता है । इकार तो अर्ध चन्द्र है जोकि मोक्ष के मार्ग का बोधक होता है ॥९॥ अव्यक्त अकार उत्पन्न हुआ जो पर और भोग तथा मोक्ष का प्रदान करने वाला है । अकार ईश्वर में भूमि है और निवृत्ति कला कही गई है ॥१०॥ न गन्धप्राणाख्य बीज इडा शक्ति स्थिर बतलाई गई है । और इकार प्रतिष्ठा नाम वाला है तथा पिङ्गला रसोयान हैं ॥११॥ वरुणा अग्नि-ई बीज-अग्नि रूपवान् धर बीज है । गान्धारी समाना विद्या है और दहनी शक्ति कही गई है ॥१२॥ ए शान्ति, वारि उपस्पर्श और उदान जो है, वरुणा क्रिया है । शान्त्यतीताख्य ओङ्कार है । खण्ड्यूथ पाणि धर्म वर्ग है । स्वर कुज (मङ्गल)—ज (बुध)—गुरु और शुक्र उत्पन्न हुए । शनि क्रम में, और उनके नीचे स्थित ककारादि हैं ॥१३॥१४॥ यह मूल है,

चर और अचर का ज्ञान बिया जासा है । भव विद्यापीठ की वतलाऊंगा । प्रणव शिव बहा गया है ॥१५॥ उमा सोम स्वयं शक्ति है तथा वाम-ज्येष्ठा और रोद्री भी शक्ति है । तप के अर्थात् सृष्टि के आदि काम में रहने वाले ब्रह्मा-विष्णु और रुद्र क्रम से तीन गुण है ॥१६॥

रत्ननाडीक्षयं चैव स्थूलः सूक्ष्मः परोऽपरः ।
चिन्तयेच्छ्वेतवर्णं त मुञ्चमानं परामृतम् ॥१७॥
प्लाव्यमान यथाऽऽत्मानं चिन्तयेत्तं दिवानिशम् ।
अजरत्वं भवेद्देवि शिवत्वमुपगच्छति ॥१८॥
अङ्गुष्ठादौ न्यसेदङ्गान्नेत्रमध्येऽथ देहके ।
मृत्युं जयं ततः प्रार्च्य रणादौ विजयी भवेत् ॥१९॥
शून्यो निरालयः शब्दः स्पर्शस्ति यङ् नत स्पृशेत् ।
रूपस्योर्ध्वगतिः प्रोक्ता जलस्याधः समाश्रिता ॥२०॥
सर्वस्थानविनिर्मुक्तो गन्धो मध्ये च मूलकम् ।
नाभिमूले स्थित कन्दं शिवरूपं तु मण्डितम् ।
शक्तिव्यूहेन सोमोऽर्को हरिस्तत्र व्यवस्थितः ।
दशबायुसमोपेतं पञ्चतन्मात्रमण्डितम् ॥२१॥
कालानलसमाकारं प्रस्फुरन्तं शिवात्मकम् ।
तज्जीव जीवलोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥
तस्मिन्नष्टे मृतं मन्त्रे मन्त्रपीठेऽनिलात्मकम् ॥२२॥

तीन रत्न नाही है—स्थूल—सूक्ष्म और पर अपर । इसका चिन्तन करना चाहिए । श्वेत वर्ण से युक्त उसको मुञ्चन करता हुआ परामृत है ॥१७॥ इस प्रकार से चिन्तन करे जैसे आत्मा को प्लाव्यमान कर रहा हो । उसका रात दिन चिन्तन करना चाहिए । हे देवि ! इस प्रकार से चिन्तन करने से अजरत्व को प्राप्त होना है अर्थात् बाधक्य (बुद्धापा) से रहित दशा वासा बन जाता है और फिर शिवत्व अर्थात् शिव के स्वरूप को प्राप्त कर लेता है ॥१८॥

अङ्गुष्ठ आदि में अङ्गुओं का न्यास करे, नेत्रों के मध्य में और देह में मृत्युंजय का अर्चन करे । इससे फिर रण आदि में विजय प्राप्त करने वाला हो जाता है ॥१६॥
 शून्य—विना आलय वाला—शब्द—स्पर्श तिरछा हुआ हुए का स्पर्श करे ।
 रूप की ऊर्ध्व गति (ऊपर की ओर जाने वाली) कही गई है और जन की नीचे की ओर समाश्रित होनी है ॥२०॥ समस्त स्थान से विनिर्मुक्त (रहित) गन्ध और मध्य में मूल है । नाभि के मूल में कन्द स्थित है और शिव का रूप मण्डित होता है ॥२१॥ शक्ति के व्यूह से युक्त चन्द्र और वहाँ सूर्य हरि विशेष रूप से अवस्थित है । दश प्रकार की प्राणापानादि वायुओं से युक्त तथा पञ्च तन्मात्राओं से मण्डित है ॥२२॥ इस तरह कालाग्नि के समान आकार वाले प्रस्फुरण करते हुए शिव का स्वरूप है । वही इस जीव लोक का जो स्थावर और चर स्वरूप वाला है, जीव है । उसके (मन्त्र के) नष्ट हो जाने पर मृत मन्त्र पीठ पर अनिल तमक होता है ॥२३॥

— —

५५—नक्षत्रनिर्णयः

वक्ष्याम्यक्षात्मकं पिण्डं शुभाशुभविवृद्धये ।
 यस्मिन्तृक्षे भवेत्सूर्यस्तदादौ त्रीणि मूर्धनि ॥१॥
 एकं मुखे द्वयं नेत्रे हस्तपादे चतुष्टयम् ।
 हृदि पञ्च सुते जानी आयुर्वृद्धिं विचिन्तयेत् ॥२॥
 शिरःस्थे तु भवेद्राज्यं पण्डितो बबन्धयोगिनः ।
 नेत्रयो कान्तिर्लोभाग्र्यं हृदये द्रव्यसंग्रहः ॥३॥
 हस्ते धृतं तस्करत्वं गतामुरध्वगः पदे ।
 कुम्भाष्टके भानि लिङ्ग्यं सूर्यकुम्भस्तु रिक्तकः ॥४॥
 अशुभः सूर्यकुम्भः स्याच्छुभः पूर्वादिसंस्थितः ।
 फणराहुं प्रवक्ष्यामि जयाजयविवेकदम् ॥५॥
 अष्टाविंशवृत्ते द्विन्दून्युनर्माज्यास्त्रिभिर्त्रिभिः ।
 अथ ऋक्षाणि चत्वारि रेखास्तस्यैव दाययेन् ॥६॥

यस्मिन्नृक्षे स्थितो राहुस्तदृक्षं फणिमूर्धनि ।
 तदादि विन्यसेद्भानि सप्तदिशत्क्रमेण तु ॥७॥
 वक्त्रे सप्तगत ऋक्षे म्रियते सूर्य आहवे ।
 स्कन्धे भङ्गं विजानीयात्सप्तभेषु च मध्यतः ॥८॥

अब नक्षत्रों के निर्णय के विषय में बतलाया जाता है । श्री ईश्वर ने कहा— अब मैं शुभ और अशुभ की विवृद्धि के लिए नक्षत्रारमक पिण्ड को बतलाऊंगा । जिस नक्षत्र में सूर्य होता है उसके आदि में मूर्धा में तीन होने हैं ॥१॥ मुख में एक-नत्र में दो और हाथ तथा पाद में चार-हृदय में पाँच-सुत में और जानु में आयु की वृद्धि का चिन्तन करना चाहिए ॥२॥ शिर में स्थित होने पर राज्य प्राप्त होता है । मुख के योग से पण्डित होता है । नेत्रों में कांति का सौभाग्य तथा हृदय में द्रव्यो का संग्रह होता है ॥३॥ हस्त में धृत होने से तस्करता तथा पद में गत प्राण और ऊर्ध्वगामी होता है । कुम्भाष्टक में नक्षत्रों को लिखकर सूर्य कुम्भ रिक्त होता है ॥४॥ सूर्य कुम्भ अशुभ होता है । पूर्वादि में स्थित रहने वाला शुभ होता है । अब फणिराहु को बतलाऊंगा जो जय और अजय के विवेक को देने वाला है ॥५॥ अट्ठाईस बिन्दुओं को लिखना चाहिए फिर तीन-तीन से भाग दें ; इसके अनन्तर चार नक्षत्र और वहाँ पर ही रेखाएँ दिलवानी चाहिए ॥६॥ जिस नक्षत्र पर राहु स्थित हो वह नक्षत्र फणि के मस्तक पर करे उसमें आदि अन्य सत्ताईस नक्षत्रों को क्रम से विन्यस्त करे ॥७॥ मुख पर सप्तगत नक्षत्र के होने पर सभी युद्ध में मर जाते हैं । स्कन्ध पर भङ्ग जानना चाहिए जबकि सप्त नक्षत्रों में मध्य से हो ॥८॥

उदरस्थेन पूजा च जयश्चैवाऽऽत्मनस्तथा ।
 कटिदेशे स्थिते योध आहवे हरते परान् ॥९॥
 पुच्छस्थितेन कीर्तिः स्याद्राहुदृष्टे च भे मृतिः ।
 पुनरन्य प्रवक्ष्यामि रविराहुबलं तव ॥१०॥
 रविः शुक्रो धुधश्चैव सोमः सौरिगुरुस्तथा ।
 लोहितः सैहिकश्चैव एते यामार्धभागिनः ॥११॥

मौरि रवि च राहुं च कृत्वा यत्नेन पृष्ठतः ।
 स जयेत्सैन्यसंघातं द्यूतमद्यवानमाहवम् ॥१२॥
 रोहिणी चोत्तरास्तिस्त्रो मृगः पञ्च स्थिराणि हि ।
 अश्विनी रेवतीस्वाती घनिष्ठा शततारका ॥१३॥
 क्षिप्राणि पञ्च मान्येव याज्ञार्थी चैव योजयेत् ।
 अनुराधा हस्तमूलं मृगः पुष्यं पुनर्वसुः ॥१४॥
 सर्वकार्येषु चैतानि ज्येष्ठा चित्रा विशाखा ।
 पूर्वास्तिस्त्रोऽग्निर्भरणी मघाद्राश्लेषा दारुणाः ॥१५॥
 स्थावरेषु स्थिर ह्यक्षं याज्ञायां क्षिप्रमुत्तमम् ।
 सोमं म्यार्थं मृदून्येव उग्रेषूग्रं तु कारयेत् ॥१६॥

उदर में स्थित होने से पूजा होती है तथा आदना पर जय होती है ।
 कटि भाग पर स्थित होने से योधा युद्ध में शत्रुओं का हरण किया करता
 है ॥१२॥ पुच्छ भाग पर स्थित होने से कीर्ति का लाभ होता है । नक्षत्र के राहु
 के द्वारा दृष्ट होने पर मृत्यु होती है । इसके पश्चात् फिर तुमको रवि और राहु
 के वन के विषय में बतलाऊंगा ॥१०॥ रवि-शुक्र-बुध-सोम-मौरि-गुरु-
 रोहिणी और सैद्धिक ये सब ग्रह के अर्धभागी होते हैं ॥११॥ मौरि-रवि
 और राहु को यत्न से पृष्ठ भाग में करके वह व्यक्ति मार्ग में किए हुए युद्ध की
 और सैन्य के संघात की जीत नेता है ॥१२॥ रोहिणी-तीनों उत्तरा अर्थात्
 उत्तरा कान्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तराभाद्रपदा मृगशिरा ये पाँच स्थिर नक्षत्र होते
 हैं । अश्विनी-रेवती-स्वाती-घनिष्ठा और शतभिषा ये पाँच क्षिप्र नक्षत्र हैं ।
 इनका उपयोग याज्ञा के अर्थों की ही करना चाहिए । अनुराधा-हस्त-मूल-
 मृगशिरा-पुष्य और पुनर्वसु इतने ये नक्षत्र समस्त कार्यों में लिए जाते हैं ।
 ज्येष्ठा-चित्रा-विशाखा-तीनों पूर्वा-अग्नि-भरणी-मघा-मार्गशीर्ष-आश्लेषा ये
 दारुण नक्षत्र होते हैं ॥१३॥॥१४॥॥१५॥ स्थावर कार्यों में स्थिर नक्षत्र लेना
 चाहिए और याज्ञा में जो क्षिप्र नक्षत्र होता है वही उत्तम होता है । सोमार्थ
 के लिए मृदु नक्षत्र ही लेने चाहिए और जो कार्य उग्र हों उनमें उग्र ही नक्षत्र
 ग्रहण करने चाहिए ॥१६॥

दारुण दारुणं कुर्याद्विदधे चाधोमुखादिकम् ।

कृत्तिका भरण्या (ण्य) श्लेपा विशाखा पितृ नैऋतम् ॥१७

पूर्वात्रयमधोवक्त्रं कर्म चाधोमुखं चरेत् ।

एषु कूपतडागादि विद्याकर्म भिषक्क्रिया ॥१८

स्थापनं नौकाकूपादिविधानं खनन तथा ।

रेवती चाश्विनी चित्रा हस्तः स्वा (स्तस्वा) ती पुनर्वसुः ॥१९

अनुराधा मृगो ज्येष्ठा नव वं पार्श्वंतोमुखाः ।

एषु राज्याभिषेकं च पट्टवन्धं गजाश्वयोः ॥२०

आरामगृहाप्रासादं प्राकार क्षेत्रतोरणम् ।

ध्वजचिन्हपताकाश्च सवनितांश्च कारयेत् ॥२१

द्वादशी सूर्यदग्धा तु चन्द्रेणैकादशी तथा ।

भौमेन दशमो दग्धा तृतीया वै बुधेन च ॥२२

पक्षी च गुरुणा दग्धा द्वितीया भृगुणा तथा ।

सप्तमी सूर्यपुत्रेण त्रिपुष्करमथो वदे ॥२३

द्विताया द्वादशी चैव सप्तमी वै तृतीयया ।

रविर्भौमस्तथा रौरिः षडेतास्तु त्रिपुष्कराः ॥२४

दारुण कार्यों में दारुण नक्षत्र ही शुभ माना जाता है । अब अधोमुख आदि के विषय में कहूँगा । कृत्तिका-भरणी-श्लेपा-विशाखा-पितृ नैऋत-तीनों पूर्वा ये नक्षत्र अधोमुख माने गये हैं और कर्म भी अधोमुख ही किया करते हैं । इन नक्षत्रों में कूआ-तालाव आदि का निर्माण तथा विद्या सम्बन्धी कर्म और भिषक् क्रिया अर्थात् वैद्य सम्बन्धी कर्म करना चाहिए । तात्पर्य यह है कि उक्त कार्यों के लिए ये नक्षत्र शुभ हैं ॥१७॥१८॥ नौरा-कूआ आदि या स्थापन एवं मृज्जन करना चाहिए । रेवती, अश्विनी, चित्रा, हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा और ज्येष्ठा ये नक्षत्र पार्श्वंतोमुख होते हैं । इन नक्षत्रों में राज्याभिषेक तथा गज और अश्व का पट्टवन्ध, आराम (उद्यान), गृह, प्रासाद, प्राकार (पारदीवारी), क्षेत्र तोरण, ध्वजा चिन्ह पताका इन गमन कार्यों को कराना चाहिए । अर्थात् इन कार्यों के लिए ये नक्षत्र शुभ

फलप्रद होते हैं ॥१६॥२०॥२१॥ अत्र तिथियों के दश होने के विषय में वनाते हैं रविवार से युक्त द्वादशी तिथि दश तिथि मानी जाती है । एकादशी चन्द्रवार से युक्त हो तो दश होनी है । मङ्गलवार से दशमी-बुध से तृतीया-गुरुवार से पञ्ची (छठ)-शुक्र से द्वितीया-मूयं पुत्र से सप्तमी दश होनी हैं । अब त्रिपुष्कर योग बनाते हैं— द्वादशी-द्वितीया-सप्तमी और तृतीया-रवि भोग तथा सौरि ये छंद हैं, इन तीनों में पुष्कर होते हैं ॥२२॥२३॥२४॥

विशाखा कृत्तिका चैव उत्तरे द्वे पुनर्वसुः ।
पूर्वभाद्रपदा चैव पडेटे तु त्रिपुष्कराः ॥२५॥
लाभो हानिर्जयो वृद्धिः पुत्रजन्म तथैव च ।
नष्टं भ्रष्टं विनष्टं वा तत्सर्वं त्रिगुणं भवेत् ॥२६॥
अश्विनी भरणी चैव अश्लेषा पुष्यमेव च ।
स्वातिश्चैव विशाखा च श्रवणं सप्तमं पुनः ॥२७॥
एतानि दृढचक्षूः पश्यन्ति च दिशो दश ।
यात्रासु दूरगस्यापि आगमः पुष्यगोचरे ॥२८॥
आपादे रेवती चित्ता केकराणि पुनर्वसुः ।
एषु पञ्चमु ऋक्षेषु निर्गतस्याऽऽगमो भवेत् ॥२९॥
कृत्तिका रोहिणी सौम्यं फल्गुनी च मघा तथा ।
मूलं ज्येष्ठाऽनुराधा च धनिष्ठा शततारकाः ॥३०॥
पूर्वभाद्रपदा चैव चिपिटानि च तानि हि ।
अध्वानं व्रजमानस्य पुनरेवाऽऽगमो भवेत् ॥३१॥
हस्त उत्तरभाद्रश्च आर्द्राऽऽषाढा तथैव च ।
नष्टार्थाश्चैव दृश्यन्ते संप्रामो नैव विद्यते ॥३२॥

विशाखा-कृत्तिका-दो उत्तरा-पुनर्वसु-पूर्वभाद्रपदा ये छंद त्रिपुष्कर होते हैं ॥२५॥ नाम-हानि-जय-वृद्धि और पुत्र जन्म नष्ट, भ्रष्ट अथवा विनष्ट यह सब त्रिगुण होता है ॥२६॥ अश्विनी-भरणी-अश्लेषा-पुष्य-स्वाति-विशाखा और मानवां श्रवण ये सात नक्षत्र दृढ नेत्रों वाले होते हैं और दश

दिशाओं को देखा करते हैं । पुष्य नक्षत्र में यात्राओं में दूर जाने वाले का भी आगमन होता है ॥२७॥२८॥ आषाढा-रेवती-चित्रा-केकर-पुनर्वसु इन पांच नक्षत्रों में जो घर से निकल गया है उसका भी आगमन हो जाता है ॥२९ कृत्तिका-रोहिणी-मौम्य-फाल्गुनी-मघा-मूल-ज्येष्ठा-अनुराधा-घनिष्ठा-शत तारका-पूर्व भाद्रपदा ये नक्षत्र त्रिपिट संज्ञा वाले होते हैं । इनमें जो मार्ग में गया हुआ हो उसका पुनरेव आगमन होता है ॥३०॥३१॥ हस्त-उत्तरा-भाद्रपदा-आर्द्रा-आषाढा ये नक्षत्र नष्ट ग्रहों को करते हैं और उनकी प्राप्ति नहीं होती है ॥३२॥

पुनर्वक्ष्यामि गण्डान्तमृक्षमध्ये यथा स्थितम् ।
 रेवत्यन्ते चतुष्कं तु अश्विन्यादिचतुष्टयम् ॥३३
 उभयोर्ग्राममात्रं तु वर्जयेत्तत्प्रयत्नतः ।
 अश्लेषान्ते मघादौ तु घटिकानां चतुष्टयम् ॥३४
 द्वितीय गण्डमाह गत तृतीय भैरवि शृणु ।
 ज्येष्ठामूलभयोर्मध्य उग्ररूपं तु ग्रामकम् ॥३५
 न कुर्याच्छुभकर्माणि यदीच्छेद्वैदग्ध्यजीवितम् ।
 दारके जातकाले च म्रियेते पितृमातरौ ॥३६

अब गण्डान्त को कहते हैं । जो नक्षत्र के मध्य में स्थित होता है । रेवती के अन्त में चार और अश्विनी आदि चार इन दोनों चौकड़ाओं के एक-एक प्रहर का त्याग प्रयत्नपूर्वक कर देना चाहिए । आश्लेषा नक्षत्र के अन्त में तथा मघा नक्षत्र के आदि में चार घड़ी गण्ड होती है-यह दूसरा गण्डान्त बता दिया गया है । हे भैरवि ! अब तीसरा गण्डान्त बताते हैं उसका तुम अवश्य करो-ज्येष्ठा और मूल इन दोनों नक्षत्रों के मध्य का जो ग्राम (प्रहर) होता है वह अत्यन्त उग्र रूप वाला होता है ॥३३॥३४॥३५॥ यदि अपना जीवन चाहता है तो मनुष्यको इस प्रहर में कोई भी शुभ कर्म नहीं करना चाहिए । इस समय से यदि कोई बालक उत्पन्न हो जावे तो उसके माता-पिता दोनों मर जाया करते हैं ॥३६॥

५६ मन्वन्तराणि

मन्वन्तराणि दक्ष्यामि आद्यः स्वायम्भुवो मनुः ।
 आग्नीध्राद्यास्तस्य सुता यमो नाम तदा सुराः ॥१॥
 और्वाद्याश्च सप्तपथ इन्द्रश्चैव शतक्रतुः ।
 पारावताः सनुपिता देवाः स्वारोचिषेऽन्तरे ॥२॥
 विपश्चित्तत्र देवेन्द्र ऊर्जस्तस्मादयो द्विजाः ।
 चैत्रकिपुरुषाः पुत्रास्तृतीयश्चोत्तमो मनुः ॥३॥
 मुशान्तिरिन्द्रो देवाश्च मुधामाद्या वणि(सि)ष्ठजाः ।
 सप्तपथोज्जाद्याः पुत्राश्चतुर्थस्तामसो मनुः ॥४॥
 स्वरूपाद्याः सुरगणाः शिखरिन्द्रः नुरेश्वरः ।
 ज्योतिर्होमादयो विप्रा नव स्वातिमुक्ताः नृताः ॥५॥
 रैवते वितथश्चेन्द्रो अमितामास्तथा सुराः ।
 हिरण्यगोमाद्या मुनयो बलवन्धादयः सुताः ॥६॥
 मनोजवश्चाजुषेज्य इन्द्रः स्वात्मादयः नृताः ।
 मुमेधाद्या महर्षयः पुरुषप्रभृतयः सुताः ॥७॥
 विवस्वतः सुतो विप्रः श्राद्धदेवो मनुस्ततः ।
 आदित्यवनुष्टाद्या देवा इन्द्रः पुरंदरः ॥८॥

श्री अग्निदेव ने कहा—अब मैं मन्वन्तरों को बतलाऊँगा—सबसे आदि में होने वाला प्रथम स्वायम्भुव नाम वाला मनु हुआ था । आग्नीध्र आदि उनके सब पुत्र थे जिसका नाम यम था । फिर सब देवगण उत्पन्न हुए ॥१॥ और्वाद्य सात ऋषियों का वर्ग और शतक्रतु (सौ क्रतु) अर्थात् यज्ञ करने वाला इन्द्र हुआ । पारावत—सनुपित देव हुए । ये सब स्वारोचिष मन्वन्तर में उत्पन्न हुए थे ॥२॥ देवेन्द्र विपश्चित् या अर्थात् उनमें देवेन्द्र विद्वान् हुआ था । ऊर्जस्तमादि द्विज हुए । चैत्र और किम्बुहप पुत्र हुए थे । फिर उत्तम नाम वाला तीसरा मनु हुआ था ॥३॥ इस मन्वन्तर में मुशान्ति इन्द्र और वणिष्ठ से उत्पन्न हुए अजाद्य सप्तपि वर्ग पुत्र तथा मुधामादि देवता हुए थे ।

इसके अनन्तर चौथा तामस नाम का मनु हुआ था ॥४॥ इस मन्वन्तर में स्वर्णपाद्य देवता हुए, सुरेश्वर शिखरी इन्द्र हुआ तथा ज्योतिर्होम आदि विप्र हुए एवं रूपाति मुख नी उनके पुत्र हुए थे ॥५॥ फिर पञ्चम रैवत नाम वाला मनु हुआ । इस रैवत मन्वन्तर में वितथ इन्द्र हुआ तथा अमिताभ सुर हुए, हिरण्य रोमादि मुनिगण हुए और बल बन्ध आदि पुत्र हुए थे ॥६॥ इसके पश्चात् चक्षुष मनु हुए । इस चाक्षुष मन्वन्तर में मनोजव इन्द्र हुए और स्वात्यादि सुत हुए तथा सुमेधा आदि महर्षिगण हुए एवं पुरु प्रभृति उनके पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥७॥ विवस्वान् का पुत्र विप्र आदित्येव मनु इसके उपरान्त हुए थे । इस मन्वन्तर में आदित्य वसु रुद्र आदि देवगण हुए और पुरन्दर इन्द्र हुए थे ॥८॥

वसिष्ठः काश्यपोऽथात्रिजंमदग्निः सगोतमः ।

विश्वामित्रभरद्वाजौ मुनयः सप्त संप्रसूतम् ॥९॥

इक्ष्वाकुप्रमुखाः पुत्रा अंशेन हरिराभवत् ।

स्वायंभुवे मानसांभूदजितस्तदनन्तरे ॥१०॥

सत्यो हरिदेववरो वैकुण्ठो वामनः क्रमात् ।

छायाजः सूर्यपुत्रस्तु भविता चाष्टमो मनुः ॥११॥

पूर्वजस्य सवर्णोऽसौ सार्वणिर्भविताऽष्टमः ।

• सुतपाद्या देवगणा दीप्तिमद्द्रौणिकादयः ॥१२॥

मुनयो बलिरिन्द्रश्च विरजप्रमुखाः सुताः ।

नवमो दक्षसार्वणिः पाराद्याश्च तदा सुराः ॥१३॥

इन्द्रश्चैवाद्भुतस्तेषां सवनाद्या द्विजोत्तमाः ।

घृतकेत्वादयः पुत्रा ब्रह्मसार्वणिरित्यतः ॥१४॥

सुपादयो देवगणास्तेषां शान्तिः शतक्रतुः ।

हविष्याद्याश्च मुनयः सुक्षेत्राद्याश्च तत्सुताः ॥१५॥

धर्मसार्वणिकश्चाथ विहङ्गाद्यास्तदा सुराः ।

गणश्चेन्द्रो निश्चराद्या मुनयः पुत्रका मनोः ॥१६॥

अथ वाशिष्ठ, काश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गोतम, विश्वामित्र और भर-
द्वाज ये सात मुनिगण सप्तपि हुए थे ॥१॥ इक्ष्वाकु जिनमें प्रधान थे, वे पुत्र
हुए जहाँ अंश से हरि हुए थे । स्वायम्भुव में मानस हुए और उस अन्तर में
अजित हुए थे ॥१०॥ सत्य देववर हरि तथा क्रम से वैकुण्ठ वामन हुए ।
छाया से जन्म लेने वाले सूर्य के पुत्र अष्टम मनु होगा ॥११॥ यह पूर्वज का
सर्वण है अतः अष्टम सावर्णि होगा । इसमें सुतपा आदि देवगण और दोष्टिमद्
द्रीणिक अदि मुनिगण एवं बलि इन्द्र और विरज प्रमुख पुत्र हैं । नवम अर्थात्
नोवा दक्ष सावर्णि मनु है । इस मन्वन्तर में उस समय पाराद्य सुरगण हैं ।
॥१२॥१३॥ उनका इन्द्र अद्भुत है और सवनादि द्विज श्रेष्ठ हैं । घृत्त केतु आदि
पुत्र हैं । इसके उपरान्त ब्रह्म सावर्णि हुए ॥१४॥ इसमें सुखादि देवगण हैं
और उनका शान्ति नामक शतक्रतु है । हवि व्याघ्र पुत्र हैं और सुशेनादि उनके
पुत्र हैं ॥१५॥ इसके अनन्तर घर्म सावर्णिक मनु हुए । उस समय में विहङ्ग
आदि देवता हैं । गण इन्द्र है तथा निश्चर आदि मुनिगण मनु के पुत्र हैं ॥१६॥
सर्वत्रगाद्या रुद्रारूपः सावर्णिर्भविता मनुः ।
ऋतधामा सुरेन्द्रश्च हरिताद्याश्च देवताः ॥१७॥
तपस्याद्याः सप्तर्षयः सुता वै देववन्मुखाः ।
मनुष्योदशो रोच्यः सूत्रामाणादयः सुराः ॥१८॥
इन्द्रो दिवस्पतिस्तेषां दानवादिविमर्दनः ।
निर्मोहाद्याः सप्तर्षयश्चित्रसेनादयः सुताः ॥१९॥
मनुश्चतुर्दशो भीत्यः गुचिरिन्द्रो भविष्यति ।
चाधुपाद्याः सुरगणा अग्निवाह्यादयो द्विजाः ॥२०॥
चतुर्दशस्य भीत्यस्य पुत्रा ऊरुमुखा मनोः ।
प्रवर्तयन्ति वेदाश्च भुवि सप्तर्षयो दिवः ॥२१॥
देवा यज्ञभुजस्ते तु भूः पुत्रैः परिपाल्यते ।
ग्रहाणो दिवसे ग्रहान्मनवस्तु चतुर्दश ॥२२॥
मन्वाद्याश्च हरिवर्देन द्वापरान्ते विभेद सः ।
आद्यो वेदश्चतुष्पादः शतसाहस्रसंमितः ॥२३॥

एकश्चाऽऽसीद्यजुर्वेदस्तं चतुर्धा व्यकल्पयत् ।

आध्वयव् यजुभिरतु ऋग्भिर्होत्रं तथा मुनिः ॥२४॥

ओद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वं चाप्यथर्वभिः ।

प्रथमं न्यासशिष्यस्तु पैलो ह्यृग्वेदपारगः ॥२५॥

उन पुत्रों के नाम सर्वत्रगादि हैं । रुद्र नामक सार्वणि मनु होगा । ऋतधामा इस मन्वन्तर मे सुरेन्द्र होगा और हरितादि देवगण हैं ॥१७॥ तपस्यादि सप्तिपिण्ड हैं और देववन्मुख पुत्र हैं । भव तेरहवाँ मनु रोच्य नामक है । जिसके सूत्र माणादि देवगण हैं । उनका इन्द्र दिवस्पति है जो दानवादि का विशेष रूप से मर्दन करने वाला है । निर्मोह आदि सप्त ऋषिगण हैं और चित्रसेनादि उनके पुत्र हैं ॥ १८॥१९॥ चौदहवाँ मनु भोत्य है । इस मन्वन्तर में शुचि नाम वाला इन्द्र होगा तथा चाधुपादि देवगण और आनिवाह्यादि द्विज होंगे ॥२०॥ चौदहवें मनु के जिसका नाम भोत्य है उरुमुख पुत्र है । ये सप्तिपिण्ड दिवलोक से इस भूमण्डल मे वेदों का प्रवर्तन करते हैं ॥२१॥ वे यशों की भोग करने वाले देवता उन पुत्रों के द्वारा इस भूमण्डल का परिपालन करते हैं । हे ब्रह्मन् ! ब्रह्मा के एक दिन में ये चौदह मनु होते हैं ॥२२॥ मन्वादि द्वापर के अन्त में हरि ने वेद का विभेद किया था, आद्य वेद चतुष्पाद तथा शत-सहस्र समित था ॥२३॥ एक यजुर्वेद ही था, उसको चार भागों में विरचित किया था । यजुषों से आध्वयवन्ऋषियों से होत्र तथा मुनि ने सामों से ओद्गात्र और अथर्वों से ब्रह्मत्वं किया था । प्रथम न्यासशिष्यपैल ऋग्वेद का पारगामी विद्वान् था ॥२४॥२५॥

इन्द्रः प्रमत्तये प्रादाद्वाष्कलाय च संहिताम् ।

वोष्पादिभ्यो ददौ सोऽपि चतुर्धा निजसंहिताम् ॥२६॥

यजुर्वेदतरोः शाखाः सप्तविंशन्महामतिः ।

वंशपायननामाऽसी व्यासशिष्यश्चकार वै ॥२७॥

काण्वा वाजसनेयाद्या याज्ञवल्क्यादिभिः स्मृताः ।

सामवेदतरोः शाखा व्यासशिष्यः स जैमिनिः ॥२८॥

सुमन्तुश्च सुकर्मा च एकैकां संहितां ततः ।
 गृह्यते च सुकर्माख्यः सहस्रं संहितां गुरुः ॥२६॥
 सुमन्तुश्चाथयंतरुं व्यासशिष्यो विभेद तम् ।
 शिष्यान्ध्यापयामास पेंपलादींसहस्रशः ॥२७॥
 पुराणसंहितां चक्रे सूतो व्यासप्रसादतः ॥२८॥

इन्द्र ने प्रमिति के लिये और वाष्कल के लिये संहिता की दिया था ।
 उसने भी बौध्यादिक के लिये चार प्रकार से अपनी संहिता दिया था ॥२६॥
 महती मति वाले व्यासजी के शिष्य वैशम्पायन नामक ने यजुर्वेद रूपी इस वृक्ष
 की सत्ताईस शाखाएँ कर दी थीं ॥२७॥ काण्व वाजसनेय आदि याज्ञवल्क्यादि
 के द्वारा कही गई हैं । सामवेद वृक्ष की शाखाएँ व्यासजी के शिष्य जैमिनी
 ने की थीं ॥२८॥ सुमन्तु और सुकर्मा ने फिर एक-एक संहिता की ग्रहण करते
 हैं । सुकर्मा नामक गुरु ने सहस्र संहिता का ग्रहण किया था ॥२९॥ फिर
 व्यास मुनि के शिष्य सुमन्तु ने ऋग्वेद स्वरूपी वृक्ष का विभेद किया था ।
 पेंपल आदि हजारों शिष्यों को उन्हें पढ़ाया था ॥३०॥ फिर व्यास महामुनि
 की कृपा से एवं प्रसाद से सूतजी ने पुराण संहिता की रचना की थी ॥३१॥

५७ गृहस्थवृत्तिः

भ्राजोवे तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा ।
 क्षत्रविट्शूद्रधर्मैश्च जीवन्नेव तु नृद्रजात् ॥१॥
 कृपिवाणिज्यगौरव्यं कुसीदं च द्विजश्चरेत् ।
 गोरसं गुडलवणलाक्षामांसानि वर्जयेत् ॥२॥
 भूमिं भित्त्वोपधीदित्वा हत्वा कीटपिपीलिकान् ।
 पुनन्ति खलु यज्ञेन कर्पका देवपूजनात् ॥३॥
 हलमष्टगवं धर्म्यं षड्गवं जीवितार्थिनाम् ।
 चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं धर्मधातिनाम् ॥४॥

ऋतामृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा ।
सत्यामृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन ॥५॥

अब गृहस्थ वृत्ति के विषय में बतलाया जाता है । पुष्कर ने कहा— ब्राह्मण को अपने कर्म के द्वारा जैसाकि शास्त्र में उसका कहा गया है, अपनी जीविका चलानी चाहिये । यदि उसका जीवन अपने कर्म द्वारा नहीं चलता हो तो उसे क्षत्रिय, वैश्य आदि के धर्म से जीवन रखता हुआ रह सकता है किन्तु दूध का कर्म नहीं करना चाहिए ॥१॥ कृषि, गोपालन, वाणिज्य और कुसीद का कर्म भी द्विज करे । गोरस अर्थात् गाय का दूध—दही, घृत आदि गुड़, लवण (नमक) लाख और मसि इनका व्यवसाय नहीं करना चाहिये ॥२॥ कृषक अर्थात् खेती का काम करने वाले किसान भूमि का भेदन किया करते हैं अर्थात् हल से उसे जोतते हैं और ओषधियों का छेदन करते हैं अर्थात् खेतों की जुताई के समय समस्त प्राकृतिक उत्पन्न जड़ी बूटियों को काटकर फेंक देते हैं । ये दोनों ही पाप कर्म उनसे बनते हैं क्योंकि खेती के काम में बहुत-से कीड़े और चींटियों का भी हनन होता है । उनका इस पाप से उद्धार, यज्ञ और देवताओं के पूजन से होता है । ३॥ हथ में अर्थात् हल के चलाने के काम में घाठ बैलों को रखना ही धर्म से युक्त होता है । दिन भर में घाठ बैलों को पारी-पारी से जोनना चाहिये । जो छै बैलों से अर्थात् तीन जोड़ियों से ही काम करते हैं वे जीवित रखने के अर्थी लोग माने गये हैं । तात्पर्य यह है कि छै बैलों से कृषि कर्म करना कोई धर्मयुक्त तो नहीं है किन्तु इतना भर ही है कि वे जीवन रख सकते हैं । चार गो सुन अर्थात् बैलों से काम करने वाले और पुष्प बूहे गये हैं और जो केवल एक ही जोड़ी से सब कृषि का काम करते हैं और रात-दिन उन दो ही बैलों को जोतते रहते हैं वे पूरे धर्मघाती लोग माने गये हैं ॥४॥ ऋत और प्रमृत के द्वारा जीवित रहना चाहिये अथवा मृत और प्रमृत से तथा सत्यामृत से जीवन रखने किन्तु श्ववृत्ति से (कुत्ते की सी वृत्ति से) कदापि जीवन नहीं रखना चाहिये ॥५॥

५८—ब्रह्मचर्याद्याश्रमधर्माः

धर्ममाश्रमिणां वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु ।
 षोडशतुं निशाः स्त्रीणामाद्यास्तिस्रस्तु गहिताः ॥१॥
 ध्रजेद्युग्मासु पुत्रार्थी कर्माऽऽधानिकमिष्यते ।
 गर्मस्य स्पष्टताज्ञाने सवनं स्पन्दनात्पुरा ॥२॥
 पठेऽष्टमे वा सीमन्तं पुत्रीयं नामभं शुभम् ।
 अर्चिद्धननाड्यां कर्तव्यं जातकर्म विचक्षणैः ॥३॥
 अशीचे तु व्यतिक्रान्ते नामकर्म विधीयते ।
 शर्मन्ति ब्राह्मणस्योक्तं वर्मन्ति क्षत्रियस्य तु ॥४॥
 गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यसूद्रयोः ।
 बालं निवेदयेद् भर्त्रे तव पुत्रोऽयमित्युत ॥५॥
 ययाकुलं तु चूडाकृद् ब्रह्मणस्योपनायनम् ।
 गर्भाष्टमेऽष्टमे वाऽब्दे गर्भादिकादशे नृपे ॥६॥
 गर्भातु द्वादशे वैश्ये षोडषाब्दादितो न हि ।
 भुञ्जानां वल्कलानां तु क्रमाग्नौऽज्यः प्रकीर्तिताः ॥७॥
 मार्गवैयाघ्रवास्तानि वर्माणि व्रतचारिणाम् ।
 पर्यापिप्पलवित्वानां क्रमाद्दण्डाः प्रकीर्तिताः ॥८॥

अब ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों के धर्मों के विषय में बतलाते हैं । पुष्कर ने कहा—अब मैं आश्रमों में रहने वाले मानवों के धर्म को बतलाऊँगा उसे तुम श्रवण करो । स्त्रियों की सोलह श्रुतु हैं आदि में होने वाली तीन निशाएँ निश्चित मानी गई हैं ॥ १ ॥ जो गृहस्थ पुत्र के प्राप्त करने की इच्छा वाला है उसे युगम गत्रियों में घर्षात् स्त्री के श्रुतुकाल के आरम्भ होने के बाद पूरी मंत्रा वाली निशाओं में गमन करना चाहिए । यही आधानिक कर्म (गर्भाधान) कहा जाता है । अब गर्भ की स्थिति हो जाने के स्पष्ट ज्ञान होने से स्पन्दन से पूर्व गदन कर्म करना चाहिए घर्षात् पुंसवन मस्कार होता है ॥२॥ गर्भ स्थिति में छठवे प्रपवा छठम मास में सीमन्त दिया जाता है । यह पुत्रीय शुभ गर्भ

होता है । विद्वान् पुरुषों को आच्छिन्न नाड़ी में जात कर्म करना चाहिए ॥३॥
 अशौच अर्थात् जात की शुद्धि के समाप्त हो जाने पर नाम कर्म अर्थात् नाम-
 करण संस्कार किया जाता है । ब्राह्मण के नाम के आगे 'शर्मा' लगाकर
 कहना चाहिए और क्षत्रिय का नाम 'वर्मा' के अन्त वाला होना चाहिए ॥४॥
 वैश्य का नाम 'गुप्त' शब्द के अन्त वाला तथा शूद्र के नाम के पीछे 'दास'—
 यह होना चाहिए । यही नामकरण की प्रशस्त प्रक्रिया है । बालक को स्वामी
 के लिये यह आपका पुत्र है—यह कहते हुए निवेदन करना चाहिए ॥५॥ कुल
 के अनुसार चूड़ा कर्म करना चाहिए । ब्राह्मण का उपनयन संस्कार गर्भ से
 अष्टम वर्ष में अथवा जन्म से अष्टम वर्ष में करना चाहिए । क्षत्रिय का यज्ञो-
 पवीत संस्कार ग्यारहवें वर्ष में करे । यहाँ भी गर्भ से या जन्म से वर्ष लेने
 चाहिए । गर्भ से बारहवें वर्ष में वैश्य का उपनयन करावे । सोलह वर्ष से
 आगे विधान नहीं है । नियत वर्षों के पश्चात् प्रायश्चित्त होता है । मूजों की
 अथवा बन्फलों की क्रम से मौज्जी कही गई हैं ॥६-७॥ मृग की या व्याघ्र की
 खाल ब्रह्मचारियों के चर्म होते हैं । ब्रह्मचारियों के दण्ड क्रम से पण—पीपल
 और वेल के होते हैं ॥८॥

केशदेशललाटासःतुल्याः प्रोक्ताः क्रमेण तु ।

अवक्राः सत्वचः सर्वे नाग्निप्लुष्टास्तु दण्डकाः ॥९॥

वासोपवीते कार्पासक्षौमोर्णानां यथाक्रमम् ।

आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षितम् ॥१०॥

प्रथमं तत्र भिक्षेत यत्र भिक्षा घृवं भवेत् ।

स्त्रीणाममन्त्रतरस्तानि विवाहस्तु समन्त्रकः ॥११॥

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छीचमादितः ।

आचारमग्निकार्यं च सध्वोपासनमेव च ॥१२॥

आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणादुपः ।

श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते अतं भुङ्क्ते उदङ्मुखः ॥१३॥

मायं प्रातश्च जुहुयान्नाग्नेध्यं व्यस्तहस्तकम् ।

मधु मागं जनैः सार्धं गीतं नृत्यं च वै त्यजेत् ॥१४॥

हिंसां परापवादं वा अश्लीलं च विशेषतः ।

दण्डादि धारयेन्नष्टमप्यु क्षिप्तवाज्यधारणम् ॥१५॥

वेदस्वीकरणं कृत्वा स्नायाद्वै दत्तदक्षिणः ।

नैष्ठिको ब्रह्मचारी वा देहान्त निवसेद्गुरो ॥१६॥

दण्ड मस्तक बाल-ललाट और मुख के बराबर प्रमाण वाले क्रम से बनाये गये हैं अर्थात् तीनों वरों का क्रम होना है । दण्ड अवक्र अर्थात् सीधे-सरल और त्वचा (वक्कल) से युक्त सभी होने चाहिए । अग्नि से दग्ध दण्डों का विधान नहीं है ॥१६॥ वस्त्र और उपवीत (जनेऊ) क्रम से कपास (मून) के क्षीम और ऊण (ऊन) के होने चाहिए । जब ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्याश्रम में उप-नयन सस्वार के पश्चात् वेदारम्भ के समय में भिक्षा को जावे तब उसे ब्राह्मण ब्रह्मचारी को 'भवति ! भिक्षां देहि'—यह क्षत्रिय को 'भिक्षा भवति ! देहि'—यह और वैश्य को 'भिक्षां देहि भवति !' यह क्रम से भवत् शब्द का प्रयोग आदि मध्य और अवसान में करना चाहिए ॥१०॥ सबसे प्रथम वहाँ भिक्षा की याचना करे जहाँ पर निश्चित रूप से युक्त भिक्षा प्राप्त हो जावे । स्त्रियों के वे अमन्त्रित अर्थात् मन्त्रों से रहित होते हैं वेवन विवाह संस्कार ही मन्त्रों से युक्त होता है ॥११॥ गुरु का कर्त्तव्य है कि शिष्य का उपनयन संस्कार करके फिर उसे आदि से शीघ्र अर्थात् शुद्धि के लिये शिक्षा देनी चाहिए । आचार की शिक्षा देवे—अग्नि के हवन आदि की तथा सन्ध्योपासना के विधि-विधान की शिक्षा देनी चाहिए ॥१२॥ पूर्व की ओर मुख करके भोजन करना आयु की वृद्धि करने वाला होता है—दक्षिण मुख वाला यश का भोग करता है—पश्चिम की ओर मुख वाला श्रेय का भोग करता है और उदङ् मुख अर्थात् उत्तर की ओर मुख वाला श्रुतका भोग किया करता है ॥१३॥ (सायङ्काल और प्रातःकाल में हवन करना चाहिए अमेध्य (अपवित्र) और दूध हाथ वाला होकर नहीं करे । मधु-मांस का सेवन तथा मनुष्यों के साथ गीत गाना या मृत्य करना त्याग देना चाहिए ॥ १४ ॥) रुपी भी प्राणी की हिंसा करना (धारीरिक तथा मानसिक यत्नेश पहुंचाना भी हिंसा कही जाती है) भयवा दूसरों की बुराई करना और विशेष रूप से अश्लील (अश्लो उत्पन्न करने वाले)

शब्द मुँह से न निकाले । ब्रह्मचारी को दण्ड आदि प्रारण करते रहना चाहिए यदि मष्ट हो जावे तो उसे जनाशय में डाल देवे और अन्न नूतन धारण करे ॥१५॥ साङ्ग वेद का गुरु से अध्ययन करके स्नान करना चाहिए अर्थात् समावर्तन करे और गुरु को दक्षिणा देवे । समावर्तन का तात्पर्य ब्रह्मचर्य आश्रम की समाप्ति कर गृहस्थ में प्रवेश करना है । जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी होता है उसे ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करते हुए देह के अन्त तक गुरु के ही समीप में निवास करना चाहिए अर्थात् पूरे जीवन वही रहे ॥१६॥

५६—विवाह

विप्रश्चतस्रो विन्देत भार्यास्तिस्रस्तु भूमिपः ।
 द्वे च वैश्यो यथाकामं भार्यैकामपि चान्त्यजः ॥१॥
 धर्मकार्याणि सर्वाणि न कार्याण्यसवर्णया ।
 पाणिग्रह्यः सवर्णसु गृह्णीषात्कृत्स्त्रिया शरम् ॥२॥
 वैश्या प्रतोदमादद्याद्दशां वै चान्त्यजा तथा ।
 सकृत्कन्या प्रदातव्या ह्रस्वां चौरदण्डभाक् ॥३॥
 अपत्यविक्रयासक्तं निष्कृतिर्न विधीयते ।
 कन्यादान शचीयोगो विवाहोऽथ चतुर्थिका ॥४॥
 विवाहमेतत्कथितं नाम कर्मचतुष्टयम् ।
 नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पती ॥५॥
 पञ्चस्वापरसु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ।
 मृते तु देवरे देया तदभावे यथेच्छया ॥६॥
 पूर्वान्वितयमाग्नेय वायव्यं चोत्तरान्वयम् ।
 रोहिणी चेति चरणे भगणः शस्यते सदा ॥७॥
 ✓नैकगोत्रां वरयेन्नेकार्पण्यां च भागंव ।
 पितृतः ममगादूर्ध्वं मातृतः पञ्चमात्तया ॥८॥
 आहूय दान ब्राह्मः स्यात्कुलशीलयुनाय तु ।
 पुरषाम्नाग्येत्तज्ज्ञो नित्यं कन्याप्रदानतः ॥९॥

अब विवाह के विषय में बालाया जाता है । पुष्कर ने कहा—विप्र चार भार्याओं को प्राप्त कर सकता है अर्थात् ब्राह्मण सवर्णाभार्या के अतिरिक्त अन्य वर्णों की भार्या भी ग्रहण कर सकता है । क्षत्रिय इसी तरह तीन भार्या रख सकता है और वैश्य दो तथा अन्त्यज (शूद्र) एक ही अपने वर्ण की भार्या बना सकता है ॥ १ ॥ धर्म के समस्त कार्य असवर्णा भार्या के साथ नहीं करने चाहिए । सवर्णाओं में पाणि का ग्रहण करना चाहिए । क्षत्रिया भार्या घर वो ग्रहण करती है ॥ २ ॥ वैश्या प्रबोध (पैना-चावुक) का आदान करे तथा अन्त्यजा शूद्रा दशा का ग्रहण करे । कन्या का एक बार ही प्रदान करना चाहिए । उसका हरण करने वाला चोर के दण्ड का भागी होता है ॥ ३ ॥ सन्तति की दिक्रिया सक्त में किसी भी निष्कृति का विधान नहीं किया जाता है । कन्यादान—शचीयोग—विवाह और चतुर्धिका यह चार प्रकार के व्रतों को विवाह कहा गया है । नष्ट हो जाने पर—मृत होने पर—छोड़कर कहीं निकल जाने पर संन्यास ग्रहण कर लेने पर—बलीव (नपुंसक) हो जाने पर और पति के पतित होने पर इन पांच प्रकार की आपत्ति के कालों में स्त्रियों के अन्य पति बनाने का विधान होता है । मृत पति के होजाने पर देवर (पति के छोटे भाई) को दे देनी चाहिए । यदि उसका अभाव हो तो जैसी भी इच्छा हो उसके अनुसार ही देना चाहिए ॥४-५-६॥ तीनों पूर्वा (पूर्वाफाल्गुनी—पूर्णिमा—पूर्वाभाद्रपदा) आग्नेय—वायव्य—दीनों उत्तरा और रोहिणी चरण में यह भगण सर्वदा प्रशस्त माना जाता है ॥ ७ ॥ हे भार्गव ! एक गोत्र वाली और एक श्रृषि वाली का कभी वरण नहीं करना चाहिए । पिता के गोत्र में सात पीढ़ी से ऊपर और माता के गोत्र में पांच पीढ़ी से ऊपर वाले वर को बुलाकर दान करना अर्थात् कन्या का दान देना ब्राह्म विवाह कहा जाता है वर कुल और शील से समन्वित होना चाहिए । इस प्रकार के विवाह से जो पुत्र उत्पन्न होता है वह कन्या के दान के माहात्म्य से पुरस्कारों का उद्धार कर देता है ॥८-९॥

तथा गोमिथुनादानाद्विवाहस्त्वाप्य उच्यते ।

प्रायिता दीयते यस्य प्राजापत्यः स धर्मकृन् ॥१०॥

शुल्केन चाऽऽसुरो मन्दो गान्धर्वो वरुणान्मिथः ।
 राक्षसो युद्धहरणात्पशाचः कन्यकाद्यलात् ॥११
 वैवाहिकेऽन्हि कुर्वीत कुम्भकारमृदा शचीम् ।
 जलाशये तु तां पूज्य वाद्याद्यः स्त्री गृहं नयेत् ॥१२
 प्रसुप्ते केशवे नैव विवाहः कार्यं एव हि ।
 पौषे चैत्रे कुजदिने रिक्ताविष्टितिथौ न च ॥१३
 न शुक्रजीवेऽस्तमिते न शशाङ्के ग्रहादिते ।
 अर्काकिभौमयुक्ते भे व्यतीपातहते न हि ॥१४
 सौम्यं पित्र्यं च वायव्यं सावित्रं रोहिणी तथा ।
 उत्तरात्रितयं मूलं मैत्रं पौष्णं विवाहभम् ॥१५
 मानुषाख्यस्तथा लग्नो मानुषाख्यांशकः शुभः ।
 तृतीये च तथा पष्ठे दशमैकादशेऽष्टमेः ॥१६
 अर्काकिचन्द्रतनयाः प्रशस्ता न कुजोऽष्टमः ।
 सप्तान्त्याष्टमवर्गेषु शेषाः शस्ता ग्रहोत्तमाः ॥१७
 तेषामपि तथा मध्यात्पष्ठः शुक्रो न शस्यते ।
 वैवाहिके भे कर्तव्या तथैव च चतुर्थिका ॥१८
 न दातव्या ग्रहास्तत्र चतुराद्यास्तथैकगाः ।
 पर्ववर्जं स्त्रियं गच्छेत्तया दत्ता सदा रतिः ॥१९

गोमर्गे के जोडे के प्रादान से जो विवाह किया जाता है वह प्रार्थ
 विवाह कहा जाता है । कन्या की प्रार्थना की जावे कि यह कन्या मुझे दे
 दोजिए सब जो विवाह किया जाता है वह प्राजापत्य विवाह होता है और वह
 धर्म के करने वाला होता है ॥ १० ॥ शुल्क (धन) देकर जो विवाह किया
 जाना है वह धामुर विवाह मन्द होता है । जो कन्या और वर दोनों अपनी
 इच्छा से एक दूसरे से राजमग्ध होकर विवाह करते हैं वह गान्धर्व नामक
 विवाह कहा गया है । युद्ध करके कन्या वा हरण किया जावे और उसमे
 विवाह किया जाना है वह राक्षस नाम वाला कहा जाता है । काम के यत्नी-
 भूत होकर दत्त करके जो कन्या की लाकर विवाह होता है वह पैगाच विवाह

होता है । विवाह के निश्चित दिन में कुम्हार के यहाँ की मिट्टी से शची की रचना करनी चाहिए । उसका जलाशय में पूजन करके बाजे बादि के द्वारा स्त्री को घर में ले जाना चाहिए ॥११-१२॥ केसव भगवान् के प्रसूत हो जाने पर भर्षात् देवों की शयन हो जाने के पश्चात् विवाह नहीं करना चाहिए । पौष और चैत्र में मङ्गलवार के दिन में स्तिष्ठ इष्टि तिथि में भी विवाह नहीं करे ॥१३॥ शुरु और शुद्ध के अस्त होजाने पर और चन्द्रमा के ग्रहों से ग्रहित होने पर विवाह नहीं करना चाहिए । मर्कटिक के भीम (मङ्गल) से युक्त नक्षत्र में और ध्यतीपात से हत होने पर विवाह वर्जित है ॥१४॥ सौम्य-विश्व-वायव्य सावित्र-रोहिणी-तीनों उत्तरा-मूल-मैत्र और पौष्ण ये विवाह करने के नक्षत्र होते हैं ॥१५॥ मानुष नामक लग्न और मानुषास्थ का ग्रंथक शुभ होता है । तृतीय-पट्ट-दशम-एकादश और अष्टम घर में मर्कटिक चन्द्र तनय प्रशस्त है और घाटर्षा मंगल शुभ नहीं होता है । सात-भन्य (द्वादश) अष्टम घरों में शेष ग्रहोत्तम प्रशस्त होते हैं ॥१६-१७॥ उनमें भी मध्य से छटा शुभ प्रशस्त नहीं माना जाता है । इसी प्रकार से चतुर्विंश वैशाहिक नक्षत्र में करनी चाहिए ॥ १८ ॥ चतुराद्या तथा एक घर में स्थित हों तभी इन्ग्रा नहीं देनी चाहिए भर्षात् विवाह नहीं करे । पर्व बाल का त्याग करके स्त्री का गमन करे । उसके द्वारा दी हुई जो है नममें सर्वदा रति होगी है ॥१९॥

६० — आचारः

ग्राह्ये भूहर्ते चोत्थाय विष्ण्वादीन्द्रिवतान्त्म (दिदेवताः स्म)रेत् ।
उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ॥१॥
रात्रौ च दक्षिणे कुर्यादुभे संच्ये यथा दिवा ।
न मार्गादी जले वीथ्यां सतृणायां सदाऽऽचरेत् ॥२॥
शीघ्रं कृत्वा मृदाऽऽचम्य भक्षयेद्दन्तधावनम् ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियाङ्गं मलकर्षणम् ॥३॥
क्रियास्नानं तथा पष्ठं पोडा स्नानं प्रकीर्तितम् ।
भस्नातस्याफलं कर्म प्रातः स्नानं चरेत्ततः ॥४॥

भूमिष्ठमुद्धृतात्युष्यं ततः प्रस्रवणोदकम् ।
 ततोऽपि सारस पुण्य तस्मान्नादेयमुच्यते ॥५॥
 तीर्थतोय ततः पुण्यं गाङ्गा पुण्यं तु सर्वतः ।
 सशोधितमलः पूर्वं निमग्नश्च जलाशये ॥६॥
 उपस्पृश्य ततः कुर्यादम्भसः परिमार्जनम् ।
 हिरण्यवर्णास्तिसृभिः श नो देवीति चाप्यथ ॥७॥
 आपो हि ष्ठेति तिसृभिरिदमापस्तथैव ।
 ततो जलाशये मग्नः कुर्यादन्तर्जलं जपम् ॥८॥

अब आचार के विषय में वर्णन किया जाता है । पुष्कर ने कहा—
 ब्रह्म मुहूर्त में शय्या से उठकर विष्णु आदि देवताओं का स्मरण करना
 चाहिए । मूत्र का त्याग घोर मल का त्याग दिन के समय में उत्तर दिशा की
 ओर मुख करके करना चाहिए ॥ १ ॥ रात्रि के समय में मल-मूत्र का त्याग
 दक्षिण दिशा की ओर मुख करके करे । जिस प्रकार दिन में करे वैसे ही दोनों
 संध्याओं के समय में मल-मूत्र विसर्जन करे । मार्ग आदि में—जल में—गली में
 घोर मृण युक्त स्थान में कभी नहीं करना चाहिए ॥२॥ मिट्टी से शुद्धि करके
 आचमन (कुल्ली) करे घोर इसके पदचात् दन्तधावन (दातुन) करे । स्नान छं
 प्रकार का होता है—नित्य स्नान—(जो रोज एक नियम से किया जाता है)
 नैमित्तिक स्नान—(ग्रहणादि किसी भी हेतु के होने पर किया जाता है) काम्य
 स्नान (जो किसी विशेष कामना के मन में रख कर किया जाता है) क्रियाङ्ग
 स्नान—(वह स्नान जो किसी भी कर्म के अङ्ग स्वरूप होता है) मलवर्षण
 स्नान—(वह स्नान जो बेचल घाँवर के मल के छुड़ाने के लिए ही किया जाता
 है) त्रिया स्नान छट्वा स्नान है । बिना स्नान किये हुए कर्म करने से कोई भी
 फल नहीं प्राप्त होता है अतः प्रातःकाल के समय में अवश्य ही स्नान करना
 चाहिए ॥३-४॥ भूमि में गिर्य जल साये हुए या खींच कर निकासे हुए जल
 में पवित्र होता है । इसमें भी अधिक पवित्र तथा पुण्य जल भरने का होता है ।
 इसमें गंगादा पुण्य जल सर्वोपर का है । सर्वोपर से अधिक पवित्र जल नदी का
 जाता जाता है ॥ ५ ॥ गङ्गापरण नदी में भी अधिक पुण्य जल तीर्थ का कहा

गया है। गङ्गा का जल तो सभी में अधिक महत्त्व रखने वाला पवित्र एवं पुण्य माना गया है। पहिले शरीर के सब प्रकार के मनों में शुद्ध होकर फिर जलाशय में डुबकी लगाकर स्नान करना चाहिए ॥६॥ फिर उपस्पर्शन करके जल से परिमार्जन करे। “हिरण्यवर्णा” इन तीनों में तथा “शशो देवी” इत्यादि से और “आपोहिता” इत्यादि के तीन के द्वारा एवं “इदमापः” इसके द्वारा परिमार्जन करना चाहिए। इसके अनन्तर जलाशय में मग्न होकर अर्घान् डुबकी लगाकर जल के अन्दर जप करे ॥७-८॥

तत्राधमर्पणं सूक्तं द्रुपदां वा तथा जपेत् ।
 मुञ्जते मन इत्येवं सूक्तं वाऽप्यय पौरुषम् ॥६॥
 गायत्रीं तु विशेषेण अधमर्पणसूक्तके ।
 देवता भाववृत्तस्तु ऋषिश्च अधमर्पणः ॥१०॥
 छन्दश्चानुष्टुभं तस्य भाववृत्तो हरिः स्मृतः ।
 आपीडमानः शाटीं तु देवतापित्रुतर्पणम् ॥११॥
 पौरुषेण तु भूक्तेन ददेच्चैवोदकाञ्जलिम् ।
 ततोऽग्निहवनं कुर्याद्दानं दत्त्वा तु शक्तितः ॥१२॥
 ततः समभिगच्छेत् योगक्षेमार्थमेश्वरम् ।
 आसनं शयनं धानं जायाऽपत्यं कमण्डलुः ॥१३॥
 आत्मनः शुचिरे (चीन्त्ये) तानि परेषां शुचिर्भवेत् ।
 भाराक्रान्तस्य गुविष्याः पन्था देवो गुरुत्वपि ॥१४॥
 न पश्येच्चार्कमुद्यन्तं नास्तं धान्तं न चाम्भसि ।
 नेष्टेभ्रानां स्थियं कूपं शून्यस्थानमघोषिनम् ॥१५॥
 कार्पासास्थि तथा भस्म नाऽऽक्रामेद्यच्च कुत्सितम् ।
 अन्तःपुरं वित्तगृहं परदीप्यं व्रजेन्न हि ॥१६॥

वहाँ पर अर्घान् जल के अन्दर गीता निये हुए अधमर्पण सूक्त अथवा द्रुपदा का जप करे। “मुञ्जते मन” इस सूक्त को अथवा पुराण सूक्त को जपे ॥६॥ गायत्री मन्त्र का अधमर्पण रूप में विशेष रूप में जाप करना चाहिए। देवता—भाववृत्त और ऋषि अधमर्पण होता है। उसका छन्द अनुष्टुप् है और

भाववृत्त हरि कहे गये हैं । साटी को आपीड़गान होता हुआ देवता और भिन्न-
गण का तर्पण करे ॥१०-११॥ पुरुष सूक्त के द्वारा जल की प्रक्षालियों को देना
चाहिए । इस सब कर्म-कलाप को सम्पादन करने के पश्चात् हवन करना
चाहिए और अपनी शक्ति के अनुसार दान देवे ॥१२॥ इसके उपरान्त अपने
योगक्षेम के लिये ईश्वर के सम्मुख उपस्थित हो जाना चाहिए । आसन-शयन-
यात्रा-जाया-अपत्य-कर्मण्डलु ये सब अपने शुचि होते हैं । दूसरों के शुचि नहीं
होते हैं । कोई भार लेकर आरहा हो तथा कोई गर्भवती स्त्री आ रही हो और
गुरु वर्ग में से कोई भी आता हो तो मार्ग छोड़कर उन्हें जाने के लिये रास्ता
दे देना चाहिए ॥१३-१४॥ कभी भी उगते हुए रक्त वर्ण की आभा वाले तथा
अस्त होते हुए सूर्य का दर्शन नहीं करना चाहिए । इसी प्रकार से जल में जाते
हुए सूर्य बिम्ब को भी नहीं देखना चाहिए । किसी समय स्नानादि करने के
समय में नग्न हुई स्त्री को नहीं देखना चाहिए । कूप अर्थात् कुएँ को भी झुक
कर नहीं देखे । शून्य स्थान और अपोधि को नहीं देखना चाहिए ॥ १५ ॥
कपास-अस्थि-भस्म और निन्दित वस्तु को कभी नहीं लांघना चाहिए । अन्तः-
पुर (जनान खाना)-वित्तगृह और पर दौत्य में नहीं जाना चाहिए ॥१६॥

नाऽऽरोहेद्विपमां नाव न वृक्षं न च पर्वतम् ।

अर्थायतनशाज्नेषु तथैव स्यात्कुतूहली ॥१७

लोष्टमदीं तृणच्छेदी नखखादी विनश्यति ।

मुखादिवादन नेहेद्विना दीपं न रात्रिगः ॥१८

नाद्वारेण विशेषेण न च वक्त्र विरागयेत् ।

कथाभङ्गं न कुर्वीत न च वासोविपर्ययम् ॥१९

भद्रं भद्रमिति ब्रूयान्निष्टं कीर्तयेत्क्वचित् ।

पालाशमासन वज्र्यं देवादिच्छायाया व्रजेत् ॥२०

न मध्ये पूजयोर्पायानोच्छिष्टस्तारकादिदृक् ।

नद्यां नान्यां नदी ब्रूयान्न कण्डूयेद्वि हस्तकम् ॥२१

असंतप्यं पितृन्देवान्नदीपारं च न व्रजेत् ।

मलादि प्रक्षिपेन्नाप्सु न नग्नः स्नानमाचरेत् ॥२२

नहीं करनी चाहिए । उनके साथ कृच्छ्रता में, प्रदेश में और वंश-राजा तथा नदी से हीन देश में तथा ऐसे देश में जहाँ म्लेच्छ हों और स्त्रियाँ ही हों एव बहुत से नायक हों निवास नहीं करना चाहिए ॥२४॥

रजस्वलादिपतिर्नैर्न भापेत्केशवं स्मरेत् ।

नासंवृतमुख कुर्याद्ग्रास जूम्भां तथा क्षुतम् ॥२५॥

प्रभोरप्यवमान च गोपयेद्वचनं बुधः ।

इन्द्रियाणां नानुकूलं वेगरोध न कारयेत् ॥२६॥

नोपेक्षितव्यो व्याधिः स्याद्विपुरत्पोऽपि भागं च ।

रथ्यातिगः सदाऽऽचामेद्विभृत्यान्नाग्निवारिणी ॥२७॥

न हं कुर्याच्छिव पूज्य पादे नाऽऽक्रमेत् ।

प्रत्यक्ष वा परोक्षं वा कस्यचिन्नाप्रिय वदेत् ॥२८॥

वेदशास्त्रनरेन्द्रपि देवनिन्दां विवर्जयेत् ।

स्त्रीणामीर्षां (ध्यां) न कर्तव्या विश्वास तासु वर्जयेत् ॥२९॥

धर्मश्रुति देवरति कुर्याद्विर्मादि नित्यशः ।

मोमस्य पूजां जन्मक्षे विप्रदेवादिपूजनम् ॥३०॥

पष्ठीचतुर्दश्यष्टम्यामम्यङ्गं वर्जयेत्तथा ।

दूराद्गृहान्नोपविशेन्नो तर्मेधौ रमाचरेत् ॥३१॥

रजस्वला स्त्री आदि और पतितों के साथ कभी भाषण नहीं करना चाहिए । वंशव का गर्वदा स्मरण करना चाहिए । असंवृत (खुला हृम) मुख वाला होते हुए ग्रास-जैभाई और क्षुत् नहीं करना चाहिए ॥२५॥ स्वामी का तथा अपमान, अपमान, वचन को छिपाना चाहिए । विशात् वा कर्तव्य है । इन्द्रियों के अनुकूल चलने वाला नहीं रहना चाहिए । इन्द्रियों के वेग का अवरोध नहीं करना चाहिए ॥२६॥ हे भागव ! अपने परोक्ष में होने वाली व्याधि की मापरवाही नहीं करे अर्थात् उसके हटाने का उपाय अवश्य करे और छोटे-से-छोटे बातों को भी उपेक्षित न करे अर्थात् चाहे क्षुत् छोटा-मामूनी भी क्यों न हो उसके मापरवाही नहीं करे । रथ्या अर्थात् गली में गमन करने के पदचान् सर्वदा आचमन करना चाहिए और अग्नि तथा जल का भरण न

करना चाहिए ॥२७॥ 'इ'—इसका उच्चारण नहीं करे और शिव—पूज्यजन को चरण से आक्रान्त नहीं करे । प्रत्यक्ष रूप से या परोक्ष रूप से अर्पण मुँह के सामने और पीठ पीछे भी किसी के प्रति अप्रिय वचनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए ॥२८॥ वेद-शास्त्र-राजा-ऋषि-देवता की निन्दा नहीं करे । स्त्रियों के साथ ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए और उनमें विश्वास भी न करे ॥२९॥ धर्मशास्त्र का श्रवण और देवताओं में रति करना चाहिए । धर्म कार्य निरत्य ही करने चाहिए । जन्म के नक्षत्र में चन्द्रमा की पूजा तथा ब्राह्मण और देवता आदि की पूजन करे ॥३०॥ छद्म-चोदश और अष्टमी को अम्पङ्ग (तैल मर्दन) नहीं करना चाहिए । दूरी से गृहों में प्रवेश न करे और उत्तम पुरुषों के साथ वैर नहीं करना चाहिए ॥३१॥

६१—द्रव्यशुद्धि

द्रव्यशुद्धि प्रवक्ष्यामि पुनःपाकेन मृन्मयम् ।
 शुष्येन्मूत्रपुरीषार्थः स्पृष्टं ताम्रं सुवर्णकम् ॥१॥
 आवर्तित चान्यथा तु वारिणाऽप्लेन ताम्रकम् ।
 क्षारेण कांस्यलोहानां मुक्तादेः क्षालनेन तु ॥२॥
 अजानां चैव भाण्डानां सर्वम्याश्ममयस्य च ।
 शाकरज्जुमूलफलवैदलानां तथैव च ॥३॥
 मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ।
 उष्णाम्बुना सम्नेहानां शुद्धिः संमार्जनाद्गृहे ॥४॥
 शोधनान्मन्त्रश्रणाद्वस्त्रे मृत्तिकाद्भिर्विशोधनम् ।
 बहुवस्त्रे प्रोक्षणाच्च दारवाणां च ताम्रणात् ॥५॥
 प्रोक्षणात्सहतानां तु द्रवाणां च तयोत्प्लवात् ।
 गयनासनयानानां शूर्पस्य शकटस्य च ॥६॥
 शुद्धिः संप्रोक्षणाज्जेया पलाशेन्यनयोस्तथा ।
 सिद्धात्रकानां कर्तुकेन शृङ्गदन्तमयस्य च ॥७॥

गोवालैः पलपात्राणामस्थानं स्याच्छुद्धवत्तथा ।
निर्यासानां गुडानां च लवणानां च शोषणात् ॥८॥

पुष्कर ने कहा—अब मैं द्रव्य की शुद्धि को बतलाता हूँ—जो पदार्थ मिट्टी के विरचित होते हैं वे यदि अशुद्ध हो जाते हैं तो उनकी शुद्धि दुबारा पका देने से हुमा करती है । मूत्र तथा मल से स्पर्श किया हुआ सुवर्ण एवं ताम्र अशुद्ध हो जावे तो उसको आवर्तित करने शुद्धि होती है । खटाई के साथ जल से ताम्र की शुद्धि भी होती है । शार से काँन और लोहे के पात्रों की तथा मोती आदि की केवल जल से धोने से होती है ॥१-२॥ कमलों की और पत्थर के बने हुए सबका तथा शाक—रज्जु—मूलफल और बंदलों की शुद्धि भी केवल जल से धो लेने से होती है ॥३॥ यज्ञ के पात्रों की शुद्धि हाथ से माँजने से यज्ञ कर्म के समय में होती है । जो चीकने पात्र होते हैं उनकी शुद्धि गर्म पानी से घर में माँजने से ही हो जाती है ॥४॥ वस्त्र में शोधन तथा मृत्तिका से अज्रण करने से शुद्धि होती है । यदि बहुत से वस्त्र हों तो केवल प्रोक्षण करने से अर्थात् जल के छोटे मार देने से शुद्धि होती है । लकड़ी के पदार्थों की शुद्धि उनके तक्षण (छिलाई) कर देने से हो जाती है । अथवा प्रोक्षण से ही उसी समय होती है ॥५॥ जो बहुत से संहत अर्थात् एक ही ढेर में एकत्रित पदार्थ हो तो उनकी शुद्धि भी प्रोक्षण मात्र से हो जाती है । जो द्रव पदार्थ हों उनके उत्प्लवन करने से शुद्धि होती है । शयन—आसन और यातों की—सूप की और गाढी की शुद्धि मली भाँति सम्प्रोक्षण से जान लेनी चाहिए । पलाल और ईँघन की शुद्धि भी इसी प्रकार से हुमा करती है । जो सिद्ध अन्न हो उनकी शुद्धि कल्क से तथा सींग और दाँत के बने हुए पदार्थों की शुद्धि गौ के बालों से होती है । पलपात्रों की—अस्थियों की शृङ्ग के समान ही शुद्धि है । निर्यास (गोंद आदि की) गुड़—लवण की शुद्धि शोषण करने से होती है ॥६-७-८॥

कुमुम्भकुमुमानां च ऊर्णाकार्पासयोस्तथा ।
शुद्धं नदीगतं तोयं पण्यं तद्वत्प्रसारितम् ॥९॥

मुखवर्जं च गौः शुद्धा शुद्धमश्वजयोर्मुखम् ।
 नारीणां चैव वत्सानां शकुनीनां शुनो मुखम् ॥१०॥
 मुखैः प्रसवणो वृत्ते मृगयायां सदा शुचिः ।
 भुक्त्वा क्षुत्त्वा तथा सुप्त्वा पीत्वा चाम्भो विगाह्य च ॥११॥
 रथ्यामाक्रम्य चाऽऽचामेद्वासो विपरिधाय च ।
 मार्जारश्चङ्क्रमान्छुद्धश्चतुर्थोऽन्ह रजस्वला ॥१२॥
 स्नाता स्त्री पञ्चमे योग्या दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।
 पञ्चापाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः ॥१३॥
 एका लिङ्गे मृदं दद्यात्करयोस्त्रिद्विमृत्तिकाः ।
 ब्रह्मचारिवनस्थानां यतीनां च चतुर्गुणम् ॥१४॥
 श्रीफलैरशुपट्टानां क्षीमाणां गौरसर्पपैः ।
 शुद्धिः पर्युक्ष्य तोयेन मृगलोम्नां प्रकीर्तिता ॥१५॥
 पुष्पाणां च फलानां च प्रोक्षणाञ्जलतोऽखिलम् ॥१६॥

कुसुम्भ के कुसुमों की तथा ऊन और कपास की शुद्धि शोधण से होनी है । नदी में रहने वाला जल शुद्ध होता है । इसी भाँति बाजार में फैलाई हुई विक्रय की वस्तु भी शुद्ध होती है ॥१६॥ मुख को छोड़कर गौ का समस्त शरीर शुद्ध होता है । अश्व और बकरी का मुख शुद्ध माना गया है । स्त्रियों का—शकुनिओं की और कुत्ते का मुख शुद्ध होता है ॥१०॥ मुखों के द्वारा प्रसवण होने पर शिकार में सर्वदा शुचि होता है । सोकर—जैभाई लेकर सोकर—बल पीकर और विगाहन करके—रथ्या (गली) का आक्रामण करके आचमन करना चाहिए तथा वस्त्र का विपरिधान करके भी आचमन करे । मार्जारी चक्रमण में और रजस्वला चौथे दिन स्नान से शुद्ध होती है ॥११-१२॥ स्नान की हुई अर्थात् रजस्वला धर्म के पश्चात् स्नान करने वाली स्त्री पाँचवें दिन में दैव और मित्रों के कर्म करने के योग्य होती है । अपान में पाँच—एक में दश और दोनों हाथों में सात बार मिट्टी लगाने से शुद्ध होती है । लिङ्गमें एक बार में ही लगा के और हाथों में तीन बार मिट्टी लगावे । ब्रह्मचारी—वानप्रस्थ और यनियों को चौगुनी बार मिट्टी लगानी चाहिए ॥१३-१४॥ भंसु पत्तों की शुद्धि

श्रीफलों से तथा क्षौण वस्त्रों की शुद्धि रुफेद सरसों से होती है । मृग लोमो के वस्त्रों की शुद्धि जल से पर्युक्षण करके बताई गई है ॥१५॥ पुष्प और फलों की शुद्धि बे वस जल से प्रोक्षण कर देने से होजाती है ॥१६॥

६२--शावाशौचादि ।

प्रेतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि सूतिकाशुद्धिमेव च ।
 दशान्हं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ॥१॥
 जनने च तथा शुद्धिर्ब्राह्मणानां भृगूत्तम ।
 द्वादशल्लेन राजन्यः पक्षाद्वैश्योऽथ मासतः ॥२॥
 (ॐ शूद्रोऽनुलोमतो दासे स्वामितुल्यं त्वशौचकम् ।
 पङ्क्तिभिस्त्रिभिरथैकेन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु) ॥३॥
 ब्राह्मणः शुद्धिमाप्नोति क्षत्रियस्य तथैव च ।
 विट्शूद्रयोनिः शुद्धिः (द्वः) स्यात्क्रमात्परशुरामकः (?) ४
 पङ्क्तिरेण त्रिरात्रेण पङ्क्तिः शूद्रे तथा विशः ।
 आ दन्तजनात्सद्य आ चूडार्चं शिकीश्रुतिः ॥५॥
 त्रिरात्रमा व्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम् ।
 ऊनत्रैवार्पिके शूद्रे पञ्चाहाच्छुद्धिरिष्यते ॥६॥
 द्वादशाहेन शुद्धिः स्यादतीते वत्सरत्रये ॥
 गतैः सवत्सरं पङ्क्तिः शुद्धिमसिन कीर्तिता ॥७॥
 स्त्रीणात्मतचूडानां विशुद्धिर्नै शिकी स्मृता ।
 तथा च कृतचूडानां त्र्यहाच्छुध्यन्ति बान्धवाः ॥८॥

भव शव से होने वाले आशौच आदि के विषय में कहते हैं । पुनरु ने कहा—भव में प्रेत की शुद्धि तथा सूतिका की शुद्धि को बतलाता है । जो सपिण्ड हों उनकी मृग्यु से होने वाली शुद्धि दश दिन में हो जाती है । सात पीढ़ी तक रहने वाले लोग सपिण्ड कहे जाते हैं । ॥१॥ हे भृगूत्तम ! इसी प्रकार मे जनना शौच में भी ब्राह्मणों की दश दिन में शुद्धि होती है किन्तु क्षत्रियों की बारह दिनों में और वैश्यों की पन्द्रह दिन में एव शूद्र की एक

माम में जनन तथा मरण दोनों में शुद्धि होती है । अनुलोम से जो दास हों उनकी स्वामी के तुल्य ही शुद्धि शास्त्र बताता है छै-तीन और एक दिन से क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र योनि में आशीच होता है ॥२।३॥ ब्राह्मण और इसी तरह क्षत्रिय और वैश्य तथा शूद्र योनि की क्रम से पद गुरामक शुद्धि होती है ॥४॥ छै रात्रि-तीन रात्रि-छै से शूद्र तथा वैश्य की दाँत जब तक निकलें तब तक सद्यः शुद्धि हो जाती है और चूड़ाकर्म तक एक रात्रि की अशुचिता रूहा करनी है ॥५॥ जब तक व्रतवन्ध हो तब तक तीन रात्रि की अशुद्धि होती है और इससे ऊपर दशरात्रिक आशीच रहता है । यह बालक के मृतकाशीच के विषय में बताया गया है । तीन वर्ष से कम शूद्र की पाच दिन में शुद्धि होती है और तीन वर्ष के ऊपर हो जाने पर बारह दिन में शुद्धि होती है । छै वर्ष के समाप्त हो जाने पर एक माम में शुद्धि बताई गई है ॥६।७॥ जिनका चूड़ा कर्म नहीं हुआ है उन स्त्रियों की विशुद्धि एक रात्रि में होती है । चूड़ाकर्म हो जाने वालियों के तीन दिन में बान्धव शुद्धि को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥८॥

विवाहितासु नाऽऽशीचं पितृपक्षे विधीयते ।
 पितुर्गृहे प्रसूतानां विशुद्धिनैशिकी स्मृता ॥९॥
 सूतिका दशरात्रेण शुद्धिमाप्नोति नान्यथा ।
 विवाहिता हि चेत्कन्या मिश्रते पितृवेश्मनि ॥१०॥
 तस्यास्त्रिरात्राच्छुध्यन्ति बान्धवा नात्र सशयः ।
 समानं लब्धशीचं तु प्रथमेन समापयेत् ॥११॥
 असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा ।
 देशान्तरस्थः श्रुत्वा तु कुलशानां मरणोद्भवो ॥१२॥
 यच्छ्रेयं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ।
 अतीते दशरात्रे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥१३॥
 —तथा संवत्सरेऽतीते स्नात एव विशुध्यति ।
 मातामहे तथाऽतीत आचार्ये च तथा मृते ॥१४॥

रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भेऽस्त्रावे विशोधनम् ।
 सपिण्डे ब्राह्मणे वर्णाः सर्वे एवाविशेषतः ॥१५॥
 दशरात्रेण शुद्धयन्ति द्वादशाहेन भूमिपः ।
 वैश्याः पञ्चदशाहेन शूद्रा मासेन भार्गव ॥१६॥

जो विवाहित हों उनके विषय में पिता के पक्ष में आशीच नहीं होता है । पिता के घर में प्रसूतों की विशुद्धि एक रात्रि में हो जाती है ॥६॥ मृतिका दशरात्रि में शुद्धि को प्राप्त होती है अन्यथा शुद्धि नहीं होती है । विवाहित कन्या यदि पिता के घर में मृत्यु को प्राप्त हो जावे तो उस आशीच से तीन रात्रि में बान्धव गए शुद्ध हो जाते हैं इसमें कुछ भी संशय नहीं है । समान सम्बा शीच तो प्रथम दिन में समाप्त कर देना चाहिए ॥१०॥११॥ जो असमान हो वह धर्मराज के वचन के अनुसार दूसरे दिन में समाप्त कर देवे । यदि देशान्तर में स्थित हो और कुल के मरण एवं जनन का श्रवण करे तो दश रात्रि होने में जितना भी शेष समय रहे उतनी रात्रि तक आशीच रहा करता है । यदि दश रात्रि भी व्यतीत हो जावे तो केवल श्रवण के पश्चात् तीन रात्रि तक आशीच रहता है ॥१२॥१३॥ एक वर्ष व्यतीत होने पर केवल स्नान कर लेने पर ही शुद्धि होती है । मातामह (नाना) तथा आचार्य के मृत हो जाने पर मासों के तुल्य रात्रियों में शुद्धि होती है । गर्भ स्त्राव में जो विशेष होता है वह भी सपिण्ड ब्राह्मण और अन्य सभी वर्ण अविशेष रूप से दश रात्रि में शुद्ध होते हैं—वारह दिन में क्षत्रिय-पन्द्रह दिन में वैश्य और एक मास में शूद्र हे भार्गव ! शुद्ध हुआ करते हैं ॥१४॥१५॥१६॥

उच्छष्टसंनिधावेवं तथा पिण्डं निवेदयेत् ।
 कीर्तयेच्च तथा तस्य नामगोत्रे समाहितः ॥१७॥
 भुवतवत्सु द्विजेन्द्रेषु पूजितेषु घनेन च ।
 विगृष्टाक्षततोयेषु गोत्रनामानुकीर्तनैः ॥१८॥
 चतुरंगुलविस्तारं तत्प्रातं तावदन्तरम् ।
 वितस्तिशीघ्रं कर्तव्यं विकर्षणां तथा त्रयम् ॥१९॥

त्रिकर्पूणां समीपे च ज्वालयेज्ज्वलनत्रयम् ।

सोनाय बन्धये रामयमाय च समामतः ॥२०॥

जुहुयादाहुतीः सम्यक्सर्वं त्रीन् चतुस्त्रयः ? ।

पिण्डनिर्वपणं कुर्यात्प्राग्भवेन पृथक्पृथक् ॥२१॥

अन्नेन दध्ना मधुना तथा मांसेन पूरयेत् ।

मध्ये चैदधिमासः स्यात्कुर्यादध्याधेकं तु तत् ॥२२॥

अथ वा द्वादशाहेन सर्वमेतत्समापयेत् ।

संवत्सरस्य मध्ये च यदि स्यादधिमासकः ॥२३॥

तदा द्वादशके श्राद्धे कार्यं तदधिकं भवेत् ।

संवत्सरे समाप्ते तु श्राद्धं श्राद्धवदाचरेत् ॥२४॥

उच्छिष्ट की सन्निधि में इस प्रकार से पिण्ड का निवेदन करे और उनके नाम तथा गोत्र का समाहित होते हुए कीर्तन करना चाहिए ॥ १७ ॥

ब्राह्मणों के भोजन कर लेने पर और घन दान के द्वारा पूजा कर लेने पर अन्न और जन के विमर्जन करने पर नाम तथा गोत्र के अनुकीर्तनों के द्वारा चार अंगुल के विस्तार वाला गर्त करना चाहिए और एक विलम्ब दीर्घ बनावे तथा त्रिकर्पूणों के समीप में तीन की रचना करे और ती नहीं अग्नियों का ज्वालन करे । सोम-बहिः और रामयम के लिए संशेय ने मभी जगद भली-भाँति आहूतिर्ग देवे । प्रथम की भाँति ही पृथक् पृथक् बार तीन पिएडों का निर्वापण करे । अन्न-दधि-मधु तथा मास से पूरित करना चाहिए । मध्य में यदि अधिमास हो तो अधिक बढ करना चाहिए ॥ १८ । १९ । २० । २१ । २२ ॥ अथवा द्वादश के दिन के द्वारा ही यह सब समाप्त कर देना चाहिए । सम्बत्सर के बीच में यदि कोई अधिक मास हो तो द्वादशक श्राद्ध में वह अधिक करना चाहिए । सम्बत्सर के समाप्त होने पर श्राद्ध की भाँति ही श्राद्ध करना चाहिए ॥२३॥२४॥

प्रेताय तत् ऊर्ध्वं च तस्यैव पुरुषजये ।

पिण्डान्विनिर्वपेत्तद्वच्चतुरस्तु समाहितः ॥२५॥

संपूज्य दत्त्वा पृथिवी समाना इति चाप्यथ ।

योजयेत्प्रेतपिण्डं तु पिण्डेष्वन्येषु भार्गव ॥२६॥

प्रेतपात्रं च पात्रेषु तथैव विनियोजयेत् ।
 पृथक्पृथक्प्रकर्तव्यं कर्मेतत्कर्मपात्रके ॥२७॥
 मन्त्रवर्जमिदं कर्म शूद्रस्य तु विधीयते ।
 सपिण्डीकरणं स्त्रीणां कार्यमेवं तदा भवेत् ॥२८॥
 श्राद्धं कुर्यात् प्रत्यब्दं प्रेते कुम्भाघ्नमब्दकम् ।
 गङ्गायाः सिकता धारा यया वर्षेति वासवे ॥२९॥
 शक्या गणयितुं लोके न त्वतीताः पितामहाः ।
 काले सततगस्म्यर्थं नास्ति तस्मात्क्रियां चरेत् ॥३०॥
 देवत्वे यातनास्थाने प्रेतः श्राद्धं कृतं लभेत ।
 नोपकुर्यान्नरः शोचन्प्रेतस्याश्मन एव वा ॥३१॥
 भृग्वग्निपाशकाम्भोभिर्मृतानामात्मघातिनाम् ।
 पतितानां च नाऽऽशौचं विद्युच्छस्त्रहताश्च ये ॥३२॥

प्रेत के लिए ओर उमके ऊपर उसके ही तीन पुरुषों को पिण्डों का विनिर्बपन करे ओर इस प्रकार से समाहित होकर चार करने चाहिए ॥ २५ ॥ हे भागव ! भली-भाँति पूजा करके ओर देकर “ पृथिवी ममाना ” इत्यादि मन्त्र के द्वारा अन्य पिण्डों के साथ प्रेत के लिये दिये हुए पिण्ड को योजित करना चाहिए ॥२६॥ उमी प्रकार से पात्रों जो प्रेत का पात्र है उसको विनियोजित करे । कर्म पात्र में यह कर्म अलग-अलग करना चाहिए ॥२७॥ यह कर्म मन्त्रों के द्वारा त्रिवर्णवालों को करना चाहिए । केवल शूद्र ही बिना मन्त्र के भी इसे कर सकता है । उसी समय में इस प्रकार से स्त्रियों का सपिण्डीकरण कार्य होता है ॥२८॥ प्रतिवर्ष श्राद्ध करना चाहिए और प्रेत में कुम्भों को सालाना देवे । जिस तरह इन्द्र के बरसने पर गङ्गा की सिकता की धारा होती है उमी भाँति शक्ति से पितामहों की जो कि भलीन हो चुके हैं गणना नहीं की जा सकती है । किसी भी समय निरन्तर होने वाले इस कर्म की स्थिरता नहीं होती है अतः इन क्रिया को बराबर करे ॥ २९ । ३० ॥ चाहे देवता के स्वरूप में हो अथवा नरक की यातना भोगने के स्थान में हो प्रेत दिये हुए श्राद्ध को प्राप्त किया करना है । अपने प्रेत के विषय में चिन्ता करते

मानव उपकार नहीं कर सकता है । ३१॥ भृगु-प्रग्न-नाश और जल के द्वारा मृत्तों का—आत्मघात करने वालों का—पतिन होजाने वालों का और बिजली या सस्त्र से हन होने वालों का आशोक नहीं होता है ॥३२॥

यतिव्रतिब्रह्मचारिनृपकारुकदीक्षिताः ।

राजाज्ञाकाग्निो ये च स्नायाह्वं प्रेतगाम्यपि ॥३३

मैथुने कटघूमे च सद्यः स्नान विधीयते ।

द्विजं न निर्हरेत्प्रेतं शूद्रेण तु कथंचन ॥३४

न च शूद्रं द्विजेनापि तयोर्दोषो हि जायते ।

अनाथविप्रप्रेतस्य वहनात्स्वर्गं नोकभाक् ॥३५

सङ्ग्रामे जयमाप्नोति प्रेतेऽनाथे च काष्ठदः ।

संकल्प्य बान्धवं प्रेतमपसव्येन तां चितिम् ॥३६

परिक्रम्य ततः स्नानं कुर्वुः सर्वे सवाससः ।

प्रेताय च तथा दद्युस्त्रींस्त्रीश्चोदकाञ्चलीन् ॥३७

द्वार्यश्मनि पदं दत्त्वा प्रविशेयुस्तथा गृहम् ।

अक्षतान्निक्षिपेद्वन्ही निम्बवत्र त्रिदश च ॥३८

—तृषक् शयोरभूतो च क्रोतलश्वा (ध्व) शता भवन् ।

एकः पिण्डो दशाहे तु श्मश्रुकर्मकरः शुचिः ॥३९

सिद्धार्थैर्हस्तिर्लैर्द्विद्वान्मज्जेद्वासागरं दधत् ।

अजातदन्ते तनये शिशो गमत्रूने तथा ॥४०

कार्पा नवा मेनंस्कारा नव चास्त्रादकृतिः ।

चतुर्थे च दिने कार्पेनयाऽऽद्या चैव सं चयः ॥४१

अस्थिसंश्रयशार्दूलैर्नङ्गैस्तौ विधीयते ॥४२

यति-वनी ब्रह्मचारी-नृप-कारुक-दीक्षित और राजा की आज्ञा का पालन करने वाले प्रेतगामी होने पर स्नान सबको करना चाहिए ॥ ३३ ॥ मैथुन करने पर और कटघूम में तुरन्त स्नान करना चाहिए । द्विजाति के प्रेत का मूत्र के द्वारा कभी भी निर्हरण नहीं करना चाहिए ॥ ३४ ॥ इसी प्रकार से द्विज की भी मूत्र प्रेत का निर्हरण नहीं करना चाहिए । उन दोनों

को ही इस तरह करने से दीप होता होता है । जो प्रेत अनाय हो उसके वहन करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥३५॥ अनाय प्रेत के लिये लकड़ी देने वाला पुरुष सग्राम मे विजय प्राप्त किया करता है । जो प्रेत अपना बान्धव हू उसके निये संकल्प करके अपसव्यता से चिता की परिक्रमा करे और फिर सबको वस्त्रों के सहित स्नान करना चाहिए । इसके उपरान्त सभी बान्धवों को प्रेत के निये तीन-तीन जल की अज्जलि देनी चाहिये ॥ ३६ ॥ ॥३७॥ प्रेत क्रिया करके जब वापिस लौटे तो द्वार पर पत्थर पर पर रखकर घर में प्रवेश करे । अग्नि मे अक्षरों का क्षेप करना चाहिए और नीम के पत्ते चबाने चाहिए ॥ ३८ ॥ प्रेत कर्म करने वाले को भूमि में अलग दफन करना चाहिए और कुछ क्रय करके भोजन कर लेना चाहिए । दशवें दिन एक एः वाला व्यक्ति दमश्चुकर्म करके अर्थात् दाढ़ी-मूछ आदि सबका मुण्डन करने के पश्चात् शुद्ध होता है ॥ ३९ ॥ विद्वान् पुरुष सिद्धार्थक तिलों से मज्जन करे और दूसरे वस्त्र धारण करे । जिसके दांत न निकले हों ऐसे पुत्र का तथा गर्भस्त्राव मे एवं बहुत छोटे बच्चे का अग्नि संस्कार नहीं करे और पलाञ्जलिही देखे । चौथे दिन में अस्थियों का संवय करे । अस्थि संवय के बाद अन्न स्नान करना चाहिए ॥४०॥ ४१ ॥ ४२॥

६३ असंस्कृतादिशौचम्

संस्कृतस्यासंस्कृतस्य स्वर्गो मोक्षो हरिस्मृतः ।
 अस्थ्नां गङ्गाम्भसि क्षेपात्प्रेतस्याभ्युदयो भवेत् ॥१॥
 गंगातोये नरस्यास्थि यावत्तावद्वि स्थितिः ।
 आत्मनस्त्यागिनां नास्ति पतितानां तथा क्रिया ॥२॥
 तेषामपि तथा गाङ्गे तोयेऽस्थ्नां पतनं हितम् ।
 तेषां दत्तं जल चाग्नं गगने तत्प्रलीयते ॥३॥
 अनुग्रहेण महता प्रेतस्य पतितस्य च ।
 नारायणवले कार्यस्तेनानुग्रहमश्नुते ॥४॥

अक्षयः पुण्डरीकाक्षस्तव दत्तं न नश्यति ।
 पतनार्थायते यस्मात्तस्मात्पार्श्वं जनार्दनः ॥५॥
 पततां भुक्तिमुक्त्यादिप्रद एको हरिर्ध्रुवम् ।
 दृष्ट्वा लोकान्मिथमाणान्सहायं धर्ममाचरेत् ॥६॥
 मृतोऽपि बान्धवः नानुगन्तुं नरं मृतम् ।
 जायावर्जं हि सर्वस्य याम्यः पन्था विभिद्यते ॥७॥
 धर्म एको व्रजत्येनं यत्रवचमगामिनम् ।
 श्वःकार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चाऽऽपराह्निकम् ॥८॥

अब जो असंस्कृत हैं उनके शौच के विषय में बतलाया जाता है ।
 पुष्कर ने कहा—भगवान् हरि के स्मरण करने में चाहे कोई संस्कार किया
 हुआ हो या असंस्कृत हो सबका मोक्ष होता है और सब को स्वर्ग की प्राप्ति
 भी होती है । गङ्गा के जल में प्रस्थितों के डाल देने से जो मृत पुरुष है
 उसका अम्बुदय अर्थात् सदा नि होती है ॥ १ ॥ गङ्गा के जल में जब तक
 मनुष्य की अस्थियाँ रहा करती हैं तब तक वह स्वर्ग में अपनी स्थिति रखता
 है । जो अन्त घाती हैं तथा पवित्र हैं उनकी ऐसी क्रिया नहीं होती है ॥ २ ॥
 उनकी भी अस्थियों का भी गङ्गा जल में डाल देना हितकर ही होता है ।
 ऐसे लोगों को दिया हुआ अन्न और जल आकाश में जाकर प्रलीन हो जाया
 करता है ॥ ३ ॥ पवित्र प्रेन के ऊपर महान् अनुग्रह ही होगा अगर उनके
 लिये नारायण बलि का कर्म कर दिया जावे । ऐसे प्रेनों को भवाई के लिये
 नारायण बलि अवश्य ही करनी चाहिए । इससे वे अनुग्रह का भोग लिया
 करते हैं ॥ ४ ॥ पुण्डरीकाक्ष भगवान् नारायण प्रदय हैं इनलिये यह प्रापको
 दिया हुआ कभी नाश को प्राप्त नहीं होता है । पतन होने से रक्षा करते हैं
 इसी कारण से जनार्दन भगवान् पात्र हैं ॥ ५ ॥ पतन शौच मानवों को भुक्ति-
 भुक्ति के प्रदान करने वाले एक मात्र हरि ही ध्रुव होने हैं । मरते हुए लोगों को
 देखकर महादय धर्म का आचरण अवश्य ही करना चाहिए । ६ ॥ जो कोई
 मर गया उसके शोक में या सहायता के लिये कोई बान्धव मर भी जावे

अर्थात् धन देने प्राण भी होम देने को प्रस्तुत हो तब भी मरे हुए वा अनुगमन करने में समय नहीं हो सकता है । जाना को छोड़कर सबका दाय्य मार्ग विभिन्न हो जाता है । ७ ॥ जहाँ कहीं भी गमन करने वाले मृत प्राणी के साथ एक धर्म हो जाता है । जो कार्य कल करने को है उसे आज ही कर डालना चाहिए । जो धार्मिक कार्य दोपहर बाद करना है उसे दोपहर के पहिले ही पूर्वाह्न में कर लेना चाहिए ॥ ८ ॥

न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वाऽस्य न वा कृतम् ।

क्षेत्रापणगृहासक्तमन्यत्रगतमानसम् ॥९॥

वृकीवारेणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति ।

न कालस्य प्रियः काश्चिद्द्वेष्यश्चास्य न विद्यते ॥१०॥

आयुष्ये कर्मणि दीक्षे प्रसह्य हरते जनम् ।

नाप्राप्तकालो म्रियते विद्धः शरशैतरपि ॥११॥

कुशाग्नेणापि संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति ।

श्रीषधानि न मन्त्राद्यास्त्रयन्ते मृत्युनाऽन्वितम् ॥१२॥

वत्सवत्प्राकृतं कर्म कर्तारि विन्दति ध्रुवम् ।

अव्यक्तादि व्यक्तमध्यमव्यक्तनिधनं जगत् ॥१३॥

योवनादि यथा देहे तथा देहान्तरागमः ।

नवमन्यद्यथा वस्त्रं गृह्णात्येवं शरीरकम् ॥

देही नित्यमवध्योऽयं यतः शोक तत्तरत्यजेत् ॥१४॥

मृत्यु जब आने वाला होता है तो किसी की प्रतीक्षा नहीं किया करता है कि इसने धर्म के कृत्य को कर लिया है अथवा नहीं किया है । क्षेत्र, बाजार, घर में कामकाज में व्यस्त तथा अन्य किसी में मन लगाये रहने वाले मानव को भेड़िया के बार की भीति आकर मृत्यु भठ से उठा कर चला जाता करता है । मृत्यु को न तो कोई प्राणी प्रिय है और न कोई इसका शत्रु है । आयु और कर्म के क्षीण हो जाने पर यह प्राणी का जबर्दस्ती से हरण कर लिया करता है । चाहे सैफ़ों ही शर क्यों न लग कर विद्ध हो गया हो जिसका समय नहीं

आता है वह किसी भी प्रकार से नहीं मरता ॥६॥१८॥ कुशा के अग्रभाग के स्पर्श होने मात्र से ही जिसका समय आ गया है प्रातः काल वह फिर किसी भी उपाय से जीवित नहीं रहा करता है । जिस ही मृत्यु का निश्चिन समय आ गया है वह बढ़िया-बढ़िया औषधों से तथा मन्त्र आदि अन्य उपायों से रक्षित नहीं रहा करते है ॥ १२ ॥ वत्स की भाँति प्राकृत कर्म करने वाले को भी निश्चय ही मृत्यु प्राप्त होता है । यह जगत् अव्यक्त आदि वाला, अव्यक्त मध्य वाला और अव्यक्त निघन वाला है ॥ १३ ॥ जिस प्रकार से इस शरीर में बचपन, यौवन और प्रौढ़ता तथा वृद्धता आदि अनेक अवस्थाएँ स्वयं ही आ जाया करती हैं । उसी तरह इस जीवात्मा को मृत्यु प्राप्त कर अन्य देह की प्राप्ति हुषा करती है । जैसे कोई पुगना वस्त्र त्यागकर नया वस्त्र धारण किया करता है ठीक वैसे ही शरीर के द्वारा इस पुराने शरीर को छोड़कर यह प्राणी नया शरीर प्राप्त किया करता है । कहने का तात्पर्य यह है कि मरकर आत्मा का नाश नहीं होता है केवल इस चोला का परिवर्तन होता है । यह देही धर्मान् जीवात्मा तो सर्वदा अवध्य अर्थात् मरने मारने के प्रयोग्य होता है । इसी कारण से किसी को मृत्यु पर शोक नहीं करना चाहिए ॥१४॥

६४ वानप्रस्थाश्रमः

वानप्रस्थमतीनां च धर्मं वक्ष्ये यथा शृणु ।
जटित्वमग्निहोत्रित्वं भूशय्याऽजिनधारणम् ॥१॥
वनं वासः पयोमूलनीवारफालवृत्तिता ।
प्रतिग्रहनिवृत्तिश्च त्रिः स्नानं ब्रह्मचारिता ॥२॥
देवातिथीनां पूजा च धर्मोऽयं वनवासिनः ।
गृही ह्यपत्यापत्यं च दृष्ट्वाऽरप्यं सभाश्रयेत् ॥३॥
तृतीयमायुषो भागमेकाकी वा सभायंकः ।
ग्रीष्मे पश्चतपा नित्य वर्षास्वभ्रावकाशिकः ॥४॥
आर्द्रवासाश्च हेमन्ते तपश्चोग्रं चरेद्वली ।
अपरावृत्तिमास्थाय ब्रजेद्दिशमजिह्मगः ५

पुढर ने कहा—अब मैं वान प्रस्थ वासियों के धर्म को बतलाता हूँ उसका तुम ध्वण करो। जो वन में जाकर निवास किया करते हैं उनको पालन करने के लिये बहुत-से आवश्यक धर्म होते हैं। उन्हें जटा धारण करना—निरत्य अग्नि होत्र करना—भूमि पर ही शयन करना—धर्म के वस्त्र धारण करना—वन में ही सदा निवास करना—दूध, मूल, नीवार और फल का भोजन करना—प्रतिग्रह (दान) न लेना—दिन में तीन बार स्नान करना—ग्रहचर्य व्रत का पालन करना—देवता और अतिथियों का पूजा सत्कार करना इन समस्त नियमों का पालन करना वनवासी को आवश्यक है। जो गृहस्थाश्रम में रहता है। उसको अपने पुत्र के पुत्र को देख कर अर्थात् नाती उत्पन्न हो जाने पर वन में जाकर अपना आश्रय बना लेना चाहिए ॥१॥२॥३॥ प्रपत्नी प्रायु के तीसरे भाग में अकेला अथवा अपनी भार्या के साथ रहना चाहिए। तत्पर्य यह है कि वानप्रस्थ आश्रम में भार्या के साथ भी वन में रह सकता है। शीष्म ऋतु में पाँच अग्नि तपना चाहिए और नित्य ही तपना चाहिए। वर्षा ऋतु अन्न (बादल) के नीचे अर्थात् बरसते हुए बादलों में रहना चाहिए ॥४॥ हेमन्त ऋतु में गीले वस्त्र धारण करके उग्र तपश्चर्या करनी चाहिए। अग्रश वृत्ति में स्थित होते हुए सीधे विशाखों में गमन करने वाला रहे ॥५॥

६५ धर्मशास्त्रकथनम्

मनुविष्णुर्याज्ञवल्क्यो हारीतोऽत्रियर्मोऽङ्गिराः ।

वसिष्ठदक्षसंबर्तशातातपपराशराः ॥१॥

आपस्तम्बोशनोग्यासाः कात्यायनबृहस्पती ।

गोतम शङ्खलिखितौ धर्ममेते यथाऽब्रुवन् ॥२॥

तथा वक्ष्ये समासेन भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु ।

प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥३॥

काम्यं कर्म प्रवृत्तं स्यान्ननिवृत्तं ज्ञानपूर्वकम् ।

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च समयः ॥४॥

देखना अर्थात् अपनी ही आत्मा के समान समझ लेना और समस्त प्राणी मात्र को अपनी आत्मा में देखना, तात्पर्य यह है कि सबको सम भाव से ही देखना इस प्रकार से आत्मा का यजन करने वाला स्वाराज्य को प्राप्त किया करता है। वह सदा समान स्वरूप से आत्म ज्ञान में रहता है और वेदों के ग्रन्थों में यत्न करने वाला होता है ॥६॥७॥ यह द्विजन्मा की शक्ति विशेष रूप से ब्राह्मण की ही हुमा करती है। वह वेद और शास्त्र के तत्व का ज्ञाता जिस-जिस ग्रन्थ में भी रहता है वह यहाँ पर ही रहता हुआ ब्रह्मा के समान माना जाता है। अथवा से युक्त आचारी में उपा कर्म करे और स्वाध्यायों का अर्थात् वेदों के अध्ययनों का चन्द्रवार से युक्त हस्त नक्षत्र में अथवा आचारी मास की पञ्चमी तिथि में-पौषमास की रोहिणी में-अथवा अष्टका में, जलान्त में बाहिर विधि के साथ छन्दों का उत्सर्ग करना चाहिए अर्थात् वेदों के अध्ययन की समाप्ति करे ॥८॥९॥१०॥

जलान्ते छन्दसां कुर्यादुत्सर्गं विधिवद्वहिः ।

अहं प्रेतेष्वनध्यायः शिष्यत्विगुरुबन्धुषु ॥११

उपाकर्मणि चोत्सर्गं स्वशास्त्राश्रोत्रिये तथा ।

संध्यागजितनिघटि भूकम्पोलकानिपातने ॥१२

समाप्य वेदं ह्यनिशमारण्यकमधीत्य च ।

पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहुसूतके ॥१३

ऋतुसंधिषु भुक्त्वा वा आदिकं प्रतिगृह्य च ।

पशुमण्डूकनकुलश्चाहिमार्जरशूकरैः ॥१४

कृतेऽन्तरे त्वहोरात्रं शक्रवाते तथोच्छ्रये ।

अक्रोष्टुगदं भोलूकमासवाणतुनिस्वने ॥१५

अमेध्यशवशूद्रान्त्यश्मशानपतितान्तिके ।

अशुभासु च तारासु विद्युत्स्तनितसप्तवे ॥१६

भुक्त्वाऽऽर्पाणिरम्भोन्तरर्धरात्रेऽतिमास्ते ।

पांशुवर्षे दिशां दाहे सध्यानीहारभीतिषु ॥१७

धावतः प्राणिवाधे च विशिष्ये गृहमागते ।

खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौकावृक्षादिरोहणे ॥

सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान्विदुः ॥१८॥

शिष्य ऋत्विग् और गुरु के प्रेत होने पर तीन दिन का वेदाध्ययन का अनध्याय होना चाहिए । उपाकरण में, उत्तरार्ग में, अपनी शाखा क्षेत्रिय में सन्ध्या समय गङ्गा के निर्घात में, भूकम्प और उत्का पात में वेद के अध्ययन की समाप्त कर देवे । अग्निश प्रारण्यक का अध्ययन करे । पूर्णिमा में—चतुर्दशी में, अष्टम में, राहु ग्रहण के सूतक में—ऋतुओं के सन्धिकालों में तथा श्राद्धिक भोजन करके और दन ग्रहण करके अनध्याय करना चाहिए । षु मैट्टक नकुल (न्योला) कुत्ता, सर्प बिल्ली और शूकरों के द्वारा अन्तर होने पर एक महोरात्र का अनध्याय होता है । शक्र वात में तथा उच्छ्वस में और कुत्ता, गीशङ्ग, गधा, उल्लू, माम, बाण और ऋतु की ध्वनि होने पर तात्कालिक अर्थात् उही समय में होने वाली अनध्याय होती है ॥११ १२।१३।१४।१५॥ अपरिग्रह, शूद्र, अन्त्य श्मशान और पतित के समीप में, अशुभ ताराओं में तथा विष्णुत् और स्तनित (मेघगर्जन) के संजल में तात्कालिक अनध्याय है ॥१६॥ खाकर गीले हाथों के रहने वाले का, जल के भीतर रहने पर, अर्धरात्रि में अत्यन्त वायु के चलने पर, धूलि वर्षण होने पर, दिशाओं के दाह में, सन्ध्या समय नौहार और भय में, धावन करने वाले का, प्राणि के बाध होने पर और किसी विगिष्ट पुरुष के घर में घाने पर, गधा, ऊँट के यान पर गधा हाथी, घोड़ा, नाव और वृक्ष आदि के चढ़ने पर यु संतोष कुल अनध्याय तात्कालिक हुमा करती है ॥१७ १८॥

६६—श्राद्धकल्पकथनम्

श्राद्धं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु ।

निमन्थ्य विप्रान्पूर्वेद्युः स्वागतेनापराहृतः ॥१॥

प्राच्योपवेशयेत्पीठे युग्मान्देवेभ्यः पित्र्यके ।

अयुग्मान्प्राङ्मुखान्देवे श्रीन्पित्र्ये चैकमेव वा ॥२॥

मातामहानामप्येवं तन्त्रं वा वैश्वदेविकम् ।
 पाणिप्रक्षालनं दत्त्वा विष्टरार्थं कुशानपि ॥३॥
 आवाहयेदनुज्ञातो विश्वे देवास इत्यृचा ।
 यवैरन्ववकीर्याथ भाजने सपवित्रके ॥४॥
 श नो देव्या पयः क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवांस्तथा ।
 या दिव्या इति मन्त्रेण हस्ते ह्यर्घं विनिक्षिपेत् ॥५॥
 दत्त्वोदकं गन्धमाल्यं धूपदानं प्रदीपक ।
 अपसव्यं ततः कृत्वा पितृणामग्रदक्षिणम् ॥६॥
 द्विगुणांस्तु कुशान्कृत्वा ह्य सन्तस्त्वेतवृचा पितृन् ।
 आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायन्तु वस्ततः ॥७॥
 यवार्थास्तु तिलैः कार्ष्णिः कुर्यादध्यादि पूर्ववत् ।
 दत्त्वाऽर्घ्यं सस्रवाञ्जोषान्पात्रे कृत्वा विनतः ॥८॥

पुष्कर ने कह - अब मैं आठ कला को बतलाता हूँ जो कि मुक्ति (सब तरह के सांसारिक सुखों का उपभोग करना) और मुक्ति (संसार में जन्म माण के आवागमन से छुटकारा पाकर परमात्मा के स्वरूप एवं समीप में पहुँच जाना) दोनों की प्राप्ति कमाने वाला होता है। उसका तुम अब व्यवहार करो। आठ के पहिले दिन में सुयोग्य श्रेष्ठ ब्राह्मणों को सविधि निमन्त्रण देना चाहिए। बिग दि आठ हो उस दिन में अपराह्न काल में अर्घात् दो पहर के बाद उन्हें बुलाकर ब्राह्मणों का भली भाँति स्वागत, सत्कार करना चाहिए। निमन्त्रिता ब्राह्मणों की अर्चना करके उन्हें उच्चासन पर बिठाने। दैव कार्य में मुग्ध (पूर्व संशय सयुक्त) और आठ उषादि विग्रह कार्य में प्रमुग्ध (प्रपूर्ण संशय वाले अर्घात् १-३-५ आदि) ब्राह्मणों को निमन्त्रित करना चाहिए। पूर्व की ओर मुग्न करके दैव कार्य में उन्हें बिठावे। विग्रह कार्य में तीन अपना एक ही ब्राह्मण को निमन्त्रण देवे ॥१॥२॥ इसी तरह से माता मह आदि के आठ में करे। अबवा वैश्व देविक तन्त्र को करे। हाथों को धुला कर विष्टर के निचे कुशाओं को रखे ॥१॥ आज्ञा प्राप्त के “विश्वे देवास” इत्यादि श्रुति के द्वारा आवाहन करना चाहिए। सपवित्रक पात्र में जो जो अबकीलें करके

‘शानो देव्या पयः शिस्ता यवोऽभीति’ इससे यवों को तथा “या दिव्या” इस मन्त्र से हस्त में अर्घ्यका विनिक्षेप करना चाहिए ॥४॥५॥ जल, गन्ध, माना, घूँसदान और प्रदीप ये सब देकर फिर अर्घ्य सव्य करके पितरों की प्रदक्षिणा करे ॥६॥ कुशाग्रां को दुगनी करके “ह्यशन्त स्त्वेनु” इस ऋचा से पितृगणों का आवाहन करके फिर प्राज्ञा प्राप्त करे और जब अनुज्ञात हो जावे तो “अयन्तु नः” इत्यादि का जप करना चाहिए ॥७॥ यवार्घ्य सब कार्य तिलों के द्वारा करने चाहिए और अर्घ्य—गन्ध मालादि का समर्पण सब पहिले की भाँति करना चाहिए । अर्घ्य देकर शेष सन्नवों को पात्र में विवि-विधान के माय करना चाहिए ॥८॥

पितृभ्यः स्नानमसीति न्युञ्जं पात्र करोत्यथः ।

अग्नौ करिष्य आदाय पृच्छत्यन्नं धृतप्नुनम् ॥९॥

कुरुष्वेति ह्यनुज्ञातो हृत्वाऽग्नौ पितृयज्ञवत् ।

हृतशेषं प्रदद्यात्तु भाजनेषु समाहितः ॥१०॥

यथालाभोपपन्नेषु रौप्येषु तु विशेषतः ।

दत्त्वाऽन्नं पृथिवी पात्रमिति पात्राभिमन्त्रणम् ॥११॥

कृत्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विबाङ्गुष्ठं निवेशयेत् ।

सव्याहृतिकां गायत्रीं मधु वाता इति श्रु (तृ) चम् ॥१२॥

जप्त्वा यथामुक्षं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेऽहि वाग्यताः ।

अन्नामिष्टं हविष्यं च दद्याज्जप्त्वा पवित्रकम् ॥१३॥

अन्नमादाय तृप्ताः स्य शेष चैवान्नमस्य च ।

तदन्नं विकिरेद्भूमौ दद्याद्वापः सहृत्नकृत् ॥१४॥

सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः ।

उच्छिष्टसंनिधौ पिण्डान्प्रदद्यात्पितृयज्ञवत् ॥१५॥

मातामहानामप्येवं दद्यादाचमनं ततः ।

स्वस्तिवाच्यं ततः कुर्यादक्षय्योदकमेव च ॥१६॥

“पितृभ्यः स्नानमसि” इत्यादि मन्त्र से न्युञ्ज पात्र को नीचे की ओर कर देवे । “अग्नौ करिष्ये” इसमें धृतप्नुन अन्न को लेकर पूजना चाहिए ।

“कुहव्व” — अर्घ्यान् करो—इम प्रकार से अनुज्ञात होते हुए पितृयज्ञ की तरह अग्नि में हवन करे । हवन करने से जो शेष रहे उसे पूर्ण तथा सावधान होते हुए पात्रों में रख देना चाहिए ॥१०॥ यथाशक्ति जोभी उस समय में उपपन्न पात्र हों सके उन्हें ले लेवे विशेष रूप से चांदी के पात्र होने चाहिए । घघ्न को लेकर “पृथिवी पात्रम्” इम मन्त्र से पात्र का अभिमन्त्रण करे ॥११॥ पात्र का अभिमन्त्रण करके “इदं विष्णुः” इस मन्त्र से ब्राह्मण का अगूठा घघ्न में निवेष्टित कराना चाहिए । व्याहृतिशे के साथ ग यश्री मन्त्र पोर “मधवाता” इत्यादि तीन श्रुचाओं का जाप करना चाहिए ॥१२॥ जप करने के पश्चात् मुख पूर्वक भोजन करे — ऐसा करना चाहिए । वे ब्रह्मण भी मीन रहते हुए भोजन करें । इच्छित घघ्न घोर हविष्य उन्हें देवे पवित्र जप करते हुए रहे ॥१३॥ घघ्न लेकर प्राप लोग तृप्त होगये हैं—ऐसा कहकर शेष जो घघ्न है उसको लेकर भूमि में विकीर्ण कर देवे घोर एक-एक बार जल देना चाहिए ॥१४॥ सम्पूर्ण अन्न को लेकर निलो के सहित दक्षिण दिशा की घोर मुख करते हुए ओं ब्राह्मणों का इच्छित है उनके वाम में हो पितृ यज्ञ की भांति ि एडों को देना चाहिए ॥१५॥ इसी तरह माना मह आदि (नाना आदि) को भी देवे घोर इसके उपरान्त प्रायमन करावे फिर स्वस्ति वाचन करे घोर अक्षय जल देवे ॥१६॥

दत्त्वा तु दक्षिणां शक्त्या स्वधाकारमुदाहरेत् ।
 वाच्यतामित्यनुज्ञातः स्वपितृभ्यः स्वधोच्यताम् ॥१७॥
 कुर्वन्तु स्वधेत्युक्ते भूमौ सिञ्चेत्ततो जलम् ।
 प्रीयन्तामिति वा दत्तं विश्वे देवा जल ददेत् ॥१८॥
 दातारो नोऽभिवर्धन्ता वेदाः संततिरेव च ।
 श्रद्धा च नो मा व्यगमद्वह देय च नोऽस्तिवति ॥१९॥
 इत्युक्त्वा तु प्रिया वाचं प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।
 वाजे वाज इति प्रीतपितृपूर्वं विसर्जनम् ॥२०॥
 यस्मिन्नु मयक्षाः पूर्वमर्घपात्रे निपातिताः ।
 पितृपात्रं तु कुतश्च नृत्वा विप्रान्विसर्जयेत् ॥२१॥

प्रदक्षिणमनुघ्नज्य भुक्त्वा तु पितृसेवितम् ।
 ब्रह्मचारी भवेत्तां तु रजनीं ब्राह्मणः सह ॥२२॥
 एवं प्रदक्षिण कृत्वा वृद्धो नान्दीमुखान्पितृन् ।
 यजेत दधिकर्कन्धुमिश्रान्निण्डान्यवः क्रिया ॥२३॥
 एकोद्दिष्टं देवहीनमेकाधी कपवित्रकम् ।
 आवाहनाग्नौकरणरहित ह्यपसव्यवत् ॥२४॥

इस सब कृत्य कर लेने के पश्चात् अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को दक्षिणा देने चाहिए तथा स्वधा—शब्द का उच्चारण करो । 'बोलो'—इस तरह से अनुज्ञा प्राप्त करके अपने पितृगण के लिये स्वधा बोलो ॥१७॥ करना चाहिए—स्वधा—ऐसा कहने पर फिर भूमि में जल का सिञ्चन करे । प्रीयन्ताम् अर्थात् तृप्त होइये—यह कहकर देव को और विश्वेदेवाओं को जल देवे ॥१८॥ हमारे दाता लोगों की अभिवृद्धि होवे वेद और सन्तति की वृद्धि होवे । प्राय लोगों की श्रद्धा का नाश न होवे, हमको देने के लिये आपके पास बहुत कुछ होवे ॥१९॥ इस प्रकार से प्रिय वचन कहकर प्रणाम करे "वाजे वाजे"—इत्यादि मन्त्र को पढ़कर पितरों की प्रसन्नता के माय उनका विसर्जन करना चाहिए ॥२॥ पहिले त्रिम अर्घ्यपात्र में संस्कारों को गिराया या उस पितृपात्र को उत्तान करके ब्राह्मणों को बिदा करना चाहिए ॥२१॥ प्रदक्षिणा करके कुछ दूर उनके पीछे जाकर उन्हें विसर्जित करे और फिर जो पितृगण द्वारा सेवित है उसे स्वयं खना चाहिए । उस दिन रात्रि में ब्रह्मचारी रहे और ब्राह्मणों को भी जिन्होंने श्राद्ध का भोजन किया है ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए ॥२२॥ इस प्रकार से वृद्धि में नान्दी मुख पितरों को प्रदक्षिणा करके दही—कवन्धु मिश्रित पिएडों की सबों क द्वारा क्रिया का यजन करना चाहिए ॥२३॥ एकोद्दिष्ट देव रहित एकाधै एक पवित्र वाला तथा आवाहन और अग्निकरण रहित अपसव्य बन्य होना है ॥२४॥

उपातिष्ठतामित्यक्षयस्याने पितृविसर्जने ।

अभिरम्पतामिति वदेद्द्रुमुन्नेऽभिरताः स्म ह ॥२५॥

गन्धोदकतिलैर्गुक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् ।
 अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥२६॥
 ये समाना इति द्वाभ्यां शेषं पूर्ववदाचरेत् ।
 एतत्सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया सह ॥२७॥
 अर्वाक्सपिण्डीकरणां यस्य संवत्सराद्भवेत् ।
 तस्यप्यान्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजे ॥२८॥
 मृताहनि च कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सर ।
 प्रतिसंवत्सरं कार्यं श्राद्धं वै मासिकान्नवत् ॥२९॥
 हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम् ॥३०॥
 यद्ददाति गयास्थश्च सर्वमानन्त्यमुच्यते ।
 तथा वर्षात्रयोदश्या मघासु च न संशयः ॥३१॥
 कन्यां प्रजां बन्दिनश्च पशून्मुख्यान्सुतानपि ।
 घृतं कृपि च वाणिज्यं द्विशर्फकशफं तथा ॥३२॥
 ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रान्स्वर्णरूप्ये सकुण्डके ।
 शार्तिर्गृष्ट्यं सर्वकामान्प्राप्नोति श्राद्धघटः सदा ॥३३॥

“उपतिष्ठताम्”—इसको ब्रक्ष्य स्थान में और पितृ विसर्जन में “अभि-
 रम्यताम्”—यह बहे । उन ब्रह्मणों को “अभिरताः स्म”—यह कहना चाहिए
 ॥२५॥ गन्धोदन और तिलों से युक्त चार पात्रों को करे । अर्घ के लिये पितृ
 पात्रों में प्रेत पात्र का प्रसेचन करना चाहिए ॥ २६ ॥ ‘ये समाना’ इत्यादि
 दो मन्त्रों से करे और शेष समस्त कार्य पूर्व की ही भाँति करे । यह सपिण्डी
 करण स्त्री के साथ एकोद्दिष्ट है ॥२७॥ जिसका सपिण्डीकरण है वह संवत्सर
 से अर्वाक् होता है अर्थात् वर्ष से पूर्व ही होता है । स्त्रियों को भी जल के कुम्भ
 के सहित अन्न देना चाहिए और संवत्सर तक ब्राह्मण को देवे ॥२८॥ मृत्यु
 के दिन में वर्ष भर तक हर एक मास में यह करे और मासिक श्राद्ध की भाँति
 प्रति वर्ष भी वसी त्रिपि को वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए ॥२९॥ मास में
 हविष्यान्न के द्वारा पितृणां को सतृप्त करे और पायस के द्वारा वार्षिक श्राद्ध
 में मृति करे ॥३०॥ गया में स्थित होकर अर्थात् जाकर जो भी श्राद्ध में दिया

जाना है वह अनन्तता को प्राप्त होता है । वर्षा की त्रयोदशी में और मघा में करने से निश्चय ही आनन्द्य होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३१॥
श्राद्ध देने वाला पुरुष कन्या-पुत्रा-वन्दीगण-पशु-मुरध मुन-धृन-कृषि-वाणिज्य-दो एक और एक मुर वाले पशु-ब्रह्मवर्चसी पुत्र-मुग्धा-चाँदी कुप्य सहित-अपनी जाति की श्रेष्ठता और समस्त मनोरथों का लाभ किया करता है ॥३२-३३॥

प्रतिपत्प्रभृतिष्वेतान्वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ।

शस्त्रेण तु हता ये वै तेषां तत्र प्रदीयते ॥३४

स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शीर्यं क्षेत्रं बलं तथा ।

पुत्रश्चैष्टयं सप्तोभाग्यमपत्यं मुख्यतां सुतान् ॥३५

प्रवृत्तचक्रतां पुत्रान्वाणिज्यं प्रभुतां तथा ।

अरोगित्वं यशो वीतशोकतां परमां गतिम् ॥३६

धनं विद्यां भियक्सिद्धिं रूप्यं गाश्चाप्यजाविकम् ।

अश्वानायुश्च विधिवधः श्राद्धं सप्रयच्छति ॥३७

कृत्तिकादिभरष्यन्ते स कामान्पुण्यादिमान् ।

वसुरुद्रादितिमृताः पितरः श्राद्धदेवताः ॥३८

प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितृञ्श्राद्धेन तपिताः ।

प्रायुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ॥३९

प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः ॥४०

प्रतिपदा आदि में इनका त्याग कर दे । जो शस्त्र में हन हुए हैं उनका श्राद्ध चतुर्दशी को दिया जाता है । श्राद्ध करने का बहुत अधिक फल होता है । हमके करने से स्वर्ग—अपत्य (सन्तान) और—मूरता-क्षेत्र-बल-अष्ट पुत्र-मोभाग्य वाली मन्त्रि-प्रमुखता-बहुन से पुत्र-प्रवृत्तचक्रता-वाणिज्य-स्वामित्व रोग हीनता-यश-शोक का अभाव-परमगति धन-विद्या-भियक् होने की मिट्टि-गौ-अजाविक-अश्व-प्रायु और विधि वध की प्राप्ति दृष्टा करती है । ये सभी वस्तुएँ श्राद्ध दे देना है ॥३४-३५ ३६-३७॥ कृत्तिका से आदि भरणी के अन्त तक में कामनाओं का प्राप्त करता है । वसु रुद्र अर्जित पुत्र श्राद्ध देवता

पितर हैं । पितृ श्राद्ध से तृप्ति होकर प्रसन्न होते और मनुष्यों को आयु-प्रजा-धन-विद्या-स्वर्ग-मोक्ष और सुख दिया करते हैं । पितामह प्रसन्न होकर मनुष्यों को राज्य भी देते हैं । ३८-३९-४०॥

६७ — नाना धर्माः

ध्येय सृष्टिर्माः स्थितो योऽसौ हृदये दीपवत्प्रभुः ।
अनन्यविषयं कृत्वा मनो बुद्धिः स्मृतीन्द्रियम् ॥१॥
श्राद्धं तु ध्यायिते देयं गव्यं दधि घृतं पयः ।
प्रियंगवो मसूराश्च वार्ताकुः कोद्रवो न हि ॥२॥
संहिकेयो यदा सूर्यं ग्रसते पर्वसधिषु ।
हस्तिच्छाया तु सा ज्ञेया श्राद्धदानादिकेऽक्षया ॥३॥
पित्रे (प्ये) चैव यदा सोमो हसे चैव करे स्थिते ।
निधिवैवस्वती नाम सा छाया कुञ्जरस्य तु ॥४॥
अग्नीकरणेन तु न दद्याद्देवदेविके ।
अन्यभावे तु विप्रस्य हस्ते दद्यात्तु दक्षिणे ॥५॥
न स्त्री दुष्प्राप्तिं जारेण न विप्रो वेदकर्मणा ।
बलात्कारोपभुक्ता चेद्देवं रिहस्तगताऽपि वा ॥६॥
नन्यजेद्दूषितां नारीमृनुकालेन शुध्यति ।
य आत्मव्यतिरेकेण द्वितीयं नात्र पश्यति ॥७॥
ग्रहभूतः स एवेह योगी चाऽऽमरतोऽमलः ।
विषयेन्द्रियसंयोगात्केचिद्योगं वदन्ति वै ॥८॥

एव नाना धर्मों के विषय में बतलाया जाता है । श्री अग्निदेव ने कहा जो हृदय में दीपक की भाँति प्रभु आत्मा के स्वरूप में स्थित है उसी का ध्यान करना चाहिए और मन को तथा बुद्धि को एवं स्मृतीन्द्रियों को अनन्य विषय मुक्त करके धर्मात् गमस्त अन्य सांसारिक विषयों से हटाकर केवल एक ही प्रभु की ध्यान करना चाहिए ॥१॥ श्राद्ध जो भी दिया जाता है वह दशाधी के नियम ही दिया जाना चाहिए । श्राद्ध में अन्न-दधि-घृत और

दूध देना चाहिए । प्रियङ्गुव-मसूर-वार्ताकु और कोदव नहीं देना चाहिए ॥२॥
 निह राशि पर स्थित सूर्य जब पर्व रुन्धियों में ग्रसित होता है उसे हस्तिच्छाया
 कहते हैं । यह श्राद्ध दानादि में अक्षया मानी गई है ॥३॥ पितृ पक्ष में जब कर
 स्थित सूर्य में गोम हो और वैश्ववनी तिथि हो तो वह कुज्जर छाया होती है
 ॥४॥ वैश्वदेविक में अक्षयकृष्ण दोष नहीं देना चाहिए । अग्नि के अभाव में
 ब्राह्मण के दाहिने हाथ में देना चाहिए ॥५॥ स्त्री जाग के द्वारा दूषित नहीं
 होती है तथा विप्र वेद कर्म से कभी दूषित नहीं होता है । यदि बलात्कार से स्त्री
 का उपभोग किया गया हो अथवा किसी वैरी के हाथ में स्त्री पड गई हो तो
 उस दूषित स्त्री का त्याग कर देवे । जब अनु काल उसको हो जावे तो फिर
 गुद्ध हो आया करती है । जो अपने अपने अतिथि दूरे को नहीं देखना है
 वह इन संसार में ब्रह्मभूत अर्थात् ब्रह्म के स्वरूप के समान योगी-प्राप्तमरत और
 मन रहित होता है । कुछ विद्वान् विषयेन्द्रिय के संयोग में योग को कहते
 हैं ॥६-७-८॥

अधर्मो धर्मबुद्ध्या तु गृहीतस्तैरपण्डितैः ।
 आत्मनो मनसश्चैव संयोगं च तथाऽपरे ॥६॥
 वृत्तिहीन मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि ।
 एकीकृत्य विमुच्येत बन्धाद्योगोऽयमुत्तमः ॥१०॥
 कृदुम्वैः पञ्चभिर्ग्रामैः पठस्तत्र महत्तरः ।
 देवासुरमनुष्यैर्वा स जेतुं नैव शक्यते ॥११॥
 बहिर्मुखानि (णि) सर्वाणि कृत्वा चाभिमुखानि वै ।
 मनस्येवेन्द्रियाग्रामं मनश्चाऽऽत्मनि योजयेत् ॥१२॥
 सर्वभावावि नेमुक्तं क्षेत्रज्ञं ब्रह्मणि न्यसेत् ।
 एतज्ज्ञानं च ध्यानं च शेषोऽन्यो ग्रन्थविस्तरः ॥१३॥
 यन्नाति सर्वलोकस्य तदस्तीति विरुध्यते ।
 कथ्यमानं तथाऽन्यस्य हृदये नावतिष्ठते ॥१४॥
 स्वसंवेद्यं हि तद्ब्रह्म कूमाः स्त्रीमुखं यथा ।
 अयं गी नैव जानाति जात्यन्धो हि गृहं यथा ॥१५॥

संन्यसन्त द्विजं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति भास्करः ।

एष मे मण्डल भित्त्वा पर ब्रह्माधिगच्छति ॥१६॥

जो पण्डित नहीं है उनके द्वारा यह अधर्म भी धर्म की बुद्धि से ग्रहण किया गया है । दूसरे लोग आत्मा और मन के संयोग को कहते हैं ॥१६॥ वृत्ति हीन मन को करके क्षेत्रज्ञ को परमात्मा में एक करके बन्धन विमुक्त होना चाहिए । यह उत्तम योग होता है ॥१७॥ पाँच कुटुम्बियों से छटा अधिक बढ़ा ग्राम होता है । वह देव और असुरों के द्वारा भी जीता नहीं जा सकता है ॥ ११ ॥ जो इन्द्रियाँ बहिर्मुख होती हैं अर्थात् बाहिर सांसारिक विषयों के ग्रहण करने को जिन इन्द्रियों की प्रवृत्ति रहा करती है उन समस्त इन्द्रियों को अभिमुख अर्थात् अन्तर्मुख कर लेने अर्थात् मन में ही इन्द्रियों के समूह को लगा देवे और फिर उस मन को आत्मा में योजित कर देना चाहिए ॥१२॥ सब प्रकार के भावों से छुटकाग पाये हुए क्षेत्रज्ञ को ब्रह्म में न्यस्त कर देना चाहिए यह इतना ही ज्ञान है और यही ध्यान बताया गया है बाकी अन्य सब बातें तो केवल ग्रन्थों का फैलाव मात्र ही होता है । सार की बात तो वास्तव में इतनी ही होती है ॥ १३ ॥ जो समस्त लोक का नहीं है अर्थात् जिसका सब लोक वाले अनुभव नहीं करते हैं यदि वह है—ऐसा कहा भी जाता है तो विरुद्ध सा प्रतीत होता है । अन्य के विषय में कथन किया भी जावे तो वह किसी के भी हृदय में स्थान नहीं प्राप्त किया करता है ॥ १४ ॥ वह ब्रह्म तो अपने भावों के द्वारा ही अनुभव में लाने के योग्य वस्तु है जिस प्रकार से कुमारी स्त्री के मुख का स्पर्श ही अनुभव करती है । तात्पर्य यह है कि यह कहने की वस्तु नहीं है और न इसे बच्चों से कोई ठीक-ठीक कह ही सकता है । जो योगी नहीं है उसे तो इसका ज्ञान ही नहीं होता है जिन तरह से जो जन्म से ही ग्रन्था है उस घर का ज्ञान नहीं हो सकता है क्योंकि उसे कभी घर देखकर उसे जानने का अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ है ॥ १५ ॥ संन्यसन्त ब्राह्मण को देखकर भूयं अपने स्थान से डिगने लगता है । उसे भय हो जाता है कि यह मेरे मण्डल का भेदन करके परब्रह्म की प्राप्ति करेगा ॥१६॥

उपवासव्रतं चैव स्नानं तीर्थं फलं तपः ।

द्विजसंपादनं च व्रतं संपन्नं तस्य तत्फलम् ॥१७॥

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः ।

सावित्र्यास्तु परं नास्ति पावनं परमं स्मृतम् ॥१८॥

पूर्वं स्त्रियः सुरं भुङ्क्ताः सोमगन्धर्ववन्निभिः ।

भुञ्जते मानुषा पञ्चान्नं ता दुष्यन्ति केनचित् ॥१९॥

असर्वेणैव यो गर्भं स्त्रीणां योनीं निषिच्यते ।

अशुद्धा तु भवेन्नारी यावच्छुध्य न मुञ्चति ॥२०॥

निःसृते तु ततः शल्ये रजसा शुष्यते ततः ।

ध्यानेन सदृशं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम् ॥२१॥

श्वपाकेनापि भुञ्जानो ध्यानेन हि विमुष्यति ।

आत्मा ध्याता मनो ध्यानं ध्येयो विष्णुः फलं हरिः ॥२२॥

जिस ब्राह्मण ने अपने कर्त्तव्य कर्म का पूर्ण पालन किया है उसने उप-
वास—व्रत—स्नान—तीर्थफल—तप इन सभी के फल की प्राप्ति करली है । एकाक्षर
धर्मात् प्रणव परमब्रह्म है और प्राणायाम परम तप होता है तथा ब्रह्मण के
निये सावित्री से अधिक परम पावन अन्य कुछ भी नहीं है । गाथी मन्त्र
पवित्र मनाने में सर्वोत्तम एवं सर्व श्रेष्ठमणि माना गया है ॥१७-१८॥ पहिले
स्त्रियों का उपभोग देवों द्वारा किया गया है जिनमें सोम—गन्धर्व और बह्नि हैं ।
इसके पश्चात् मनुष्य स्त्रियों को भोगते हैं । अतएव ये दूषित किसी के द्वारा भी
नहीं दूषित करती हैं ॥१९॥ यदि किसी असवर्ण पुत्र के द्वारा स्त्रियों को योनि
में गर्भ डाल दिया जावे तो वह स्त्री अशुद्ध हो जाती है किन्तु उसकी अशुद्धि
तभी तक रहती है जब तक कि वह उदर स्थित गर्भ को त्यागती नहीं है
॥२०॥ जब उसके गर्भ से बालक निकल जावे तो फिर वह जब प्रजोधर्म हो
तब शुद्ध हो जाती है । ध्यान से अधिक पाप कर्मों का अथवा कोई भी शोधन
करने वाला कार्य नहीं है ॥२१॥ श्वपाक (मेहतर) के साथ भी नाने वाला
मनुष्य ध्यान करने में शुद्ध हो जाता है । आत्मा तो ध्याता धर्मात् ध्यान करने

वाला है, मन ही ध्यान होता है, ध्यान करने के योग्य भगवान् विष्णु हैं और इसका फल हरि हैं ॥२२॥

अक्षयय यतिः श्राद्धे पङ्क्तिपावनपावनः ।

आरूढो नैष्ठिक धर्मं यस्तु प्रच्यवते द्विजः ॥२३॥

प्रायश्चित्तं न पश्यामि येन शुध्येत्स आत्महा ।

ये च प्रव्रजिताः पत्न्यां या चर्पां बीजसंततिः ॥२४॥

विदुरा नाम चण्डाला जायन्ते नात्र संशयः ।

शतिको म्रियते गृध्रः श्वासी द्वादशिकस्तथा ॥२५॥

चापो विंशतिवर्षाणि शूकरो दशभिस्तथा ।

अपुष्पो विफलो वृक्षो जायते कण्टकावृतः ॥२६॥

ततो दावाग्निदग्धस्तु स्थाणुर्भवति सानुगः ।

ततो वर्षशतान्यष्टौ द्वे च तिष्ठत्यचेतनः ॥२७॥

पूर्णे वर्षसहस्रे तु जायते ब्रह्मराक्षसः ।

प्लवेन लभते मोक्षं कुलस्योत्सादनेन वा ॥

योगेनेव निषेवेत नात्म्य मन्त्रमघापहम् ॥२८॥

श्राद्ध में यति अक्षय के लिये होता है क्योंकि वह पङ्क्ति पावन होता है । जो द्विज नैष्ठिक धर्म पर तो आरूढ़ हो किन्तु फिर वह उस धर्म से च्युत हो जावे तो उसका बड़ा भारी पाप होता है । ऐसे आत्म हत्यारे का कोई भी प्रायश्चित्त ही नहीं होता है जिसके करने पर वह नैष्ठिक धर्म के पतन पाप से छुटकारा पा सके और जो प्रव्रजित होगये हैं अर्थात् संन्यास ग्रहण कर चुके हैं और फिर पत्नी में जो बीज सन्तति उत्पन्न कर देते हैं वे विदुर नाम वाले चाण्डाल ही उत्पन्न हुमा करते हैं । इसमें कुछ भी संशय नहीं है । शतिक गृध्र मरता है अर्थात् सौ वर्ष तक गृध्र होकर मृत्यु को प्राप्त होता है, बारह वर्ष तक कुत्ता होकर मरता है । चाप बीस वर्ष तक और शूकर दश वर्ष तक रह कर मरता है । जो वृक्ष बिना फूल वाला है और बिना फलों वाला है केवल कटे ही उसमें हों—ऐसा वृक्ष बनकर उत्पन्न होता है अर्थात् ऊपर कही हुई योगियों में जन्म लेकर अन्त में वह कण्टक वाला जड़ वृक्ष होना है । वह भी

दावाग्नि से जनकर अनुगों के सहित स्थाणु (हूँठ) हो जाता है । इस तरह एक सहस्र वर्ष तक वह इस अचेतन दशा में जीवन बिताया करता है । फिर जब पूरे एक हजार वर्ष हो जाते हैं तब फिर अन्त में ब्रह्म राक्षस होता है । जब प्लव होता है तभी मोक्ष प्राप्त करना है अथवा कुल के उत्साधन होने से छुटकारा होता है । अतः योग का सेवन करना चाहिए । इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी पापों का हरण करने वाला नहीं है ॥२३ के २८॥

६८ — वर्णधर्मादिकथनम्

वेदस्मार्तं प्रवक्ष्यामि धर्मं वं पञ्चधा स्मृतम् ।
 वर्णत्वमेकमाश्रित्य योऽधिकारः प्रवर्तते ॥१
 वर्णधर्मः स विज्ञेयो यथोपनयनं त्रिषु ।
 यस्त्वाश्रमं समाश्रित्य पदार्थः सविधीयते ॥२
 उक्त आश्रमधर्मस्तु भिन्नपिण्डादिको यथा ।
 उभयेन निमित्तेन यो विधिः संप्रवर्तते ॥३
 नैमित्तिकः स विज्ञेय प्रायश्चित्ताविधिर्यथा ।
 ब्रह्मचारी गृही वाऽपि वानप्रस्थो यतिर्नृप ॥४
 उक्त आश्रमधर्मस्तु धर्मः स्यात्पञ्चधाऽपरः ।
 पाङ्गुण्यस्याभिधाने यो दृष्टार्थः न उदाहृतः ॥५
 स त्रैधा मन्त्रयोगाद्यदृष्टार्थ इति मानवाः ।
 उभयार्थो व्यवहारो दण्डधारणमेव च ॥६
 तुल्यार्यानां विकल्पः स्यादागमूलः प्रकीर्तितः ।
 वेदे तु विहितो धर्मः स्मृतौ तादृश एव च ॥७
 अनुवाद स्मृतिः सूते कार्यायमिति मानवाः ।
 गुणार्थः परिसंस्कार्यो वाऽनुवादो विज्ञेयतः ॥८

यह वर्ण धर्म आदि के विषय में बताया जाता है । पुण्डरी ने कहा—
 यह मैं बौद्ध और स्मार्त धर्म को बतलाऊँगा जो कि पाँच प्रकार का बताया गया है । एक वर्ण का आश्रम लेकर जो अधिकार प्रवृत्त होता है वह वर्ण धर्म

जानना चाहिए । जिस प्रकार से तीन दण्डों में उपनयन मंस्वार होता है । जो किसी भी आश्रम का आश्रय ग्रहण करके जिस पदार्थ का विधान किया जाता है वह आश्रम कर्म कहा गया है जिस प्रकार से मित्र विष्ट आदि होता है । वरुण और आश्रम दोनों निमित्तों से जिस विधि की प्रवृत्ति होती है वह नैमित्तिक धर्म कहा जाता है । जिस तरह प्रायश्चित्त की विधि होती है । हे नृप ! ब्रह्मचारी-गृही-वानप्रस्थ और यति ये चार आश्रम हैं ॥१-२-३-४॥ इन प्रकार से आश्रमों का धर्म तो बता दिया गया है अब दूसरा पाँच प्रकार का धर्म होता है उसे कहते हैं । पाङ्गुण्य के अभिधान में जो दृष्टायं है वह उदाहृत कर दिया गया है ॥५॥ वह मन्त्रयागादि दृष्टायं इस प्रकार से तीन प्रकार का होता है । ये मानव है । जो उभयार्थ है वह व्यवहार और दण्ड धारण ही है ॥६॥ जो तुल्यार्थ है उनका विकल्प होता है और वह याग मूल वाला कहा गया है वेद में धर्म की विदित किया गया है और स्मृति में वैसा ही होता है ॥७॥ अनुवाद को ही स्मृति कहते हैं अर्थात् जो वेद ने धर्म का विधान बताया है उसी का लौकिक संस्कृत में अनुवाद स्मृतियों ने किया है । सूत के विषय में कार्य के लिये है यह मानव है । गुणार्थ अथवा परिसंख्या के लिये विशेष रूप से अनुवाद किया गया है ॥८॥

विशेषदृष्ट एवासी फलार्थ इति मानवाः ।

स्यादष्टचत्वारिंशद्भिः संस्कारैर्ब्रह्मलोकगः ॥६॥

गर्भाधान पुंसवनं सीमन्तोन्नयन ततः ।

जातकर्म नाम कृतिरन्नप्राशनचूडकम् ॥१०॥

संस्कारश्चोपनयन वेदव्रतचतुष्टयम् ।

स्नानं स्वधर्मचारिण्याः योगः स्याद्यज्ञपञ्चकम् ॥११॥

देवयज्ञः पितृयज्ञो मनुष्यभूतयज्ञकौ ।

ब्रह्मयज्ञः सप्त पाकयज्ञसंस्थाः पुरोष्टकाः ॥१२॥

पार्वणश्राद्धं श्रावण्याग्रहायणी च चैत्र्यपि ।

आश्वयुजी सप्त हविर्यज्ञसंस्थाः स्मृताः ॥१३॥

अग्न्याधेयमग्निहोत्रं दर्शः स्यात्पौर्णमासकः ।

चातुर्मास्याग्रहायणेष्टिर्निरुद्धः पशुवन्धकः ॥१४

मनु आदि कहते हैं कि यह विशेष दृष्ट हो फलार्थ है । अब चालीस संस्कारों के द्वारा ब्रह्मलोक में गमन करने वाला है ॥६॥ उन संस्कारों को बतलाया जाता है—गर्भाधान—पुंसवन—सीमन्तोन्नयन—जात कर्म—नामकरण—अन्न प्राशन—चूड़ाकर्म—उपनयन—वेदारम्भ—समापवर्त्तन—गार्हस्थ्य अर्थात् अपनी धर्म-चारिणी पत्नी के साथ योग करना—(विवाह) इसके पश्चात् पञ्चयज्ञ होते हैं—देवयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्य यज्ञ, भूत यज्ञ और ब्रह्मयज्ञ—सात पाक यज्ञ संस्था हैं—पुरोष्ठक, पार्वण आद्य, यावली आग्रहायणी—चैत्री, आश्व पुजी । इनके पश्चात् सात हवियज्ञ संस्था बताई गई हैं ॥६ से १३॥ अग्न्याधेय—अग्नि होत्र—दर्श—पौर्णमास—चतुर्मास्य—आग्रहायणेष्टि—निरुद्ध—पशुवन्धक ॥१४॥

सोत्रामणि सप्तसोमसंस्थाऽग्निष्टोम आदितः ।

अत्यग्निष्टोम उध्वयश्च षोडशी वाजपेयकः ॥१५

अतिरात्रोऽथाप्तोर्यामो ह्यष्टौ चाऽऽमगुणास्ततः ।

दया क्षमाऽनसूया च अनायासोऽथ मङ्गलम् ॥१६

अकार्पण्यास्पृहांशौचं यस्यैते स पर व्रजेत् ।

प्रचारे मथुने चैव प्रस्नावे दन्तधावने ॥१७

स्नानभोजनकाले च पटमु मौन समाचरेत् ।

पुनर्दानं पृथक्पाक सामिष पयसाऽन्वितम् ॥१८

दन्तच्छेदनमुष्णं च सप्त शत्रुषु व्रजयेत् ।

स्नात्वा पुष्पं न गृह्णीयाद्देवायोग्यं तदीरितम् ॥१९

अन्यगोत्रोऽप्यसंवद्धः प्रेतरयाग्निं ददाति यः ।

पिण्डंचोदक दानं च स दशार्हं समापयेत् ॥२०

उदकं च तृणं भस्म द्वारं पन्थास्तथैव च ।

एभिरन्तरितं कृत्वा पङ्क्तिदोषो न विद्यते ॥२१

पञ्च प्राणाहुतीर्दद्यादेनामाङ्ग द्योगतः ॥२२

अग्निष्टोम आदि से सौश्रामणि सात सोम संस्थाये हैं । अत्यग्निष्टोम-उक्थ-पोडशी-वाजपेयक-प्रतिरात्र-ग्रास-याम । इसके अनन्तर फिर षाठ अक्षुण्य गुण होते हैं । उनके नाम बताये जाते हैं—दया, क्षमा, अनसूया (किसी की निन्दा या बुराई न करना) अनायास (अधिक श्रम न करना) मङ्गल-अकार्पण्य (अत्यन्त कौजूसी न करना—अस्पृहा और शौच । जिसके अन्दर ये गुण होते हैं वह परमगति को प्राप्त होता है । प्रचार में—मैथुन के समय में—प्रस्राव करने में—दांतुन करने के समय में—स्नान में—भोजन करने के समय में इन छह कर्मों के करने में मौन रहना चाहिए । पुनर्दान-पृथक्पाक सामिप और पथ से अन्वित-दन्त छेदन-उष्ण ये सात शस्त्र-ग्रों के विषय में वर्जित करने चाहिए । स्नान करके पुष्पो का ग्रहण न करे । वह देवता के अयोग्य कहा गया है । जो अन्य गोत्र का हो और कोई सम्बन्ध न रखता हो वह प्रेत को अग्नि देवे तो उसे पिएड और जलदान दस दिन में समाप्त कर देना चाहिए । जल-तृण-भक्ष-द्वार-पण्या इनसे अन्तरित कर देने पर पंक्ति दोष नहीं रहा करता है । अनामांगुष्ठयोग से पाँच प्राणाहुतियाँ देनी चाहिए ॥१४ से २२॥

६६—प्रायश्चित्तानि

एतत्प्रभृतिपापानां प्रायश्चित्तं वदामि ते ।
 ब्रह्महा द्वादशाब्दानि कुटीं कृत्वा वने वसेत् ॥१
 भिक्षेताऽऽत्मविमुद्धर्षा कृत्वा श्वशिरोध्वजम् ।
 प्रास्थेदात्मानमग्नौ वा समिद्धोत्थिरवाविशराः ॥२
 यजेत चाऽश्वमेधेन स्वजिता गोसवेन वा ।
 जग्न्वाऽन्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत् ॥३
 सर्वस्वं वा ओदनिदे ब्राह्मणायोपपादयेत् ।
 अन्तरेतैर्व्यपोहन्ति महापातकिनो मलम् ॥४
 उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान्पिबेत् ।
 कृतवापो वसग्दोष्टे चर्मणा तेन संवृतः ॥५

चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलक्षणं मितम् ।
 गोमूत्रेण चरेत्स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः ॥६॥
 दिवाऽनुगच्छेद्गार्श्वं व तिष्ठन्नूर्ध्वं रजः पिबेत् ।
 वृषभकादश गास्तु दद्याद्विचरितव्रतः ॥७॥
 अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्म्यो निवेदयेत् ।
 पादमेकं चरेद्बोधे द्वौ पादौ बन्धने चरेत् ॥८॥
 योजने पादहीनं स्याच्चरेत्सर्चं निपातने ।
 कान्तारेष्वथ दुर्गेषु विपमेषु भयेषु च ॥९॥
 यदि तत्र विपत्तिः स्यादेकपादो विधीयते ।
 घण्टाभरणदोषेण तथैवाधं विनिर्दिशेत् ॥१०॥

पुष्कर ने कहा—जो ये बहुत से पाप हुआ करते हैं उनके प्रायश्चित्त
 अब मैं बतलाता हूँ उन्हें सुनो—जो ब्राह्मण हो अर्थात् जिसने किसी ब्राह्मण
 का हनन किया हो उसे बारह वर्ष तक वन में कुटी बनाकर निवास करना
 चाहिए ॥१॥ शव का शिरोध्वज सपाकर आत्मा की विशुद्धि के लिए भिक्षा
 करनी चाहिए । अपने आप को प्रास्य करे अथवा अवाक् शिर वाला होकर
 तीन बार अग्नि में समिद्ध करना चाहिए ॥२॥ अथवा अश्वमेध के द्वारा
 यजन करे या स्वज्ञित गोसवन के द्वारा यजन करना चाहिए । अथवा अन्य
 तम अर्थान् चारों वेदों में से किसी भी एक का जाप (पाठ) करते हुए सो
 भोजन तक जाना चाहिए । चार कोम का एक भोजन होता है ॥ ३ ॥ किम्बा
 हिमो भी वेद के ज्ञाता ब्राह्मण के लिये अपना सर्वस्व (सभी कुछ) उपपादन
 कर देवे । इन व्रत-नियमों का पालन करने से महान् पातक करने वाले भी
 मनुष्य पाप के मल को दूर कर दिया करते हैं ॥ ४ ॥ जो उपपातक से
 संयुक्त हो और गो का हनन करने वाला हो उसे एक मास तक घनों का पान
 करना चाहिए । कृतवाप होकर उस चर्म से संयुक्त होते हुए गोष्ठ में ही वास
 करना चाहिए । ॥५॥ चौथे काल में मित बिना धार और लवण का पदार्थ
 खावे । दो मास तक नियत इन्द्रियों वाला होकर गो मूत्र से ही स्नान करना
 चाहिए ॥६॥ दिन में गायों के पीछे जाना चाहिए और ऊपरी भाग पर स्थित

होते हुए रज का पान करे । विचरित व्रत वाला होकर वृषभ और एकादश गौओं का दान करना चाहिए ॥७॥ अदिद्यमान होने पर वेद के ज्ञाताओं को सर्वस्व निवेदन कर देना चाहिए । एक पाद रोध में चरण करे और दो पाद बन्धन में चले । योजन मे याद हीन चरण करे । निपातन में चरण करे । जगलों में दुर्गों में—विषम स्थलों में—भयद स्थानों में चरण करे ॥ ८ ॥ ॥९॥ यदि वहा पर विपत्ति हो तो एक पाद का विधान किया जाता है । घण्टाभरण दोष से उसी प्रकार से आधे का विनिर्देश करे ॥१०॥

दमने दामने रोधे शकटस्य-नियोजने ।

स्तम्भशृङ्खलपाशेषु मृते पादोनमाचरेत् ॥११

शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे च लाङ्गूलच्छेदने तथा ।

यावकं तु पिबेत्तावद्यावत्सुस्था तु गोर्भंगेत्-॥१२

गोमती च जपेद्विद्यां गोस्तुतिं गोमतीं स्मरेत् ।

एका चेद्वह्नुभिर्देवाद्यत्र व्यापादिता भवेत् ॥१३

पादं पादं तु हत्याया श्वरेयुस्ते पृथक्पृथक् ।

उपकारे क्रियमाणे विपत्तौ नास्ति पातकम् ॥१४

एतदेव व्रतं कुर्यु रूपपातकिनस्तथा ।

अवकीर्णं च शुद्धघृतं चान्द्रायणमथापि वा ॥१५

अवकीर्णं तु कालेन गर्दभेन-चतुष्पथे ।

पाकयज्ञविधानेन यजेत निऋतिं निशि ॥१६

कृत्वाऽग्निं विधिवद्धीमानन्ततस्तु समित्यृचा ।

चन्द्रेन्द्रगुरुवह्नीनां जुहुयात्सपिपाऽऽहुतिम् ॥१७

अथ वा गर्दभं चर्मं वसित्वाऽब्दं चरेन्महीम् ।

हत्वा गर्भंमविज्ञातं ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥१८

सुरां पीत्वा द्विजो मोदादग्निवर्णं सुरां पिबेत् ।

गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिबेदुदकमेव वा ॥१९

सुवर्णंस्तंयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु ।

स्वकर्मं स्थापयन्प्रूयान्मां भवाननुशास्त्विति ॥२०

७० सर्वपापप्रायश्चित्तानि

परदारपरद्रव्यजीवहिंसादिके यदा ।
 प्रवर्तते नृणां चित्त प्रायश्चित्त स्तुतिस्तदा ॥१॥
 विष्णवे विष्णवे नित्यं विष्णवे नमः ।
 नमामि विष्णुं चित्तस्थमहंकारगतं हरिम् ॥२॥
 चित्तस्थमीशमव्यक्तमनन्तमपराजितम् ।
 विष्णुमीड्यमशेषेण ह्यनादिनिधनं विभुम् ॥३॥
 विष्णुं श्रित्तगतो यन्मे विष्णुर्बुद्धिगतश्च यत् ।
 यच्चाहंकारगो विष्णुर्यद्विष्णुर्मयि सस्थितः ॥४॥
 करोति कर्मभूतोऽसौ स्थावरस्य चरस्य च ।
 तत्पापं नाशमायातु तस्मिन्नेव हि चिन्तिते ॥५॥
 व्यातो हरति यत्पापं स्वप्ने दृष्टस्तु भावनात् ।
 तमुपेन्द्रमहं विष्णुं प्रणतातिहरं हरिम् ॥६॥
 जगत्यस्मिन्निराधारे मज्जमाने तमस्यधः ।
 हस्तावलम्बनं विष्णुं प्रणमामि परात्परम् ॥७॥
 सर्वेश्वरेश्वर विभो परमात्मन्नधोक्षज ।
 हृषीकेश हृषीकेश हृषीकेश नमोऽस्तु ते ॥८॥

अब समस्त प्रकार के पापों के प्रायश्चित्तों के विषय में बतलाते हैं ।
 पुष्कर ने कहा— पराई स्त्री, पराया धन और जीव-हिंसा आदि के पाप जब हो
 जावें तो मनुष्यों के चित्त की शुद्धि का प्रायश्चित्त स्तुति होता है ॥१॥ “विष्णवे
 विष्णवे विष्णवे नित्यं नमः”—यह कहे अर्थात् भगवान् विष्णु के लिए मेरा
 नित्य ही नमस्कार है । चित्त में स्थित विष्णु को मैं नमस्कार करता हूँ और
 अहङ्कार में रहने वाले हरि को प्रणाम करता हूँ । चित्त में स्थित ईश को जो
 अव्यक्त हैं, अनन्त हैं और अपराजित हैं उनको मेरा नमस्कार है । पूर्णतया
 पूजा करने के योग्य विष्णु को नमस्कार करता हूँ । अनादि निधन और विभु
 अर्थात् व्यापक भगवान् को मेरा नमस्कार है ॥२॥३॥ भगवान् विष्णु मेरे चित्त

में रहने वाले हैं तथा मेरी बुद्धि में भी गत हैं, जो विष्णु मेरे ग्रहद्वार में रहने वाले हैं और जो विष्णु मेरी आत्मा में विराजमान हैं। यह कर्मभून स्थवर भोग जन्म के हैं वहीं करते हैं। वह पाप नाश को प्राप्त हो जावे जबकि उनका चिन्तन किया जावे ॥४५॥ वह भगवान् विष्णु ध्यान किये जाने पर पप का हरण किया करते हैं। स्वप्न में भी देखे जाने पर भावना मात्र से वे पप को दूर कर देते हैं। उन उपेन्द्र विष्णु को जो प्रणतों के दुःख को दूर करने वाले हैं ऐसे हरि को मैं प्रणाम करता हूँ ॥६॥ इयं निराधार जगत् में जो कि नीचे अवकाश में डूब रहा है, हाथ का अवलम्बन स्वरूप परात्पर विष्णु हैं उनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥७॥ हे सब ईश्वरों के भी ईश्वर ! हे विभो ! हे परमात्मन् ! हे प्रबोधन ! हे हृषीकेश ! तुम्हारे लिये बारम्बार नमस्कार है ॥ ८ ॥

नृसिंहानन्त गोविन्द भूतभावन केशव ।

दुष्कृतं दुष्कृतं ध्याति शमयाधं नमोऽस्तु ते ॥६

यन्मया चिन्तितं दुष्टं स्वचित्तवशवतिना ।

अकार्यं महदत्युग्रं तच्छमं नय केशव ॥१०

ब्रह्मण्यदेव गोविन्द परमार्थपरायण ।

जगन्नाथ जगद्धातः पापं प्रशमयाच्युत ॥११

यथाऽपराह्णे सायान्हे मध्यान्हे च तथा निशि ।

कायेन मनसा वाचा कृतं पापमजानता ॥१२

जानता च हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव ।

नामत्रयोच्चारणतः पापं यातु मम क्षयम् ॥१३

शरीरं मे हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव ।

पापं प्रशमयाद्य त्वं वाक्कृतं मम माधव ॥१४

यद्भुञ्जन्त्यस्वपंस्तिष्ठन्गच्छन्वाग्रदश स्थितः ।

कृतवान्पापमद्याहं कायेन मनसा गिरा ॥१५

यत्स्वल्पमपि यत्स्थूलं कुयोनिनरकावहम् ।

तद्यातु प्रशमं सर्वं यामुदेवानुकीर्तनात् ॥१६

हे नृसिंह ! हे अनांत ! हे गोविन्द ! हे भूतभावन ! हे वेशव ! जो भी मेरी दोषयुक्त उक्ति हो या कोई पाप हो, ध्यान किये गये आप उस पाप को शान्त कर दें, आपके लिये मेरा प्रणाम है ॥१६॥ जो भी कुछ मैंने अपने चित्त के वशवर्त्ती होकर किसी भी दोष के विषय में विचार किया है जो कि मुझे नहीं करना चाहिये था और जो बहुत ही अधिक उग्र है, हे वेशव ! उसका आप क्षमन कर दीजिये ॥१७॥ हे ब्रह्मण्यदेव ! हे गोविन्द ! हे परमार्थ परायण ! हे जगत् के स्वामिन् ! हे जगत् के धाता ! हे अच्युत ! मेरे पाप का प्रक्षमन कर दो ॥१८॥ जो भी अपराह्न में अर्थात् दोपहर बाद के समय में, सन्ध्या के समय में, मध्याह्न में तथा रात्रि में शरीर-मन और वाणी से न जानते हुए पाप किया है और जो जानते हुए पाप मुझसे बन गया है, हे हृषीकेश ! हे पुण्डरीकाक्ष ! हे माधव ! आज उस समस्त पाप का प्रक्षमन कर दें । आपके शुभ नाम के उच्चारण से मेरा सारा पाप क्षय को प्राप्त हो जावे ॥१९॥ ॥१९॥ हे हृषीकेश ! हे पुण्डरीकाक्ष ! हे माधव ! आप मेरी वाणी से किये हुए पाप का नाश कर दें ॥२०॥ मैंने खते हुए, सोते हुए, खड़े होते हुए, जाते हुए और जागते हुए तथा स्थित होकर जो भी पाप किया है तथा शरीर, मन और वाणी से पाप किया है, चाहे वह थोड़ा हो या बहुत बड़ा पाप हो और बुरी योगि तथा नरक में जाने लायक हो वह सभी भगवान् वामुदेव के कीर्तन से आज प्रक्षम को प्राप्त हो जावे ॥२१॥२२॥

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं च यत् ।

तस्मिन्प्रकीर्तिते विष्णौ यत्पापं तत्प्रणश्यतु ॥२३॥

यत्प्राप्य न निवर्तते गन्धस्पर्शादिवर्जितम् ।

सूरयस्तत्पदं विष्णोस्तत्सर्वं क्षमयत्वधमम् ॥२४॥

पापप्रणाशनं स्तोत्रं यः पठेच्छृणुयादपि ।

शरीरैर्मनसैर्वाङ्गैः कृतेः पापैः प्रमुच्यते ॥२५॥

सर्वपापप्रहादिभ्यो याति विष्णोः परं पदम् ।

तस्मात्पापे कृते जप्यं स्तोत्रं सर्वाधमर्दनम् ॥२६॥

प्रायश्चित्तमधोधानां स्तोत्रं व्रतकृते चरम् ।

प्रायश्चित्तैः स्तोत्रजपैर्व्रतैर्नश्यति पातकम् ।

ततः कार्याणि संसिद्धयै तानि वै भुक्तिमुक्तये ॥२१॥

परम ब्रह्म, परमधाम, पवित्र और परम जो प्रभु हैं उन भगवान् विष्णु के प्रकृष्ट रूप से कीर्तन करने पर वह सभी पाप नष्ट हो जावे ॥१७॥ जो घाम गन्ध और स्पर्श आदि से रहित है और जिसको यह प्रारोही एक बार प्र स करके फिर नहीं बापिन लौटता है, विद्वान् लोग उसे ही विष्णु का घाम कहा करते हैं । वह हमारे समस्त पापों का क्षमन करे ॥१८॥ यह पापों के प्रलाश करने वाला स्तोत्र है । इस स्तोत्र को जो भी कोई पढ़ता है या श्रवण किया करता है वह शरीर से होने वाले, मानस और बाणी अन्य पापों से निश्चय ही मुक्त हो जाता है ॥१९॥ समस्त पाप और ग्रह आदि से प्रमुक्त होकर भगवान् विष्णु के परम पद को प्राप्त हो जाता है । इन लये पाप के करने पर इस अघ-मर्दन स्तोत्र का जप करना चाहिये ॥२०॥ पापों के समूहों का प्रायश्चित्त यह स्तोत्र है जो व्रतादि से भी श्रेष्ठ है । प्रायश्चित्तों से, स्तोत्र जप से, पापों में मुक्त होता है और व्रतों से भी पाप नाश हो जाता है । मुक्ति और मुक्ति के लिये और संसिद्धि के वास्ते उन सबको अवश्य ही करना चाहिये ॥२१॥

७१-व्रतपरिभाषा

तिथिवारक्षं दिवसमामर्त्तवृद्धाक्रंसक्रमे ।

नृत्त्रीव्रतादि वक्ष्यामि वसिष्ठ शृणु तत्क्रमात् ॥१॥

शास्त्रोदितो हि नियमो व्रत तच्च तपो मतम् ।

नियमास्तु विशेषास्तु व्रतस्यैव दमादयः ॥२॥

व्रतं हि कर्तुं संतापात्तप इत्यभिधीयते ।

इन्द्रियग्रामनियमान्नियमश्चाभिधीयते ॥३॥

अनग्नयस्तु ये विप्रास्तेषां श्रेयोऽभिधीयते ।

व्रतोपवासनियमैर्नादानैस्तथा द्विजः ॥४॥

ते स्युर्देवादयः प्रीता भुक्तिमुक्तिप्रदायकाः ।

उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वामो गुणैः सह ॥५॥

उपवास स विज्ञेयः सर्वभोगयिर्वर्जितः ।

कांस्य मांस मसूर च चणकं कोष्ठदूपकम् ॥६॥

शाकं मधु पराग्नं च त्यजेदुपवसन्निश्चयम् ।

पुष्पालकारवस्त्राग्नि धूपगन्धानुलेपनम् ॥७॥

उपवासे न शस्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम् ।

दन्तकाष्ठं पञ्चगव्यं कृत्वा प्रातर्व्रतं चरेत् ॥८॥

अब ब्रह्म की परिभाषा के विषय में बतलाया जाता है । श्री ब्रह्मदेव ने कहा—अब मैं हे ऋषि ! तुम श्रवण को, निधि, बार, नक्षत्र, दिवस, मास, ऋतु, वर्ष और सूर्य का सक्रमण में जो स्त्री और पुरुषों के व्रत आदि होते हैं उनके विषय में बताऊँगा और क्रम पूर्वक कहूँगा ॥१॥ शास्त्र में कहा हुआ जो नियम है वह व्रत होता है और बहुत बड़ा तप माना गया है । व्रत के नियम होते हैं और कुछ दम आदि विशेष नियम माने जाया करते हैं ॥२॥ व्रत यह इमका नाम करने वाले के सम्पाद होने से एक प्रकार तप ही होता है और यह तपश्चर्या कहा जाता है । इन्द्रियों के समूह को नियम में रखने से यह नियम भी कहा जाता है ॥३॥ जो ब्राह्मण निरग्नि होते हैं उनके लिये यह परम कल्याण करने वाला कहा जाता है । द्विजगण व्रत, उपवास नियमों के द्वारा तथा घनेक तरह के दानों के द्वारा अपना कल्याण अवश्य करना चाहिये । इनसे देवगण परम प्रसन्न होकर भुक्ति और मुक्ति को दिया करते हैं । पापों से उपावृत्त वा गुणों के माय जो वास है वही समस्त भोगों से रहित उपवास कहा जाता है । जो उपवास करे उसे कांस्य, मांस, मसूर, चणक, कोष्ठदूपक, शाक, मधु, पराग्न और स्त्री का त्याग कर देना चाहिये । उपवास करने के समय में पुष्प, फलझार और नूतन वस्त्र, धूप, गन्ध और अनुलेपन भी प्रशस्त नहीं माने जाते हैं । दन्तधावन (दातून), अञ्जन भी प्रशस्त नहीं होते हैं । दन्तकाष्ठ पञ्चगव्य करके प्रातः व्रत का चरण करना चाहिये ॥४॥ ॥१॥६॥७॥८॥

असतृज्जलपानाच्च ताम्बूलस्य च भक्षणात् ।

उपवासः शृदुष्येत दिवा स्वप्नाच्च मथुनात् ॥६॥

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
 देवपूजाऽग्निहरणं संतोषोऽस्तेयमेव च ॥१०॥
 सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः ।
 पवित्राणि जपेच्चैव जुहुयाच्चैव शक्तिनः ॥११॥
 नित्यस्नानो मित्राहारो गुरुदेवद्विजाचंकः ।
 क्षारं क्षौद्रं च लवणं मधु मांसानि वर्जयेत् ॥१२॥
 तिलमुद्गादते शस्यं शस्ये गोघ्नमक्रोद्रवौ ।
 चीनकं देवघान्यं च शमीघान्यं तर्धज्वम् ॥१३॥
 शितघान्यं तथा पप्यं मूलं क्षारगणः स्मृतः ।
 ब्रीहिपट्टिकमुद्गाश्च कलायाः सतिला यवाः ॥१४॥
 श्यामोक्षाश्चैव नीवारा गोघृमाद्या व्रते हिनाः ।
 हृष्माण्डालावुवार्ताक्रान्पातङ्कौ पूतिकां त्यजेत् ॥१५॥
 चरुमैत्र्यं सक्तुकरणाः शाकं दधि घृणं पयः ।
 श्यामाकशालिनीवारा ये वक्त्रं मूलजगुलम् ॥१६॥
 हविष्यं व्रतनक्तदावग्निकार्यादिके हितम् ।
 मधु मांसं विहायान्यद्ब्रते वा हिनमीरितम् ॥१७॥

बार-बार प्रार्थना एक बार ने अधिक बार जब पीने से घोर एक बार
 ताम्बून चर्चण से उपवास टूटित हो जाना करता है । दिन में सोने से तथा
 मधुन करने से भी उपवास स्थित हो जाना करता है ॥१६॥ समस्त प्रकार
 के व्रतों में दश प्रकार का साधारण धर्म माना जाता है जिसका पूर्ण पालन
 करना चाहिए, वे दश धर्म ये हैं—क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियों को
 संयम में रखना, देव की पूजा, अग्नि हरण, संतोष और अस्तेय प्रार्थना चोरी
 न करना । उपवास के दिन पवित्र मन्त्रों का जप करना चाहिए और यथा-
 शक्ति हवन भी करे ॥१०॥११॥ नित्य स्नान करे, मित्र अहं करे तथा गुरु
 देव और ब्राह्मणों की प्रार्थना करे । क्षार, मधु, लवण, मांस इनको वर्जित
 रखना चाहिये ॥१२॥ तिल और मूँग के बिना शस्य, शस्य में गोघ्न और
 क्रोद्रव, चीनक, देवघान्य, शमीघान्य तथा ऐश्वर्य (ईश्वर का निर्मित), शित-

धान्य, पण्य मूल और क्षारगण कहे गये हैं । व्रीहि, वष्टिक और मूँग और कलाके निल सहित यव, श्यामाक, नीवार और गोधूम आदि व्रत में दिनकर बताये गये हैं । बूष्माण्ड, धल बु, वार्ताक, पातङ्करि और पूतिका इनका त्याग कर देना चाहिये । १३।१४।१५॥ चरुमध्व, सक्तुकण, शाक, दधि, घृत, दूध, श्यामाक (समा), शालि, नीवार, यवक और धून् तण्डुल यह हविष्य हैं । व्रत और नक्तादि में तथा अग्नि कार्य आदि में ये हित माने गये हैं । अधु तथा मांस का त्याग करके अन्य अथवा व्रत में हित कहे गये हैं ॥ १६।१७॥

अथ प्रातस्त्र्यह सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् ।

त्र्यह पर च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्दिजः ॥१८॥

एकंकं ग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ।

अथ चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन्दिजः ॥१९॥

गोमूत्रं गोमय क्षीरं दधि कुशोदकम् ।

एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥२०॥

पृथक्सांतपनं द्रव्यैः पडहः सोपवासकः ।

सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासांतपनोऽधहा ॥२१॥

द्वादशाहोपवासेन पराकः सर्वपापहा ।

महापराकस्त्रिगुणस्त्वयमेव प्रकीर्तितः ॥२२॥

पौर्णमास्या पञ्चदशग्रास्यमावास्यभोजनः ।

एकापाये ततो वृद्धो चान्द्रायणमतोज्यथा ॥२३॥

कपिलागोः पल मूत्रमर्धङ्गुष्ठं च गोमयम् ।

क्षीरं सप्तपलं दद्याद्दध्नश्चैव पलद्वयम् ॥२४॥

धृतमेकपलं दद्यात्पलमेकं कुशोदकम् ।

गायत्र्याऽऽगृह्य गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ॥२५॥

आप्यायस्वेति य क्षीरं दधिक्राव्येति वै दधि ।

तेजोऽसीति तथा चाऽऽज्यं देवस्येति कुशोदकम् ॥२६॥

तीन दिन तक प्रातःकाल में, तीन दिन तक सायंकाल में, और तीन दिन तक मध्य दिन (बिना भोगा हुआ) और तीन दिन तक पराया नहीं

खाना चाहिए । जो द्विज प्रजापत्य व्रत करता है उसके लिये यह नियम है ॥१८॥ एक-एक ग्रास तीन दिन तक खाने और तीन पूर्व की भाँति करे और इसके उपरान्त तीन दिन तक बिल्कुल उपवास करे इस तरह अन्त में होने वाला यह प्रति कृच्छ्र व्रत होता है । ब्राह्मण को इसे भी करना चाहिए ॥१९॥ गो मूत्र, गोमय (गोबर) , क्षीर (दूध) ; दही, घृत और कुशाग्रों का जल इन्हें क्रम से एक-एक दिन ग्रहण करे और एक रात्रि उपवास करे इस प्रकार के व्रत को कृच्छ्र सान्त्वन व्रत कहा गया है ॥२०॥ पृथक्-पृथक् सान्त्वन व्रत में बताये हुए द्रव्यों के द्वारा रहे और छः दिन उपवास करे । यह सप्ताह का कृच्छ्र व्रत होता है । यह महा सान्त्वन व्रत कहा गया है जो कि पापों का नाश करने वाला होता है ॥२१॥ बारह दिन का भी उपवास वाला व्रत पराक व्रत नाम वाला होता है जो समस्त पापों का हनन करने वाला कहा गया है । पराक व्रत को ही तिगुना कर देने से महराक नाम वाला व्रत होता है जो स्वयं ही पापनाशक कहा गया है ॥२२॥ पूर्णिमा में पन्द्रह ग्रास और अमावस्या में बिल्कुल भोजन न करे । एक-एक ग्रास रोज कम करता चला जावे । इसी तरह फिर प्रतिदिन प्रतिपदा से एक एक ग्रास की वृद्धि करता रहे यह चन्द्रायण व्रत कहा गया है । अथवा दूसरा विधान यह है कि करिला गो का एक पल मूत्र और आधे अंगूठा के बराबर गोतप, सात पल दूध, दो पल दधि देवे तथा घृत एक पल और कुसोदक लेवे । गायत्री मन्त्र से गोघत्र ग्रहण करे—“गन्धहारण इत्यादि मन्त्र से गोमय को लेवे, “आप्यायस्व” इत्यादि मन्त्र से दूध, “दधिक्रव्या”, इत्यादि मन्त्र से दही, “तेजोऽसीति” इस मन्त्र से घृत और “देवेऽस्यति” इस मन्त्र से कुसोदक का ग्रहण करना चाहिए ॥२३॥२४॥२५॥२६॥

ब्रह्मकूर्चो भवत्येवमापो हि ष्टेत्यृचं जपेत् ।

अथमर्पणमूकतेन संयोज्य प्रणवेन वा ॥२७॥

पीत्वा सर्वाधिनिर्मुक्तो विष्णुलोकी ह्युपोषितः ।

उपवासी सायंभोजी यतिः पष्ठात्मकालवान् ॥२८॥

दो तिथियाँ हो जावें यानी तिथि बढ़ जावे तो वहाँ पर जो उत्तरोत्तर अर्थात् बाद की ही वही उत्तमा जननी चाहिए । पहिली तिथि तो मनिम्बुचा होती है ॥३४॥

उपोषितव्यं नक्षत्रं येनास्तं याति भास्करः ।

दिवा पुण्यास्तु तिथयो रात्रौ नक्तव्रते शुभाः ॥३५॥

युग्माग्निकृतभूतानि पण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः ।

रद्रेण द्वादश। युक्ता चतुर्दश्याऽथ पूर्णिमा ॥३६॥

प्रतिपदा त्वमावास्या तिथ्योर्युग्मं महाफलम् ।

लतद्यस्तं महाघोरं हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥३७॥

नरेन्द्रमन्त्रिव्रतिनां विवाहोपद्रवादिषु ।

सद्यः शौच समाख्यातं कान्तारापदि संसदि ॥३८॥

आरब्धदीर्घतपसां न राजा व्रतहा स्त्रियाः ।

गर्भिणी सूतिका नक्तं कुमारी च रजस्वला ॥३९॥

यदाशुद्ध तदाऽन्येन कार्येत क्रियाः सदा ।

क्रोधात्प्रमादात्लोभाद्वा व्रतभङ्गो भवेद्यदि ॥४०॥

दिनत्रयं न भुञ्जीत मुण्डन शिरसोऽथ वा ।

असामर्थ्ये व्रतकृतौ पत्नीं वा कारयत्सुतम् ॥४१॥

उस नक्षत्र का व्रत करना चाहिए जिससे सूर्य अस्त होता है । तिथियाँ दिन की पुण्य मानी गई हैं । यदि रात्रि का व्रत हो तो रात्रि में वे शुभ होती हैं ॥३५॥ तृतीय और पञ्चमी का युग्म, छठ और सप्तमी, अष्टमी और नवमी तथा एकादशी के साथ द्वादशी, चतुर्दशी से पूर्णिमा एवं प्रतिपदा के साथ अमावस्या इन दो तिथियों का युग्म महान् फल देने वाला होता है । इससे विपरीत युग्म का होना महा घोर होता है जो पुराकृत पुण्य का भी नाश कर देता है ॥३६॥३७॥ राजा, मन्त्री और व्रतियों का विवाहोपद्रवगदि में सद्यः शौच शुद्धि बताई गई है । कालान्तर प्राप्ति और संसद में तथा जिन्होंने दीर्घ तप आरम्भ कर दिया है उनके व्रत का हनन करने वाला राजा नहीं होता है एवं स्त्री के व्रत का भी हनन नहीं होता है । गर्भिणी, सूतिका और कुमारी

मांसवर्जी चाश्वमेधी सत्यवादी दिव व्रजेत् ।
 आग्न्याधेयं प्रतिष्ठां च यज्ञदानव्रतानि च ॥२६॥
 देवव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरमेखलाः ।
 माङ्गल्यमभिषेकं च मलमासे विवर्जयेत् ॥२७॥
 दशदिशस्ते चान्द्रः स्यात्त्रिंशहर्षं वा सावनः ।
 मासः सौरस्तु संक्रान्तेर्नाक्षत्रो भविवर्तनात् ॥२८॥
 सौरो मासो विवाहादौ यज्ञादौ सावनः स्मृतः ।
 आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते ॥२९॥
 आपादीमवधि कृत्वा यः स्यात्पक्षस्तु पञ्चमः ।
 कुर्याच्छ्राद्धं तत्र रविः गच्छतु वा न वा ॥३०॥
 मासि संवत्सरे चैव तिथिर्द्विधः यदा भवेत् ।
 तत्रोत्तरोत्तमा ज्ञेया पूर्वा तु स्यान्मलिम्लुचा ॥३१॥

इस प्रकार से ब्रह्म कर्च होता है । इसके उपरान्त “आपोहिष्ठा” इत्यादि ऋचा का जप करना चाहिए । अधर्मण सूक्त से संयोजित करके अथवा प्रणव से योजित करके पीवे और समस्त पापों से नियुक्त, विष्णु लोक में जाने वाला, उपोषित, उपवासी और सायंकाल में भोजन करने वाला यति तथा पण्डित आत्म बल वाला, मांस को वर्जित करने वाला, अश्वमेध करने वाला और सत्यवादी स्वर्ग लोक को जाना है । अग्न्याधान, प्रतिष्ठा, यज्ञ, दान, व्रत, देवव्रत, वृषोत्सर्ग, चूडा करण, मेखला, माङ्गल्य और अभिषेक ये समस्त कार्य मलमास में वर्जित कर देना चाहिए ॥२७॥ २८॥ २९॥ ३०॥ दश (अमावस्या से) से दशतक चान्द्र होता है और तीस दिन का सावन मास होता है और सौर मास तो सङ्क्रान्ति से होता है और नाक्षत्र मास भविवर्तन से हुआ करता है ॥३१॥ विवाह आदि कार्यों में सौर मास ग्रहण किया जाता है तथा यज्ञ आदि कर्मों में सावन मास बताया गया है । और वार्षिक पितृ कार्य में चान्द्र मास प्रशस्त माना जाता है ॥३२॥ आपादी से अवधि बना कर जो पक्षार्ध पण्डित होता है उस समय में श्राद्ध करना चाहिए चाहे सूर्य कन्या रात्रि पर जावे या न जावे ॥३३॥ मास में और सम्बन्ध में जब तिथिर्द्विधः अर्थात्

को पहिले निम्न प्रकार से प्रार्थना एवं संकल्प करना चाहिए, हे व्रतपते !
 मैं कीर्ति, सन्तान, विद्या आदि, सौभाग्य और आरोग्य की वृद्धि के लिये
 निमंत्रता, भोग और मुक्ति के अर्थ में व्रत करता हूँ ॥४१॥४२॥ मैंने यह थोड़ा
 व्रत हे जगत्पते ! आपके समक्ष में ग्रहण किया है । मेरी प्रार्थना है आपके
 प्रसाद से निर्विघ्न सिद्धि को प्राप्त होवे ॥४३॥ इस थोड़ा व्रत के ग्रहण करने
 पर यदि अपूर्ण रहे और मेरी मृत्यु हो जावे तो सत्यति आपके प्रसन्न होने पर
 वह सब पूर्ण हो जावे ॥४४॥ मण्डल में व्रत मूर्ति जगत् मूर्ति का समस्त
 सिद्धि प्राप्त करने के लिये आवाहन करता हूँ । आपके लिये मेरा नमस्कार है ।
 हे वेशव ! आप सान्निधि में स्थित रहें ॥४५॥ मन के द्वारा कल्पित और
 भक्ति पूर्वक समर्पित पञ्चगव्यों से, शुभ जनों से और पञ्चाश्रुतों से मैं आपका
 स्नान करता हूँ । आप ही मेरे पापों के हनन करने वाले होंगे ॥४६॥ आपके
 लिये गन्ध और पुष्पोदक से युक्त यह शुभ अर्घ्य अर्पित किया जाता है । इस
 अर्घ्य की ओर पाद तथा आचमन को आप ग्रहण करें और सर्वदा मुझे अर्घ्य
 देने के योग्य बना दें ॥४७॥ हे वसु पते ! इस परम पवित्र वस्त्र को स्वीकार
 करें और सर्वदा अच्छे वस्त्र आदि तथा सुन्दर भूषण आदि से हे व्रत सत्यते !
 मुझे समाधुत हित करें ॥४८॥

- सुगन्धिगन्धं विमलं गन्धमूर्ते गृहाण वै ।
- पापगन्धविहीनं मां कुरु त्व हि सुगन्धिकम् ॥४१॥
- पुष्पं गृहाण पुष्पादिपूर्णं मां कुरु सर्वदा ।
- पुष्पगन्धं मुविलमायुरारोग्यवृद्धये ॥४२॥
- दगाङ्गं गुग्गुलुघृतयुक्तं धूपं गृहाण वै ।
- न धूपधूपितं मां त्वं कुरु धूपित सत्यते ॥४३॥
- दीपमूर्ध्वगित दीप्तं गृहाणाश्विलभासकम् ।
- दीपमूर्ते प्रसादादयं सर्वदोषवंगति कुरु ॥४४॥
- अन्नादिकं च नवेद्यं गृहाणायादिसत्यते ।
- अन्नादिपूर्णं कुरु मामन्नदं सर्वदायकम् ॥४५॥

रजस्वला जब अशुद्ध हों तो सद्य किसी अन्य के द्वारा क्रिया करानी चाहिए । क्रोध से, प्रमाद (लापरवाही) से, लोभ से यदि व्रत कार्य भङ्ग हो जावे तो तीन दिन तक भोजन न करे अथवा शिर का मुण्डन करावे । यदि स्वयं व्रत करने में समर्थ न हो तो अपनी पत्नी या पुत्र से कराना चाहिए ॥३८॥३९॥ ४०॥४१॥

सूतके मृतके कार्य प्रारब्ध पूजनोज्जितम् ।
 व्रतस्थं मूर्च्छित दुग्धापानाच्च रुद्धरेदगुरुः ॥४२॥
 भ्रष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः ।
 हविर्ग्राह्यणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ॥४३॥
 कीर्तिसततिविद्यादिसौभाग्यारोग्यवृद्धये ।
 नैमल्यभुमिक्तुवत्यधं कुर्वे व्रतपते व्रतम् ॥४४॥
 इदं व्रतं मया श्रेष्ठ गृहीतं पुरतस्तव ।
 निर्विघ्नां सिद्धिमायातु त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ॥४५॥
 गृहीतेऽस्मिन्व्रतवरे यद्यपूर्णं स्त्रिये ह्यहम् ।
 तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु प्रसन्ने त्वयि सत्पती ॥४६॥
 व्रतमूर्ति जगद्मूर्ति मण्डले सर्वसिद्धये ।
 आवाहये नमस्तुभ्यं सनिधौ भव केशव ॥४७॥
 मनसा कल्पितेभक्त्या पञ्चगव्यैर्जलैः शुभैः ।
 पञ्चामृतैः स्नापयामि त्वमेव भव पापहा ॥४८॥
 गन्धपुष्पादेकैर्युक्तमर्घ्यगर्घ्यपते शुभम् ।
 गृहाण पादमाचममर्घ्याहिं कुरु मां सदा ॥४९॥
 वस्त्रं वस्त्रपते पुण्यं गृहाण कुरु मां सदा ।
 भूषणार्घ्यः सुवस्त्रार्घ्यदद्यादितं श्रनमत्पते ॥५०॥

जलपात्रं चान्नपात्रमृत्तिकाद्यन्नमासनम् ।

शय्या वस्त्रयुगं कुम्भाः परिमापेयमीरिता ॥६२॥

आप मुझे धन को प्रदान करें, धन देवें और सफल सद्गुणों से युक्त सन्तान देवें, कीर्ति, विद्या, आयु, स्वर्ग और मोक्ष को मुझे प्रदान करें ॥१५७॥ हे व्रतों के स्वामिन् ! मेरी समर्पित इस भर्चना को ग्रहण करके अब आप यहाँ से पधारें । हे प्रभो ! आपको विसर्जित तो करता हूँ किन्तु पुनः यहाँ पधारेंगे और मुझे वरों को प्रदान करेंगे इसी भावना को साथ में लेकर आपको इस समय विदा कर रहा हूँ ॥१५८॥ व्रत करने वाले पुरुष को स्नान करके समस्त व्रतों में इसी प्रकार से व्रत मूर्तियों की पूजा कर भी चाहिए । व्रत मूर्तियाँ सुवर्ण निमित्त अथवा रजत निमित्त होनी चाहिए जैसी भी व्रती की शक्ति हो उसके अनुसार रचना करावे । व्रत करने वाले को भूमि में शयन करना चाहिए । सामान्य व्रत के अन्त में जप, होम और दान करना चाहिए । चौबीस या द्वादश, पाँच, तीन अथवा एक ही विप्र का पूजन अवश्य करे । और भोजन करावे । साथ ही गुरु वर्ग का यजन भी करे । अपनी शक्ति के अनुसार सबको दक्षिणा भी देनी चाहिए । गौरे देव तथा सुवर्ण आदि की दक्षिणा देवे, पादुका, उपानह (जूता) आदि पृथक् देवे ॥१५९॥६०॥६१॥ जल का पात्र अन्न का पात्र, मृत्तिका, छत्र, आसन, शय्या, को वस्त्र अर्थात् धोती और दुपट्टा और परिमापेय कुम्भ इन सबका दान बताया गया है ॥६२॥

७२ शिवरात्रिव्रतम् ।

शिवरात्रिव्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु ।

माघफाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णा या तु चतुर्दशी ॥१॥

कामयुक्ता तु सोषोप्या कुर्वञ्जागरणं व्रती ।

शिवरात्रिव्रतं कुर्वे चतुर्दश्यामभोजनम् ॥२॥

रात्रिजागरणेनैव पूजयामि शिवं व्रती ।

आवाहयाम्यहं शंभुं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥३॥

मन्त्रहीनं क्रियाहीन भक्तिहीनं मया प्रभो ।

यत्पूजितं व्रतपते परिपूर्णं तदस्तु मे ॥५६॥

हे गन्धमूर्त्तों ! आप इस सुगन्धित और विमल गन्ध को ग्रहण कीजिये और आप मुझे पापों की गन्ध से विहीन कर दीजिये । आप इन परम सुगन्धित पुष्पों को स्वीकार कीजियेगा और सर्वदा मुझे आप पुष्पादि से परिपूर्ण करने की कृपा करें । यह पुष्पों की गन्ध सुविमल है जो कि आयु और आरोग्य की वृद्धि करने वाली है ॥५१॥५२॥ दशाङ्ग गुग्गुलु और घृत से युक्त इस धूप को ग्रहण करें । हे धूपित ! हे सत्पुरुषों के स्वामिन् ! आप मुझे सुन्दर धूप से सदा धूपित करें ॥५३॥ यह ऊपर की ओर शिखा वाला दीप दीप है इस सब को प्रकाश देने वाले दीपक को आप स्वीकार करें । हे दीप मूर्त्तों ! आप मुझे प्रकाश से समन्वित और सर्वदा उर्ध्वगति वाला कर दें ॥५४॥ हे अग्न्यादिसत्पते ! आप मेरे द्वारा समर्पित अन्न आदि नैवेद्य को ग्रहण करें । आप मुझे अग्न्यादि से परिपूर्ण तथा अन्न का दान करने वाला सर्वदायक बना दें ॥५५॥ हे प्रान्ते ! मन्त्रों से रहित, क्रिया से हीन और भक्ति से शून्य होने जो आपकी पूजा की है हे व्रतपते ! वह सब परिपूर्ण होना चाहिए ॥५६॥

धर्मं देहि धनं देहि सौभाग्यं गुणसंततिम् ।

कीर्तिं विद्यां देहि चाऽऽयुः स्वर्गं मोक्षं च देहि मे ॥५७॥

इमां पूजां व्रतपते गृहीत्वा ब्रज सांप्रतम् ।

पुनरागमनायैव वरदानाय वै प्रभो ॥५८॥

स्नात्वा व्रतवता सर्वव्रतेषु व्रतमूर्तयः ।

पूज्याः सुवर्णरजता वै शक्या वै भूमिशायिना ॥५९॥

जपो होमश्च सामान्यव्रतान्ते दानमेव च ।

चतुर्विंश द्वादश वा पञ्च वा त्रय एकशः ॥६०॥

विप्रा प्रपूज्या गुरवो भोज्याः शक्या तु दक्षिणा ।

देया गावः सुवर्णाद्याः पादुकोपानहो पृथक् ॥६१॥

जलपात्रं चान्नपात्रमृत्तिकाद्यत्रमासनम् ।

शय्या वस्त्रयुगं कुम्भाः परिमापेयमीरिता ॥६२॥

आप मुझे धन को प्रदान करें, धन देवें और सफल सद्गुणों से युक्त सन्तान देवें, कीर्ति, विद्या, आयु, स्वर्ग और मोक्ष को मुझे प्रदान करें ॥१७॥ हे ब्रह्मों के स्वामिन् ! मेरी समर्पित इस धर्चना को ग्रहण करके भव आप यहाँ से पधारें । हे प्रभो ! आपको विसर्जित तो करता हूँ किन्तु पुनः यहाँ पधारेंगे और मुझे वरों को प्रदान करेंगे इसी भावना को साथ में लेकर आपको इस समय विदा कर रहा हूँ ॥१८॥ व्रत करने वाले पुरुष को स्नान करके समस्त व्रतों में इसी प्रकार से व्रत मूर्तियों की पूजा कर भी चाहिए । व्रत मूर्तियाँ सुवर्ण निमित्त अथवा रजस निमित्त होनी चाहिए जैसी भी व्रती की शक्ति हो उसके अनुसार रचना करावे । व्रत करने वाले को भूमि में शयन करना चाहिए । सामान्य व्रत के अन्त में जप, होम और दान करना चाहिए । चौबीस या द्वादश, पाँच, तीन अथवा एक ही विप्र का पूजन अवश्य करे । और भोजन करावे । साथ ही गुरु वर्ग का यजन भी करे । अपनी शक्ति के अनुसार सबका दक्षिणा भी देनी चाहिए । गौरे देव तथा सुवर्ण आदि की दक्षिणा देवे, पादुका, उपानह (जूता) आदि पृथक् देवे ॥१९॥६०॥६१॥ जल का पात्र अन्न का पात्र, मृत्तिका, छत्र, आसन, शय्या, को वस्त्र अर्थात् धोती और टुपट्टा और परिमापेय कुम्भ इन सबका दान बताया गया है ॥६२॥

७२ शिवरात्रिव्रतम् ।

शिवरात्रिव्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु ।

माघफाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णा या तु चतुर्दशी ॥१॥

कामयुक्ता तु सोषोष्या कुर्वञ्जागरणं व्रती ।

शिवरात्रिव्रतं कुर्वे चतुर्दश्यामभोजनम् ॥२॥

रात्रिजागरणेनैव पूजयामि शिवं व्रती ।

आवाहयाम्यहं शंभुं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥३॥

नरकार्णवकोत्तारनावं शिव नमोऽस्तु ते ।
 नमः शिवाय शान्ताय प्रजाराज्यादिदायिने ॥४॥
 सौभाग्यारोग्यविद्यादं स्वर्गमार्गप्रदायिने ।
 धर्मं देहि धनं देहि कामभोगादि देहि मे ॥५॥
 गुणकीर्तिमुखं देहि स्वर्गं मोक्षं च देहि मे ।
 लुब्धकः प्राप्तवान्पुण्यं पापी सुन्दरसेनकः ॥६॥

अग्नि देव ने कहा—धर्म भोगों और मोक्ष को प्रदान करने वाले शिवरात्रि के व्रत के विषय में बताऊँगा । उसका श्रवण करो । माघ और फाल्गुन के मध्य में कृष्ण पक्ष में जो चतुर्दशी तिथि होती है वह कामनाओं से युक्त होती है । उस दिन उपवास करना चाहिए और व्रत धारण करना करने वाले को उस रात्रि में जागरण भी करना चाहिए । महा शिवरात्रि एक चार महा रात्रियों में से एक है । इस दिन चतुर्दशी को मैं भोजन नहीं करूँगा—ऐसा संकल्प पूर्वक निवेदन करे ॥१२॥ व्रती को चाहिए कि वह प्रार्थना करे कि मैं आज रात्रि में जागरण करके भगवान् शिव का पूजन करता हूँ । मैं भुक्ति और मुक्ति को प्रदान करने वाले भगवान् शम्भु का आवाहन करता हूँ ॥ ३ ॥ नरक रूपी समुद्र से तारने के लिये नौका के सदृश शिव को मेरा नमस्कार है । शान्त स्वरूप शिव के लिये जो कि प्रजा और राज्य आदि को प्रदान करने वाले हैं ॥ ४ ॥ सौभाग्य-आरोग्य और विद्या देने वाले भगवान् शिव के लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है । हे शिव ! आप कृपा करके मुझे धर्म प्रदान करें—धन देवें तथा काम भोग आदि सब प्रदान करें । सद्गुण-कीर्ति और सुख का दान करें । मुझे स्वर्ग देवें और संसार के आवागमन के जन्म-मरण से छुटकारा भी प्रदान करें । इस व्रत से लुब्धक पापी भी सुन्दर सेना एवं परम पुण्य प्राप्त किया करता है ॥१५॥

७३ वारग्रतानि ।

वारग्रतानि वक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदानि हि ।

करः पुनर्वसुः सूर्ये स्नाने सर्वौषधी शुभा ॥१॥

श्राद्धी चाऽऽदित्यवारे तु सप्तजन्मस्वरोगभाक् ।
 सक्रान्तौ सूर्यवारो यः सोऽर्कस्य हृदयः शुभः ॥२॥
 कृत्वा हस्ते सूर्यवारं नक्तेनाब्दं स सर्वभाक् ।
 चित्राभसोमवाराणि सप्त कृत्वा सुखी भवेत् ॥३॥
 स्वात्यां गृहीत्वा चाङ्गारं सप्तनक्त्यातिवर्जितः ।
 विशाखायां बुधं गृह्य सप्तनक्ती ग्रहातिनुत् ॥४॥
 अनुराधे देवगुरुं सप्तनक्ती ग्रहातिनुत् ।
 शुक्रं ज्येष्ठाम् संगृह्य सप्तनक्ती ग्रहातिनुत् ।
 मूले शनिश्चरं गृह्य सप्तनक्ती ग्रहातिनुत् ॥५॥

श्री अग्नि देव ने कहा—अब मैं वारों के व्रतों को बताऊँगा । ये व्रत भी भुक्ति तथा मुक्ति के प्रदान करने वाले हैं । सूर्य में पुनर्जन्म हो तब स्नान करने में सवौपधी शुभ होती है ॥ १ ॥ आदित्य वार में श्राद्ध करने वाला स्नान करे तो सात जन्म तक वह रोगी नहीं रहता है । संक्रान्ति के दिन सूर्य का वार हो तो वह सूर्य का शुभ हृदय माना जाता है । हस्त नक्षत्र में सूर्य का वार हो उस दिन रात्रि में करके एक वर्ष तक समस्त पदार्थों भाजन हो जाता है । चित्रा नक्षत्र के दिन चन्द्रवार हो तो सातवार करके मनुष्य परम सुखी होता है ॥ २ ॥ ३ ॥ स्वाती में भीम वार हो तो सात रात्रि करके समस्त दुःखों से रहित होता है । विशाखा नक्षत्र में बुध हो तो सात रात्रि करने पर ग्रहों से छुटकारा पा जाता है ॥ ४ ॥ अनुराधा में गुरु हो तो सात वार करने से ग्रहों की आति का नाश होता है । ज्येष्ठा शुक्र युक्त हो तो सप्तनक्ती ग्रहातिव्रत होता है । मूल में शनिवार हो सात रात्रियों ग्रह दुःखों से मुक्त होता है ॥४॥५॥

७४ नक्षत्रव्रतानि ।

नक्षत्रव्रतकं चक्ष्ये मे हरिः पूजितोऽर्थादः ।
 नक्षत्रपुरुषं चाऽऽदी चंद्रमासे हरि यजेत् ॥१॥

मूलो पादौ यजेज्जङ्घे रोहिणीप्यर्चयेद्धरिम् ।
 जानुनी चाश्विनीयागे आषाढासूक्तसंज्ञके ॥२॥
 मेढू पूर्वोत्तरास्वेव कटि वं कृत्तिकासु च ।
 पार्श्वे भाद्रपदाभ्यां तु कुक्षि वं रेवतीषु च ॥३॥
 स्तनौ चवानुराधासु धनिष्ठासु च पृष्ठकम् ।
 भुजौ पूज्यो विशाखासु पुनर्वसुज्ज, लीयंजेत् ॥४॥
 अश्लेषासु नखान्पूज्य कण्ठं ज्येष्ठासु पूजयेत् ।
 श्रोत्रे विष्णोश्च श्रवणे मुखं पुष्ये हरियजेत् ॥५॥
 यजेत्स्वातिषु दन्ताग्रमास्यं वारुणभेऽर्चयेत् ।
 मघासु नासां नयने मृगशीर्षे ललाटकम् ॥६॥
 चित्रासु चाऽर्द्रासु कचानब्दान्ते स्वर्णकं हरिम् ।
 गुडपूर्णे घटेऽभ्यर्च्य शय्यागोथीदि दक्षिणा ॥७॥
 नक्षत्रपुरुषो विष्णुः पूजनीयः शिवात्मकः ।
 शांभवायनीयव्रतकृन्मासभे पूजयेद्धरिम् ॥८॥

श्री अग्नि देव ने कहा—अब मैं नक्षत्रों के विषय में बतलाता हूँ ।
 विशेष नक्षत्र में पूजित होने पर हरि अर्घ के प्रदान करने वाले होते हैं ।
 नक्षत्र पुरुष हरि को आदि में चैत्र मास में पूजित करना चाहिए ॥ १ ॥
 मूल में चरणों का यजन करे और रोहिणी में हरि भगवान् के जंघाओं का
 अर्चन करना चाहिए । अश्विनी नक्षत्र के योग में जानुओं का तथा आषाढ़ में
 ऊरुओं का यजन करे ॥ २ ॥ पूर्वोत्तरा में मेढू का यजन करे और कृत्तिकानक्षत्र
 में कटिका पूजन करना चाहिए । भाद्र पदा पूर्वो उत्तरा दोनों में दोनों पार्श्व
 भागों का क्रम से अर्चन करे । तथा खेती में कुक्षि का यजन करे । धनिष्ठा
 में हरि के पृष्ठ भाग का अर्चन करना चाहिए । विशाखा नक्षत्रों में दोनों
 भुजाओं का तथा पुनर्वसु में अशुलियों का यजन करे ॥ ४ ॥ अश्लेषा में
 नखों का पूजन करके ज्येष्ठा में कण्ठ का अर्चन करना चाहिए । श्रवण में
 विष्णु के श्रोत्रों का तथा पुष्य नक्षत्र में हरि के मुख का पूजन करना चाहिए
 ॥ ५ ॥ दौर्गो मघभाग का स्वाति में तथा वारुण नक्षत्र में भास्य का पूजन

करे । मघा में नामिका का यजन मृगशीर्ष में दोनों नेत्रों का एवं चित्रा में ललाट का यजन करे । आर्द्रा में भगवान् के केशों का अर्चन करे । इस प्रकार से वर्ष के अन्त में स्वर्णक हरि को गुड़ से पूर्ण धर में अर्चना करके शय्या-ग्री और अर्घ्य आदि की दक्षिणा देनी चाहिए ॥ ६ । ७ ॥ इस विधि से शिवात्मक नक्षत्र पुरुष भगवान् विष्णु पूजा करने के योग्य हैं । शाम्भवायनीय व्रत करने वाले को मास नक्षत्र में हरि का पूजन करना चाहिए ॥८॥

कार्तिके कृत्तिकायां च मृगशीर्षे मृनास्यके ।

नामभिः केशवाद्यंस्तु अच्युताय नमोज्ज्वलाय वा ॥९॥

कार्तिके कृत्तिकाभेऽह्नि मासनक्षत्रगं हरिम् ।

शांभवायनीव्रतक करिष्ये भुक्तिमुक्तिदम् ॥१०॥

केशवादिमहामूर्तिमच्युत सर्गदायकम् ।

आवाहयाम्यहं देवमायुरारोग्यवृद्धिदम् ॥११॥

कार्तिकादौ सदा देयमग्नं मासचतुष्टयम् ।

फाल्गुनादौ च कृशरमापाढादौ च पायसम् ॥१२॥

देवाय ब्राह्मणेभ्यश्च नक्तं नैवेद्यमाशयेत् ।

पञ्चगव्यजले स्नातस्तस्यैव प्राशनाच्छुचिः ॥१३॥

अर्वाग्विसर्जनाद्द्रव्यं नैवेद्यं सर्वमुच्यते ।

विसर्जिते जगन्नाथे निर्माल्यं भवति क्षणात् ॥१४॥

नमो नमस्तेऽच्युत मे क्षयोऽस्तु पापस्य बुद्धिश्च समुपेतु पुण्यम् ।

ऐश्वर्यवित्तादि सदाक्षयं मे क्षयं च मा संततिरभ्युपेतु ॥१५॥

यथाऽच्युतस्त्वं परतः परस्तात्स ब्रह्मभूतः परात्मन् ।

तथाऽच्युतं त्वं कुरु बाञ्छितं मे मया कृत पापहराप्रमेय ॥१६॥

कार्तिक में कृत्तिका में तथा मृनास्यक में मृगशीर्ष में केशव आदि

नामों के द्वारा अच्युत भगवान् के लिए नमस्कार करे ॥ ९ ॥ कार्तिक में कृत्तिका नक्षत्र वाले दिन में मास नक्षत्र में गमन करने वाले हरि का भोगों और मोक्ष को प्रदान करने वाले शाम्भवायनीय व्रत को करूंगा—ऐसा निश्चायात्मक संकल्प करना चाहिए ॥ १० ॥ मैं सभी कुछ के प्रदान करने वाले

केशवादि महामूर्ति भगवान् अच्युत का धावाहन करता हूँ जो देव आयु, भारोग्य और वृद्धि को प्रदान करने वाले हैं ॥ ११ ॥ कार्तिक आदि में चारमास तक सदा अन्न का दान करना चाहिए । कात्थन आदि मासों में कुशर का दान करे और आपाह आदि मासों में पायस देना चाहिए ॥ १२ ॥ देव के लिये और ब्राह्मणों के लिये रात्रि में नैवेद्य खिलाना चाहिए । पश्चात्त्य के जल में स्नान किया हुआ होकर उसके ही प्राशन से शुचि होता है ॥ १३ ॥ विसर्जन से पूर्व सर्व द्रव्य नैवेद्य कहा जाता है । जगन्नाथ देव के विसर्जित हो जाने पर तुरन्त वह सब निर्माल्य हो जाता है ॥ १४ ॥ इसके उपरान्त अती को प्रार्थना करनी चाहिए—हे अच्युत ! आपको मेरा नमस्कार है । मेरे समस्त पापों का क्षय हो जावे और मेरा पुण्य वृद्धि को प्राप्त होवे । मेरा ऐश्वर्य एवं धन आदि सब सर्वदा अक्षय होवे तथा मेरी सन्तति कभी क्षीणता को प्राप्त न होवे । जिस तरह अच्युत भगवान् आप पर से भी पर हैं और पर से पर ब्रह्मभूत परमात्मा हैं वही प्रकार से आप मेरे वाञ्छित को अच्युत कर दो जो भी मैंने वाञ्छित किया है । आप पापों के हरण करने वाले और अश्रमेय हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

अच्युतानन्त गोविन्द प्रसोद यदभीप्सितम् ।

अक्षयं माममेयात्मन्कुरुष्व पुरुषोत्तम ॥१७

सप्त वर्षाणि संपूज्य भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ।

अतन्तव्रतमोरुग्रास्ये नक्षत्रव्रतकेऽर्थदम् ॥१८

मार्गशीर्षे मृगशिरे गोमूत्राशी यजेद्दहरिम् ।

अतन्तं सर्वकामानामनन्तो भगवान्कलम् ॥१९

ददात्यनन्तं च पुनस्तदेवान्यत्र जन्मति ।

अनन्तपुण्योपगमं करोत्येतन्महाव्रतम् ॥२०

यथाभिलषितप्राप्तिं करोत्यक्षयमेव च ।

पादादि पूज्य नक्ते तु भुञ्जीयात्तैलवर्तम् ॥२१

धृतेनानन्तमुद्दिश्य होमो मासचतुष्टयम् ।

चैत्रादौ शालिना होमः पयसा श्रावणादिषु) ॥२२

मांधाताभूद्युवनाश्वादनन्तव्रतकात्सुतः ॥२३॥

हे अमेधात्मन् ! हे पुण्योत्तम ! हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे गोविन्द !
 आप मुझ पर प्रसन्न होवें और जो भी मेरा अभीप्सित है वह मुझे प्राप्त हो
 ॥ १७ ॥ इस प्रकार सात वर्ष भलो-भाति पूजन करके भुक्ति और मुक्ति व्रत
 को बताऊंगा ॥ १८ ॥ मार्गशीर्ष मास में गोभूत्र का अशन करने वाला
 भगवान् हरि का यजन करना चाहिए । भगवान् अनन्त समस्त कामनाओं
 का अनन्त फल देने वाले हैं ॥ १९ ॥ यह अनन्त भगवान् का पूजन अनन्त
 देता है और दूसरे जन्म में भी वह ही दिया करता है । यह महाब्रत अनन्त
 पुण्य का उपचय किया करता है ॥ २० ॥ यह व्रत जो भी कुछ इच्छित
 हो उसे देता है और उन दिये हुए को अक्षय किया करता है । पादादि का
 अर्चन कर के रात्रि में तैल मिश्रित पदार्थों का त्याग करना चाहिए ॥ २१ ॥
 भगवान् अनन्त देव का उद्देश्य करके घृत से चार मास तक होम करना
 चाहिए । चैत्रादि मास में होम करे और श्रावण आदि में पय से होम करना
 चाहिए ॥ २२ ॥ अनन्त भगवान् को ब्रत से यवनाश्व से मान्वाता पुत्र हुआ
 पा । ॥ २३ ॥

७५-दिवसव्रतानि ।

दिवसव्रतकं वक्ष्ये ह्यादौ धेनुव्रतं वदे ।
 यश्चोभयमखी दद्यात्प्रभूतकनकान्विताम् ॥१॥
 दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेत्स याति परमं पदम् ।
 न्यहं पयोव्रतं कृत्वा काञ्चनं कल्पपादपम् ॥२॥
 दत्त्वा ब्रह्मपदं याति कल्पवृक्षव्रतं स्मृतम् ।
 दद्याद्विशत्पलादूर्ध्वं महीं कृत्वा तु काञ्चनीम् ॥३॥
 दिनं पयोव्रतास्तिष्ठेद्द्रुगः स्याद्विवाव्रती ।
 पक्षे पक्षे त्रिरात्रं च भक्तेनैकेन यः क्षेपेत् ॥४॥
 विपुलं धनमाप्नोति त्रिरात्रव्रतकृदिनम् ।
 मासे मासे त्रिरात्राशी एकभक्ती गणेशताम् ॥५॥

यस्त्रिंशत् व्रतं कुर्यात्समुद्दिश्य जनादनम् ।
 कुलानां शतमादाय स याति भवनं हरेः ॥६॥
 नवम्यां च सिते पक्षे नरो मार्गशिरस्यथ ।
 प्रारभेत त्रिरात्राणां व्रतं तु विधिवद्व्रती ॥७॥
 ओं नमो वासुदेवाय सहस्रं वा शतं जपेत् ।
 अष्टम्यानेकभक्ताशी दिनत्रयमुपावसेत् ॥८॥

अग्नि देव ने कहा—अब दिवस व्रत मैं बताऊंगा और धादि में धेनु व्रत कहता हूं । जो प्रभूत सूचण से युक्त उभय मुखी को देवे ॥ १ ॥ दिन में तो पयोव्रत रख कर रहे परम पद को जाता है । इसी तरह तीन दिन पर्यंत पयोव्रत करके कश्चन निमित्त कल्प पादप का दान करे तो वह ब्रह्म पद को प्राप्त किया करता है । यह कल्प वृक्षव्रत कहा गया है । काश्चनी भूमि बनवा कर तीस पल से ऊपर का दान करना चाहिए । इस प्रकार पक्ष-पक्ष में तीन रात्रि तक जो एक भक्त से रहे वह विपुल (बहुत) धन की प्राप्ति किया करता है । तीन रात्रि व्रत करने वाला मास मगस में उत्पत्ति प्रत्येक महीना में तीन रात्रि में अन्न (भोजन) करने वाला एक भक्ताशी है वह गणेशता को प्राप्त करता है अर्थात् गणेश जैसा स्वरूप एवं शक्ति उसे प्राप्त हो जाती है ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ जो त्रिरात्र व्रत करे और भगवान् जनार्दन का उद्देश्य लेकर करे वह सौ कुलो को साथ लेकर हरि भगवान् के निवास स्थान को चला जाता है ॥ ६ ॥ शुक्ल पक्ष की नवमी को मार्ग शीर्ष मास में मनुष्य को यह व्रत विधि-विधान के साथ व्रती को प्रारम्भ करना चाहिए ॥ ७ ॥ " ॐ नमो वासुदेवाय " इस मन्त्र का एक सहस्र या एक माला जप करना चाहिए । अष्टमी तिथि में एक भक्त भोजन करते हुए तीन दिन तक उपवास करना चाहिए ॥ ८ ॥

द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं कार्तिके कारयेद्व्रतम् ।
 विप्रान्संभोज्य वस्त्राणि शयनान्यासनानि च ॥९॥
 छत्रोपवीतपात्राणि ददत्संप्रार्थयेदद्विजान् ।
 यत्तेऽस्मिन्दुष्करे चापि विकलं यदभून्मम ॥१०॥

पीकर फिर दही के आहार वाला उपोषित रहे । कार्तिक में एकादशी तिथि में यह कुच्छ भस्कर नाम वाला व्रत होता है जो धन देने वाला है ॥ १५ ॥ यथागू-यावक-शाक-दही-दूध-घृत और जल पञ्चमी आदि तिथि में कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में लेवे तो यह व्रत कुच्छ सान्तपन नाम वाला कहा गया है ॥ १६ ॥

१६ मासव्रतानि

मासव्रतकमाख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
 आपाढादिचतुर्मासमभ्यङ्गं वर्जयेत्सुधीः ॥१॥
 वंशाखे पुष्पलवणं त्यक्त्वा गोदो नृपो भवेत् ।
 गोदो मासोपवासी च भीमव्रतकरो हरिः ॥२॥
 आपाढादिचतुर्मासं प्रातः स्नायी च विष्णुगः ।
 माघे मास्यथ चंजे वा गुडधेनुप्रदो भवेत् ॥३॥
 गुडव्रतस्तृतीयायां गौरीशः स्यान्महाव्रती ।
 मार्गशीर्षादिमासेषु नक्तकृद्विष्णुलोकभाक् ॥४॥
 एकभक्तव्रती तद्वदद्वादशीव्रतकं पृथक् ।
 फलव्रती चतुर्मासं फलं त्यक्त्वा प्रदापयेत् ॥५॥
 श्रावणादिचतुर्मासं व्रतैः सर्वं लभेद् व्रती ।
 आपाढस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ॥६॥
 चातुर्मास्यव्रतानां तु कुर्वीत परिकल्पनम् ॥७॥
 आपाढ्यां चाथ सक्रान्तो कर्कटस्य हरिं यजेत् ॥८॥
 इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव ।
 निविघ्नां सिद्धिमायातु प्रसन्ने त्वयि केशव ॥९॥

श्री अग्नि देव ने कहा—अब मैं भुक्ति और मुक्ति दोनों का प्रदान करने वाला मास व्रत को बताऊँगा । आपाढ मास से आरम्भ कर चार मास तक (चातुर्मास्य में) विद्वान् पुरुष को तैल-उबटना आदि अभ्यङ्ग का त्याग कर देना चाहिए ॥ १ ॥ वंशाख मास में पुष्प और लवण का त्याग करके

गायका दान करने वाला राजा होता है । गाय का दान करने वाला और एक मास तक उपवास करने वाला भीम (भीष्म) व्रत करने वाला हरि होता है ॥ २ ॥ आषाढ़ से आदि लेकर चानुर्मास तक प्रातःकाल में स्नान करने वाला विष्णु लोक से गमन करने वाला होता है । माघ मास में अथवा चैत्र मास में गुह तथा धेनुका प्रदान करने वाला होता चाहिए । इन तरह गुहव्रत करने वाला महाव्रती तृतीया में करे तो गौरीश होता है । तात्पर्य यह है कि शिव के समान हो जाता है । मार्गशीर्ष आदि मासों में रात्रि का व्रत करने वाला विष्णु लोक को सेवन करने वाला होता है ॥३१॥ एक भक्त व्रत वाला और उत्ती नाति पृषक् द्वादशी का व्रत तथा फलों के व्रत वाला चानुर्मास में फल का त्याग कर उन्हें खिलाना चाहिए ॥ ५ ॥ अथवा से आदि लेकर चार मास तक व्रतों के द्वारा व्रत करने वाला सब का लाभ दिया करता है । आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष में एकादशी में उपोषित रहते हुए चानुर्मास को व्रतों का परि कल्पन करे । आषाढ़ी में और कर्कशी सृजान्ति में भगवान् हरि का भजन करना चाहिए ॥ ६ ॥ ७ ॥ हरि के भजन के उपरान्त निवेदन करे कि हे देव ! आपके समक्ष में मैंने यह व्रत ग्रहण किया है इसकी सिद्धि बिना किसी विघ्न बाधा के हे केशव ! आपके प्रसन्न होने पर हो जावे ॥ ८ ॥

गृहीतेऽस्मिन्द्रते देव यद्य पूर्णं त्रिये ह्यहम् ।

तन्मे भवतु संपूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥६

मांसादि त्यक्त्वा विप्रः स्यात्तनत्यागो हरि यजेत् ।

एकान्तरोपवासी च त्रिरात्रौ विष्णुलोकमाक् ॥१०

चान्द्रायणी विष्णुलोको मौनी स्यान्मुक्तिमाजनम् ।

प्राजापत्यव्रती स्वर्गो सक्तु यावकमक्षकः ॥११

दुग्धाद्याहारवान्स्वर्गो पञ्चगव्याम्बुमुक्तया ।

शाकमूलफलाहारो नरो विष्णुपुरी व्रजेत् ॥१२

मांसवर्जो यथाहारो रसवर्जो हरि व्रजेत् ।

कीमुद्व्रतमाख्यास्ये आश्विने सप्तोपोषितः ॥१३

द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं प्रलिप्याब्जोत्पलादिभिः ।

धृतेन तिलतैलेन दीपनैर्वचमर्पयेत् ॥१४॥

ओं नमो वासुदेवाय मालत्या मालया यजेत् ।

धर्मं का कामार्थमोक्षांश्च प्राप्नुयात्कोमुदव्रती ॥१५॥

सर्वं लभेद्धरिं प्रार्च्य मासोपवासकव्रती ॥१६॥

हे देव ! इस व्रत के ग्रहण करने पर फिर इसके पूर्ण न होने पर मैं यदि बीच में ही मर जाऊँ तो हे जनार्दन ! मेरी यह भापके चरणों में प्रार्थना है कि भाप के प्रसाद से वह सम्पूर्ण हो जाना चाहिए अर्थात् अपूर्ण रहने पर उसका पूर्ण फल प्राप्त हो जावे ॥ ६ ॥ मास आदि दूषित वस्तुओं का त्याग करके ब्राह्मण को तैल के प्रयोग को भी त्याग देना चाहिए और हरि का यजनार्चन करे । एकान्त स्थल में रहे तथा उपवास करे । इस तरह तीन रात्रि तक करे तो वह विष्णु लोक जाने का अधिकारी हो जाता है ॥ १० ॥ जो चाण्डाल्य व्रत करता है वह भी विष्णु लोक वासी होता है । जो मोन होकर रहता है व मोक्ष का अधिकारी होता है । प्राजापत्य व्रत करने वाला स्वर्गगामी होता है । तक्तु और यावक का खाने वाला और दुग्ध आदि के आहार करने वाला तथा पञ्चगव्य और जल का आहार करने वाला भी स्वर्ग निवास प्राप्त करता है । शाक तथा मूल एवं फल का आहार करने वाला मनुष्य विष्णु लोक को जाता है ॥ ११ ॥ १२ ॥ मास का त्याग कर और जो का आहार करने वाला तथा रसों को व्रजित करने वाला हरि के लोक को प्राप्त करता है । अब कोमुद व्रत को बताया जाता है जो आश्विन मास में ताम्रोपनि होकर किया जाता है । कमल उत्पल आदि से प्रलेखन करके द्वादशी तिथि में भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए । घृत घण्टा तिलों के तैल के द्वारा दीप बनावे और मंदित तमपित करे । 'ओं नमो वासु देवाय'—इस मन्त्र के द्वारा मालती का धाला से यजन करना चाहिए । इस प्रकार से कोमुद नामक व्रत करने वाला पुरण धर्म-घण्ट-नाम और मोक्ष चारों पदार्थों की प्राप्ति किया करता है । एवमस्य तथा उपवास का व्रत लेने वाला पुरण

भगवान् हरि का अर्चन करके सभी कुछ का लाभ प्राप्त करता है ॥१३॥१४॥
॥ १५ ॥ १६ ॥

११ नानाव्रतानि

ऋतुव्रतान्यहं वक्ष्य भुक्तिमुक्तिप्रदानि ते ।
इन्धनानि तु यो दद्याद्वर्षादिचतुरो हृतान् ॥१॥
घृतधेनुप्रदश्चान्ते ब्राह्मणोऽग्निव्रती भवेत् ।
कृत्वा मौन तु संध्यायां मासान्ते घृतकुम्भदः ॥२॥
तिलघण्टावस्त्रदाता सुखी सारस्वतव्रती ।
पञ्चामृतेन स्नपन कृत्वाऽब्दे घेनुदो नृपः ॥३॥
एकादश्यां तु नक्ताशी चैत्रे भक्तं निवेदयेत् ।
हैमं विष्णोः पदं याति मासान्ते विष्णुसद्व्रती ॥४॥
पायसाशी गायुगदः श्रीभागदेवीव्रती भवेत् ।
निवेद्य पितृदेवेभ्यो यो भुङ्क्ते स भवेन्नृपः ॥५॥
वर्षव्रतानि चोक्तानि संक्रान्तिव्रतकं वदे ।
संक्रान्ती स्वर्गलोकी स्याद्रात्रिजागरणान्नदः ॥६॥

अब नाना प्रकार के व्रतों के विषय में बताते हैं । अग्नि देव ने कहा—
भोगों और मोक्ष के देने वाले ऋतु व्रतों को तुमको बतलाऊँगा । जो वर्षा
आदि चार ऋतुओं में इन्धन का दान किया करता है और अन्त में घेनु का
प्रदान करता है वह ब्राह्मण अग्नि के व्रत वाला होता है । मौन व्रत धारण
कर मास के अन्त में सन्ध्या के समय में घृत का पूर्ण कुम्भ देता है, तिल,
घण्टा, वस्त्रों का दान करने वाला पुरुष परम सुखी होता है और सारस्वत
व्रती होती है । पञ्चामृत से स्नपन करके एक वर्ष पर्यन्त घेनु के दान करने
वाला राजा होता है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ एकादशी तिथि में रात्रि में अन्न
करने वाला चैत्र मास में हैम भक्त को निवेदन करे तो मास के अन्त में वह
विष्णु का सद्व्रत करने वाला विष्णु के पद को जाया करता है ॥ ४ ॥
पायस (दही) का अन्न (भोजन) करने वाला और दो गायों का दान

७८ दीपदानव्रतम्

दीपदानव्रत वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
 देवद्विजातिकगृहे दीपदोऽब्दं स सर्वभाक् ॥१॥
 चानुमतिं विष्णुलोकी कार्तिके स्वर्गलोकापि ।
 दीपदानात्परं नास्ति न भूतं न भविष्यति ॥२॥
 दीपेनाऽऽयुश्च चक्षुष्मान्दीपाल्लक्ष्मीसुतादिकम् ।
 सौभाग्यं दीपदः प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥३॥
 विदमं राजदुहिता ललिता दीपदानभाक् ।
 चारुघमंश्मापपत्नी शतभार्यादिकाऽभवत् ॥४॥
 ददौ दीपसहस्रं सा विष्णोरायतने सती ।
 पृष्टा सा दीपमाहात्म्यं सपत्नीभ्य उवाच ह ॥५॥
 सोदोरराजस्य पुरा मंत्रयोऽभूत्पुरोहितः ।
 तेन चाऽऽयतनं विष्णोः कारितं देविकातटे ॥६॥
 कार्तिके दीपकस्तेन दत्तः सप्रेरितो मया ।
 वक्त्रप्रान्तेन नश्यन्त्या मार्जारस्य तदा भयात् ॥७॥
 निर्वाणवान्प्रदीप्तोऽभूद्धृत्या मृषिकया तदा ।
 मृता राजात्मजा जाता राजपत्नी शताधिका ॥८॥

श्री अग्निदेव ने कहा—अब मैं भुक्ति और मुक्ति के प्रदान करने वाला दीपदान के व्रत को बतलाता हूँ । देवों और द्विजातियों के घर में दीपदान करने वाला तुरन्त समस्त पदार्थों के प्राप्त करने वाला होता है ॥१॥ यह दीपदान चानुमति में करने वाला पुराण विष्णु लोक में जाने वाला तथा केवल कार्तिक मास में करने वाला स्वर्ग लोक में गमन करने वाला होता है । दीपदान का बहुत बड़ा माहात्म्य होता है । ऐसा दान है कि जो न दृष्टा और न श्रोता ॥२॥ दीप के दान से आयु बढ़ती या प्राप्त होती है, दीपदान से नेत्रों की उज्ज्वलता की प्राप्ति एवं रक्षा होती है, दीपदान से मकड़ी की वृद्धि तथा प्राप्ति दृष्टा करती है और सुत घादि का भी नाश होता है । दीपदान करने वाला

करने वाला पुरुष श्री भाग्येश्वी के व्रत वाला होता है। वह पितृगण और देव-
ताम्रों को निवेदन करके भोजन किया करता है वह राजा होता है ॥ ५ ॥ ये
पूरे वष पर्यन्त करने वाले व्रत अब मैंने बतला दिये हैं। अब संक्रान्ति में किये
जाने वाला व्रत बतलाता हूँ। संक्रान्ति के दिन रात्रि है ॥ ६ ॥

अमावस्या तु संक्रान्तौ शिवार्कयजनात्तथा ।
उत्तरे त्वयने चेज्यः प्रातःस्नानेन केशवम् ॥७॥
द्वात्रिंशत्पलमानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
घृतक्षीरादिनाऽऽस्नाप्य प्राप्नोति विपुवादिषु ॥८॥

अमावस्या तिथि में संक्रान्ति में भगवान् शङ्कर और सूर्यदेव का याज-
नार्चन करने से तथा उत्तरायण सूर्य के होने के समय में इज्या करे औष प्रातः
बाल में स्नान करे और केशव का बत्तीस पल के मान द्वारा पूजन करे तो
समस्त प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है। घृत और क्षीर क्षीर आदि से
स्नान करा के विपुवाद में प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

‘श्रीणामुमाव्रतं श्रीदं तृतीयास्वष्टमीषु च
गौरीं महेश्वरं चापि यजेत्सौभाग्यमाप्नुयात् ॥९॥
उमामहेश्वरी प्राच्यं ध्वियोगादि चाऽऽप्नुयात् ।
भूलव्रतकरी स्त्री च उमेशव्रतकारिणी ॥१०॥
सूर्यभक्ता तु या नारी ध्रुवं सा पुरुषो भवेत् ॥११॥

स्त्रियों का उमाका व्रत श्री का देने वाला होता है। तृतीया और
षष्टमी तिथियों में गौरी और महेश्वर का जो यजन किया करती है वह सौभाग्य
को प्राप्ति करती है ॥ ९ ॥ उमा और महेश्वर दोनों का पूजन करने वाली
कभी भी पति का विषाण आदि प्राप्त नहीं किया करती है। भूल व्रत करने
वाली स्त्री उमेश के व्रत करने वाली होती है ॥ १० ॥ जो नारी सूर्य की भक्त
होती है वह निश्चय ही पुरुष हुआ करती है अर्थात् पण्डित जग में वह पुरुष
के रूप में उत्पन्न होती है ॥ ११ ॥

७८ दीपदानव्रतम्

दीपदानव्रत वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
 देवद्विजातिकगृहे दीपदोऽब्दं स सर्वभाक् ॥१॥
 चातुर्मासे विष्णुलोकी कार्तिके स्वर्गलोक्यपि ।
 दीपदानात्परं नास्ति न भूतं न भविष्यति ॥२॥
 दीपेनाऽऽयुश्च चक्षुष्मान्दीपाल्लक्ष्मीसुतादिकम् ।
 सौभाग्यं दीपदः प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥३॥
 विदर्भराजदुहिता ललिता दीपदानभाक् ।
 चारुधर्मक्षमापत्नी शतभार्यादिकाऽभवत् ॥४॥
 ददौ दीपसहस्रं सा विष्णोरायतने सती ।
 पृष्टा सा दीपमाहात्म्यं सपत्नीम्य उवाच ह ॥५॥
 सौवीरराजस्य पुरा मंत्रेयोऽभूत्पुरोहितः ।
 तेन चाऽऽयतनं विष्णोः कारितं देविकातटे ॥६॥
 कार्तिके दीपकस्तेन दत्तः सप्रेरितो मया ।
 वक्त्रप्रान्तेन नश्यन्त्या मार्जारस्य तदा भयात् ॥७॥
 निर्वाणवान्प्रदीप्तोऽभूद्वर्त्या मूषिकया तदा ।
 मृता राजात्मजा जाता राजपत्नी शताधिका ॥८॥

श्री अग्निदेव ने कहा—घर में भुक्ति और मुक्ति के प्रदान करने वाला दीपदान के व्रत को बतलाता हूँ । देवी और द्विजातियों के घर में दीपदान करने वाला तुरूप समस्त पदार्थों के प्राप्त करने वाला होता है ॥१॥ यह दीपदान चातुर्मास में करने वाला पुरुष विष्णु लोक में जाने वाला तथा केवल कार्तिक मास में करने वाला स्वर्ग लोक में गमन करने वाला होता है । दीपदान का बहुत बड़ा माहात्म्य होता है । ऐसा दान है कि जो न हूमा और न होगा ॥२॥ दीप के दान से आयु बढ़नी या प्राप्त होती है, दीपदान से नेत्रों की उद्योति की प्राप्ति एवं रक्षा होती है, दीपदान से लक्ष्मी की वृद्धि तथा प्राप्ति हूमा करती है और सुख प्रादि या भी लाभ होता है । दीपदान करने वाला

स्त्री हो या पुरुष सौभाग्य को प्राप्त करता है और अन्त में स्वर्ग में जाकर प्रति-
ष्ठित होता है ॥३॥ विदर्भ देश के राजा की पुत्री ललिता दीपदान करने वांछी
थी तथा चारुधर्म नामक भूपति की पत्नी शतभार्या आदि हुई थी ॥ ४५ ॥
उस सती ने भगवान् विष्णु के भालय में एक सहस्र दीपों का दान किया था ।
जब उससे दीपों के दान करने का माहात्म्य पूछा गया तो उसने अपनी सप-
नियों से कहा, ललिता बोली—पहिले पुराने समय में सौवीर देश के राजा
का पुरोहित मंत्रेय हुआ था । उसने देविका के तट पर विष्णु का देवालय
अर्थात् मन्दिर बनवाया था ॥६॥ मेरे द्वारा प्रेरणा प्राप्त करने वाले उसने
कार्तिक मास में दीपदान किया था । उस समय में मुख की ओर से नष्ट होने
वाली बत्ती से मार्जार (बिल्ली) के भय से खुहिया के द्वारा वह दीप निर्वाण
वाला प्रदीप्त हो गया था । इसका फल यह हुआ कि वह मरकर राजा की
बेटी हुई और शताधिका राजा की पत्नी हुई थी ॥७॥

असंकल्पितमप्यस्य प्रेरणं यत्कृतं मया ।

विष्णवायतनदीपस्य तस्मैदं भुज्यते फलम् ॥८॥

जातिस्मरा ह्यतो दीपान्प्रयच्छामि त्वहर्निशम् ।

एकादश्यां दीपदो वं विमाने दिवि मोदते ॥९॥

जायते दीपहर्ता तु मूको वा जड एव च ।

अन्धे तमसि दुष्पारे नरके पतते किल ॥१०॥

विक्रोशमानांश्च नरान्यमकिकर आह तान् ।

विलापैरलमत्रापि किं वो विलपिते फलम् ॥११॥

यदा प्रमादिभिः पूर्वमत्यन्तसमुपेक्षितः ।

जन्तुर्जन्मसहस्तेभ्यो ह्येकस्मिन्मानुषो यदि ॥१२॥

तत्राप्यतिविमूढात्मा किं भोगानभिधावति ।

स्वहितं विषयास्वादः क्रन्दनं तदिहाऽऽगतम् ॥१३॥

असंकल्पित इसकी प्रेरणा मैंने की थी । विष्णु के मन्दिर में दीप
जलाने का यह फल भोगा जाता है ॥८॥ इसलिये जाति स्मरा अहर्निश (रात-

दिन) दीपों को देती हैं। एकादशी तिथि में दीपों का दान करने वाला पुरुष विमान में बैठकर स्वर्ग लोक में भानन्द प्राप्त किया करता है ॥१०॥ जो कोई दीपों का हरण किया करता है वह या तो मूक (गूँगा) होता है या जड़ (अत्यन्त मूर्ख) हुआ करता है और वह महा कठिन अन्ध तमस नामक नरक में जाकर निश्चय ही गिरता है ॥११॥ वही नरक की यातनाओं को भोगने में रोते-चीखते हुए मनुष्यों से यम के दूत कहते हैं—यहाँ रुदन मत करो—यहाँ विलाप करने का क्या फल होगा अर्थात् अब रोने-पीटने से इस दुःख से छुटकारा नहीं हो सकता है। यहाँ तो किये हुए पापों का फल तुम्हें भोगना ही होगा ॥१२॥ जब पहिले प्रमाद करने वालों के द्वारा यह जीव अत्यन्त समुपेक्षित हो जाता है और सहस्रों जन्म निकल जाया करते हैं फिर यदि एक मनुष्य जन्म प्राप्त कर यह मानव एक जन्म में भी विमूढ़ात्मा आकर भोगों की ओर ही दोड़ लगाता है तो विषयों के आस्वाद्यों से अपने हित का नाश कर देता है और उन पापों का फल भोगने के लिये यहाँ आकर रोता है ॥१३॥१४॥

भुज्यते च कृतं पूर्वमेतत्किं वो न चिन्तितम् ।

परस्त्रीषु कुचाम्पङ्गं प्रीतये दुःखदं हि वः ॥१५

मुहूर्तं विषया वादोऽनेककोट्यब्ददुःखदः ।

परस्त्रीहारि यद्गीतं हा मातः किं विलप्यते ॥१६

कोऽतिभारो हरेर्नामि जिह्वया परिकीर्तने ।

वर्तितैलेऽल्पमृत्येऽपि यदग्निलंभ्यते सदा ॥१७

दानाशक्तं हरेर्दीपो हृतस्तद्वोऽतिदुःखदम् ।

इदानीं किं विलापेन सहध्वं यदुपागतम् ॥१८

ललितोक्तं च ताः श्रुत्वा दीपदानादिवं ययुः ।

तस्माद्दीपप्रदानेन व्रतानामधिकं फलम् ॥१९

यह सब पहिले अपने किये हुए कर्मों का फल भोगा जाता है, क्या तुमने कभी यह नहीं विचार किया है। पराई स्त्रियों के कुचों का अम्पङ्ग करना उस समय प्रीति उत्पन्न करता है किन्तु वह आप भोगों को दुःख देने वाला ही परिणाम में हुआ करता है ॥१५॥ एक मुहूर्त (घड़ी) भर तक जो

विषय का जायका होता है वह अनेक करोड़ों वर्ष तक दुःख देने वाला होता है । पराई स्त्री का हरण करने वाला जो गीत है अब हाय भैया !—ऐसा कहकर क्यों विलाप करते हो ? ॥१६॥ अन्य बहुत से विषय रस के गान तो किया जाता है किन्तु इस जीभ से भगवान् के नाम का कीर्तन नहीं किया जाता है, क्या हरि के नाम लेने में कुछ बोझ मालुम होता है ? बहुत ही भ्रष्टमूल्य वाले बत्ती के तेल में जो सदा अग्नि प्राप्त किया करता है । दीपों का स्वर्ण तो दान करने में असमर्थ है किन्तु दूसरों के किये हुए दीपों का हरण करता है जो कि हरि के लिये दीपदान किया जाता है वह अत्यन्त दुःख देने वाला होता है । इसलिये अब विलाप करने से क्या फल है ? अब तो जो भी तुमने किया उसका फल सहन करो ॥१७॥१८॥ अग्नि ने कहा—उन सपत्नियों ने सलिता के कथन को सुनकर दीपदान से स्वर्ण की प्राप्ति की थी । इसलिये दीप प्रदान करने का फल व्रतों से भी अधिक होता है ॥१९॥

७६—पुष्पवर्गकथनम्

पुष्पगन्धधूपनंवेद्यं स्तुष्यते हरिः ।
 पुष्पाणि देवयोग्यानि ह्ययोग्यानि वदामि ते ॥१॥
 पुष्पं श्रेष्ठं मालती च तमालो भुक्तिमुक्तिमान् ।
 मल्लिका सर्वपापघ्नी यूथिका विष्णुलोकदा ॥२॥
 अतिमत्तमयं तद्वत्पाटला विष्णुलोकदा ।
 करवीरोविष्णुलोकी जपापुष्पंश्च पुण्यवान् ॥३॥
 पावन्तीकुब्जकार्द्यंश्च तगरंविष्णुलोकभाक् ।
 कर्णिकारंविष्णुलोकः कुरुरैः पापनाशनम् ॥४॥
 पद्मंश्च केतकीभिश्च कुन्दपुष्पं परा गतिः ।
 वारुणपुष्पैर्वंद्यराभिः कृष्णाभिर्हंरिलोकभाक् ॥५॥
 अशोकंस्तिलकंस्तद्वद्वानरूपमवैस्तथा ।
 मुक्तिभागी विल्वपत्रैः परा गतिः ॥६॥

विष्णुलोकी भृङ्गराजैस्तमालस्य दलैस्तथा ।

तुलसी कृष्णगीराख्या कल्हारोत्पलकानि च ॥७॥

विष्णुलो की भृङ्गराजैस्तमालस्य दलैस्तथा हरिः ।

नीपाजु नकदम्बैश्च वकुलैश्च सुगन्धिभिः ॥८॥

अब पुष्प वर्ग के विषय में कथन किया जाना है । अग्नि देव ने कहा—
पुष्प-गन्ध-धूप-दीप और नैवेद्य इनके द्वारा भगवान् हरि सन्तुष्ट हुआ करते हैं ।
देवता के योग्य जो पुरुष होते हैं उन्हें और जो देव पूजन के योग्य होते हैं
उन्हें बताता हूँ ॥१॥ मालती का पुष्प श्रेष्ठ माना जाता है । तमाल का पुष्प
भोग और मोक्ष दोनों का देने वाला है । मल्लिका लता के पुष्प ममस्त प्रकार
के पापों का नाश करने वाले हैं । यूषिका के पुष्प विष्णु लोक को प्रदान करते
हैं ॥१-२॥ उसी प्रकार अति भक्तमय होता है । पाटला के पुष्प विष्णु लोक
के देने वाले हैं । काणिकार पुष्पों से विष्णु लोक को प्राप्त होता है । जपा के
पुष्पों से मानव पुण्यवान् होता है ॥३॥ पावनी और कुम्भादि के द्वारा तथा
तकार के पुष्पों से विष्णु लोक मिलता है । कणिकार फूलों से विष्णु लोक
प्राप्त होता है तथा कुरण्ड पुष्पों से पापों का नाश होता है ॥४॥ पद्मों से—
केतकी पुष्पों से और कुन्द के फूलों के द्वारा देव पूजन करने से परागमति होती
है । वाण पुष्प-वर्षस पुष्प तथा इनके पुष्पों से हरिलोक का सेवन करने वाला
होता है ॥५॥ अशोक-तिलक-वृद्धाट रूप सम्भव पुष्पों से मुक्ति की प्राप्ति हुआ
करती है । विल्व पत्र और रामी पत्र से परागमति होती है ॥६॥ भंगु राजा के
पुष्पों के चढ़ाने से तथा तमाल दलों से विष्णु लोकी होता है । तुलसी श्यामा
और गौर दो प्रकार की होती है ये दोनों तरह की केदल और कल्हार उत्पलों
से भी विष्णु लोक से भी हो जाता है ॥७॥ भगराज और तमाल के दलों से
भी हरि की प्राप्ति होती है । कदम्ब-घञ्जुन और नीप तथा सुगन्धित वकुनों
के द्वारा भी हरि प्रसन्न होते हैं ॥८॥

किमुर्कमुनिपुष्पैस्तु गोकर्णैर्नागवर्णकैः ।

मध्यापुष्पैर्विल्वतक्रै रञ्जनीकेतकीमवैः ॥९॥

कूष्माण्डतिमिरोत्थंश्च कशकाशसरोद्भवः ।

द्यूतादिभिर्महवकैः पञ्चरन्यैः सुगन्धकैः ॥१०॥

भुक्तिमुक्तिः पापहानिर्भक्त्या सर्वे स्तु तुष्यति ।

स्वर्णलक्षाधिकं पुष्पं माला कोटिगुणाधिकम् ॥११॥

स्ववनेऽन्यवने पुष्पेस्त्रिगुणं वनजैः फलम् ।

विशोऽर्चयेद्विष्णुं नाधिकाङ्गं न मोदितैः ॥१२॥

काञ्चनोरस्तयोन्मत्तोऽगिरिकाणिकया तथा ।

कटजं शाल्मलीयंश्च शिरोर्वनरकादिकम् ॥१३॥

सुगन्धं ब्रह्मपद्मंश्च पुष्पं नीलोत्पलं हरिः ।

अकमन्दारघत्तूरकुसुमैरर्च्यते हरः ॥१४॥

कटजैः कर्कटीपुष्पैः केतकीं न शिवे ददेत् ।

कूष्माण्डनिम्बसंभूतं पेशाचं गन्धवर्जितम् ॥१५॥

अहिंसा इन्द्रियजयः क्षान्तिर्ज्ञानं दया श्रुतम् ।

भावाष्टपुष्पैः स पूज्य देवान्स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक् ॥१६॥

विशुद्ध (ढाक) मुनिपुष्प-भोकरणं-नागकरणं-सन्ध्यापुष्प-विल्व-तक्र-
रञ्जनी-केतकी-कूष्माण्ड-तिमिर-कुश-काश-सरोदभव-द्यूतादि-मह-वक इनको
पुष्प दलों से जो कि सुगन्ध युक्त हैं, यजनार्चन करने से समस्त सांसारिक सुखों
के उन्मोग तथा मुक्ति की प्राप्ति होती है और पापों की हानि होती है । भक्ति
के साथ उक्त समस्त प्रकार के पुष्पादि से भगवान् सन्तुष्ट हुआ करते हैं । सुवर्ण
लक्ष से अधिक पुष्प का फल होता है और माला का करोड़ गुण अधिक फल
होता है ॥१०-११॥ अपने वन में तथा अन्य वन में जो पुष्पों हों उनसे भी
अधिक वनजों का फल होता है । जो पुष्प विशोऽर्च (दृष्टे कुचले) हों उनसे
विष्णु का अर्चन नहीं करना चाहिए । जिनमें अधिक अंग हो उनसे तथा जो
मोदित हों उनसे भी अर्चन नहीं करे ॥१२॥ काञ्चजासार-उन्मत्त-गिरिकाणिक
कटज-शाल्मलीय और शिरीष इनसे नरकादि का अर्चन करे । जो सुगन्ध युक्त
ब्रह्म पद्म नीलोत्पल पुष्प हों उनसे हरि का अर्चन करे । अक-मन्दार-घत्तूर
इनके पुष्पों से शिव का अर्चन किया जाता है अन्य देव का नहीं ॥१३-१४॥

कुटज और कंकरी के पुष्पों से तथा केतकी के पुष्पों से कभी शिव का अर्चन नहीं करना चाहिए । कूष्माण्ड और निम्ब सम्भूत तथा गन्ध रहित पुष्प वैशाच होते हैं ॥१५॥ अहिंसा-इन्द्रिय-जय-शान्ति-दया श्रुत-भाव—इन आठ प्रकार के पुष्पों के द्वारा देवता का यजनार्चन कर मानव भोगों के मुक्त और मुक्ति दोनों का प्राप्त किया करता है ॥१६॥

अहिंसा प्रथमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः ।

सर्वपुष्पं दया भूते पुष्पं शान्तिविशिष्यते ॥१७॥

शमः पुष्पं तपः पुष्पं ध्यानं पुष्पं च सप्तमम् ।

सत्यं चैवाष्टमं पुष्पमेतैस्तुष्यति केशवः ॥१८॥

एतैरेवाष्टभिः पुष्पैस्तुष्यत्येवाचितो हरिः ।

पुष्पान्तराणि सन्त्यत्र बाह्यनिः मनुजोत्तम ॥१९॥

भक्त्या दयान्वितैर्विष्णुः पूजितः परितुष्यति) ।

चारुणं सलिलं पुष्पं सौम्यं घृतपयोदधि ॥२०॥

प्राजापत्यं तथाऽग्रादि आग्नेयं धूपदीपकम् ।

फलपुष्पादिकं चैव वानस्पत्यं तु पञ्चमम् ॥२१॥

पायित्वं कुसुमलाघवं वायव्यं गन्धचन्दनम् ।

अद्वाक्ष्यं विष्णुपुष्पं च सर्वदा चाष्टपुष्पिका ॥२२॥

आसनं मूर्तिपञ्चाङ्गं विष्णुर्वा चाष्टपुष्पिकाः ।

विष्णोस्तु वासुदेवाद्यं रोशानाद्यैः शिवस्य वा ॥२३॥

अहिंसा यह सबसे प्रथम एवं श्रेष्ठ पुष्प होता है—इसके अनन्तर

इन्द्रियों को संयम में रखना यह पुष्प है जिसकी देवार्चन करने के समय नितांत आवश्यकता होती है । प्राणिमात्र पर दया रगना यह सब श्रेष्ठ पुष्प है । शान्ति को प्राप्त तथा हृदय में रखना यह भी एक विशेष प्रकार का पुष्प है जो कि देवता का अर्चन करने के समय में याज्ञिक के हृदय में रखना बहुत ही जरूरी है ॥१७॥ शम-तप और ध्यान से भी परमश्रेष्ठ एवं अत्यावश्यक पुष्प के समान होते हैं । शम-तप और ध्यान पुष्प होता है । पायित्व पुष्प जो भी, स्नान, अर्घ्य गंध है उनके अतिरिक्त इन आठ प्रकार के पुष्पों को परम आवश्यकता

देव के अर्चन में होती है । इन भावात्मक पुष्पों से भगवान् वेशव बहुत ही सन्तुष्ट होते हैं । अर्चक को इन पुष्पों की बहुत ही अधिक आवश्यकता होती है ॥ १८ ॥ इन आठ प्रकार के भावस्वरूप पुष्पों से अर्चित हरि निश्चय ही सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हुआ करते हैं । हे मनुजों में श्रेष्ठ ! अन्य पुष्प तो यहाँ अर्चन में वाह्य होते हैं, परम मुख्य पुष्प तो यह आन्तरिक पुष्प ही होते हैं ॥ १९ ॥ भक्ति के साथ दया से युक्त इन पुष्पों से पूजित भगवान् विष्णु परितुष्ट हुआ करते हैं । वारुण जल पुष्प है और धृत-पार और दधि सोम्य पुष्प है ॥ २० ॥ अन्न आदि प्राजापत्य हैं तथा धूप और दीप आग्नेय होते हैं । फल और पुष्पादि वानस्पत्य पाँचवें पुष्प हैं ॥ २१ ॥ कुश मूल आदि पार्थिव पुष्प हैं । गन्ध चन्दन वायव्य पुष्प कहे जाते हैं । श्रद्धा—इस नाम वाला पुष्प विष्णु पुष्प होता है । इस नाम वाला पुष्प विष्णु पुष्प होता है । इस प्रकार से देवार्चन में ये आठ प्रकार के पुष्प हुमा करते हैं ॥ २२ ॥ आसन मूर्ति मन्त्राङ्ग अथवा विष्णु यह भी अष्ट पुष्पिका है । विष्णु-वासुदेवादि-ईशा आदि अथवा शिव इन सबके ही अर्चन में यह अष्ट पुष्पिका होती है ॥ २३ ॥

८०—नरकस्वरूपम्

पुष्पाद्यैः पूजनाद्विष्णोर्न याति नरकान्वदे ।
 आयुषोऽन्ते नरः प्राणैरनिच्छन्नपि मुच्यते ॥१॥
 जलमग्निविषं शस्त्र क्षुब्ध्वाधिः पतनं गिरेः ।
 निमित्तं किञ्चिदासाद्य देही प्राणैर्विमुच्यते ॥२॥
 अन्यच्छरीरमादत्ते यातनीयं स्वकर्मभिः ।
 भुङ्क्तेऽप्य पापकृद्दुःखं सुखं धर्माय सगतः ॥३॥
 नीयते यमदूतैस्त यमं प्राणिमयंकरेः ।
 कुपये दक्षिणद्वारि धार्मिकः पश्चिमादिभिः ॥४॥
 यमाज्ञप्तैः किकरैस्तु पात्यते नरकेषु च ।
 स्वर्गे तु नीयते धर्माद्विसिंहाद्युक्तिसंश्रयात् ॥५॥
 गोघाती तु महावीर्यां वर्षलक्षं तु पीडयते ।
 ताम्रकुम्भे महादीप्ते ग्रहाहा भूमिहारकः ॥६॥

महाप्रलयक यावद्रौरवे पीड्यते शनैः ।

स्त्रीवालवृद्धहन्ता तु यावदिन्द्राश्रतुर्दश ॥७॥

महारौरवके रौद्रे गृहक्षेत्रादिदीपकः ।

दह्यते कल्पमेक स चौरस्तामिस्रके पतेत् ॥८॥

अब नरकों के स्वरूप का वर्णन किया जाता है । अग्नि देव ने कहा—
 भगवान् विष्णु के पुष्प आदि के द्वारा पूजन करने से मनुष्य नरकों में नहीं
 जाता है—यह मैं अब बताता हूँ । जब मानव की यहाँ की जीवन-यात्रा समाप्त
 होने वाली होती है और आयु की समाप्ति हो जाती है तो आयु के अन्त में
 मनुष्य की इच्छा इस सांसारिक शरीर के न छूँड़ने की इच्छा होने हुए भी उसे
 यह छोड़ ही देना पड़ता है ॥१॥ मानव के इस पार्थिव देह के छोड़ने के कुछ
 निमित्त हुआ करते हैं जिनके होने पर यह शरीर प्राणी से नियुक्त होता है ।
 उन निमित्तों में जल-अग्नि-विष-शस्त्र-भूख-व्याधि-पर्वत से पतन आदि हुआ
 करते हैं । इनमें किसी भी एक कारण की प्राप्ति होने से यह देही प्राणी को
 त्याग किया करता है ॥२॥ इस शरीर के त्याग देने के पश्चात् जैसे भी उस
 प्राणी के अपने कर्म होते हैं उनके फलों को भोगने के लिये वह अन्य यातनीय
 शरीर को ग्रहण करता है । यदि पाप कर्म होते हैं तो वह फिर अन्य शरीर
 पाकर नारकीय दुःखों को भोगता है और अच्छे कर्म होते हैं तो धर्म से सगत
 होता हुआ स्वर्गादि के सुखों का उपभोग किया करता है ॥३॥ जब यह प्राणी
 इस सांसारिक पार्थिव शरीर का त्याग करता है तो अत्यन्त भयङ्कर यम के
 दूतों के द्वारा वह प्राणी यहाँ से ले जाया जाता है । जो पापी होता है उसे
 कृमाणं वाले दक्षिण द्वार से ले जाया करते हैं और धर्मात्मा प्राणी होता है उसे
 पश्चिम आदि के द्वार से वहाँ ले जाते हैं ॥४॥ यमराज के सामने पहुँचने पर
 उसकी आज्ञा पाकर किशुरों के द्वारा यह प्राणी नरकों में डाल दिया जाता
 है । जो धार्मिक प्राणी है उसे युक्ति सन्धय वभिष्ट धर्म से स्वर्ग आदि में ले
 जाया जाता है ॥५॥ जो गौ का पात्र करने वाला होता है उसे एक लाख वर्ष
 तक महा नीचि नामक नरक में पीड़ा दी जाया करती है । ब्राह्मण का हनन

करने वाला तथा भूमि का हरण करने वाला पुरुष महाद्वीप ताम्र कुम्भ नाम वाले नरक में डाला जाता है ॥६॥ स्त्री-बालक और वृद्ध का हनन करने वाला पुरुष जब तक चौदह इन्द्र अपना इन्द्रासन का भोग किया करते तब तक महा-प्रलयक रोग्य नामक नरक में धीरे-धीरे बताया जाता है ॥७॥ घर और क्षेत्र आदि में आग लगाने वाला प्राणी महा रोरव नामक महान् रोद्र नरक में एक कल्पपर्यन्त जलाया जाता है । जो चोर होता है वह तामिस्र नाम वाले नरक में डाला है ॥८॥

नैककल्प तु शूलाद्यभिद्यते यमकिंकरः ।

महातामिस्रके सर्पजलीकाद्यश्च पीडयते ॥६॥

यावद्भूमिर्मातृहाया अग्निपत्रवनेऽसिभिः ।

नैककल्प तु नरके करम्भवालुकामु च ॥१०॥

येन दग्धो जनस्तत्र दह्यते बालुकादिभिः ।

काकोले कृमिविश्वाशी एकाकी मिष्टभोजनः ॥११॥

कट्टले मूत्ररक्ताशी पञ्चयज्ञक्रियोज्झितः ।

संदुग्न्धे रक्तभोजी भवेच्चाक्ष्यभक्षकः ॥१२॥

तैलपाके तु तिलवत्पीडयते परपीडकः ।

तैलपाके तु पच्येत शरणागतघातकः ॥१३॥

निरुच्छवा दाननाशी रसविक्रयकोऽध्वरे ।

नाम्ना वजरकटाहे च महापाते तदाऽनृती ॥१४॥

महाज्वाले पापबुद्धिः क्रकचेऽगम्यगामिनः ।

संकरी गुडपाके च प्रतुदेत्परममंजलत् ॥१५॥

धारहृदे प्राणिहन्ता धुरधारे च भूमिहृत् ।

अम्बरीये गोस्वर्णहृद्द्रुमच्छिद्वज्रशस्त्रके ॥१६॥

महा तामिस्र नामक नरक में यम के दूतों के द्वारा अनेक कला तक घूम घाटि के द्वारा भेदन किया जाता है और वहाँ सर्प तथा जलोशदि के द्वारा पीटा दी जाया करती है ॥६॥ जो माता का हनन करने वाला होता है उसके नरक में बहने की भूमि घटिपत्र वन में पारों और तलवारों से युक्त

पूतिवक्त्रे कूटसाक्षी परिलण्ठेदनापहा ।

बालस्त्रोवृद्धघाती च कराले ब्राह्मणातिकृत् ॥१६॥

विलेपे मद्यपो विप्रो महाप्रेते तु भेदिनः ।

तथाऽऽक्रम्य पारदाराञ्च वलन्तीमायसी शिलाम् ॥२०॥

शात्मलाख्ये तमालिङ्गेभ्रारी बहुनरंगमा ।

आस्फोटजिह्वोद्धरण स्त्रीक्षणान्नेत्रभेदनम् ॥२१॥

अङ्गारराशौ क्षिप्यन्ते मातृपुत्र्यादिगामिनः ।

चोराः क्षुरंश्च भिद्यन्ते स्वमासाशौ च मांस भुक् ॥२२॥

मासोपवासकर्ता वै न याति नरकं नरः ।

एकादशीव्रतकरो भीष्मपञ्चकसद्व्रती ॥२३॥

मधु का हरण करने वाला परीताप में घोर पराये धन का लेने वाला काल सूत्र नर में यातनाएँ भोगता है । जो अत्यन्त मांस का ग्रसन (भोजन) करने वाला होता है कश्मल नरक में जाता है । जो पिण्ड नहीं देता है अर्थात् पुरस्कारों का आदर नहीं करता है वह उग्रान्ध नरक में दुःख भोगता है ॥१७॥ जो उत्कोच भक्षी होता है अर्थात् रिश्वत लेने वाला पुरुष है वह घोर जो बन्दिषों के ग्राह करने में रत होते हैं वे दुधोर नामक नरक में जाते हैं । जो वेद की निन्दा किया करता है वह अप्रतिष्ठ लोह मञ्जूप नाम वाले नरक में जाया करता है । झूठी गवाही देने वाला पतिवक्त्र नरक में गिरता है । जो धन का अपहरण करने वाला है वह भी वहाँ पर ही परिलण्ठित होता है । बाल-वृद्ध और स्त्री का घात करने वाला कराल नरक में तथा ब्राह्मणों को मारने वाला विलेप में घोर मादरा का पान करने वाला विप्र महाप्रेत में जाता है । जो ब्राह्मण करके पराई स्त्रियों का भोग करता है वह शात्मल नामक नरक में लोहे की या परधर की जलती हुई स्त्री का आलिंगन किया करता है । जो पर स्त्री का चुम्बन करता है या उससे अश्लील वचन कहता है उगरी बिहू निवास में जाती है और पराई स्त्री को घुरी दृष्टि से देखता है उसके नेत्रों का भेदन किया जाता है ॥१७ से २१॥ माता तथा पुत्री आदि के गमन करने वाले को घरारों के देर में गिरा दिया जाता है । जो चोर होते हैं

उन्हें छुराघों से काटा जाता है । घपने मांस के खाने वाले को मांस खाना होता है । जो एक मास तक उपवास कर लेता है वह पुण्य फिर किसी भी नरक में जाकर यातनाएं नहीं सहन किया करता है । जो एकादशी का व्रत करने वाला या भीष्म पञ्चक का व्रत करने वाला है वह भी नरकों की यातना नहीं भोगता है ॥२२-२३॥

८१ दानपरिभाषाकथनम्

दानधर्मान्प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदाञ्छृणु ।
 दानमिष्टं तथा पूर्तं धर्मं कुर्वन्ति सर्वभाक् ॥१॥
 वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ।
 अन्नप्रदानमारामाः पूर्तं धर्मं च मुक्तिदम् ॥२॥
 अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चानुपालनम् ।
 आतिथ्यं वैश्वदेवं च प्राहुरिष्टं च नाकदम् ॥३॥
 ग्रहोपरागे यद्दानं मूर्यसक्रमणेषु च ।
 द्वादश्यादी च यद्दानं पूर्तं तदपि नाकदम् ॥४॥
 देशे काले च पात्रे च दानं कोटिगुणं भवेत् ।
 अयने विपुत्रे पुण्ये व्यतीपाते दिनशये ॥५॥
 युगादिषु च संक्रान्तौ चतुर्दश्यष्टमीषु च ।
 सितपञ्चदशीसर्वद्वादशीष्वष्टकासु च ॥६॥
 यज्ञोत्सवविवाहेषु तथा मन्वन्तरादिषु ।
 वैधृते दृष्टदुःस्वप्ने द्रव्यग्राहणलाभतः ॥७॥
 श्रद्धा वा यद्दिने तत्र सदा वा दानमिष्यते ।
 अयने द्वे विपुत्रे द्वे चतस्रः षडशीतयः ॥८॥
 चतस्रो विष्णुपद्यश्च संक्रान्त्यो द्वादशोत्तमाः ।
 कन्यायां मिथुने मीने धनुष्यपि रवेर्गतिः ॥९॥

यह दान की परिभाषा का कथन किया जाता है । श्री अग्निदेव ने

कहा—अब मैं दान के धर्मों को कहता हूँ जो भुक्ति और मुक्ति के प्रदान करने वाले हैं। दान इष्ट है तथा धर्म पूर्ण है, इसको करने वाला सभी कुछ की प्रति किया करता है ॥१॥ वावड़ी, कूपा, तालाब, देवालय, अन्न का दान और बाण कराना पूर्ण धर्म है जो मोक्ष के प्रदान करने वाला होता है ॥२॥ अग्निहोत्र करना, सपञ्चर्मा, सत्य व्रत रखना, वेदों का पालन करना, अतिथियों का स्वागत सत्कार करना, बलिबैश्वदेव करना ये सब इष्ट कहे जाते हैं जो कि स्वर्ग के देने वाले हैं ॥३॥ ग्रहण के समय में जो दान दिया जाता है अथवा सूर्य संक्रान्ति पर जो दान देते हैं तथा द्वादशी आदि में जो दान किया जाता है वह भी पूर्ण होता है और इससे भी स्वर्ग की प्राप्ति हुआ करती है ॥४॥ देश अर्थात् समुचित देश में, काल में और योग्य पान में जो दान दिया जाता है वह करोड़ गुना अधिक फल देने वाला होता है। अयन में, विषुव में, पुण्य दिन में—व्यतीपात में, दिनशय में, युगादि में, संक्रान्ति में, चतुदशी, अष्टमी तिथियों में, शुक्लपक्ष की पञ्चदशी (पूर्णिमा), सर्व द्वादशियों में, और अष्टकाओं में, यज्ञ-उत्सव, विवाहों में तथा मन्वन्तर आदि में, वंशुत में, देखे हुए दुःस्वप्न में और द्रव्य ब्राह्मण के लाभ से अथवा श्रद्धा से जिस भी दिन में हो जावे, इस तरह दान दिया जाता है और दान सदा दिया जा सकता है। अयन दो, विषुव दो, पक्षीतिषा चार, विष्णुपदी चार और संक्रान्ति बारह परम उत्तम हैं। कन्या में, मिथुन में, मीन में और धन में सूर्य की गति होती है ॥५ से ६॥

पक्षीतिमुखाः प्रोक्ताः पक्षीतिगुणाः फलैः ।

अतीतानागते पुण्ये द्वे उदग्दक्षिणायने ॥१०॥

त्रिगत्कर्कटके नाड्यो मकरे विंशती स्मृताः ।

वर्तमाने तुलामेषे नाड्यस्तूभयतो दश ॥११॥

पक्षीत्यां व्यतीतायां पक्षिण्वास्तु नाडिकाः ।

पुण्याख्या विष्णुपक्षां च प्राक्पश्चादपि षोडश ॥१२॥

श्रवणभ्रियनिष्ठागु नागद्वं वतमस्तके ।

यदा म्याद्रविषारेण व्यतीपातः स उच्यते ॥१३॥

नवम्यां शुक्लपक्षस्य कार्तिके निरगात्कृतम् ।

त्रेता सिततृतीयायां वैशाखे द्वापरं युगम् ॥१४

दर्शे वै माघमासस्य त्रयोदश्यां नमस्त्यके ।

कृष्णे कलि विजानीयाज्ज्ञेया मन्वन्तरादयः ॥१५

ये छियाशी मुख रहे गये हैं और फलों से छियाशी गुण हैं । अतीत

और अनागत पुराण में दो उत्तरायण और दक्षिणायन हैं ॥१०॥ चक्र में तीस

नाहियां होती हैं, मकर में बीस कही गई हैं । वर्तमान तुला और मेष में दोनों

में दस नाहियां हैं ॥११॥ पड़शीति के ब्यतीत होने पर साठ नाहियां कही गई

हैं । विष्णुनदी में पहिले और पीछे पोट्टश पुराणान्न होती है ॥१२॥ अथगु,

अश्विनी धनिष्ठाओं में नागद्वंद्व मस्तक में जब रविवार होता है तो वह ब्यती-

पान योग कहा जाता है ॥१३॥ कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में नवमी तिथि को

कृतयुग समाप्त हुआ था । वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में तृतीया तिथि में त्रेता

युग समाप्त हुआ था । माघ मास की अनावस्था में द्वापर युग पूरा हो गया

था । नमस्त्य मास में कृष्ण पक्ष में त्रयोदशी में कलियुग को जानना चाहिये ।

इस प्रकार से मन्वन्तरादि को जान लेना चाहिये ॥१४॥१५॥

अश्वयुक्शुक्लनवमी द्वादशी कार्तिके तथा ।

तृतीया चैव माघस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥१६

फाल्गुनस्याप्यमावास्या पौषस्यैकादशी तथा ।

आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥१७

श्रावणे चाष्टमी कृष्णा तथाऽऽषाढे च पूर्णिमा ।

कार्तिके फाल्गुने तद्वज्ज्येष्ठे पञ्चदशी तथा ॥१८

ऊर्ध्वे चैवाऽऽग्रहायण्या अष्टकास्तिस्र ईरिताः ।

अष्टकास्या चाष्टमी त्यादानु दानानि चाक्षयम् ॥१९

गयागङ्गाप्रयागादी तीर्थे देवालयादिषु ।

अप्राप्तानि दानानि विद्यान् कन्यकानि हि ॥२०

दद्यात्पूर्वमुखो दानं गृह्णीयादुत्तरामुखः ।

आयुर्विवर्धते दातुग्रंहीतुः क्षीयते न तत् ॥२१

नाम गोत्रं समुच्चार्य संप्रदानस्य चाऽऽत्मनः ।

संप्रदेयं प्रयच्छन्ति कन्यादाने पुनस्तथम् ॥२२

अश्व से युक्त शुक्ल नवमी कार्तिक मास में द्वादशी-भाद्र की तृतीया तथा भाद्रपद की तृतीया-फाल्गुन की अमावस्या, पौष मास की एकादशी, आषाढ की दशमी, माघ मास की सप्तमी श्रावण की अष्टमी जो कि कृष्ण पक्ष में हो, आषाढ की पूर्णिमा, कार्तिक तथा फाल्गुन में तथा उसी तरह ज्येष्ठ में पञ्चदशी, आश्विमास की के ऊपर में तीन अष्टका कही गई हैं । अष्टकाख्या अष्टमी होती है, इन सबमें जो दान दिया जाता है वह अक्षय होता है अर्थात् उसके पुण्य का कभी क्षय होता ही नहीं है ॥१६ १७।१८।१९॥

गया, गङ्गा, प्रयाग आदि में, तीर्थ में, देवालय आदि में दानों को अर्पित जानना चाहिये, कन्या के नहीं होते हैं । दान सर्वदा पूर्व की ओर मुख करके ही देना चाहिये । जो दान ग्रहण करना है उसे उत्तर की ओर मुख करके ही दान को लेना चाहिये । इससे दानदाता की आयु बढ़ा करती है और दान ग्रहण करने वाले की आयु क्षीण नहीं होती है ॥२०।२१॥ नाम और गोत्र का उच्चारण करके जिसको दिया जावे उसका तथा अपना दोनों का उच्चारण करे और फिर जो भी सम्प्रदेय हो उसे दिया करते हैं । यदि कन्या का दान हो तो अपना, घर का और कन्या का इन तीनों का नाम गोत्रादि लेना चाहिये ॥२२॥

स्नात्वाऽभ्यर्च्य व्याहृतिभिर्दद्यादानं तु सोदकम् ।

कनकाश्रतिला नागा दासीरथमहीगृहाः ॥२३

कन्या च कपिला धेनुमंहादानानि वै दश ।

श्रुतक्षीर्यतपःकन्यायाज्यशिष्यादुपागतम् ॥२४

शुल्कं धनं हि मकलं शुल्कं शिल्पानुवृत्तितः ।

कुसीदकृपिवाणिज्यप्राप्तं यदुपकारतः ॥२५

पाशकयूतचौर्यादिप्रतिरूपकसाहसैः ।

व्याजेनोपाजितं कृत्स्नं त्रिविधं त्रिविधं फलम् ॥२६

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि ।
 भ्रातृमातृपितृप्राप्तं पङ्क्तिघ्नं स्त्रीघनं स्मृतम् ॥२७॥
 ब्रह्मक्षत्रविशां द्रव्यं शूद्रस्यैषामनुग्रहात् ।
 बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं स्त्रियः ॥२८॥
 कुलानां तु शतं हन्यादप्रयच्छन्प्रतिश्रुतम् ।
 देवानां च गुरुणां च मातापित्रोस्तथैव च ॥२९॥
 पुण्यं देयं प्रयत्नेन यत्पुण्यं चाजितं क्वचित् ।
 प्रतिलाभेच्छया दत्तं यद्धनं तदपार्थकम् ॥३०॥

स्नान करके और व्याहृतियों के द्वारा अभ्यर्चना करके जन के सहित दान देना चाहिये । दान बहुत से प्रकार के होते हैं उनमें दश दान महा दान कहे जाते हैं । यथा—सुवर्ण, भस्म, तिल, हाथी, दासी, रथ, भूमि, गृह, कन्या, कपिला धेनु ये महादान हैं । श्रुत, शौर्य, तप, कन्या, याज्य और शिष्य से माया हुआ धूलक यह सभी शुल्क दान है । जो शिल्पानुवृत्ति से प्राप्त हो, कुसीद (व्याज), कृपि (खेती), वाणिज्य (व्यापार) से प्राप्त हो और जो किसी की भलाई करने पर प्राप्त हुआ हो, पासे के द्वारा धूत क्रीडा से प्राप्त; चोरी से लब्ध, प्रतिरूपक से प्राप्त, साहस पूर्ण कार्य से उपलब्ध तथा व्यसन से उपार्जित यह सब तीन प्रकार का होता है और इसका फल भी तीन तरह का होता है ॥२३॥२४॥२५॥२६॥ अध्यग्नि और अध्यावाहनिक दिया हुआ तथा प्रीति के किसी काम में दिया हुआ, भ्राता, माता और पिता से प्राप्त इस रीति से छः प्रकार का स्त्री घन कहा गया है ॥२७॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का द्रव्य और इनके अनुग्रह से शूद्र का द्रव्य । बहुतों को नहीं देना चाहिये । गो, गृह, शयन और स्त्री-ये एक को ही देवे । यदि प्रतिश्रुत कर दिया हो और न देवे तो-सो कुलों का हनन होता है । देवों को, गुरु वर्ग को, माता-पिता को जो दिया जाता है वह भी पुण्य है । कही पर अजित किया हुआ प्रयत्न पूर्वक देना परम पुण्य है । इनको जो प्रतिलाभ की इच्छा से दिया गया दान है तो वह व्यर्थ होता है ॥२६॥२६॥३०॥

श्रद्धया साध्यते धर्मो दत्तं वायंपि चाक्षयम् ।
 ज्ञानशीलगुणोपेतः परपीडावहिष्कृतः ॥३१
 अज्ञानां पालनात्प्राणात्तत्प्राप्तं परमं स्मृतम् ।
 मातुः शतगुणं दानं सहस्रं पितुरुच्यते ॥३२
 अनन्तं दुहितुर्दनि सोदर्ये दत्तमभयम् ।
 अमनुष्ये समं दानं पापे ज्ञेयं महाफलम् ॥३३
 वर्णसंकरे द्विपणं शूद्रे दानं चतुर्गुणम् ।
 वैश्ये चाष्टगुणं क्षत्रे षोडशत्वं द्विजब्रुवे ॥३४
 वेदाध्याये शतगुणमनन्तं वेदबोधके ।
 पुरोहिते याजकादौ दानमक्षयमुच्यते ॥३५
 श्रीविहीनेषु यद्दत्तं तदनन्तं च यज्वनि ।
 अतपस्व्यनधीमानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ॥३६
 अम्भस्यश्मप्लवेनैव सह तेनैव मज्जति ।
 स्नातः सम्यगुपस्पृश्य गृह्णीयात्प्रयतः शुचि ॥३७
 प्रतिग्रहीता सावित्रीं सर्वदैव प्रकीर्तयेत् ।
 ततस्तु कीर्तयेत्साधुं द्रव्येण सह देवतम् ॥३८
 प्रतिग्राही पठेदुच्चैः प्रतिगृह्य द्विजोत्तमात् ।
 मन्दं पठेत्क्षत्रियात्तु उपांशु च तथा विशः ॥३९
 मनसा च तथा शूद्रात्स्वस्तिवाचनकं तथा ।
 अभयं सर्वदैवत्य भूमिर्वै विष्णुदेवता ॥४०

धर्म श्रद्धा से साधित किया जाता है । दिया हुआ अन्न भी भक्ष्य होता है । ज्ञान और शील गुण से युक्त तथा पराई पीड़ा से बहिष्कृत पात्र होता है जो अन्न है उनके पालन और रक्षा करने से वह परम पात्र कहा गया है । माता को दिया हुआ दान सौ गुना और पिता को दिया हुआ दान एक सहस्र गुण वाला कहा जाता है ॥३१॥३२॥ जो दान अपनी पुत्री को दिया जाता है अनन्त होता है । अपनी सगी बहिन के लिये दिया हुआ दान भय रहित होता है । अमनुष्य में दान सम होता है । पाप में महाफल वाला दान समझना चाहिये ।

॥३३॥ वरुणसङ्कर में द्विपण और मूद्र में चतुर्गुण, वंश्य में आठ गुना और क्षत्रिय में सोलह गुना होता है । वेद वेदवाध्याय करने वाले में सो गुना तथा जो वेद का बोधक हो उसमें अनन्त होता है । पुरोहित और याजक आदि में जो दान दिया जाता है वह सय रहित होता है ॥३४॥३५॥ जो श्री से विहीन हों तथा मज्जा हों उनमें दिया हुआ दान भी अनन्त होता है । जो द्विज तप से रहित है और मध्ययन न करते वाला हो किन्तु दान ग्रहण करने की रीति रखता है । वह जल में पत्थर की नौका की भाँति उसी के साथ डूब जाया करता है । स्नान किया हुआ और भली-भाँति उप स्पर्श न करके प्रयत्न और धुवि होकर ग्रहण करना चाहिये ॥३६॥३७॥ जो दान का प्रतिग्रहीता हो उसे सर्वदा गायत्री का जाप करते रहना चाहिये । इसके अनन्तर द्रव्य के साथ एवं देव के सहित कीर्तन करना चाहिये अर्थात् सावित्री का जाप करे ॥३८॥ प्रतिग्रह लेने वाले को यदि ब्राह्मण से लिया हो तो प्रतिग्रहण करके ऊँचे स्वर से पढ़ना चाहिये । क्षत्रिय से प्रतिग्रह ले तो मन्द स्वर से पढ़े वैश्य से ग्रहण करे तो उपशु जाप करे और मूद्र से प्रतिग्रह ले तो केवल मन से ही जान करे तथा स्वस्ति वाचन करे । विष्णु देवता समस्त देवों की भूमि है और भय रहित है ॥३९॥४०॥

कन्या दासस्तथा दासी प्राजापत्याः प्रकीर्तिताः ।

प्राजापत्यो गजः प्रोक्तस्तुरगो यमदैवतः ॥४१॥

तथा चोक्शफं सर्वं याम्यश्च महिषस्तथा ।

उष्ट्रश्च गैर्धृतो धेनू रोद्री द्यागोजनस्तथा ॥४२॥

आप्यो मेयो हरिः क्रोड भारण्याः पद्मवोऽनिलाः ।

जलाशयं वारुणं स्याद्वारिधानीघटादयः ॥४३॥

समुद्रजानि रत्नानि हेमलोहानि चानलः ।

प्राजापत्यानि सस्यानि पक्वाग्रमपि सत्तम ॥४४॥

गान्धवं गन्धमित्याहुर्वस्त्रं बाहंस्पतं स्मृतम् ।

वापच्याः परिणः सर्वे विद्या ग्राह्यी तथाऽङ्गकम् ॥४५॥

सारस्वतं पुस्तकादि विश्वकर्मा तु शिल्पके ।

वनस्पतिद्रुमादीनां द्रव्यदेवा हरेस्तनुः ॥४६॥
 छत्रं कृष्णाजिनं शय्या रथ आसनमेव च ।
 उपानहौ तथा यानमुत्तायांगिर ईरितम् ॥४७॥
 रणोपकरणं शस्त्रं ध्वजाद्यं सर्वदेवतम् ।
 गृहं च सर्वदेवतयं सर्वेषां विष्णुदेवता ॥४८॥
 शिवो वा न ततो द्रव्यं व्यतिरिक्तं यतोऽस्ति हि ।
 द्रव्यस्य नाम गृह्णीयाद्ददामीति तथावदेत् ॥४९॥
 तोयं दद्यात्ततो हस्ते दाने विधिरयं स्मृतः ।
 विष्णुर्दाता विष्णुर्द्रव्यं प्रतिगृह्णीमि वो वदेत् ॥५०॥

कन्या, दास तथा दासी ये प्राजापत्य दान कहे गये हैं । गन्ध का दान भी प्राजापत्य कहा गया है । अश्व यम देवत कहा गया है । जो एक खुर वाले हैं वे सभी याम्य कहे गये हैं । माहिष भी याम्य होता है । उष्ट्र (ऊँट) भी नैऋत दान कहा गया है । धेनु रोद्री होती है । छाग (बकरा) अनल कहा गया है । मेघ आप्य दान है । हरि नाम वात्सा क्रोड होता है । पशु वर्ग जो आरण्य (जंगली) हैं वे सब अनिल कहे गये हैं । जलाशय वाष्णु कहा जाता है । घटादि वारिधानी हैं ॥४१॥४२॥४३॥ जो रत्न समुद्र से उत्पन्न होते हैं वे भीर सुवर्ण तथा लोहा ये सब अनल होते हैं । हे सत्तम ! सस्य सभी प्राजापत्य हैं तथा पका हुआ अन्न भी प्राजापत्य नाम वाला दान होता है ॥४४॥ गन्ध से युक्त सब गन्धर्व और वस्त्र का दान वहिस्वत दान कहा गया है । समस्त प्रकार के पक्षियों का दान वायव्य कहा जाता है । विद्या का दान ब्राह्मी कहा गया है तथा अङ्गक कहा गया है ॥४५॥ पुस्तक आदि का दान सारस्वत दान होता है । शिल्पक दान विश्वकर्मा नाम से प्रसिद्ध है । द्रुमादि का दान वनस्पति कहा जाता है । ये देव द्रव्य हरिका तनु है ॥४६॥ छत्र, कृष्ण अजिन (गृगचर्म), शय्या, रथ, आसन, उपानह, यान ये उत्तायाङ्गिर कहे गये हैं ॥४७॥ रण के उपकरण शस्त्र ध्वजादि के सब देवता होते हैं और गृह भी सर्व देवत होता है । इन सबके विष्णु देवता हैं ॥४८॥ अथवा शिव देवता है । उन से व्यतिरिक्त द्रव्य है । छाता का कसंध्य है, कि द्रव्य का नाम

था । इसके पश्चात् द्वापर युग आया उसमें ब्राह्मण जब याचना करे सभी उसे दान दिया जाता था, बिना माँगे कोई भी दान नहीं देता था । कलियुग में दान देने की व्यवस्था ही एकदम बदल गई है । इसमें तो हमेशा बराबर पीछे ही लगा रहे उसे दान देते हैं ॥५५॥ मन से पात्र का उद्देश्य करके प्रयात् मन मे यह सोचकर कि मुझे प्रमुक्त पात्र को दान देना है फिर भूमि में जल को विक्षिप्त करे । समुद्र का तो अन्त है जो कि इतना विशाल होता है किन्तु दान का कभी भी कोई अन्त नहीं होता है ॥५६॥

अथ सोमार्कग्रहणसंक्रान्त्यादौ च कालके ।

गगागयाप्रयागादौ तीर्थदेशे महागुणो ॥५७॥

तथा चामुकगोत्राय तथा चामुकशर्मणे ।

वेदवेदांगयुवताय पात्राय सुमहात्मने ॥५८॥

यथा नाम द्रव्य विष्णुरुद्रादिदेवतम् ।

पुत्रपौत्रगृहैश्वर्यपत्नीधर्मसद्गुणाः ॥५९॥

कीर्तिविद्यामहाकामसौभाग्यारोग्यवृद्धये ।

सर्वपापोशास्त्यर्थं स्वर्गार्थं भुक्तिमुक्तये ॥६०॥

एतत्तुभ्यं सप्रददे प्रीयतां मे हरिः शिवः ।

दिव्यान्तरिक्षभोगादिसमुत्पातौघघातकृत् ॥६१॥

धर्मार्थकाममोक्षाप्त्यै ब्रह्मलोकप्रदोऽस्तु मे ।

यथानामसगोत्राय विप्रायामुकशर्मणे ॥६२॥

एतद्दानप्रतिष्ठार्थं सुव्रणं दक्षिणां ददे ।

अनेन दानवाक्येन सर्वदानानि वै ददेत् ॥६३॥

दान दाता को संकल्प करना चाहिए । जिस दिन भी दान देवे उस तिथि, दिन और पर्व का नाम बोले जैसे आज सोम ग्रहण में या सूर्य ग्रहण में तथा संक्रान्ति आदि काल के श्रेष्ठतम पर्व में, महान् गुण वाले गङ्गा, प्रयाग गया आदि तीर्थ स्थान में, प्रमुक्त गोत्र वाले, प्रमुक्त शर्मा के लिये जो कि वेद एवं वेदाङ्गों से युक्त, परम पात्र एवं महान् आत्मा वाला है उसके लिये-विष्णु एवं रुद्र आदि देवता वाले प्रमुक्त महादेव को (उस द्रव्य

निःश्वासोच्च्वासकासैस्तु प्राणो जीवसमाश्रितः ।

प्रयाणं कुरुते यस्मात्तस्मात्प्राणः प्रकीर्तितः ॥८॥

इस अध्याय में नाड़ियों के चक्र का पूरा वर्णन किया जाता है । श्री अग्नि देव ने कहा—मैं अब इस शरीर में जो नाड़ियों का चक्र विद्यमान है उसका वर्णन करता हूँ । इसके पूर्ण ज्ञान हो जाने से भगवान् हरि का ज्ञान किया जाता है । इस मानव की नाभि के नीचे जो कन्द है वही से अंकुर निकलते हैं । वे बहत्तर सहस्र नाभि के मध्य में व्यवस्थित हैं । नीचे ऊपर और तिरछी ओर चारों तरफ उनसे व्याप्त है ॥१॥२॥ यह एक चक्र की भाँति वहाँ पर स्थित है इनमें परम प्रधान दस नाड़ियाँ होती हैं । उनके नाम इस प्रकार से हैं, इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, यशा, प्रलम्बुषा पृषा, हुई, दशमी नाड़ी का नाम शङ्खिनी है ॥३॥४॥ ये दस प्राण वहाँ नाड़ियाँ बताई गई हैं । उन दस प्रकार की वायुओं के नाम भी इस भाँति से हैं, प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कूकर, देवदत्त और दशवीं वायु घनञ्जय नाम वाला होता है । इन सब में प्राण प्रथम एवं परम मुख्य वायु होता है जो कि इन सब प्रकार के दशों का स्वामी होता ॥५॥६॥ यह प्राण वायु त्याग से पूरणता की ओर प्राण को प्राणित किया करता है अर्थात् प्राणी को जीवित बनाये रखता है । यह प्राणियों के उरःस्थल में स्थित रहता हुआ नित्य ही आपूरित किया करता है ॥७॥ निःश्वास (नीचे की ओर अर्थात् भीतर लेने वाला श्वास) और उच्च्वास (ऊपर की ओर लेने वाला अर्थात् बाहिर निकलने वाला साँस) तथा कास (खाँसी) से यह प्राण जीव में समाश्रित होता है । यह प्रयाण किया करता है अर्थात् शरीर से निकल कर चला जाता है इसी लिये इसका नाम प्राण कहा गया है ॥८॥

अधो नयत्यपानस्तु आहारं च नृणामघः ।

भूतगुक्त्वहो वायुरपानस्तेन कीर्तितः ॥९॥

पीतभक्षितमाघ्रातं रक्तपित्तकफानिलम् ।

समं नयति गात्रेषु ममानो नाम मास्तः ॥१०॥

स्पन्दयत्यधरं वक्त्रं नेत्ररागप्रकोपनम् ।

उद्वेजयति मर्माणि उदानो नाम मारुतः ॥११

व्यानो विनामयत्वङ्गं व्यानो व्याधिप्रकोपनः ।

प्रतिदानं यथा कण्ठाद्व्यापनाद्व्यान उच्यते ॥१२

उद्गारे नाग इत्युक्तः कूर्मश्चोन्मीलने स्थितः ।

कृकरो भक्षणो चैव देवदत्तो विजृम्भिते ॥१६

घनजयः स्थितो घोषे मृतस्यापि न मुञ्चति ।

जीवः प्रयाति दशधा नाडीचक्रं हि तेन तत् ॥१४

संक्रान्तिविपूर्वं चैव अहोरात्रायनानि च ।

अधिमासं ऋणं चैव ऊनरात्रघनं तथा ॥१५

ऊनरात्रं भवेद्विक्रमा अधिमासो विजृम्भिका ।

ऋणं चात्र भवेत्कासो निश्वासो घनमुच्यते ॥१६

उत्तरं दक्षिणं ज्ञेयं वामं दक्षिणसंज्ञितम् ।

मध्ये तु विषवं प्रोक्तं पुटद्वयविनिःसृतम् ॥१७

मनुष्यों के आहार को अपान वायु नीचे की ओर ले जाता है । यह

वायु के मूत्र और शुक्र (वीर्य) का बहन करने वाला है । इसी लिये इसको

अपान—इस नाम से कहा जाता है ॥६॥ पाया हुआ पदार्थ और खाया हुआ

पदार्थ तथा सूँघा हुआ, रक्त, तिल, तफ, और वायु इन सबको शरीर में जो

वायु सम स्वरूप में रखता है वह समान नाम से कहा गया है ॥१०॥ जो

अधरों का स्पन्दन किया करता है, मुख और नेत्ररोग के प्रकोपन किया करता

है तथा मर्मों का उद्वेजन करता है वह वायु उदान—इस नाम से कहा गया है ।

॥११॥ व्यान अङ्ग को विनामयित करता है और व्यान व्याधि का प्रकोपन

है । प्रतिदिन की भाँति कण्ठ से व्यापन होने से यह व्यान कहा जाता है ।

॥१२॥ उद्गार में इसका नाम नाग होता है । उन्मीलन करने में स्थित यह

कूर्म नाम वाला है । भक्षण क्रिया करने में कृकरो आदि जैसाई लेने में इसका

नाम देवदत्त होता है ॥१३॥ घोष में स्थित वायु घनजय नाम से पुकारा

जाता है जो कि मानव के मृत हो जाने पर भी उसे नहीं छोड़ता है । (कान

क्रिया करने पर वह निवृत्त जाना है) इस प्रकार से यह जोव दश से नाश रहता है । इससे वह नाड़ी चक्र है ॥१४॥ संक्रान्ति, विपुव, ग्रहोरात्र, ग्रहन, अधिमास, ऋण, ऊनरात्र, धन ये सब होते हैं ॥१५॥ ऊनरात्र हिषकी है, अधिमास विजुम्भिका है, ऋण कास (खाँसी) है निःश्वास धन है, उत्तर ग्रीर दक्षिण वाम ग्रीर दक्षिण संज्ञा वाले जानने चाहिए । मध्य में विपुव बताया गया है । जो घुट द्वय से विनिःसृत होता है ॥१६॥१७॥

संक्रान्तिः पुनरस्यैव स्वस्थानात्स्थानयोगतः ।

सुपुम्णा मध्यमे ह्यङ्ग इडो वामे प्रतिष्ठिता ॥१८

पिंगला दक्षिणे विप्र ऊर्ध्व प्राणो ह्यहः स्मृतम् ।

अपानो रात्रिरेवं स्यादेको वायुदंशात्मकः ॥१९

आयामो देहमध्यस्थः सोमग्रहणमिष्यते ।

देहातित्त्वमायाममादित्यग्रहणं विदुः ॥२०

उदर गूरयेतावद्वायुमा यावदोप्सितम् ।

प्राणायामो भवेदेव पूरको देहपूरकः ॥२१

विधाय सर्वद्वाराणि निश्वासोच्छ्वासवजितः ।

संपूर्णकुम्भवत्तिष्ठेत्प्राणायामः स कुम्भकः ॥२२

मुञ्चेद्वायुं ततस्तूर्ध्वं श्वासेनैकेन मन्त्रवित् ।

उच्छ्वासयोगयुक्तश्च वायुमूर्ध्वं विरेचयेत् ॥२३

उच्चरति स्वयं यस्मात्त्वद्देहावस्थितः शिवः ।

तस्मात्तत्त्वविदां चैव स एव जप उच्यते ॥२४

फिर अपने स्थान से स्थान का योग इसकी ही संक्रान्ति है । सुपुमा मध्यम अङ्ग में ग्रीर वाम में इडा प्रतिष्ठित रहा करती है ॥१८॥ पिङ्गला दक्षिण अङ्ग में रहती है । हे विप्र ! ऊर्ध्व है प्राण है जो दिन कहा गया है । अपान रात्रि है । दग प्रहार से एक ही वह वायु दश स्वरूप वाला रहा करता है ॥१९॥ दग देह के मध्य में रहने वाला आयाम ही सोम ग्रहण माना जाता है । देहानि तत्र ओ आयाम है उसे मूर्ध्व ग्रहण कहते हैं ॥२०॥ उदर में वायु का जब तक नीट हो गूँथ करना चाहिए । इसे ही प्राणायाम कहा जाता

है । यह देहका पूरक है अतः इसे पूरक कहते हैं । समस्त द्वारों को बन्द करके भीर निःश्वास तथा उच्छ्वास से रहित होकर सम्पूर्ण कुम्भ की भाँति रहे । इसे ही कुम्भक प्राणायाम कहा जाता है ॥२१॥२॥ फिर इसके पश्चात् एक श्वास से ऊपर की वायु का त्याग करे । मग्न के वेत्ता को चाहिए कि उच्छ्वास योग से युक्त होता हुआ वायु को ऊर्ध्व भाग में छोड़े ॥२३॥ स्वयं तत्त्व-देह में अवस्थित होता हुआ शिव का उच्चारण करे । इससे तत्त्व वेत्ताओं का यह ही जप कहा जाता है ॥२४॥

अयुते द्वे सहस्रं कं पट्शतानि तथैव च ।
अहोरात्रेण योगीन्द्रो जपसंख्या करोति सः ॥२५॥
अजपा नाम गायत्री ब्रह्मविष्णुमहेश्वरी ।
अजपां जपते यस्तां पुनर्जन्म न विद्यते ॥२६॥
चन्द्राग्निरविसंयुक्तो आद्या कुण्डलिनी माता ।
हृत्प्रदेशे तु सा ज्ञेया अंकुराकारसंस्थिता ॥२७॥
सृष्टिन्यासो भवेत्तत्र स वै सर्गावलम्बनात् ।
स्रवन्तं चिन्तयेत्तस्मिन्नमृतं सान्निभकोत्तमः ॥२८॥
देहस्थः सकलो ज्ञेयो निष्कलो देहवर्जितः ।
हंस हसेति यो ब्रूयाद्धंसो नाम सदाशिवः ॥२९॥
तिलेषु च यथा तेलं पुष्पे गन्धः समाश्रितः ।
पुरपस्य तथा देहे सवाह्याभ्यन्तरं स्थितः ॥३०॥
ब्रह्मणो हृदये स्थान कण्ठे विष्णुः समाश्रितः ।
तालुमध्ये स्थितो रुद्रो ललाटे तु महेश्वरः ॥३१॥
प्राणाग्रं तु शिवं विद्यात्तस्यान्ते तु परापरम् ।
पञ्चधा सकलः प्रोक्तो विपरीतस्तु निष्फलः ॥३२॥

योगीन्द्र पुरुष रातदिन में इक्कीस हजार छैंतीस जप की संख्या करना है वही योगीन्द्र कहा जाता है । अजपा गायत्री का नाम है वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के स्वरूप वाली है । जो उस अजपा का जप करता है उसका

पुनर्जन्म नहीं होता है ॥२५॥२६॥ चन्द्र, अग्नि और सूर्य से युक्त प्राची
 घुएदलिनी मानी गई है । वह हृत्प्रदेश में रहती है और अंकुर के प्राकार में
 संस्थित होती है ॥२७॥ 'वहाँ पर सृष्टि का न्यास होता है । वह सर्ग के अव-
 लम्बन से उसमें खवण करते हुए अमृत का चिन्तन करे यह सास्विकोत्तम है ।
 ॥२८॥ यह देह में स्थित सबसे समझना चाहिए जो निष्फल है वह देह से
 वञ्चित होता है । जो हंस हंस यह बोलता है वह हंस नाम सदा शिव ही हैं ।
 ॥२९॥ तिलों में जिस तरह तैल और पुष्पों में जिस प्रकार से गन्ध समाश्रित
 रहा करता है उसी भाँति से वह पुष्प के देह में बाहिर और भीतर स्थित
 रहता है ॥३०॥ ब्रह्म का स्थान हृदय में है, कण्ठ में विष्णु समाश्रित रहा करते
 हैं, तालु के मध्य में रुद्र स्थित हैं और ललाट में महेश्वर रहते हैं ॥३१॥ प्राण
 के अग्रभाग को शिव जानना चाहिए और उसके अन्त में परापर को समझो ।
 इस तरह पाँच प्रकार का सकल कहा गया । इसके विपरीत जो है वह निष्फल
 अथवा निष्फल होता है ॥३२॥

प्रासादं नादमुत्थाप्य शततन्तु जपेद्यदि ।
 पण्मासात्सिद्धिमाप्नोति योगयुक्तो न संशयः ॥३३॥
 गमागमस्य ज्ञानेन सर्वपापक्षयो भवेत् ।
 अणिमादिगुणेश्वर्यं पङ्क्तिर्मासंरवाप्नुयात् ॥३४॥
 स्थूलः सूक्ष्मः परश्चेति प्रासादः कथितो मया ।
 ह्रस्वो दीर्घः प्लुतश्चेति प्रासादः लक्षयेत्त्रिधा ॥३५॥
 ह्रस्वो दहति पापानि दीर्घो मोक्षप्रदो भवेत् ।
 याप्यायने प्लुतश्चेति मूर्ध्नि बिन्दुविभूषितः ॥३६॥
 आदावन्ते च ह्रस्वस्य फट्कारो मारणो हितः ।
 आदावन्ते च हृदयमाकृष्टो सप्रकीर्तितम् ॥३७॥
 देवस्य दक्षिणां मूर्ति पञ्चलक्षं स्थितो जपेत् ।
 जपान्ते घृहोस्तु दशसाहस्रि लो भवेत् ॥३८॥
 एवमाप्याश्रितो मन्त्रो वश्योच्चाटादि कारयेत् ।

ऊर्ध्वं शून्यमधः शून्यं मध्ये शून्यं निरामयम् ॥३६
 त्रिशून्यं यो विजानाति मुच्यतेऽसौ ध्रुवं द्विजः ।
 प्रासादं यो ना जानाति पञ्चमन्त्रमहातनुम् ॥४०
 अष्टत्रिंशत्कलायुक्तं स आचार्य उच्यते ।
 तथोकारं च गायत्रीं रुद्रादीन्वेत्यसौ गुरुः ॥४१

प्रासाद नाद को उठा कर शततन्तु यदि जाप किया जावे तो छः मास में सिद्धि को प्राप्त होता है बिन्दु योग से युक्त होकर बरे, इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥३३॥ गम और भागम के ज्ञान से समस्त प्रकार के पापों का क्षय हो जाता है और अणिमा, महिषा आदि सिद्धियों के गुण एवं ऐश्वर्य को छः मास में ही प्राप्त कर लेता है ॥३४॥ मने स्थूल, सूक्ष्म और पर इस प्रकार से प्रासाद का वर्णन किया है । वह प्रासाद ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत इस प्रकार से तीन-प्रकार का लक्षित करना चाहिए ॥३६॥ ह्रस्व पापों का दाह करता है-दीर्घ मोक्ष का प्रदान किया करता है और प्लुत है वह भाषा-यन (वृत्ति) करने में मूर्खों में बिन्दु स्वरूप में विभूषित रहता है ॥३६॥ आदि और अन्त में ह्रस्व के फट्कार मारण में हितकारी होता है और आदि तथा अन्त में हृदय को बाधपूर्ण में कहा गया है ॥३७॥ देव की दक्षिणा मूर्ति को स्थित होकर पाँच लाख जप करना चाहिए । जप के अन्त में घृत का होम दश सहस्र करना चाहिए ॥३८॥ इस प्रकार से पूर्ण भाष्यापित होने वाला अर्थात् पूर्णतया संतुष्ट हुआ मन्त्र वरद कर्म एवं उच्चाटन आदि सभी कर्मों को करा सकता है । ऊर्ध्व में शून्य, मध्य में शून्य और अधोभाग में निरामय शून्य में ॥३९॥ जो ब्राह्मण इस प्रकार से तीनों प्रकार के शून्य का ज्ञान रखता है वह निश्चय ही छुटकारा पा जाता है । जो प्रासाद को नहीं जानता है जो कि यज्ञ-मन्त्र का महातनु होता है और अष्टत्रिंशत्कला-से युक्त है वह आचार्य नहीं कहा जाया करता है । उसी प्रकार से भोद्धार और गायत्री एवं रुद्र आदि को भी यह गुरु जानता है ॥४०॥४१॥

८३ — गायत्रीनिर्वाणम्

एवं संध्याविधिं कृत्वा गायत्रीं च जपेत्स्मरेत् ।
 गायच्छ्रद्धयान्यतस्त्रायेत्कायः (यं) प्राणांस्तथैव ॥१॥
 ततः स्मृतेयं गायत्री सावित्री ततो यतः ।
 प्रकाशनात्सा सवितुर्वारूपत्वात्सरस्वती ॥२॥
 तज्ज्योतिः परमं ब्रह्म भर्गस्तेजो यतः स्मृतम् ।
 भा दीप्ताविति रूपं हि भ्रस्ज पाकेऽथ तस्मृतम् ॥३॥
 ओषध्यादिकं पचति भ्राजृ दीप्तौ तथा भवेत् ।
 भर्गः स्याद्भ्राजत इति बहुलं छन्द ईरितम् ॥४॥
 वरेभ्यं सर्वतेजोभ्यः श्रेष्ठं वै परमं पदम् ।
 स्वर्गपितृवर्गकामैर्वा वरणीयं सदैव हि ॥५॥
 बृहतेतेर्वरणाथत्वाज्जाग्रत्स्वप्नादिवर्जितम् ।
 नित्यं शुद्धं बुद्धमेकं सत्यं तद्धीमहीश्वरम् ॥६॥
 अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्ध्यायेमहि विमुक्तये ।
 नज्ज्योतिर्भगवान्विष्णुर्जगज्जन्मादिकारणम् ॥७॥
 शिवं केचित्पठन्ति स्म शक्तिरूपं पठन्ति च ।
 केचित्सूर्यं केचिर्दाग्निं वेदगा अग्निहोत्रिणः ॥८॥
 अग्न्यादिरूपं विष्णुर्हि वेदादौ ब्रह्म गीयते ।
 तत्पदं परमं विष्णोर्देवस्य सवितुः स्मृतम् ॥९॥

इस अध्याय में गायत्री के निर्वाण का वर्णन किया जाता है । श्री अग्निदेव बोले—इस उक्त विधि से संध्या के विधान को पूर्ण करके फिर गायत्री का स्मरण एवं जाप करना चाहिए । शिष्यों को गायन करती हुई यह त्राण किया करती है । शरीर और प्राण दोनों की रक्षा करने वाली है इसी लिये इसे गायत्री नाम से कहा गया है । यह सविता का प्रकाश किया करता है इसलिए इसका नाम सावित्री पड़ा है । यह धाणी के रूप वाली है इसीलिये सरस्वती है ॥१-९॥ उसको जो ज्योति है वह ही परम ब्रह्म है । इससे भर्ग

तेज कहा गया है । यह "भादीती" इम धातु का दीप्ति के अर्थ में रूप बनता है । अथवा "भ्रस्त्र पाके"—इस धातु से यह रूप बना गया है ॥३॥ ओषधि आदि का पाचन करती है तथा अन्य "भाजू दीती"—इस धातु से यह 'भगं' रूप बनता है । भ्राजते इति भगं इम तरह से बहुत प्रकार से छन्द ने कहा है ॥४॥ 'वरेण्यम्'—इसका अर्थ है कि यह समस्त प्रकार के तंत्रों से श्रेष्ठ परम पद है और स्वर्ग तथा भववर्ग (मोक्ष) कामों के द्वारा सदा ही वरण करने के योग्य होता है ॥ ५ ॥ "वृन् वरणे"—इस धातु से जिसका अर्थ वरण करना होता है, जो जाग्रत-स्वप्न आदि से रहित है, नित्य एवं शुद्ध तथा बुद्ध है, एक एवं सत्य स्वरूप है उसका ईश्वर का ध्यान करते हैं ॥ ६ ॥ मैं परं ब्रह्म ज्योति का ध्यान करता हूँ और अपनी विशेष रूप से मुक्ति की प्राप्ति करने के लिये ही ध्यान कर रहा हूँ । वह ज्योति भगवान् विष्णु हैं जो जगत् के जन्म आदि के कारण स्वरूप हैं । उसी ज्योति को कुछ साधना करने वाले भक्त शिव कहा करते हैं और अन्य भक्त गण शक्ति कहते हैं । कुछ उसे सूर्य और कुछ वेद के ज्ञाता अग्नि होत्र करने वाले अग्नि कहा करते हैं ॥ ७-८ ॥ अग्नि आदि के रूप वाला विष्णु ही वेद आदि में 'ब्रह्म'—इस नाम से गाया जाया करता है । वह ही विष्णु का देव सविता का परम् पद कहा गया है ॥ ९ ॥

महदाद्यं सूयते हि स्वयंज्योतिर्हिरिः प्रभुः ।

पजन्यो वायुरादित्यः शीतोष्णार्द्यश्च पाचयेत् ॥१०॥

अग्नौ प्रास्ताऽऽहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।

आदित्याज्जायते वृष्टिवृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥११॥

दधातेर्वा धीमहीति मनसा धारयेमहि ।

नोऽस्माकं यश्च भर्गश्च सर्वेषां प्राणिनां धियः ॥१२॥

चोदयात्प्रेरयेद्बुद्धीर्भोक्तॄणां मवंकर्मसु ।

दृष्टादृष्टविपाकेषु विष्णुसूर्याग्निरूपवान् ॥१३॥

ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ।

ईशावास्यमिदं सर्वं महदादि जगद्धरिः ॥१४॥

स्वर्गाद्यैः क्रीडते देवो यो हंसः पुरुषः प्रभुः ।
 आदित्यान्तर्गतं यच्च भर्गव्यं वै मुमुक्षुभिः ॥१५॥
 जन्ममृत्युविनाशाय दुःखस्य त्रिविधस्य च ।
 ध्यानेन पुरुषोऽयं च द्रष्टव्यः सूर्यमण्डले ॥१६॥
 तत्त्वं सदसि चिद्ब्रह्म विष्णोर्यत्परमं पदम् ।
 देवस्य सवितुर्भर्गो वरेण्यं हि तुरीयकम् ॥१७॥
 देहादिजाग्रदाब्रह्म अहं ब्रह्मेति धीमहि ।
 योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहमनन्त ओम् ॥
 ज्ञानानि शुभकर्मादीन्प्रवर्तयति यः सदा ॥१८॥

महद् आदि प्रसूत किये जाते हैं । प्रभु हरि स्वयं ज्योति स्वरूप हैं । पञ्च-वायु और आदित्य शीत और उष्ण आदि से पाचन करते हैं ॥ १० ॥ अग्नि में प्राप्त आहुति जो कि विधिपूर्वक भली भाँति दी जाती है वह आदित्य को पहुँचती है । फिर आदित्य (सूर्य) से वृष्टि होती है । वृष्टि से अन्न की उत्पत्ति होती है और उस अन्न से प्रजा का उद्भव हुआ करता है ॥ ११ ॥ दधाति (डुघाज् धारणे) इस धातु से धीमहि प्रयोग होता है । इसका अर्थ होता है कि मन से धारण करें । जो भर्ग है वह 'नः' अर्थात् हमारी समस्त प्राणियों की बुद्धि को प्रचोदित करे अर्थात् प्रेरणा प्रदान करे । भोक्ताओं के समस्त कर्मों में बुद्धि को समुचित प्रेरणा प्राप्त होवे । दृष्ट और अदृष्ट विषयों में विष्णु-सूर्य और अग्नि के स्वरूप वाला ईश्वर के द्वारा प्रेरित होकर स्वर्ग अथवा श्वभ्र में जाया करता है । महद् से आदि लेकर यह सम्पूर्ण जगत् ईश का ही भावास है । भगवान् हरि स्वर्ग आदि के द्वारा क्रीड़ा किया करते हैं । जो देव हंस हैं वह प्रभु पुरुष हैं । आदित्य के अन्तर्गत (मध्य में स्थित) भर्ग नाम वाला तेज है । मुमुक्षुओं (मोक्ष की इच्छा रखने वालों) के द्वारा तीन प्रकार के (साध्यात्मिक-साधि दैविक-साधिभौतिक) दुःख के और संसार में जन्म लेना तथा मृत्यु को प्राप्त होना इसके विनाश के लिए ध्यान से सूर्य मंडल में इस पुरुष का दर्शन करना चाहिए ॥ १२ से १६ ॥ सहस्र मे (सभा में) तत्त्व-विद् ब्रह्म जोकि भगवान् विष्णु का परम पद है, सविता देव का जो भर्ग

तुरीयक एवं वरेण्य होता है । हे देहादि जाग्रद् ब्रह्म पर्यन्त मैं ही ब्रह्म हूँ—
इस प्रकार से ध्यान करें । जो यह आदित्य मे पुरुष है वह यह मैं ही हूँ ओम्
अनन्त हूँ । जो सर्वदा ज्ञान और शुभ कर्म आदि का प्रवर्तन किया करता
है ॥१७-१८॥

८४—राजाभिषेककथनम्

पुष्करेण रामाय राजधर्मं हि पृच्छते ।
यथाऽऽदौ कथितं तद्वद्वसिष्ठ कथयामि ते ॥१॥
राजधर्मं प्रवक्ष्यामि सर्वस्माद्राजधर्मतः ।
राजा भवेच्छत्रुहन्ता प्रजापालः सुदण्डवान् ॥२॥
पालयिष्यामि वः सर्वान्धर्गस्थान्द्रतमाचरेत् ।
सांवत्सरं स वृणुयात्पुरोहितमथ द्विजम् ॥३॥
मन्त्रिणश्चाखिलात्मज्ञानमहिषीं धर्मलक्षणाम् ।
सांवत्सरं नृपः काले ससंभारोऽभिषेचनम् ॥४॥
कुर्यान्मृते नृपे नात्र कालस्य नियमः स्मृतः ।
तिलैः सिद्धार्थकैः स्नानं सांवत्सरपुरोहितैः ॥५॥
घोषयित्वा जयं राज्ञो राजा भद्रासने स्थितः ।
अभयं घोषयेद्ब्रह्मान्मोचयेद्राज्यपालके ॥६॥
पुरोधसाऽभिषेकात्प्राक्त्यैन्द्री शान्तिरेव च ।
उपवास्याभिषेकाहे वेद्यम्नौ जुहुयान्मनून् ॥७॥
वैष्णवानैन्द्रमन्त्रास्तु सावित्रान्वंश्चदेवतान् ।
सौम्यान्स्वस्त्ययन शर्म आमुष्याभयदान्मनून् ॥८॥

इस अध्याय में राजा के अभिषेक का वर्णन किया जाता है ।
श्री भगिन ने कहा—राजा के क्या-क्या धर्म हुआ करते हैं—यह बात पूछने
वाले श्रीराम के लिये पुष्कर ने जो सबसे प्रथम आदि काल में कहा था । हे
वसिष्ठ ! ठीक उसी के समान मैं तुमको बतलाता हूँ ॥१॥ पुष्कर ने कहा—मैं
भव राजा के धर्म को बताऊंगा । पूर्ण राजा धर्म से राजा राज्ञों का हनन

करने वाला और प्रजा का पालन करने वाला सुदण्ड वाला होता है ॥२॥
 समस्त धर्म में स्थित रहने वाले आप लोगों का मैं पालन करूँगा—इस प्रकार
 के व्रत को ग्रहण करना चाहिए । उस राजा को सम्बत्सर तक ब्राह्मण पुरोहित
 का वरण करना चाहिए ॥३॥ आत्मज्ञ समस्त मन्त्रियों का और धर्म के लक्षणों
 वाली महिषी (पट्टाभिषिक्त प्रधान रानी) का वरण करे । समय पर पूरे
 सम्भार के सहित साम्बत्सर राजा का अभिषेचन होता है ॥४॥ राजा के मृत
 हो जाने पर ही अभिषेक नहीं करना चाहिए । इसके लिए काल का नियम
 कहा गया है । सिद्धार्थक तिलों से साम्बत्सर पुरोहितों के द्वारा स्नान कराया
 जाता है ॥५॥ राजा का जय घोषित करे कि राजा भद्रासन पर स्थित हुमा
 है । समस्त प्रजा में किसी प्रकार का श्रव भय नहीं होगा—ऐसी भी सर्वत्र
 राज्य में घोषणा करनी चाहिए । जो राज्य के पालन में वृद्ध हों उन्हें छुटकारा
 दिला देना चाहिए ॥६॥ पुरोहित के द्वारा राज्याभिषेक होने से पूर्व ऐन्द्रो शांति
 कर देनी चाहिए । अभिषेक के दिन में उसवास करके वेदी की अग्नि में मन्त्रों
 से हवन करना चाहिए ॥७॥ विष्णु सम्बन्धी मन्त्रों का तथा इन्द्र से सम्बन्धित
 मन्त्रों का और सावित्र एवं वैश्व देवत सोम्य मन्त्रों का उच्चारण कर हवन
 करे । स्वस्त्ययन एवं कल्याण तथा आयुष्य और अभय देने वाले मन्त्रों से हवन
 करना चाहिए ॥८॥

अपराजितां च कलशं वन्देदक्षिणपार्श्वगम् ।

संपातवन्तं हैमं च पूजयेद्गन्धपुष्पकैः ॥९॥

प्रदक्षिणावर्तशिखस्तप्तजाम्बूनदप्रभः ।

रथीघमेघनिघौषो विधूमश्च हुताशनः ॥१०॥

अनुलोमः सुगन्धिश्च स्वस्तिकाकारसन्निभः ।

प्रसन्नाचिमंहाज्वालः स्फुलिङ्गरहितोहितः ॥११॥

न ग्रजेयुश्च मध्येन मार्जारिमृगपक्षिणः ।

पवंताग्रमृदा तावन्मूर्धनिं शोधयेन्नृपः ॥१२॥

यल्मीकाग्रमृदा कर्णौ वदनं केशवालयात् ।

इन्द्रालयमृदा ग्रीवां हृदयं तु नृपाजिरात् ॥१३॥

करिदन्तोद्धृतमृदा दक्षिणं तु तथा भुजम् ।

वृषशृङ्गोद्धृतमृदा वामं चैव तथा भुजम् ॥१४॥

सरोमृदा तथा पृष्ठमुदरं संगमान्मृदा ।

नदीतटद्वयमृदा पार्श्वे संशोधयेत्तथा ॥१५॥

वेश्याद्वारमृदा राज्ञः कटिशीचं विधीयते ।

यज्ञस्थानात्तथैवोरु गोस्थानाज्जानुनी तथा ॥१६॥

अपरारजिता—कलश—वह्नि के दक्षिण पार्श्व में स्थित सम्यात वाले हैम कलश का गन्धाक्षत पुष्पों से पूजन करना चाहिए ॥ ६ ॥ उस समय में अग्नि किस प्रकार का हो—यह बताते हैं—दक्षिण की ओर धावत् शिखा वाला तथाये हुए सुवर्ण की प्रभा के तुल्य प्रभा वाला, रथ समूह और मेघ के निर्घोष वाला, धूम्रा से रहित हुताशन (अग्नि) होना चाहिए ॥१०॥ अनुलोम, सुन्दर गन्ध युक्त तथा स्वस्तिक (साधिया) के आकार के तुल्य होवे । प्रसन्न अग्नि (लो) वाला अर्थात् अच्छी तरह से जिसमें लो निकल रही हो, महान् ज्वाला वाला और स्फुलिंगों (पतिङ्ग) से रहित अग्नि ही उस बेला में हितकारी होता है ॥११॥ राज्याभिषेक के समय पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए कि मध्य भाग से मार्जार (बिल्ली) मृग और पक्षी न जावें । राजा को पर्वत की चोटी की मिट्टी से अपने मूर्द्धा का शोधन करना चाहिए ॥१२॥ सर्प की बाँवी (रहने का बिल या स्थान) के आगे की मिट्टी से कानों का शोधन करे । भगवान् केशव के देवालय की मिट्टी से मुख का शोधन तथा इन्द्रालय की मृत्तिका से ग्रीवा का और राजा के आंगन की मिट्टी से हृदय को शोधन करना चाहिए ॥१३॥ हाथी के दाँत से उखाड़ी हुई या खोदी हुई मिट्टी से दाहिनी भुजा का एवं बैल के सोंग से खोदी हुई मृत्तिका से बाँई भुजा का शोधन करे ॥१४॥ सरो-वर की मृत्तिका से पीठ का और संगम की मिट्टी से उदर का और नदी के दोनों तटों की मिट्टी से दोनों कमरों का शोधन करना चाहिए ॥१५॥ किसी वेश्या के घर के द्वार की मिट्टी से राजा की कटि (कमर) की शुद्धि करनी चाहिए । यज्ञ स्थान की मृत्तिका से दोनों ऊरुओं का तथा गो-वन्दन के स्थान की मृत्तिका से दोनों घुटनों का शोधन करना आवश्यक है ॥१६॥

अश्वस्थानात्तथा जङ्घे रथचक्रमृदाऽङ्घ्रिके ।
 मूर्धानं पञ्चगव्येन भद्रासनगतं नृपम् ॥१७॥
 अभिपिञ्चेदमात्यानां चतुष्टयमथो घटेः ।
 पूर्वतो हेमकुम्भेन घृतपूर्णं ब्राह्मणः ॥१८॥
 रूप्यकुम्भेन याम्ये च क्षीरपूर्णं क्षत्रियः ।
 दध्ना च ताम्रकुम्भेन वैश्यः पश्चिमगेन च ॥१९॥
 मृन्मयेन जलेनोदकशूद्रामात्योऽभिषेचयेत् ।
 ततोऽभिषेकं नृपतेर्वहवृचप्रवरो द्विजः ॥२०॥
 कुर्वीत मधुना विप्रश्छन्दोगश्च कुशोदकैः ।
 संपातवन्त कलश तथा गत्वा पुरोहितः ॥२१॥
 विधाय बन्धिरक्षां तु सदस्येषु यथाविधि ।
 राजश्रियाऽभिषेके च ये मन्त्राः परिकीर्तिताः ॥२२॥
 तैस्तु दद्यान्महाभाग ब्राह्मणानां स्वनस्तथा ।
 ततः पुरोहितो गच्छेद्देदिमूलं तदेव तु ॥२३॥
 शतच्छिद्रेण पात्रेण सोवर्णेनाभिषेचयेत् ।
 या ओषधीत्योषधीभीरयेत्युक्त्वेति गन्धकैः ॥२४॥

पुटशाल की मिट्टी से दोनों जाँघों का घोर रथ के पहिये की सगी हुई
 मिट्टी से पैरों का गोघन करे । भद्रासन पर संस्थित राजा के मूर्धा को पञ्च-
 गव्य से अभिषेचन करना चाहिए । यह अभिषेक चार भगवत् (मन्त्री) घटों
 के द्वारा करें । पूर्व में घृत से भरा हुआ मुवर्ग के घट से ब्राह्मण करें । पश्चि-
 म के निमित्त घट में जोकि दूध से भरा हुआ हो दक्षिण में क्षत्रिय अभिषेचन
 करे । पश्चिम दिशा में स्थित होकर वैश्य ताम्र का बना हुआ दही से परिपूर्ण
 घट लेकर अभिषेक करे ॥१७॥१८॥१९॥ मिट्टी के घट की लेकर जोकि जल से
 भरा हुआ हो उत्तर दिशा में स्थित होकर शूद्र वर्ग वाला भगवत् राजा का
 अभिषेक करे । इसके अनन्तर वहवृच धेनु द्विज राजा का अभिषेचन करे ॥२०॥
 विप्र मधु से घोर रथोदक कुशोदक में करे । पुरोहित सग्यात वाले कलश को
 आकर बलि की रक्षा करके सदस्यो में यथाविधि राज थी से अभिषेक में जो

भी मन्त्र कहे गये हैं उनके द्वारा तथा महाभाग वाले ब्राह्मणों के शब्दों के द्वारा देना चाहिए । इसके उपरान्त पुरोहित वेदी के मूल के निकट जावे ॥२०॥२१॥ २२॥२३॥ सौ छिद्र वाले मुवर्ण के पात्र से अभिषेक करना चाहिए । "या ओषधि त्योषधी भीरय इस मन्त्र का उच्चारण कर गन्ध के द्वारा स्पर्श करे ॥२४॥

पुष्पैः पुष्पवतीत्येव ब्राह्मणेति च वीजकैः ।
 रत्नैराशुः निशानश्च ये देवाश्च कुशोदकैः ॥२५॥
 यजुर्वेद्ययववेदी गन्धद्वारेति सस्पृशेत् ।
 शिरः कण्ठं रोचनया सर्वतीर्थोदकैर्द्विजाः ॥२६॥
 गीतवाद्यादिनिर्घोषैश्चामह्यजनादिभिः ।
 सवौषधिमयं कुम्भं धारयेयुर्नृपाग्रतः ॥२७॥
 त पश्येत्पुष्पं राजा धृतं वै मङ्गलादिकम् ।
 धर्म्यच्यं विष्णुं ब्रह्माणमिन्द्रादींश्च ग्रहेश्वरान् ॥२८॥
 व्याघ्रचर्मोत्तरां शय्यामुपविष्टः पुरोहितः ।
 मधपर्कादिकं दत्त्वा पट्टवन्ध प्रकाशयेत् ॥२९॥
 राज्ञो मुकुटवन्धश्च पञ्चचर्मोत्तरं ददेत् ।
 ध्रुवादयैरिति च विशेषदृष्टं वृषभांशजम् ॥३०॥
 द्वौपिजं सिंहजं व्याघ्रजातं चर्म तदासने ।
 अमात्यसचिवादींश्च प्रतीहारः प्रदर्शयेत् ॥३१॥
 गोजाविगृहदानादर्थः सावत्सरपुरोहिता ।
 पूजयित्वा द्विजान्प्राच्यं ह्यन्यान्भूगोत्रमुख्यकैः ॥३२॥
 बन्धि प्रदक्षिणीकृत्य गुरुं नत्वाऽथ पृष्ठतः ।
 वृषमालम्य गां वत्सं पूजयित्वाऽथ मन्त्रितम् ॥३३॥
 अश्वमारुह्य नार्गं च पूजयेत्तं समारूहेत् ।
 परिभ्रमेद्राजमार्गं च युक्तः प्रदक्षिणम् ॥३४॥
 पुरं विसेच्च दानार्थः प्राच्यं सर्वान्विसर्जयेत् ॥३५॥

“पुण्यवती” इत्यादि के द्वारा पुष्पों से “ब्राह्मण” इत्यादि के द्वारा बीजों से ‘मानु शिशानश्च’ इससे रत्नों से ‘ये देवाश्च’ इत्यादि से कुशोदक के द्वारा, यजुर्वेदी तथा ऋग्वेदी ‘गन्ध द्वारा’ इत्यादि मन्त्र से संस्पर्श करे । शिर और कण्ठ को रोचना से करे और ब्राह्मण समस्त तीर्थों के साथे हुए जलों से युक्त एवं सर्वोपपि के सहित कुम्भ को राजा के आगे गीत-वाद्य के निर्घोषों द्वारा तथा चामर और व्यजनों के सहित धारण करे ॥२५॥२६॥२७॥ राजा उसको देखे तथा दर्पण, धृत और मङ्गल वस्तुओं को देखे । फिर भगवान् विष्णु का अर्चन करे और ब्राह्मणों-इन्द्रादि देवों तथा ग्रहेश्वरों का अर्चन करना चाहिए ॥ २८ ॥ व्याघ्रचर्म वाली शय्या पर उपविष्ट पुरोहित मधुकं आदि देकर यह बन्ध करे ॥ २९ ॥ राजा को मुकुट बन्ध पञ्च चर्मोत्तर देवे । ‘ध्रुवा द्यौः’ इत्यादि मन्त्रों के द्वारा विशेषपूज-वृषभांशज-द्वीपिज-सिंहज और और व्याघ्र जात चर्म को उसके आसन पर देवे । फिर प्रतीहार को अमात्य एवं सचिव आदि को दिखलाना चाहिए ॥३०॥३१॥ गौ-अजादि-गृह आदि के दानों से द्वारा साम्बत्सर पुरोहितों का पूजन करके तथा अन्य द्विजों का यजन करके गोत्र के मुख्य व्यक्तियों के साथ अग्नि की परिक्रमा करे । गुरु का अभिवादन करके पीछे वृष का आलभन कर गौ और बत्स का पूजन करे मन्त्रित अश्व और नाग का पूजन करे और उस पर फिर आरोहण करे । राज मार्ग में दक्षिण की ओर से भ्रमण करना चाहिए । इसके उपरान्त पुर में प्रवेश करे और दानादि से सबका सत्कार करके विसर्जित करे ॥३२ से ३५॥

८५—सहायसंपत्तिः

सोऽभिषिक्तः सहामात्यो जयेच्छत्रन्तृपोत्तमः ।
 राजा सेनापतिः कार्यो ब्राह्मणः क्षत्रियोऽथ वा ॥१॥
 कुलीनो नीतिशास्त्रज्ञः प्रतीहारश्च नीतिवित् ।
 दूतश्च प्रियवादी स्यादक्षीणोऽतिवलान्वितः ॥२॥
 ताम्बूलधारी ना स्त्री वा भक्तः क्लेशसहः प्रियः ।
 सांघिविग्रहिकः कार्यं पाङ्गुग्यादिविशारदः ॥३॥

और रसोई घर में जाने वाला होना चाहिए ॥४॥ राजा के सभा के जो सदस्य हों वे धर्म के ज्ञाता—लेखक और प्रक्षर वेत्ता एवं मित्र होने चाहिए । जो राजा के दोवारिक अर्थात् द्वारपाल हों वे हितैषी और ब्राह्मण करने के समय को जानने वाले होने चाहिए ॥५॥ जो धन का अध्यक्ष अर्थात् कोष (खजाने) का स्वामी अधिकारी हो वह रत्नादि की पूरी जानकारी रखने वाला—अर्थ-द्वार में हितकारी नर होना चाहिए । जो राज घराने की व्यक्तियों की चिकित्सा करने वाला वैद्य हो वह आयुर्वेद शास्त्र का पूर्ण पण्डित होना चाहिए । हाथी-खाने का अधिकारी हस्तिविद्या का परिदृत होना चाहिए । इसमें सुलक्षण—स्वभाव आदि सबके ज्ञान होना आवश्यक है ॥ ६ ॥ श्रम को जीतने वाला गजाध्यक्ष और भ्रश्राध्यक्ष होने चाहिए जो गज और भ्रश्र दोनों का आरोहण भी जानते हैं । दुर्ग का अध्यक्ष हितकारी होवे । जो रथों का पति हो वह वास्तु विद्या का परिदृत होना चाहिए ॥७॥ यन्त्र मुक्त—पाणिमुक्त—अमुक्त और मुक्तधारित नियुद्ध में कुशल और राजा का हितैषी एवं अस्त्रों की विद्या का आचार्य होना चाहिए ॥८॥

वृद्धश्चान्तःपुराध्यक्षः पञ्चाशद्वापिकाः स्त्रियः ।

सप्तत्यब्दास्तु पुरषाश्चरेयुः सर्वकर्मसु ॥९॥

जाग्रत्स्यादायुधागारे ज्ञात्वा वृत्तिविधीयते ।

उत्तमाधममध्यानि बुद्ध्वा कर्माणि पार्थिवः ॥१०॥

उत्तमाधममध्यानि) पुरुषाणि (न्वि) नियोजयेत् ।

जयेच्छुः पृथिवीं राजा सहायानानयेद्वितान् ॥११॥

धर्मिष्ठान्धर्मकार्येषु शूरान्सङ्ग्रामकर्मसु ।

निपुणानर्थकृत्येषु सर्वत्र च तथा शुचीन् ॥१२॥

स्त्रीषु पण्डानियुञ्जीत तीक्ष्णान्दारुणकर्मसु ।

यो यत्र विदितो राजा शुचित्वेन तु तं नरम् ॥१३॥

धर्मं पार्थे च कामे च नियुञ्जीताधमेऽधमान् ।

राजा यथाहं कुर्याच्च उपधाभिः परीक्षितान् ॥१४॥

॥१३॥१४॥ राजा और मन्त्री दोनों को न्याय के अनुसार हस्ति बनेघरों की नियुक्ति करे जो उनके पदों के खोजों के ढूँढ़ने में कुशल हों वैसे ही वहाँ अध्यक्ष भी रखे ॥१५॥ जिसका जिस काम में कौशल हो उसका उसी के करने में नियोजन करे । जिनके पिता तथा पितामह नोकर रहे हों उनको ही समस्त कार्यों में नियुक्त करने चाहिए ॥१६॥

विना दायादकृत्येषु तत्र ते हि समा मताः ।

परराजगृहात्प्राप्ताञ्जनान्संश्रयकाम्बया ॥१७॥

दुष्टानप्यथ वाऽदुष्टान्सश्रयेत् प्रयत्नतः ।

दुष्टं ज्ञात्वा विश्वसेन तद्वृत्तिं वर्तयेद्वशे ॥१८॥

देशान्तरागतान्पाश्वर्चे चारंज्ज्ञात्वा हि पूजयेत् ।

शत्रवोऽग्निर्विषं सर्पो निस्त्रिशमपि चैकतः ॥१९॥

भृत्या विशिष्टं विज्ञेयाः कुभृत्याश्च तथैकतः ।

चारचक्षुर्भवेद्राजा नियुञ्जीत सदा चरान् ॥२०॥

जनस्याविहितान्सौम्यांस्तथाऽज्ञातान्परम् ।

वणिजो मन्त्रकुशलान्सावत्सरचिकित्सकान् ॥२१॥

तथा प्रव्रजिताकारान्वलाबलविवेकिनः ।

{ नैरुस्य राजा श्रद्धयाच्छ्रद्धयाद्वहुवाक्यतः ॥२२॥

रागापरागौ भृत्यानां जनस्य च गुणागुणान् ।

{ शुभानामशुभानां च ज्ञानं कुर्याद्विधाय च ॥२३॥

अनुरागकरं कर्म चरेज्जह्याद्विरागजम् ।

जनानुरागया लक्ष्म्या राजा स्याज्जनञ्जनात् ॥२४॥

दायाद कृत्यों के बिना वहाँ पर वे सामान माने गये हैं । दूसरे राजा के यहाँ से प्राप्त होने वाले मनुष्यों को, जोकि यहाँ आश्रम प्राप्त करना चाहते हैं, वे चाहे दुष्ट भी हों, या सज्जन हों उनको प्रयत्न पूर्वक अवश्य ही आश्रय दे देना चाहिए । यदि यह ज्ञान हो जावे कि यह दुष्ट है तो उसका विश्वास किसी भी तरह न करे और न उसके व्यवहार में आवे तथा न बलीभूत बने ॥१७-

१८॥ जो अन्य देश से पास में आये हों उनका दूतों के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके फिर उनका सत्कार करना चाहिए । शत्रु-प्रति-विष-मूर्ख और निस्त्रिष ये सब एक घोर हैं इन सबसे भृत्य विशिष्ट जानने चाहिए । जो बुरे भृत्य होते हैं वे एक घोर हैं । दूत ही राजा के नेत्र हुआ करते हैं अर्थात् दूतों के द्वारा ही राजा सब कुछ देखा करते हैं । इसलिये सदा अच्छे दूतों की ही नियुक्ति राजा को करनी चाहिए ॥१६।२०॥ जन के अविद्वित-सौम्य तथा आपस में अज्ञात-वणिज-मन्त्र कुशल-साम्बन्ध-चिकित्सक-प्रव्रजित आकार वाले-बलाबल के विवेक रखने वाले दूतों की नियुक्ति करनी चाहिए । राजा को कभी भी एक आदमी पर थप्पा (भरोसा) नहीं करना चाहिए । बहूतों के वाक्यों पर भरोसा करना चाहिए ॥२१।२२॥ भृत्यों के राग और अपराधों को तथा जन के गुणों और अगुणों को धुनों का तथा अशुभों का ज्ञान करना चाहिए । वश के लिए ज्ञान करना चाहिए । जो कर्म अनुराग करने वाला हो उसे करे जो विराग करने वाला हो उसे त्याग देवे । जनता के अनुराग पूर्ण लक्ष्मी से और जन रञ्जन से राजा होता है ॥२३।२४॥

८६—दुर्गसंपत्ति:

दुर्गसंपत्तिमाख्यास्ये दुर्गदेशे वसेन्नृपः ।
 वंश्यशूद्रजनप्रायो ह्यनाहायंस्तथा परेः ॥१॥
 किञ्चिद्ब्राह्मणसंयुक्तो बहुकर्मकरस्तथा ।
 अदेवमातृको भक्तजलो देशः प्रशस्यते ॥२॥
 परैरपीडितः पुष्पफलाधान्यसमन्वितः ।
 अगम्यः परचक्राणां व्यालतस्करवर्जितः ॥३॥
 पण्णामेकतमं दुर्गं तत्र कृत्वा वसेद्वली ।
 धनुर्दुर्गं महीदुर्गं नरदुर्गं तथैव च ॥४॥
 वार्क्षं चैवाम्बुदुर्गं च गिरिदुर्गं च भार्गव ।
 सर्वोत्तमं शैलदुर्गमभेद्यं चान्यभेद्वनम् ॥५॥

पुरं तत्र च हृदाद्यं देवतायतनादिकम् ।
 अनुयन्त्रायुधोपेतं सोदकं द्रुगमुत्तमम् ॥६॥
 राक्षरक्षां प्रवक्ष्यामि रक्ष्यो भूपो विपादितः ।
 पञ्चाङ्गस्तु शिरीषः स्यान्मूत्रपिष्टो विपादनः ॥७॥
 शतावरी छिन्नरुहा विपघ्नी तण्डुलीयकम् ।
 कोपातकी च कल्लारी ब्राह्मी चित्रपटोलिका ॥८॥
 मण्डूकपर्णी वाराही धात्र्यानन्दकमेव च ।
 उन्मादिनी सोमराजी विपघ्नं रत्नमेव च ॥९॥

पुष्कर ने कहा—अब मैं दुर्ग सम्पत्ति के विषय में वर्णन करता हूँ । राजा को सदा दुर्ग में ही निवास करना चाहिए । जो दुर्ग प्रायः वैश्य और शूद्र जन वाला होता है तथा शत्रुओं के द्वारा आहरण करने के अयोग्य होता है ॥१॥ राजा के निवास का देश वही प्रशस्त होता है जहाँ पर कुछ ब्राह्मणों से संयुक्त हो और बहुत कर्म करने वाले व्यक्ति अहाँ रहते हों । अथवा मातृक और भक्त जल देण होना चाहिए ॥ २ ॥ दूसरों के द्वारा पीड़ा से रहित और पुष्प तथा फल और धान्य से समन्वित स्थान राजा के निवास का होना चाहिए । परचक्रों के गमन न करने के योग्य तथा ठगाल और तस्करों से वर्जित होवे ॥३॥ छे प्रकार के दुर्गों में से एक तम दुर्ग बनवाकर बली को निवास करने के योग्य होता है । दुर्ग को छे किशम ये हैं—धनुर्दुर्ग—महीदुर्ग—नरदुर्ग—वार्ध—अम्बुदुर्ग और गिन्दुर्ग ये छे भेद हैं । हे भागव ! इन छे प्रकार के दुर्गों में सबसे श्रेष्ठ जैन दुर्ग होता है । यह अभेद्य और अन्य भेदन होता है ॥४॥ यहाँ पर पुर होना चाहिए जहाँ हट आदि सब हों और देवायतन आदि भी हों यन्त्रायुधों से युक्त होना चाहिए तथा जल के सहित दुर्ग उत्तम दुर्ग होता है ॥५॥ अब राजा की रक्षा के विषय में बताया जाता है । राजा विप आदि से रक्षा करने के योग्य होता है । शिरीष का पञ्चाङ्ग मूत्र के साथ पीसा हुआ विप का नाशक होता है ॥६॥ छिन्न रुहा शतावरी विप के नाश करने वाली होती है । तण्डुलीयक—कोपातकी—कल्लारी—ब्राह्मी—चित्र पटोलिका—मण्डूक

तथा सुगन्धा एवं सुव्यवस्था कर उन्हें पालित रखते और देवों की स्थापना करनी चाहिए । देवालय जो मिट्टी का बनवाया जावे उससे पुण्य होता है किन्तु वही यदि काष्ठ से बनवावे तो ज्यादा पुण्यप्रद होता है । लकड़ी से भी अधिक पुण्य ईंटों के बनवाने से होता है ॥ १२ ॥ ईंटों से भी पत्थरों द्वारा बनवाने से पुण्य होता है । शैलज से भी अधिक पुण्य स्वर्ण एवं रत्नों द्वारा बनवाने से होता है । देवगृह की रचना करके क्रीड़ा करने वाला नृप समस्त सांसारिक सुखोपभोग और अन्त मे मोक्ष अर्थात् ससार के जन्म मरण स्वरूपी आवागमन से छुटकारा दोनों की प्राप्ति किया करता है ॥ १३ ॥ चित्र बनाने वाला—गीत और वाद्य आदि तथा प्रेक्षण करने के योग्य आदि एवं दान करने वाला तथा तैल, घृत, मधु और दूध आदि से देवता का स्नान कराके मानव या नृप देव-लोक को चला जाता है ॥ १४ ॥ राजा का कर्त्तव्य है कि सदा ब्राह्मणों की पूजा करे और उनका पूर्णतया पालन-पोषण भी करता रहे । राजा को कभी भी द्विजत्व का हरण नहीं करना चाहिए । एक सुवर्ण—एक गौ और एक अंगुल भी भूमि का हरण करने वाला नृप जब तक भूत सप्लव हो तब तक नरक की यातनाएँ भोगा करता है । दुराचार का द्वेष न करे समस्त पापों में भी स्थित को भी ब्राह्मण के बध से कहीं भी अधिक बड़ा पाप नहीं होता है । भद्रदेव को दैवत करते हैं और दैवत को भद्रदेव ब्राह्मण किया करते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ ये ब्राह्मण महाभाग वाले हुम्ना करते हैं उन्हें तो सर्वदा ही नमस्कार ही करना चाहिए । यदि कोई सताई हुई ब्राह्मणी रोती है तो उसके उस रुदन का यह प्रभाव एव परिणाम होता है कि उससे समस्त राज्य—कुल तथा प्रजा का नाश हो जाता है ॥ १८ ॥

साध्वी स्त्रीणां पालनं च राजा कुर्याच्च धार्मिकः ।

स्त्रिया प्रहृष्टया भाव्यं गृहकायैकदक्षया ॥ १९ ॥

सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ।

यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां शुश्रूषेत् पति सदा ॥ २० ॥

मृते भर्तरि स्वर्गायब्रह्मचर्ये स्थिताऽङ्गना ।

परवेष्टमश्चिन्तं स्यात्त स्यात्कलहशालिनी ॥ २१ ॥

मण्डनं ब्रजयेन्नारी तथा प्रोषितभर्तृका ।

देवताराधनपरा तिष्ठेद्भर्तृहिते रता ॥२२॥

धारयेन्मंगलाययि किञ्चिदाभरणं तथा ।

भर्तृर्जग्निं या विशेन्नारी साऽपि स्वर्गमवाप्नुयात् ॥२३॥

श्रियः संपूजनं कार्यं गृहसंमार्जनादिकम् ।

द्वादश्यां कार्तिके विष्णुं गां सवत्सां ददेत्तथा ॥२४॥

सावित्र्या रक्षितो भर्ता सत्याचारव्रतेन च ।

सप्तम्यां मार्गशीर्षे तु सितेऽभ्यर्च्य दिवाक्रमम् २॥२५॥

पुत्रानाप्नोति च स्त्रीह नात्र कार्या विचारणा ॥२६॥

जो राजा धर्म में निष्ठा रखता है उसका कर्त्तव्य है कि उसे सती-साध्वी स्त्रियों का पालन करना चाहिए । स्त्री जो प्रसन्न होती है और गृह कार्यों में भी उसे दक्ष होना चाहिए ॥१६॥ घर में जो भी सामान हो वह उसे सुसंस्कृत रखना चाहिए । तथा व्यय करने हाथ कभी नहीं भीचना चाहिए । पिता नारी को जिसे भी देवे अर्थात् जिसके साथ विवाह कर बन्दा का दान कर देवे उसे अपने पति की स्त्री को भनी-भाति मदा सेवा करनी चाहिए ॥२०॥ यदि स्त्री का पति मृत हो जावे और और वह उसके मरने के पश्चात् ब्रह्मचर्य में रहे तो उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुआ करती है । स्त्री को कभी दूसरे के घर में रुचि नहीं रखनी चाहिए और न उसे बलह करने के स्वभाव वाली हो होना चाहिए ॥ २१ ॥ जब स्त्री का पति परदेश में हो तो उसे अपना शृङ्गार नहीं करना चाहिए । उसे ऐसी स्थिति में सर्वदा देवों का आराधन करते हुए अपने स्वामी के हित में संलग्न रहना चाहिए ॥ २२ ॥ केवल मंगल के लिये कोई साधारण-सा ही आभूषण उस समय उसे धारण करना चाहिए । जो नारी पति को मृत्यु हो जाने पर उमकी हो बिता के साथ जम कर मती हो जाया करती है वह भी स्वर्ग की प्राप्ति किया करती है ॥२३॥ स्त्री को सर्वदा भनी प्रशार से श्री का पूजन करना चाहिए और घर का समार्जन आदि कार्य करना चाहिए । कार्तिक मास में द्वादशी के दिन विष्णु को रात में युक्त गो का दान करे । सावित्री ने अपने ही सतीत्व के बल से अपने स्वामी की रक्षा की थी ।

यज्ञ सच्चे आचार और व्रत का महान् व्रत होता है । मार्गशीर्ष मास की सप्तमी के दिन शुक्ल पक्ष में सूर्य का पूजन कर नारी पुत्रों का लाभ प्राप्त करती है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥२४।२५।२६॥

८७--राजधर्माः (१)

ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद्दशग्रामाधिपं नृपः ।
 शतग्रामाधिपं चान्यं तथैव विपयेश्वरम् ॥१॥
 तेषां भोगविभागश्च भवेत्कर्मानुरूपतः ।
 नित्यमेव तथा कार्यं तेषां चारैः परीक्षणम् ॥२॥
 ग्रामे दोषान्समुत्पन्नान्ग्रामेशः प्रशमयेत् ।
 अशक्तो दशपालस्य स तु गत्वा निवेदयेत् ॥३॥
 श्रुत्वाऽपि दशपालोऽपि तत्र युक्तमुपाचरेत् ।
 वित्ताद्याप्नोति राजा वै विपयात्तु सुरक्षितात् ॥४॥
 धनवान्धर्ममाप्नोति धनवान्काममश्नुते ।
 उच्छिद्यन्ते विना ह्यर्थैः क्रिया शोभते सरिस्थया ॥५॥
 विद्येपो नास्ति लोकेषु पतितस्याधनस्य च ।
 पतिताश्च तु गृह्णन्ति दरिद्रो न प्रयच्छति ॥६॥
 धनहीनस्य भार्याऽपि नैव स्याद्विशर्तिनी ।
 राष्ट्रपीडाकरो राजा नरके वसते चिरम् ॥७॥
 नित्यं राजा तथा भाव्यं गभिणी सहर्धमिणी ।
 यथा स्यं सुखमुत्सृज्य गर्भस्य सुखमावहेत् ॥८॥

इस अध्याय में राजा के धर्मों का वर्णन किया जाता है । गुल्फर ने कहा—राजा को दस ग्रामों पर एक अधिपति नियुक्त करना चाहिए । यह ग्रामाधिप कहा जाता है । इसी प्रकार इन दस के ऊपर तीस ग्रामों पर एक अधिपति बनावे जो एक प्रकार का राजा के नीचे छोटा—सा राजा ही के समान होता है ॥१॥ उक्त ग्रामाधिपों का जो दस ग्राम और ग्राम के अध्यक्ष दो तरह

के बताये गये हैं। भोग और विभाग उनके कार्यों के अनुसार ही होता है। राजा को उनके कार्य का परीक्षण दूतों के द्वारा नित्य ही करते रहना चाहिए ॥२॥ ग्राम में यदि कोई किसी भी प्रकार का दोष उत्पन्न हो जावे तो ग्राम के अध्यक्ष का कर्त्तव्य है कि उसे शान्त कर देवे। यदि कोई ऐसा ही दोष है कि दशपाल उसे प्रशान्त करने में असमर्थ है तो ऊपर उसके विषय में जाकर निवेदन कर देना चाहिए ॥ ३ ॥ दशपाल को भी श्रवण कर प्रथम की युक्ति सोचे और उसी प्रकार से शमनभी करे। अपने सुरक्षित देश से राजा वित्त (धन) आदि प्राप्त किया करता है ॥ ४ ॥ जो धन वाला होता है वही धर्म का साम प्राप्त किया करता है और हमेशा धनी पुरुष ही यथेच्छ भोग किया करता है। बिना धन के सारी क्रियाएँ छिन्न-भिन्न हो जाया करती है जिस तरह ग्रीष्म काल में नदी की दशा हो जाती है ॥५॥ संसार में एक पतित और निर्धन में कोई भी विशेषता नहीं दिखलाई देती है। पतित से कोई भी कुछ ग्रहण नहीं किया करते हैं और जो दरिद्र है वह स्वयं ही किसी को कुछ नहीं देता है ॥६॥ जो धन से हीन होता है उसकी भार्या भी वश में रहने वाली नहीं हुआ करती है अपने राष्ट्र को पीड़ा देने वाला राजा बहुत समय तक नरक में वास किया करता है ॥७॥ राजा को सर्वदा ऐसा ही होना चाहिए जैसे गरिणी और सहधर्मिणी होती हैं। वह अपने सुख का त्याग करके गर्भ के सुख का ही सदा ध्यान रखता करती है ॥८॥

किं यज्ञैस्तपसा तस्य प्रजा यस्य न रक्षिता ।

सुरक्षिता प्रजा यस्य स्वर्गस्तस्य गृहोपमः ॥९॥

अरक्षिताः प्रजा यस्य नरकं तस्य मन्दिरम् ।

राजा पङ्कभागमादत्ते मुकृताद्दुष्कृतादपि ॥१०॥

धर्मिणो रक्षणाच्च पापमाप्नोत्यरक्षणात् ।

सुभगा विटभीतेन राजवत्तलमतस्करैः ॥११॥

भक्ष्यमाणाः प्रजा रक्ष्याः कायस्थैश्च विशेषतः ।

रक्षिता तद्भयेभ्यस्तु राज्ञो भवति सा प्रजा ॥१२॥

अरक्षिता सा भवति तेषामेवेह भोजनम् ।
 दुष्टसंमर्दनं कुर्याच्छास्त्रोक्तं करमाददेत् ॥१३॥
 (कोपे प्रवेशयेद्धर्मं नित्यं चार्धं द्विजे ददेत् ।
 निधिं द्विजोत्तमः प्राप्य गृह्णीयात्सकलं तथा ॥१४॥
 चतुर्थमष्टमं भागं तथा षोडशमं (कं) द्विजः ।
 वर्णक्रमेण दद्याच्च निधिं पात्रे त धर्मतः ॥१५॥
 अनृतं त वदन्दण्ड्यः सुवित्तस्यांशमष्टमम् ।
 प्रनष्टस्वाभिकसृक्थं राजाश्वब्दं निधापयेत् ॥१६॥

उस राजा के यज्ञों और तपश्चर्या से क्या लाभ है जिसकी प्रजा ही
 रक्षित न रहती हो । तात्पर्य यह है कि बिना प्रजा की रक्षा के यज्ञ तप आदि
 सभी निष्फल हैं । जिस राजा की प्रजा भली-भाँति रक्षित है उसके लिए स्वर्ग
 गृह के समान ही होता है ॥१६॥ जिस राजा की प्रजा सुरक्षित एवं सुखी नहीं
 है उसका मन्दिर भी नरक के ही तुल्य है । राजा प्रजा के सुकृत और दुष्कृत
 (पुण्य-पाप) दोनों से छटा भाग लिया करता है ॥ १० ॥ प्रजा के सुरक्षण से
 ही धर्म का आगम (आना) होता है और प्रजा की रक्षा न करने से पाप की
 प्राप्ति हुआ करती है । राजा के प्रिय सत्करों के द्वारा सुभगा प्रजा विटों के
 समान डरी हुई रहती है । विशेष रूप से कायस्थों के द्वारा खाई जाने वाली
 प्रजा की अवश्य ही रक्षा करनी चाहिए । उनके भय से सुरक्षित प्रजा राजा की
 प्रिय होती है ॥११ १२॥ जिस प्रजा की रक्षा नहीं की गई है वह केवल उन
 लोगों का ही भोजन बन जाया करती है । इसलिए राजा को दुष्टों का भली-
 भाँति संमर्दन करना चाहिए और शास्त्र में जो भी बताया गया है वह कर
 प्रजा से लेना चाहिए ॥ १३ ॥ जो करका धान प्रजा से प्राप्त हो उसका आधा
 भाग कोप में जमा करना चाहिए और अर्धभाग का ब्राह्मणों को दान दे देना
 चाहिए । श्रेष्ठ द्विज निधि को प्राप्त कर समस्त को ग्रहण कर लेवे । चतुर्थ-
 षष्ठ और सोलहवाँ भाग ब्राह्मण को क्रम से पात्र को धर्मार्थ निधि का दान
 कर देना चाहिए ॥१४-१५॥ उसके विषय में झूठ बोलने वाले को दण्ड देना
 चाहिए । वह दण्ड वित्त का घाटवाँ अंश होना चाहिए । जिस सम्पत्ति का

स्वामी नष्ट होगया हो उसे राजा अपने पास तीन वर्ष तक धरोहर के रूप में रखे ॥१६॥

अवविश्ववदाद्वरेस्त्वामी परेण नृपतिर्हरेत् ।
 ममेदमिति यो ब्रूयासोऽयं युक्तो यथाविधि ॥१७॥
 संपाद्य रूपसंख्यादीन्स्वामी तद्द्रव्यमर्हति ।
 बालदायादिकमृक्यं तावद्राजाऽनुपालयेत् ॥१८॥
 यावत्स्यात्स समावृत्तो यावद्वाज्जीतशैशवः ।
 बालपुत्रासु चैवं स्याद्रक्षणं निष्कुलासु च ॥१९॥
 पतिव्रतासु च स्त्रीषु त्रिघंवास्वातुरासु च ।
 जीवन्तीनां तु तासां ये संहरेयुश्च बान्धवाः ॥२०॥
 ताञ्जिह्वाच्चौरदण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः ।
 सामान्यतो हृतं चौरैस्तद्वै दद्यात्स्वयं) नृपः ॥२१॥
 चौररक्षाधिकारिभ्यो राजाऽपि हृतमाप्नुयात् ।
 अहृते यो हृतं ब्रूयान्निःसार्यो दण्ड्य एव सः ॥२२॥
 न तद्राजा प्रदातव्यं गृहे यद्गृहंगैर्हृतम् ।
 स्वराष्ट्रपण्यादादद्याद्राजा विशतिम द्विज ॥२३॥
 गुल्कांशं परदेशाच्च क्षयव्ययप्रकाशकम् ।
 ज्ञात्वा संकल्पयेच्छुल्क लाभं वणिग्यथाऽऽप्नुयात् ॥२४॥

तीन साल के अन्दर ही स्वामी उसे ले लेवे । इसके ऊपर दूसरे से राजा को ले लेना चाहिए । जब कोई यह कहे कि यह मेरी सम्पत्ति है वह अर्थ उक्त विधि के अनुसार सम्पत्ति का स्वरूप और संख्या आदि का संपादन करके स्वामी उस द्रव्य के लेने के योग्य होता है । बालक का दायादि जो धन हो उसे राजा उस समय तक अपने पास सुरक्षित रखे जब तक वह बालक शालिग अर्थात् समर्थ एवं वयस्क हो ॥ १७॥१८॥ जब तक वह बालक समाप्तन से युक्त हो अर्थात् ब्रह्मचर्याधम समाप्त कर गार्हस्थ्य में प्रविष्ट हो अथवा

राजा को रक्षा करनी चाहिए । बाल पुत्राग्राहों के विषय में और निष्कुलाग्राहों के विषय में भी इसी प्रकार से रक्षा करनी चाहिए ॥ १६ ॥ पतिव्रता स्त्रियों के विषय में और विधवा तथा आतुरा (रोगिणी) स्त्रियों के जब तक वे जीवित रहें यदि उनके बान्धव घन हरण करें तो उनको चोर के समान दण्ड राजा को देना चाहिए । वही धार्मिक राजा होता है । साधारणतया यदि चोरों के द्वारा घन हरण किया गया है तो राजा को स्वयं ही वह देना चाहिए ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ चोरों की रक्षा के जो अधिकारी हों उनसे भी उस हृत घन को राजा को ले लेना चाहिए । हरण न करने पर भी जो हरण किया गया है—ऐसा कहे उसे राजा के द्वारा दण्ड देना चाहिए क्योंकि वह दण्ड के ही योग्य है ॥ २२ ॥ वह घन राजा को नहीं देना चाहिए जो गृह के अङ्गों के द्वारा घर में ही हरण किया गया हो । अपने राष्ट्र में परम वस्तु (सखी दी हुई वस्तु) से राजा को, हे द्विज ! बीसवाँ भाग शुल्क लेना चाहिए ॥ २३ ॥ और जो पराये देश से वस्तु लाई गई हो उसके क्षय और व्यय के प्रकाश करने वाले शुल्काय को समझ कर जितना बणिक ने लाभ किया है उसके अनुसार शुल्क निश्चित करना चाहिए ॥ २४ ॥

विंशति लाभमादद्याद्दण्डनीयस्ततोऽन्या ।

स्त्रीणां प्रव्रजितानां च तरशुल्कं विवर्जयेत् ॥ २५ ॥

तरेषु दासदोषेण नष्टं दासात्त दापयेत् ।

शूकघान्येषु पट्भागं शिम्बिघान्ये तथाऽष्टमम् ॥ २६ ॥

राजा वन्यार्थमादद्याद्देशकालानुरूपकम् ।

पञ्चपट्भागमादद्याद्राजा पशुहिरण्ययोः ॥ २७ ॥

गन्धोदधिरसानां च पुष्पमूलफलस्य च ।

पत्रशाकतृणानां च वंशवैष्णवचर्मणाम् ॥ २८ ॥

वंदलानां च भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च ।

पट्भागमेव चाऽऽद्यान्मधुमांसस्य सर्पिषः ॥ २९ ॥

प्रियं चापि न वाऽऽद्याद्वाह्यलोम्यस्तथा करम् ।

यस्य राजस्तु विषये श्रोत्रियः सीदति शुधा ॥ ३० ॥

तस्य सीदति तद्राष्ट्रं व्याधिदुभिक्षतस्करैः ।
 श्रुतं वृत्तं च विज्ञाय वृत्ति तस्य प्रकल्पयेत् ॥३१॥
 रक्षेच्च सर्वशस्त्वेन पिता पुत्रमिवोरसम् ।
 सरक्ष्यमाणो राज्ञा यः कुरुते धर्ममन्वहम् ॥३२॥
 तेनाऽऽयुर्वर्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च ।
 कर्म कुर्युर्नरेन्द्रस्य मासेनैकं च शिल्पिनः ॥३३॥
 भुक्तमात्रेण ये चान्ये स्वशरीरोपजीविनः ॥३४॥

लाम जो हो उसका बीसवाँ भ्रंश लेना चाहिए । इसके विपरीत दण्ड देने के योग्य होता है । स्थियों से और साधु संन्यासियों तर शुल्क ग्रहण पार जाने का कर नहीं लेना चाहिए ॥२५॥ तरों में दास के दोष से यदि कुछ नष्ट होगया हो तो उसे दास से ही दिलवाना चाहिए । शूद्रधान्यों पर राजा का कर द्वारा भाग होता है । शिम्बि धान्य में आठवाँ भाग कर है ॥ २६ ॥ जो वन्य (जंगल का) भय है उसे राजा को ही ले लेना चाहिए और जैसा देश तथा समय हो उसके अनुसार ही ग्रहण करना चाहिए । पशु और हिरण्य में राजा को पाँचवाँ या छठा भाग ग्रहण करना चाहिए ॥ २७ ॥ गन्ध-धौपध-रस-मूल-फल-पत्र-शाक-तृण-वास-वेणु-चर्म-वैदल-भाण्ड और समस्त प्रकार के पाषाण की निर्मित वस्तु एवं मधुमोष और घृण इन सबका शुल्क राजा को छठा भाग ही लेना चाहिए ॥ २८ ॥ २९ ॥ जो वस्तु ब्राह्मणों को प्रिय हो उसका कोई भी कर नहीं लेवे । जिस राजा के देश में श्रोत्रिय ब्राह्मण भूख से पंडित रहता हो उसका वह समस्त राष्ट्र ही दुःखित रहा करता है । और वहाँ पनेक व्याधियाँ तथा दुभिक्ष (मकाल) और तस्कर उस राजा की प्रजा को सताया करते हैं । राजा का परम कर्त्तव्य है कि ब्राह्मण के दास्रीय ज्ञान तथा चरित्र को समझ कर उसकी कोई वृत्ति योग्यतानुसार कर देनी चाहिए ॥ ३० ॥ ३१ ॥ जिस तरह पिता अपने औरस पुत्र की रक्षा किया करता है उसी भाँति राजा को भी समी प्रजा का प्रच्छी तरह रक्षण करना चाहिए । राजा के द्वारा संरक्षित होता हुआ जो प्रतिदिन धर्म किया करता है उससे राजा की आयु बढ़ा बढ़ती है तथा धर्मश्रय और राष्ट्र की भी वृद्धि होती है ।

शिल्पियों को एक मास पर्यन्त राज्य का काम करना चाहिए और जो अन्य अपने ही शरीर की कमाई से जीवित रहते हैं उन्हें केवल भोजन भर लेकर राजा का काम एक मास तक करना चाहिए ॥३२॥३३॥३४॥

८८—राजधर्माः (२)

पुष्कर उवाच—

राजपुत्रस्य रक्षा च कर्तव्या पृथिवीक्षिता ।
धर्मार्थकामशास्त्राणि धनुर्वेदं च शिक्षयेत् ॥१॥
शिल्पानि शिक्षयेच्चेनमाप्तमिध्याप्रियंवदैः ।
शरीरक्षाव्याजेन रक्षणोऽस्य नियोजयेत् ॥२॥
न चास्य संगो दातव्यः क्रुद्धलुब्धविमानितैः ।
अशक्यं तु गुणाधानं कर्तुं तं बन्धयेत्सुखैः ॥३॥
अधिकारेषु सर्वेषु विनीतं विनियोजयेत् ।
मृगयां पानमक्षांश्च राज्यनाशांस्त्यजेन्नृपः ॥४॥
दिवास्वप्न वृथाक्यां च वाक्पारुष्यं विवर्जयेत् ।
निन्दां च दण्डपारुष्यमर्थदूषणमुत्सृजेत् ॥५॥
आकाराणां समुच्छेदो दुर्गादीनामसत्क्रिया ।
अर्थानां दूषणं प्रोक्तं विप्रकीर्णत्वमेव च ॥६॥
अदेशकाले यद्दानमपात्रे दानमेव च ।
अर्थेषु दूषणं प्रोक्तमसत्कर्मप्रवर्तनम् ॥७॥
कामं क्रोधं मदं मानं मोहं दर्पं च वर्जयेत् ।
ततो मृत्युजयं कृत्वा पौरजानपदं जयेत् ॥८॥

इस अध्याय में राजा के धर्म के विषय में फिर बताया जाता है । पुष्कर ने कहा—जो भी कोई राज्य शासन करता हो उसे राजा के पुत्र की रक्षा करनी चाहिए । उसे धर्मशास्त्र—धर्मशास्त्र और कामशास्त्र की शिक्षा दिलानी चाहिए ॥१॥ आप्त (यथायं यत्ता) और मिथ्या प्रिय बोलने वालों

के द्वारा इस राजा के पुत्रको शिल्पों की शिक्षा दित्वावे । शरीर की रक्षा के बहाने से इसकी रक्षा करने वालों की भी नियुक्ति करनी चाहिए ॥ २ ॥ इस राजकुमार की सोहवत (साथ) क्रोधी, लालची और मानरहित पुष्टियों से नहीं होना चाहिए । अशक्य गुणों का आधान करने के लिये उसे सुखों से बन्धित कर देना चाहिए ॥ ३ ॥ सब प्रकार के अधिकारों में विनीत राजकुमार को विनियोजित करे । भृगया (शिकार) पान, (मदिरापान) और भक्ष्य अर्थात् भक्ष्य मांसादि का खाना ये नाश करने वाले हैं इसलिये राजा का कर्त्तव्य है कि इन सबका त्याग कर देवे ॥ ४ ॥ दिन में सोना—ध्वय इधर-उधर घूमना, वाणी की कठोरता तथा बहुप्रापन का त्याग कर देवे । निन्दा (दूसरों की बुराई करना) दण्ड देने में कठोरता, अर्थ दूषण को छोड़ देना चाहिए ॥ ५ ॥ आचारों का समुच्छेदन, दुर्गा आदि की असत्क्रिया यह अर्थों का दूषण कहा गया है । विप्र कीर्णता, अदेश और अकाल में जो दान दिया जाता है वह भी अपात्र अर्थात् अयोग्य व्यक्ति को दिया हुआ दान और असत्कर्म में प्रवृत्ति करना ये सब अर्थों में दूषण कहे गये हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ काम, क्रोध, मद, मान, मोह, दर्प का त्याग राजा को कर देना चाहिए । इससे फिर मृत्यु का जय करके फिर पौर जनपद का जय प्राप्त करे ॥ ८ ॥

जयेद्वाह्यानरीन्पश्चाद्वाह्याश्च त्रिविधारयः ।

गुरवस्ते यथापूर्वं कुल्यानन्तरकृत्रिमाः ॥६

पितृपैतामहं मित्रं सामन्तश्च तथा रिपोः ।

कृत्रिमं च महाभाग मित्रं त्रिविधमुच्यते ॥१०

स्वाम्यमात्यां जनपदा दुर्गो दण्डस्तथैव च ।

कोपो मित्रं च धर्मज्ञ सप्ताङ्ग राज्यमुच्यते ॥११

भूलं स्वामी स वै रक्षस्तस्माद्राज्यं विशेषतः ।

राज्याङ्गद्रोहिणं हन्यात्काले तीक्ष्णो मृदुर्भवेत् ॥१२

एव लोकद्वयं राज्ञो भृत्यैर्हासि विवर्जयेत् ।

भृत्याः परिभवन्तीह नृप हर्षणस्तत्कथम् ॥१३

लोकसंग्रहणार्थाय कृतकव्यसनो भवेत् ।

स्मितपूर्वाभिभाषी स्याल्लोकानां रक्षणं चरेत् ॥१४॥

दीर्घसूत्रस्य नृपतेः कर्महानिध्रुवं भवेत् ।

रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि ॥१५॥

अप्रिये चैव वक्तव्ये दीर्घसूत्रः प्रशस्यते ।

गुप्तमन्त्रो भवेद्राजा नाऽऽपदो गुप्तमन्त्रतः ॥१६॥

पीछे बाहिर होने वाले शत्रुओं को जीत लेना चाहिए । बाहिर होने वाले शत्रु तीन प्रकार के हुआ करते हैं । वे गुरु होते हैं जो यथापूर्व कुल्या-नन्तर कृत्रिम हैं अर्थात् कुछ कुल से ही शत्रु हैं और कुछ बाद में बनकर शत्रु हो जाते हैं ॥ ९ ॥ पितृपतामह मित्र अर्थात् बाप-दादों के समय से बराबर मैत्रीभाव आपस में चला आया हो, सामन्त और रिपुका कृत्रिम मित्र इस तरह मित्र भी तीन प्रकार के होते हैं ॥ १० ॥ राज्य के प्रधान सात भृङ्ग बताये जाते हैं । स्वामी, अमात्य (राजा और मन्त्री), जनपद देश, दुर्ग (किला), दण्ड, कोप, मित्र ये हे धर्मज्ञ ! सात भृङ्ग हैं ॥ ११ ॥ इन सातों प्रकार के भृङ्गों में सबसे प्रधान एवं मूल स्वामी ही होता है जो कि राज्य का मालिक राजा है । उसकी पूर्णतया रक्षा करनी चाहिए इसी से विशेष करके राज्य होता है । जो राज्य के भृङ्गों का द्रोही हो उस का हनन कर देना चाहिए । सभ्य जैसा हो वैसा ही राजा को बन जाना चाहिए । एक समय तीक्ष्ण तो एक समय अत्यन्त कोमल हो जावे ॥ १२ ॥ इस प्रकार से राजा के दो लोक होते हैं । राजा को अपने भृत्यों के साथ हास्य छोड़ देना चाहिए । जो राजा हास्य कथादि किया करता है उसके भृत्य यहाँ पर उसका परिभव (तिरस्कार) किया करते हैं ॥ १३ ॥ लोक संग्रह के लिये उसे बनावटी वासना वाला भी होना चाहिए । पहिले मुस्करा कर भाषण करने वाला राजा को रहना चाहिए इससे लोगों का रञ्जन होता है ॥ १४ ॥ जो राजा दीर्घ सूत्री होता है उसके कर्म की निश्चय ही हानि होती है । लम्बे समय में काम करने वाला दीर्घ सूत्री होता है । राग, दम्भ, मान, द्रोह, पाप कर्म, अप्रिय वक्तव्य में दीर्घसूत्रता का होना प्रशस्त (अच्छा) माना जाता है ॥ १५ ॥ राजा की मन्त्रणा गुप्त

होनी चाहिए जिससे कोई भी निकट से भी निकटतम व्यक्ति भी न जान सके ।
गुप्त मन्त्रगुण रखने से कभी भी आपत्तियाँ नहीं आती हैं ॥ १६ ॥

ज्ञायते हि कृतं कर्म नाऽऽरब्धं तस्य राज्यकम् ।

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ॥१७

नेत्रवक्त्रविकाराभ्यां गृह्यतेऽन्तर्गतं पुनः ।

नैकस्तु मन्त्रयेन्मन्त्रं न राजा बहुभिः सह ॥१८

बहुभिर्मन्त्रयेत्काम राजा मन्त्रान्पृथक्पृथक् ।

मन्त्रिणामपि नो कुर्यान्मन्त्री मन्त्रप्रकाशनम् ॥१९

क्वापि कस्यापि विश्वासो भवतीह सदा नृणाम् ।

निश्चयश्च तथा मन्त्रे कार्यं एकेन सूरिणा ॥२०

नश्येदविनयाद्राजा राज्यं च विनयाल्लभेत् ।

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ॥२१

आन्वीक्षिकीं चार्थविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः ।

जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ॥२२

पूज्या देवा द्विजाः सर्वे दद्याद्दानानि तेषु च ।

द्विजे दान चाक्षयोऽय निधिः कंश्चिन्न नाश्यते ॥२३

सङ्ग्रामेष्वनिवर्तित्वं प्रजानां परिपालनम् ।

दानानि द्राह्मणानां च राज्ञो निःश्रेयसं परम् ॥२४

राजा का कर्म ऐसा होना चाहिए कि जब काम हो जावे तभी जाना जावे अर्थात् पहिले से किसी को भी कुछ आभास न होवे । जब राज्य में किसी कर्म का आरम्भ हो तो किसी को भी उसका कुछ भी ज्ञान न हो सके । आकार चेष्टा, गति, इङ्गित, भाषित नेत्र और मुख के विकार से हृदय के अन्दर रहने वाले भाव को ग्रहण किया जाया करता है । राजा को कभी भी एकाकी मन्त्रणा नहीं करनी चाहिए और बहुत सों के साथ भी न करे ॥ १७ ॥ १८ ॥ राजा को बहुतों से पृथक्-पृथक् मन्त्रों के विषय में मन्त्रणा स्वेच्छया करनी चाहिए । मन्त्री को अन्य मन्त्रियों से भी मन्त्र का प्रकाशन नहीं करना चाहिए ॥ १९ ॥ यहां सप्ताह में कहीं पर तो किसी का अनुषंगों का मदा

भृतो वत्सो जातवतः कर्मयोग्यो यथा भवेत् ।

तथा राष्ट्रं महाभाग भृतं कर्मसहं भवेत् ॥३२॥

सर्वं कर्मदमायत्तं विधाने देवपौरुषे ।

तयोदेवमचिन्त्यं हि पौरुषे विद्यते क्रिया ॥

कण्ठ, घनाय, वृद्ध और विधवा स्त्रियाँ इनके योग क्षम और जीवन निर्वाह के लिये वृत्ति का कटाना राजा को कर्त्तव्य चाहिए । तत्स्वियों का पूजन राजा करे । राजा को सबका कमी विश्वास नहीं करना चाहिए और तापसों पर तो विल्कुल विश्वास न करे ॥ २६ ॥ तत्त्वभूत हेतु से पर का विश्वास करावे । किसी भी धर्म का वगुला की तरह चिन्तन करना चाहिए और मिह की तरह पराक्रम का कार्य करे ॥ २७ ॥ वृक (भेड़िया) के समान भव सुम्न करे और राजा खरगोश के सहस्र निष्पात करे । भूपको दृढ़ प्रहार करने वाला होना चाहिए । दूकर की भाँति रहना चाहिए ॥ २८ ॥ मोर के समान चित्रकार तथा धम्ब के तुल्य दृढ़ भक्ति वाला होकर रहे । राजा कोयल के समान मधुर भाषण करने वाला होना चाहिए ॥ २९ ॥ कीए को जैसे शङ्का होती रहा करती है उसी तरह शङ्का वाला रहे । राजा को सर्वदा ऐसी जगह पर निवास करना चाहिए जो किसी को ज्ञात न रहे । जिसका पहिले भली-भाँति परीक्षण न किया गया हो ऐसा भोजन राजा न करे और इसी तरह दाय्या की भी जाँच कराके स्पर्श करना चाहिए ॥ ३० ॥ जो स्त्री अश्लील तरह परिचित न हो उसका कमी गमन न करे और प्रजात नौका पर कमी न चढ़े । जो राष्ट्र का कर्त्तव्य किया करता है वह अष्ट हो जाता है । राजा का जीवन राज्य के लिये ही होता है इसलिये राज्य का पूर्ण ध्यान रखने से ही राजा के जीवन की सफलता है ॥ ३१ ॥ भरण किया हुआ बच्चा जिस तरह बल-वान् कर्म के योग्य होता है उसी भाँति हे महाभाग ! भली-भाँति भरण किया हुआ राष्ट्र कर्मसह होता है ॥ ३२ ॥ यह सभी कर्म देव और पौरुष विधान के धर्मीन होता है । इन दोनों में देव तो अचिन्त्य होता है अर्थात् उसे कोई

विश्वास होता है । मन्त्रणा के विषय में निश्चय किसी एक ही विद्वान् के साथ बैठकर करे ॥ २० ॥ राजा में यदि अविनय होता है तो वह नाश को प्राप्त हो जाता है और विनय के भाव से राज्य का लाभ होता है । तीन विद्याओं के ज्ञाता पुरुषों से तृयी विद्या का ज्ञान प्राप्त करे । दण्ड नीति, शाश्वती भान्वि-क्षिप्ती का ज्ञान ग्रहण करना चाहिए । अर्थ विद्या और वार्त्तारिम्भों को लोक से सीखे । जो राजा इन्द्रियों का संयम रखकर जित इन्द्रियों वाला होता है वह ही प्रजा के जनों को अपने वश में रखने में समर्थ होता है ॥ ११ ॥ २२ ॥ राजा को चाहिए कि देशों का पूजन करे, ब्राह्मणों का अर्चन करे और उन्हें दानादि देवे । ब्राह्मण को दिया हुआ दान एक भक्ष्य निधि है जो किसी के द्वारा भी नाश को प्राप्त नहीं की जाया करती है ॥ २३ ॥ युद्ध भूमि से मुँह मोड़कर पीछे न लौटना, प्रजाव्रत का भली-भाँति पालन करनाः ब्राह्मणों को दान देना ये तीन कर्म राजा के लिये अत्यन्त कल्याण के करने वाले होते हैं । ॥ २४ ॥

कृपणानाथवृद्धानां विधवानां च योपिताम् ।

योगक्षेम च वृत्ति च तथैव परिकल्पयेत् ॥२५॥

बर्णाश्रमव्यवस्थानं कार्यं तापसपूजनम् ।

न विश्वसेच्च सर्वत्र तापसेषु च विश्वसेत् ॥२६॥

विश्वासयेच्चापि परं तत्स्वभूतेन हेतुना ।

वक्यच्चिन्तयेदर्थं सिंहवच्च पराक्रमेत् ॥२७॥

वृषवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत् ।

दृढप्रहारी च भवेत्तथा शूकरवन्तुषः ॥२८॥

चित्राकारश्च शिखिबद्धदंष्ट्रभक्तिस्तथाऽश्ववत् ।

भवेच्च मधुराभापी तथा कोकिलवन्तुषः ॥२९॥

काकजङ्घी भवेत्त्रिरयमज्ञातां वसति वसेत् ।

नापरीक्षितपूर्वं च भोजन शयनं स्पृशेत् ॥३०॥

नाविज्ञातां श्विषां गच्छेन्नाज्ञातं नावमारहेत् ।

राष्ट्रकर्मो भ्रश्यते च राजप्रार्थनैर्वय जीवितात् ॥३१॥

भृतो वत्सो जातवलः कर्मयोग्यो यथा भवेत् ।

तथा राष्ट्रं महाभाग भृतं कर्मसहं भवेत् ॥३२॥

सर्वं कर्मदमायत्तं विधाने देवपौरुषे ।

तयोर्देवमचिन्त्यं हि पौरुषे विद्यते क्रिया ॥

कृष्ण, अनाथ, वृद्ध और विधवा स्त्रियाँ इनके योग्य काम और जीवन निर्वाह के लिये वृत्ति का कलाना राजा को कर्त्तव्य चाहिए । तपस्वियों का पूजन राजा करे । राजा को सबका कर्मी विश्वास नहीं करना चाहिए और तापसों पर तो बिल्कुल विश्वास न करे ॥ २६ ॥ तत्त्वभूत हेतु से पर का विश्वास करावे । किसी भी धर्म का बगुला की तरह चिन्तन करना चाहिए और सिंह की तरह पराक्रम का कार्य करे ॥ २७ ॥ वृद्ध (भेड़िया) के समान भव सुम्नन करे और राजा खरगोश के सदृश निष्पात करे । भूपको दृढ़ प्रहार करने वाला होना चाहिए । शूकर की भाँति रहना चाहिए ॥ २८ ॥ मोर के समान चित्रकार तथा श्रम्ब के वृत्त्य दृढ़ भक्ति वाला होकर रहे । राजा कोयल के समान मधुर भाषण करने वाला होना चाहिए ॥ २९ ॥ कौए को जैसे दण्डा होजा रहा करती है उसी तरह दण्डा माना रहे । राजा को सर्वदा ऐसी जगह पर निवास करना चाहिए जो किसी को शत्रु न रहे । जिसका पहिले भली-भाँति परीक्षण न किया गया हो ऐसा भोजन राजा न करे और इसी तरह शय्या की भी जाँच कराके स्पर्श करना चाहिए ॥ ३० ॥ जो भी घच्छी तरह परिचित न हो उसका कभी गमन न करे और अज्ञात नौका पर कभी न चढ़े । जो राष्ट्र का कर्पण क्रिया करता है वह भ्रष्ट हो जाता है । राजा का जीवन राज्य के लिये ही होता है इसलिये राज्य का पूर्ण ध्यान रखने से ही राजा के जीवित की सफलता है ॥ ३१ ॥ भरण किया हुआ बन्धा जिस तरह वस्तु-वान् कर्म के योग्य होता है उसी भाँति हे महाभाग ! भली-भाँति भरण किया हुआ राष्ट्र कर्मसह होता है ॥ ३२ ॥ यह सभी कर्म देव और पौरुष विधान के प्रयोग होता है । इन दोनों में देव तो अचिन्त्य होता है अर्थात् उसे कोई साध ही नहीं सकता है । केवल पौरुष प्रेमा होता है जिसमें क्रिया रहा करती

है । राजा की जो राज्य मही थी है वह जनों के उत्पन्न होने वाली होती है ।
॥ ३३ ॥

८६ सामाद्यु पायकथनम्

स्वमेव कर्म देवाख्यं विद्धि देहान्तराजितम् ।
तस्मात्पौरुषमेवेह श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ॥१॥
प्रतिकूलं तथा देवं पौरुषेण विहन्यते ।
सात्त्विकात्कर्मणः पूर्वार्त्तसिद्धिः स्यात्पौरुषं विना ॥२॥
पौरुषं देवसंपत्त्या काले फलति भागव ।
देवं पुरुषकारश्च द्वयं पुंसः फलावहम् ॥३॥
कृपेवृष्टिसमायोगात्काले स्थुः फलसिद्धयः ।
सधर्मं पौरुषं कुर्यान्नालसो न च देववान् ॥४॥
सामादिभिरुपायैस्तु सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः ।
सामं चोपप्रदानं च भेददण्डौ तथाऽपरी ॥५॥
मायोपेक्षेन्द्रजालं च उपायाः सप्त ताञ्छृणु ।
द्विविधं कथितं सामं तथ्यं चातथ्यमेव च ॥६॥
तत्राप्यतथ्यं साधूनामाक्रोशायैव जायते ।
महाकुलीना ऋजवो धर्मनित्या जितेन्द्रियाः ॥७॥
सामसाध्या अतथ्यैश्च गृह्यन्ते राक्षसा अपि ।
तथा तदुपकाराणां कृतानां चैव वर्णनम् ॥८॥

इस अध्याय में साम आदि उपायों का वर्णन किया जाता है । पुष्करे ने कहा—पूर्व जन्म में देह से किये हुए अपने ही कर्म की देव इस नाम से कहा जाता है । इसलिये मनीषी (विद्वान्) लोग यहाँ संसार में पौरुष को ही परम श्रेष्ठ कहा करते हैं ॥१॥ ओ देव प्रतिकूल भी होता है तो वह पौरुष से विघातित हो जाता है । यदि पूर्व कर्म सात्त्विक होता है तो बिना किसी पौरुष के बिना ही सिद्धि हो आया करती है ॥२॥ हे भाग्ये ! पौरुष भी देव सम्पत्ति से समय पर फल दिया करता है । पुरुष के देव और पुरुषकार से दोनों हैं

फल प्रदान करने वाले हुआ करते हैं ॥३॥ वृष्टि के समायोग से कृषि भी समय पर ही फलसिद्धि किया करती है । धर्म के सहित पुरुषार्थ करना ही चाहिए । पुरुषार्थ करने में झालसी नहीं रहे और न देव के भरोसे रहने वाला ही बने । ॥४॥ साम-दाम आदि उपायों के द्वारा समस्त उपक्रमों की सिद्धियाँ हुआ हैं । साम-उपप्रदान, भेद, दण्ड, माया, उपेक्षा और इन्द्रजाल ये सात उपाय होते हैं । उन्हें ध्रुव सुनो । साम एक ही है परन्तु दो प्रकार का बताया गया है । एक सध्य साम है और दूसरा भ्रतव्य साम होता है ॥५॥६॥ उनमें भी जो भ्रतव्य होता है वह साधु प्रकृति वाले पुरुषों को तो आक्रोश के लिये ही होता है । महाकुल में उत्पन्न होने वाले, सरल, सीधे, नित्य धर्म का आचरण करने वाले और जितेन्द्रिय पुरुष ही साम के द्वारा साध्य हुआ करते हैं । भ्रतव्यों के द्वारा तो राक्षस भी ग्रहण किये जाया करते हैं । इसी प्रकार से किये हुए उनके उपकारों का ही वर्णन होता है । ७॥८॥

परस्परं तु ये दिष्टाः क्रुद्धमीतावमानिताः ।
तेषां भेदं प्रयुज्जीत परमं दर्शयेद्भयम् ॥६
आत्मीयां दर्शयेदाज्ञां येन दोषेण विभ्यति ।
परांस्तेनैव ते भेद्या रक्ष्यो वं जातिभेदकः ॥७०
सामन्तकोपो बाह्यस्तु मन्त्राभास्यात्मजादिकाः ।
अन्तःकोपं चोपशाम्यं कुर्वन्शत्रोश्च तं जयेत् ॥७१
उपायश्चेष्टं दानं स्याद्दानादुभयलोकभाक् ।
न सोऽस्ति नाम दानेन वशगो यो न जायते ॥७२
दानवानेव शक्नोति संहतान्भेदितुं परान् ।
अयासाध्यं साधयेत्तं दण्डेन च कृतेन च ॥७३
दण्डे सर्वं स्थितं दण्डो नाशयेद्दुष्प्रणीकृतः ।
अदण्डचान्दण्डयन्नश्येद्दण्डचान्द्राजाऽप्यदण्डयन् ॥७४
देवर्त्योरगनराः सिद्धा भूताः पतत्रिणः ।
उत्क्रमेयुः स्वमर्यादां यदि दण्डान्न पालयेत् ॥७५

तेजसा दुर्निरीक्ष्यो हि राजा भास्करवत्ततः ।
 लोकप्रसादं गच्छेत् दर्शनाच्चन्द्रवत्ततः ॥१७॥
 जगद्व्याप्नोति वै चारैस्तो राजा समीरणः ।
 दौपनिग्रहकारित्वाद्राजा वैवस्वतः प्रभुः ॥१८॥
 यदा दहति दुर्बुद्धिं तदा भवति पावकः ।
 यदा दानं द्विजातिभ्यो दद्यात्तस्माद्धनेश्वरः ॥१९॥
 घनघाराप्रवर्पित्वाद्देवादी वरुणः स्मृतः ।
 क्षमया धारवेल्लोकान्पाथिवः पाथिवो भवेत् ।
 उत्साहमन्त्रशक्त्याद्यं रक्षेद्यस्माद्धरिस्ततः ॥२०॥

राजा का ऐसा तेज होता है कि वह तेज के कारण दुर्निरीक्ष्य अर्थात् कठिनाई से देखने के योग्य होता है और राजा सूर्य के समान तेजस्वी होता है । वह लोगों की प्रसन्नता करने वाला है उसका दर्शन चन्द्रमा के समान शीतल भी होता है ॥१७॥ राजा के दूतों से यह समस्त संसार व्याप्त रहता है अर्थात् राजा के दूत सभी जगह व्यापक रूप से रहा करते हैं इसलिये वह वायु के समान है । समस्त दोषों का निग्रह करने वाला होने के कारण राजा साक्षात् वैवस्वत प्रभु होता है ॥१८॥ जब राजा दुष्ट बुद्धि को जलाकर भस्म करता है तो वह अग्नि के तुल्य होता है । जिस समय राजा ब्राह्मणों को दान देकर सम्मानित किया करता है तो वह साक्षात् दान का ईश्वर कुबेर ही होता है । ॥१९॥ घन की घारा का प्रवर्ण करने से देव आदि में वह वरुण है—ऐसा कहा जाता है । क्षमा के द्वारा समस्त लोकों को धारण किया करता है । क्षमा पृथिवी का महान् गुण है । इसीलिये इसे पाथिव कहा जाता है । उत्साह, मन्त्र और शक्ति आदि से यह सबकी रक्षा करता है इसीलिये राजा साक्षात् हरि का स्वरूप ही होता है ॥२०॥

६० दण्डप्रणयनम्

दण्डप्रणयनं वक्ष्ये येन राज्ञः परा गतिः ।
 त्रियवं कृष्णलं विद्धि मापस्तत्पञ्चकं भवेत् ॥१॥

यस्माददान्तान्दमयत्यदण्डं यान्दण्डयत्यपि ।

दमनाद्दण्डनाच्चेव तस्माद्दण्डं विदुर्बुधाः ॥१६॥

आपस में जो भीत (डरे हुए), क्रुद्ध और अवमानित हैं और विद्वेष रखने वाले होते हैं उनके मध्य में परम भय दिखाकर भेद करने का प्रयोग करना चाहिये ॥१६॥ अपनी आशा को दिखावे जिस दोष से दूसरे डरते हैं उसी के द्वारा वे भेदन के योग्य करने चाहिये और ज्ञाति भेदक की रक्षा करनी चाहिये ॥१७॥ सामन्त का कोप तो वाह्य होता है जो मन्त्र, अमात्य और आत्मजादिक हैं । जो अन्तः कोप है उसे उपशमित करना चाहिये और शत्रु का वह करते हुए उस पर जय प्राप्त क नी चाहिए ॥१८॥ दान देना भी श्रेष्ठ उपाय है क्योंकि दान से तो दोनों ही लोक में कल्याण होता है । यदि दान से भी वह वश में नहीं होता है तब अन्य उपाय काम में लाया जाता है । दान वाला ऐसा प्रबल होता है कि चाहे दूसरे आपस में कितने ही मिलें और संघट क्यों न हों दान से उनका भी भेदन किया जा सकता है । साम, दाम (दान) और भेद इन तीनों प्रकार के उपायों से भी जो साध्य नहीं होता है उसे चौथे दण्ड नाम वाले उपाय से साधना चाहिये अर्थात् अपने वश में करे । ॥१२॥१३॥ दण्ड में सभी स्थित हैं । दण्ड दुष्प्रणीकृत का नाश कर दिया करता है । किन्तु दण्ड उचित को ही दिया जाना चाहिये । जो दण्ड देने के योग्य न हों ऐसे लोगों को दण्ड देना नाशकारी हो जाता है । राजा को भी उन्ही लोगों को दण्ड देना चाहिये जो दण्ड देने के योग्य पात्र होते हैं । यदि दण्ड देने के योग्यों को दण्ड नहीं दिया जाता है तो राजा भी नष्ट हो जाता है । ॥१४॥ देव, दैत्य, उरग (नाग) और नर, सिद्ध, भूत और पक्षीगण सभी अपनी मर्यादा का उत्क्रमण कर दिया करते हैं यदि दण्ड के द्वारा पालन न किया जावे ॥१५॥ जो अदान्त होते हैं अर्थात् दमन नहीं किये गये हैं वे दण्ड से ही दमन किये जाते हैं और जो अदण्ड्य हैं उनको भी दण्डित किया जाता है, इसीलिये दमन से और दण्डन करने से इसे पण्डित लोग दण्ड कहा करते हैं । ॥ १६ ॥

तेजसा दुर्निरीक्ष्यो हि राजा नास्करवत्ततः ।

लोकप्रसादं गच्छेत् दग्गनाच्चन्द्रवत्ततः ॥१७

जगद्व्याप्नोति वं चारंरतो राजा समीरणः ।

दोषनिग्रहकारित्वाद्राजा वैदस्वतः प्रभुः ॥१८

यदा दहति दुर्बुद्धिं तदा भवति पावकः ।

यदा दानं द्विजातिभ्यो दद्यात्तस्माद्धनेश्वरः ॥१९

घनधाराप्रवर्षित्वाद्देवादी वरणः स्मृतः ।

धनया धारवेत्लोकान्पायिवः पायिवो भवेत् ।

उत्साहमन्त्रगक्तयाद्यं रमेद्यस्माद्धरिस्ततः ॥२०

राजा का ऐसा तेज होता है कि वह तेज के कारण दुर्निरीक्ष्य अर्थात् कठिनाई में देखने के योग्य होता है और राजा नून के समान तेजस्वी होता है । वह लोगों की प्रशंसा करने वाला है उसका दग्ग चन्द्रमा के समान शीतल भी होता है ॥१७॥ राजा के दुर्गों से यह समस्त संसार व्याप्त रहता है अर्थात् राजा के दूत सभी जगह व्यापक रूप से रहते हैं । इसलिये वह वायु के समान है । समस्त दोषों का निग्रह करने वाला होने के कारण राजा ज्ञान् वैदस्वतः प्रभु होता है ॥१८॥ जब राजा दुष्ट बुद्धि को जनाकर भस्म करता है तो वह अग्नि के तुल्य होता है । त्रिभुवन राजा ब्राह्मणों को दान देकर सम्मानित किया करता है तो वह ज्ञान् दान का ईश्वर कुबेर ही होता है । ॥१९॥ घन की धारा का प्रवर्षण करने से देव आदि में वह वरुण है—ऐसा कहा जाता है । धना के द्वारा समस्त लोकों को धारण किया करता है । धना पृथिवी का महान् गुण है । इसीलिये इसे पायिव कहा जाता है । उत्साह, मन्त्र और शक्ति आदि से यह सबकी रक्षा करता है इसीलिये राजा ज्ञान् हरि का स्वरूप ही होता है ॥२०॥

६० दण्डप्रणयनम्

दण्डप्रणयनं वक्ष्ये येन राज्ञः परा गतिः ।

त्रियवं कृष्णलं विद्धि नापस्तत्पञ्चकं भवेत् ॥१

दंड देने के योग्य होते हैं । जो कूट साक्ष्य अर्थात् भूटो गवाही दिया करते हैं उन तीनों वर्ण वालों को दंड दिलाना चाहिए ॥५।६।७॥ ब्राह्मण यदि इस अपराध में दंडनीय हो तो उसे विवासित कर देवे क्योंकि ब्राह्मण के लिए दंड देने की अन्य कोई विधि नहीं बताई गई है । यदि किसी के पास कोई निक्षेप (धरोहर) रक्खा हो और उसे वह नहीं देवे तो उस अपराध के लिए जितने मूल्य का निक्षेप हो उतना ही निक्षेप के भोग करने का दंड देना चाहिये ॥ ८ ॥

वस्त्रादिकस्य धर्मज्ञ तथा धर्मो न हीयते ।

यो निक्षेपं घातयति यश्चानिक्षिप्य याचते ॥९

तावुभौ चौरवच्छास्यौ दण्ड्यौ वा द्विगुणं दमम् ।

अज्ञानाद्यः पुमान्कुर्यान्परद्रव्यस्य विक्रयम् ॥१०

निर्दोषो ज्ञानपूर्वं तु चौरवद्दण्डमर्हति ।

मूल्यमादाय यः शिल्पं न दद्याद्दण्ड्य एव सः ॥११

प्रतिश्रुत्याप्रदातारं सुवर्णं दण्डयेन्नृपः ।

भृतिं गृह्य न कुर्याद्यः कर्मांशोऽकृष्णला दमः ॥१२

हे धर्मज्ञ ! वस्त्रादि का उस प्रकार से धर्म हूँयमान नहीं होता है । जो

निक्षेप का घात करता है अर्थात् धरोहर रखकर उसे मारना चाहता है और

जो निक्षेप न रखकर ही मिथ्या याचना किया करता है । वे दोनों ही चोर की

भांति शासन करने के योग्य होते हैं और दंड देने के भी योग्य हैं । इनको

द्विगुना दमन करना चाहिये । जो कोई आदमी अज्ञान से पराये धन का विक्रय

कर देता है वह दोष रहित होता है और उसे कोई दंड नहीं देना चाहिए

किन्तु जो जान-बूझकर यह अपराध करता है वह तो चोर की भांति ही दंड

के योग्य होता है । मूल्य लेकर भी जो शिल्प न देवे वह भी दंड देने के योग्य

होता है ॥९।१०।११॥ जो बचन देकर फिर नहीं देवे उस पर एक सुवर्ण

प्रजा को दंड देना करना चाहिए । नौकरी की तनखा लेकर जो कर्म न करे

उस पर आठ कृष्णान का दंड होना चाहिये ॥१२॥

६१ स्वप्नशुभाशुभदुःस्वप्नहरणकथनम् ।

स्वप्नं शुभाशुभ वक्ष्ये दुःस्वप्नहरणं तथा ।
 नाभिं विनाऽन्यत्र गात्रे तृणवृक्षसमुद्भवः ॥१
 चूर्णनं मूर्ध्नि कांस्यानां मुण्डनं नग्नता तथा ।
 मलिनाम्बरधारित्वमभ्यङ्गः पङ्कदिग्घता ॥२
 उच्चात्प्रपतनं चैव विवाहो गीतमेव च ।
 तन्त्रीवाद्यविनोदश्च दोलारोहणमेव च ॥३
 अर्जनं पद्मलोहानां सर्पाणामथ मारणम् ।
 रक्तपुष्पद्रुमाणां च चण्डालस्य तथैव च ॥४
 वराहश्चखरोष्ट्राणां तथा चाऽऽरोहणक्रिया ।
 भक्षणं पक्षिमासानां तैलस्य कृशरस्य च ॥५
 मातुः प्रवेशो जठरे चितारोहणमेव च ।
 शक्रध्वजाभिपतनं पतनं शशिसूर्ययोः ॥६
 दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पातानां च दर्शनम् ।
 देवद्विजातिभूपानां गुरुणां कोप एव च ॥७
 नर्तनं हसनं चैव विवाहो गीतमेव च ।
 तन्त्रीवाद्यविहीनानां वाद्यानामपि वादनम् ॥८
 स्त्रोतोवहाधोगमनं स्नानं गोमयवारिणा ।
 पङ्कोदकेन च तथा मशी (पी) तोयेन वाऽप्यथ ॥९

इस अध्याय में स्वप्नों का शुभ और अशुभ तथा दुःस्वप्नों का हरण का विषय वर्णित किया जाता है। पुष्कर ने कहा—प्रब मैं स्वप्नों के शुभाशुभ को तथा बुरे स्वप्नों के हरण के विषय को बतलाता हूँ। सर्व प्रथम बुरे स्वप्नों को बताते हैं—नाभि को छोड़कर अन्य शरीर के भाग में तृण तथा वृक्ष का उत्पन्न होना—मस्तक में काँस्यों का चूर्णन, मुण्डन तथा नग्न हो जाना—भँले वस्त्रों का धारण करना—अभ्यङ्ग करना—पङ्क (कीच) में दिग्घ होना—ऊँचे से गिरना—विवाह होना—गीत गान होना—तन्त्री वाद्य के द्वारा

विनोद करना—दोला (झूना) पर चढ़कर झूलना—पक्षियों के मांस का भक्षण करना—तथा तैल और कुशर (कसार) का भक्षण करना ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ माता के जठर (पेट) में प्रवेश करना—बिता पर आरोहण करना—शक्रध्वजा का पतन होना—चन्द्रमा और सूरज का नीचे गिर जाना—देवलोक, आकाश और भूमि पर होने वाले उत्पातों का दिखलाई देना—देव, द्विजाति और भूयों का दर्शन—गुरुओं का कोप—नाचना—हँसना—विवाह होना—गीत गायन का होना—तन्त्रीवाद्य से रहित वायों (वाजों) का बजना—स्रोतों वहाँ का नीचे की ओर बहकर जाना—गोबर पानी से स्नान करना—कीच से युक्त पानी से नहाना—स्याही के पानी से स्नान करना—॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

आलिङ्गनं कुमारीणां पुरुषाणां च मैथुनम् ।

हानिश्चैव स्वगात्राणां विरेको वमनक्रिया ॥१०

दक्षिणाशाप्रगमनं व्याधिनाऽभिभवस्तथा ।

फलानामुपहानिश्च घातूनां भेदनं तथा ॥११

गुहाणां चैव पतनं गृहसमार्जनं तथा ।

क्रीडा पिशाचासक्रब्धादवानरान्त्यनरैरपि ॥१२

परादभिभवश्चैव तस्माच्च व्यसनोद्भवः ।

कापायवस्त्रधारित्वं तद्वस्त्रैः क्रीडनं तथा ॥१३

स्नेहपानावगाही च रक्तामाल्यानुलेपनम् ।

इत्यधन्यानि स्वप्नानि तेषामकथनं शुभम् ॥१४

भूयश्च स्वपनं तद्वत्कार्यं स्नानं द्विजर्चनम् ।

तिलैर्होमो हरिव्रह्मशिवार्कगणपूजनम् ॥१५

तथा स्तुतिप्रपठनं पुंसूक्तादिजपस्तथा ।

स्वप्नास्तु प्रथमे यामे संवत्सरविपाकिनः ॥१६

कुमारियों का आलिङ्गन करना—पुरुषों का मैथुन—घपने झङ्गों की हानि का देखना—दस्त या कँ हो जाने की क्रिया का देखना—दक्षिण दिशा

की ओर जाना—किसी व्याधि के द्वारा अभिभूत होना—फलों की हानि होना—धातुओं का भेदन होना—घरों का गिर जाना—गृहों का संमार्जन करना—पिशाच, राक्षस, वानर तथा नीच नरों के साथ क्रीड़ा करना—दूसरों से तिरस्कार का होना और पर से किसी व्यसन का उत्पन्न होना—गेरुआ रंगे हुए वस्त्र धारण करना तथा उन वस्त्रों के साथ क्रीड़ा करना—तैलादि का पाने या स्नान करने वाला होना—रक्त माल्य अनुलेपन—ये सब स्वप्न बुरे होते हैं । उनका न कहना ही शुभ होता है ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ इनकी अशुभता के निराकरण करने के लिये फिर सो जाना चाहिए । स्नान करे और द्विजों का अर्चन करे । तिलों से हवन करे तथा हरि-ब्रह्म-शिव-सूर्य और गणपति का पूजन करना चाहिए ॥ १५ ॥ देवस्तुतियों का पाठ करे तथा पुरुष सूक्त आदि का जाप करे । प्रथम रात्रि के प्रहर में जो स्वप्न दिखाई दिया करते हैं वे एक वर्ष में तक अपना फल दिखाते हैं ॥ १६ ॥

पङ्क्तिभिर्मसिद्वितीये तु त्रिभिर्मसिस्त्रियामिकाः ।

चतुर्थे त्वर्धमासेन दशाहादरुणोदये ॥१७

एकास्यामथ चेद्रात्रौ शुभं वा यदि वाऽशुभम्) ।

पश्चाद्दृष्टस्तु यस्मिन् तस्य पाकं विनिदिशेत् ॥१८

यस्मात्तु शोभने स्वप्ने पश्चात्स्वापो न शस्यते ।

शैलप्रासादनागाश्ववृषभारोहणं हितम् ॥१९

द्रुमाणां श्वेतपुष्पाणां गगने च तथा द्विज ।

द्रुमतृणोद्भवो नाभी तथा च बहुबाहुता ॥२०

तथा च बहुशीर्षत्वं पलितोद्भव एव च ।

सुशक्तमाल्यधारित्वं सुशुक्लाम्बरधारिता ॥२१

चन्द्रार्कताराग्रहणं परिमार्जनमेव च ।

शक्रध्वजालिङ्गनं च ध्वजोच्छ्वायक्रिया तथा ॥२२

दूसरे प्रहर में जो रात्रि में स्वप्न दिखाई होते हैं वे छः मास में अपना फल दिखाया करते हैं और तीसरे याम में दिखाई देने वाले स्वप्नों का फल तीन मास तक हुआ करता है तथा चौथे प्रहर के स्वप्न आधे मास में

फल देने वाले होते हैं । जो स्वप्न बिल्कुल अरुणोदय के समय में होते हैं वे दश दिन के अन्दर ही फल दिया करते हैं । एक रात्रि में यदि शुभ स्वप्न दोनों दिखाई दें तो जो पीछे दीखा करता है वही फल वाला होता है ॥१७॥
॥ १८ ॥ जब कोई अच्छा स्वप्न दिखाई देवे तो फिर स्वप्न देखने के पीछे सोना नहीं चाहिए । शैल (पहाड़)—प्रासाद (महल)—नाग (हाथी—अश्व—वृषभ—बैल) इन पर आरोहण किया जाना यदि स्वप्न में देखे तो यह हित-कारो स्वप्न होता है ॥ १९ ॥ हे द्विज ! द्रुमों का जो कि सफेद फूलों वाले हों तथा गेगन में आरोहण भी शुभ होता है । नाभि में वृक्ष और तृणों का उत्पन्न होना तथा बहुत-सी बाहुओं का हों जाना एवं बहुत शीपों का होना—पलित (सफेद बालका होना) का उत्पन्न होना—सफेद माला का धारण करना तथा अतिश्वेत वस्त्रों का धारण करना—चर्दि या सूर्य के ग्रहण होना—सक्रध्वज का मालिङ्गन करना—ध्वज के उच्छ्राय की क्रिया का होना ये स्वप्न शुभ होते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

भूम्यम्बुधाराग्रहणं शत्रूणां चैव विक्रिया ।

जयो विवादे च ते च सङ्ग्रामे च तथा द्विज ॥२३॥

भक्षणं चाऽऽर्द्रमांसानां पायसस्य च भक्षणम् ।

दर्शनं रुधिरस्यापि स्नानं वा रुधिरेण च ॥२४॥

सुरारुधिरमद्यानां पानं क्षीरस्य वाऽप्यथ ।

अस्त्रैर्विचेष्टनं भूमौ निर्मलं गगनं तथा ॥२५॥

मुसेन दोहनं शस्तं महिस्त्रीणां तथा गवाम् ।

सिंहीनां हस्तिनीनां च वडवानां तथैव च ॥२६॥

प्रसादो देवविप्रेभ्यो गुरुभ्यश्च तथा द्विज ।

अम्मसा चाभिपेकस्तु गवां शृङ्गक्षुतेन च ॥२७॥

चन्द्राद्वष्टेन वा राम श्रेयं राज्यप्रदं हि तत् ।

राज्याभिपेकश्च तथा छेदनं शिरसोऽप्यथ ॥२८॥

मरणं वह्निहोमश्च वह्निदाहो गृहादिषु ।

तन्विश्च राजलिङ्गानां तन्त्रीवाद्याभिवादनम् ॥२९॥

यस्तु पश्यति स्वप्नान्ते राजानं कुञ्जरं हयम् ।

हिरण्यं वृषभं गां च कुटुम्बस्तस्य वर्धते ॥३०॥

वृषेभगृहशीलाग्रवृक्षारोहणरोदनम् ।

धृतविष्ठानुलेपो वा अगम्यागमनं तथा ॥३१॥

भूम्यम्बु धारा का ग्रहण करना—शत्रुओं की किसी विक्रिया का होना—
हे द्विजगण ! किसी विवाह में या द्यूत में जीत का होना तथा संग्राम में
विजय का लाभ करना—आर्द्र मास का भक्षण करना—पायस (खीर) का
खाना—रुधिर का देखना तथा रुधिर से स्नान करना—मुरा (शराब) रुधिर और
मद्य का पान करना—क्षीर का पान करना—ग्रस्त्रों के द्वारा भूमि में विशेष
षेष्टा का करना—निर्मल आकाश का देखना—भैरवों और गायों का मुख से ही
दोहन करना परम प्रशस्त माना गया है । इसी प्रकार सिंहनियों—हस्तिनियों
और घोड़ियों का दोहन भी अच्छा होता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥
हे द्विज ! देव और विप्रों के लिये प्रसाद तथा जल से अभियेक—गोशों के भूज
से च्युत तथा चन्द्र से देखा गया प्रसाद या अभियेक राज्य का प्रदान करने
वाला होता है । राज्याभियेक तथा शिर का कटना मरण हो जाना—अग्नि से
का लाभ—अग्नि से दाह गृहादि में होना—राजचिह्नों की प्राप्ति—तन्त्री वाद्य
का अभिवादन यह सब स्वप्न के अन्त में देखता है राजा—हाथी—घोड़ा—
मुवर्ण—बैल और गौ को देखता है तो देखने वाले का कुटुम्ब बढ़ता है ।
वृषभ—हाथी—गृह—शील की छोटी और वृक्ष का आरोहण तथा रोदन—धृत
और विष्टा से दारोद का अनुलेपन और अगम्या का गमन भी शुभ होते हैं
॥ २७ से ३१ ॥

६२ शकुनानि ।

विशन्ति येन मार्गेण वायसा वहवः पुरम् ।

तेन मार्गेण रुद्धस्य पुरस्य ग्रहणं भवेत् ॥१॥

सेनायां यदि वा मार्गे निविष्टो वायसो रुद्धः ।

यामो मयातुरस्त्रस्तो भयं वदति दुस्तरम् ॥२॥

छायाङ्गवाहनोपानच्छत्रवस्त्रादिकुट्टने ।
 मृत्युस्तत्पूजने पूजा तदिष्टकरणे शुभम् ॥३॥
 प्रोपितागमकृत्काकः कुर्वन्धारि गतागतम् ।
 रक्तं दग्धं गृहे द्रव्यं क्षिपन्वन्निहिनिवेदकः ॥४॥
 न्यसेद्रक्तं पुरस्ताच्च निवेदयति बन्धनम् ।
 पीतं द्रव्यं तथा रुक्मरूप्यमेव तु भार्गव ॥५॥
 यच्चन्द्रोपनयेद्द्रव्यं तस्य लब्धिं विनिर्दिशेत् ।
 द्रव्यं वाष्पनयेद्यत्तु तस्य हानिं विनिर्दिशेत् ॥६॥
 पुरतो घनलब्धिः स्यादाममांसस्य च्छर्दने ।
 भूलब्धिः स्यान्मृदः क्षेपे राज्यं रत्नापणो महत् ॥७॥
 यातुः काकोऽनुकूलस्तु क्षेमः कर्मक्षमो भवेत् ।
 न त्वर्थसाधको ज्ञेयः प्रतिकूलो भयावहः ॥८॥

इस अध्याय में शकुनों के विषय में वर्णन किया जाता है। पुष्कर ने कहा—जिस मार्ग से बहुत-से कोई पुर में प्रवेश किया करते हैं उसी मार्ग से रुद्ध हुए पुर का ग्रहण होता है ॥ १ ॥ सेना में भयवा सार्य में यदि रोता हुआ कौमा निविष्ट हो जावे तथा वाम भयातुर भयात् भय से डरा हुआ हो तो यह शकुन अत्यन्त कठिन भय की सूचना देता है ॥ २ ॥ छाया-अङ्ग-वाहर-उपानत् (जूते)-छत्र और वस्त्र आदि के कुट्टन करने में मृत्यु होती है। उसके पूजन में और उसके इष्ट करने में पूजा करना शुभ होता है ॥ ३ ॥ कौमा यदि द्वार पर जाना-भाना करता होतो परदेश गये हुए के आश्रमन की सूचना देता है। रक्त-दग्ध द्रव्य घर में डालता हुआ अग्नि की सूचना करता है ॥ ४ ॥ यदि आगे रक्त रखे तो बन्धन होने की सूचना देता है। हे भार्गव ! पीले रङ्ग का कोई द्रव्य-सुवर्ण-रजत (चांदी) जो भी इनमें से द्रव्य लावे तो यह शकुन उसकी प्राप्ति का सूचक होता है। इसी प्रकार से जिस द्रव्य को वह ले जावे तो उसी द्रव्य की हानि की सूचना देता है ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ आगे बच्चे मांस के छर्दन करने में घन का लाभ होता है। मिट्टी के क्षेप करने में भूमि का लाभ और रत्न के अपण करने में महान् राज्य की

प्राप्ति होती है । जाये वाले के काक (कीमा) अनुकूल हो तो क्षेम और कर्म क्षम होता है । यदि वह प्रतिकूल हो तो प्रथं का साधक नहीं होता तथा भय-प्रद होता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

संमुखेऽभ्येति विरुन्व्यात्राघातकरो भवेत् ।

वामः काकः स्मृतो धन्यो दक्षिणोऽर्थं विनाशकृत् ॥९

वामोज्जुलोगः श्रेष्ठो मध्यमो दक्षिणः स्मृतः ।

प्रतिलोमगतिर्वामो गमनप्रतिषेधकृत् ॥१०

निवेदयति यात्रार्थं मभिप्रेतं गृहे गतः ।

एकाक्षिचरणस्त्वर्कं वीक्षमाणो भयावह ॥११

कोटरे वासमानश्च महानर्थकरो भवेत् ।

न शुभस्तूपरे काकः पङ्कजः स तु शस्यते ॥१२

अमेध्यपूर्णवदनः काकः सर्वार्थसाधकः ।

ज्ञेयाः पतत्रिणोऽन्येऽपि काकवद्भृगुनन्दन ॥१३

स्कन्धावारापसव्यस्थाः श्वानो विप्रविनाशकाः ।

इन्द्रस्थाने नरेन्द्रस्य पुरेशस्य तु गोपुरे ॥१४

अन्तर्गृहे गृहेशस्य मरणाय भवेदमपन् ।

यस्य जिघ्रति वामाङ्गं तस्य स्यादर्थसिद्धये ॥१५

भयाय दक्षिणं चाङ्गं तथा भुजमदक्षिणम् ।

यात्राघातकरो यातुर्भवेत्प्रतिमुखो हिंसः ॥१६

यदि कीमा बोलता हुआ सामने से आवे तो यह यात्रा का घात करने

वाला होता है । कीमा यदि वाम भाग में रहे तो बहुत अच्छा होता है ।

दक्षिण भाग में कीमा का होना अर्थ के विनाश करने वाला होता है ॥ ९ ॥

वाम भाग में भी जो अनुलोमगमन करने वाला होता है वही श्रेष्ठ कहा गया

है । दक्षिण काक मध्यम माना गया है । जो कीमा प्रतिलोम गति वाला हो

चाहे वाम भाग में ही हो यह बहुत यात्रा का निषेध करने वाला होता है

॥ १० ॥ गृह में गया हुआ कीमा यात्रार्थ को अभिप्रेत बताता है । यदि

कीमा एकाक्षि और एक चरण वाला होकर मूर्ख को देखता हो तो बहुत ही

भय देने वाला होता है ॥ ११ ॥ कीटर में वान करता हुआ कौमा महान्
अनय के करने वाला होना है । ऊपर भूमि में स्थित काक शुभ नहीं होता
है । यदि कौमा कीच से सने हुये शरीर वाला हो तो बहुत ही प्रशस्त शकुन
होता है ॥ १२ ॥ अविव्र वस्तु से परिपूर्ण मुख वाला कौमा समस्त अर्थों
का साधक शकुन होता है । हे भृगुनन्दन ! इसी प्रकार से अन्य पक्षों भी शुभ
अशुभ शकुन बतलाते हैं जिस तरह कौमा सूचना देता है ॥ १३ ॥ स्कान्धावार
और अपसह्य में स्थित कुत्ता विप्रों का विनाशक होता है । राजा के इन्द्र
स्थान में और पुरेश के गोपुर में तथा गृह स्वामी के अन्दर गृह में भूकता
हुआ मृत्यु की सूचना कुत्ता दिया करता है । कुत्ता जिसके बाँधे अङ्ग को सूँघ
लेता है उसके कार्य की निश्चित सिद्धि हुआ करती है ॥ १४ ॥ १५ ॥ यदि
दाहिने अङ्ग को सूँघता है तो भय देने वाला होता है इसी तरह से अदक्षिण
भुजा को सूँघता है तो वह भी अशुभ है । यदि यात्रा करने वाले के प्रतिमुख
कुत्ता होवे तो वह यात्रा का घात करने वाला होता है ॥ १६ ॥

मार्गविरोधको मार्गं चौरान्वदति भार्गव ।

अलाभोऽस्थिमुखः पापो रज्जुचौरमुखस्तथा ॥१७

सोपानत्कमुखो धन्यो मांसपूर्णमुखोऽपि च ।

अमङ्गल्यमुखद्रव्यं केशं चैवाशुभ तथा ॥१८

अवमूत्र्याग्रतो याति यस्य तस्य भयं भवेत् ।

यस्यावमूत्र्य ब्रजति शुभं देशं तथा द्रुमम् ॥१९

मङ्गल्यं च तथा द्रव्यं तस्य स्यादर्धसिद्धये ।

श्ववच्च राम विज्ञेयास्तथा वै जम्बुकादयः ॥२०

भयाय स्वामिनो ज्ञेयमनिमित्तं स्तं गवाम् ।

निशि चौरभयाय स्याद्विकृतं मृत्यवे तथा ॥२१

शिवाय स्वामिनो रात्रौ बलीवर्दो नदन्मवेत् ।

उत्सृष्टवृषभो राज्ञो विजयं संप्रयच्छति ॥२२

अभक्ष्यं भक्षयन्तश्च गावो दत्तास्तथा स्वकाः ।

त्यक्तस्नेहाः स्ववत्सेषु गर्भक्षयकरा मताः ॥२३

भूमि पादैर्विनिघ्नन्त्यो दीना भीता भयावहाः ।

आर्द्राङ्ग्यो हृष्टरोमाश्च शृङ्गलम्भमृदः शुभाः ॥२४॥

हे भ.गंव ! मार्ग में कुत्ता स्थित होकर मार्ग का अवरोध करने वाला होता वह चोंचों की सूचना दिया करता है । कुत्ते के मुख में हड्डी हो तो लाभ नहीं किया करता है । रस्सी या चीर कुत्ते के मुँह में हो तो यह पाप सूचक होता है ॥१७॥ यदि कुत्ते के मुख में कोई जूता हो तो वह एक धत्यन्त प्रच्छा पाकृत होता है । इसी प्रकार से माँस से पूर्ण मुख वाला कुत्ता भी घन्य होता है । यदि कोई घमङ्गल द्रव्य मुख में हो और केश हों तो वह भी एक प्रशुभ पाकृत होता है ॥ १८ ॥ कुत्ता यदि पेशाव करके आगे से जाता है तो उसको जिसके आगे से वह जाता है भय होता है । जिसके पेशाव करके शुभ देश या वृक्ष के पास जाता है तो वह शुभ पाकृत होता है ॥ १९ ॥ यदि मङ्गल्य द्रव्य हो तो उसकी धर्म की मिट्टि के लिये होता है । हे राम ! कुत्ते के समान ही जम्बुक (गोदड़) आदि को भी इसी प्रकार से शुभ एवं प्रशुभ पाकृत वत ने वाले जानने चाहिए ॥ २० ॥ बिना किसी कारण के गरों की ध्वनि अर्थात् अचानक रैमाना उसके स्वामी को भय की सूचना दिया करता है अर्थात् प्रशुभ होता है । रात्रि में रैमावे तो चीरों का भय होता है और विकृत हो तो मृत्यु की सूचना दिया करता है ॥२१॥ यदि बली बंद रात्रि में नाद करने वाला हो तो वह अपने स्वामी के बर्याण के लिये ही होता है । जशुष्ट वृषभ राजा के विषय के देने वाला होता है ॥ २२ ॥ किसी अभय पशु का भक्षण करने वाली दी हुई घपनी मौएँ घपने बछड़ों पर स्नेह न करने वाली गर्भ के क्षय करने वाली बनाई गई है ॥२३॥ भूमि को पैरों से विधातित करती हुई—दीन—इसी हुई भय देने वाली होती है । भीगे हुए अङ्गों वाली तथा प्रहृष्ट रोमों वाली घोर गीमो में मिट्टी सगी रहने वाली मौएँ शुभ होती है ॥२४॥

महिष्यादिषु चाप्येतत्सर्वं वाच्यं विजानता ।

घारोहण तथाऽप्येन सपर्याणस्य वाजिनः ॥२५॥

जलोपवेगन नेष्टं भूमौ च परिवर्तनम् ।

विपत्तरं मुरंगस्य गुप्त्वं चाऽप्यनिमित्ततः ॥२६॥

यवमोदकयोर्द्वेपस्त्वक्स्माच्च न शस्यते ।
 वदनाद्रूधिरोत्पत्तिर्वेपनं न च शस्यते ॥२७॥
 क्रीडन्वकैः कपोतैश्च सारिकाभिर्मृत्तिं वदेत् ।
 साश्रुनेत्रो जिह्वया च पादलेही विनष्टये ॥२८॥
 वामपादेन च तथा विलिखंश्च वसुंधराम् ।
 स्वपेद्वा वामपाश्वेन दिवा वा न शुभप्रदः ॥२९॥

इसी तरह से भैंस आदि के विषय में भी वेत्ता पुरुष को यह सभी समझना चाहिए । अन्य के द्वारा आरोहण तथा पर्याण (जीन) के सहित अश्व का जलोपवेशन और भूमि में परिवर्तन अर्थात् जल में बैठ जाना या जमीन में लोट लगाना इष्ट नहीं होता है अर्थात् शुभ नहीं होता है । घोड़े का विषट्कर तथा बिना किसी कारण के सो जाना एवं जो घोर मोदक से द्वेप भाव रखना, जोकि अज्ञानक ही किया गया हो, अच्छा नहीं होता है मुख से खून का निकलना और कम्प युक्त होना भी शुभ नहीं होता है ॥२५॥२६॥२७॥
 बगुना—कबूतर घोर सारिकाओं के साथ क्रीड़ा करता हुआ मृ-यु की सूचना दिया करता है । आंशुओं से पूर्ण नेत्र वाला तथा जीभ से पेरों को चाटने वाला विनाश की सूचना दिया करता है ॥ २८ ॥ बायें पैर से मूँम को कुरेदता हुआ भयवा बायें पसवाड़े से दिन में सोवे तो वह शुभप्रद नहीं होता है ॥२९॥

भयाय स्यात्सकुन्मूत्री तथा निद्राविलाननः ।
 आरोहणं न चेद्दद्यात्प्रतीपं वा गृहं व्रजेत् ॥३०॥
 यात्राविघातमाचष्टे वामपाश्वेन तथा स्पृशन् ।
 ह्येपमाणः शत्रुयोधं पादस्पर्शी जयावहः ॥३१॥
 ग्रामे व्रजति नागश्चेन्मथुनं देशहा भवेत् ।
 प्रसूता नागवनिता मत्ता चान्ताय भूपतेः ॥३२॥
 आरोहणं न चेद्दद्यात्प्रतीपं वा गृहं व्रजेत् ।
 मदं वा वारणो जह्याद्राजघातकरो भवेत् ॥३३॥
 वामं दक्षिणपादेन पादमाक्रमते शुभः ।
 दक्षिणं च तथा दन्तं परिमाष्टि करेण च ॥३४॥

वृषोऽश्वः कुञ्चरो वाऽपि रिपुसैन्यगतोऽशुभः ।

खण्डमेघातिवृष्ट्या तु सेना नाशमवाप्नुयात् ॥३५॥

प्रतिकूलग्रहर्क्षात्तु तथा संमुखमारुतात् ।

यात्राकाले रणे वाऽपि च्छत्रादिपतनं भयम् ॥३६॥

हृष्टा नराश्चानुलोमा ग्रहा वै जगलक्षणम् ।

काकैर्योधाभिभवनं क्रव्याद्भिर्मण्डलक्षयः ॥

प्राची पश्चिमकैशानी सौम्या प्रेष्ठा शुभा च दिक् ॥३७॥

एक बार ही भूत्र करने वाला तथा निद्रा से मलिन मुस्र वाला अन्य भय के लिये होता है । यदि किसी को घपना आगेहण न देवे अर्थात् सवारी न करने देवे तथा उसटा घर की ओर ज वे तो यह यात्रा के विधान को बत-
साना है । तथा वाम भाग को स्पर्श करता हुआ दिन-हिनाता रहे तो वह शत्रु के युद्ध में पारदर्शी तथा जय दिलाने वाला है ॥३०॥३१॥ ह भी घाम को जाये यदि मैथुन हो तो वह देश का हनन करने वाला है । माग वनिता (हयिनी) यदि प्रमूना हो तथा मत्त हो तो राजा का मत्त करने वाली होती है ॥३२॥ आगेहण न करने देवे या बारिश घर की ही ओर जावे ओर हाथी मद का त्याग करे तो राजा के पात करने वाला होगा है ॥ ३३ ॥ दाहिने पैर में वाम (बाँवे) पैर को आक्रान्त करे तो शुभ समुत्पन्न होता है । तथा दाहिनी ओर के दान को गूँड़ में परिमार्जन करे तो शुभ है ॥३४॥ वृष-अश्व अथवा हाथी यदि शत्रु की सेना में चला जावे तो अशुभ समुत्पन्न होता है । खण्ड मेघाति वृष्टि में सेना का नाश होता है । अर्थात् खण्ड २ मैथों से अत्यन्त वृष्टि होवे ॥३५॥ प्रतिकूल ग्रह ओर नक्षत्र से तथा सामने की वायु में यात्रा के समय में अथवा युद्ध में रक्षादि के पतन का भय होगा है ॥ ३६ ॥ प्रसन्न समुत्पन्न तथा अनुलोम ग्रह जय का लक्षण होता है । बाँवों में योधाओं का अभिभवन (निराकार) ओर शासकों में मण्डल का क्षय होता है । पूर्व-पश्चिम-ईशान दिशा शीघ्र-ओर शुभ होती है ॥३७॥

६३—यात्रामण्डलचिन्तादि

सर्वयात्रां प्रवक्ष्यामि राजधर्मसमाश्रयात् ।
 अस्तं गते नीचगते विकले रिपुराशिगे ॥१
 प्रतिलोमे च विध्वस्ते शुक्रे यात्रां विवर्जयेत् ।
 प्रतिलोमे बुधे यात्रां दिक्पतौ च तथा ग्रहे ॥२
 वैधृतौ च व्यतीपाते नागे च शकुनौ तथा ।
 चतुष्पादे च क्रिस्तुघ्ने तथा यात्रां विवर्जयेत् ॥३
 विपत्तारे नैधने च प्रत्यरौ चाथ जन्मनि ।
 गण्डे विवर्जयेद्यात्रां रिक्तायां च त्रियावपि ॥४
 उदीचौ च तथा प्राची तयोरैक्यं प्रकीर्तितम् ।
 पश्चिमा दक्षिणा या दिक्तयोरैक्यं तथैव च ॥५
 वाय्वाग्निदिवंसमुदभूतं परिध न तु लङ्घयेत् ।
 आदित्यचन्द्रसौरास्तु दिवसाश्च न शोभनाः ॥६
 कृत्तिकाद्यानि पूर्वेषां माघाद्यानि च याम्यतः ।
 मैत्राद्यान्यपरे चाथ वासवाद्यानि वाऽप्युदक् ॥७
 सर्वद्वाराणि शस्तानि च्छायायामानं वदामि ते ।
 आदित्ये विंशतिज्ञेयाश्चन्द्रे षोडश कीर्तिताः ॥८

अब इस अध्याय में यात्रा मण्डल चिन्ता आदि का वर्णन किया जाता है । पुष्पकर ने कहा—मैं सबको यात्रा के विषय को बतलाता हूँ—जो कि राजधर्म के समाश्रय से होती है । शुक्र ग्रह के अस्त हो जाने पर तथा नीच के घर में रहने पर—विकल होने पर—शत्रु के घर में रहने पर प्रतिलोम तथा विध्वस्त हो जाने पर कभी यात्रा नहीं करनी चाहिए । बुध और दिग्गमों के पति गृह के प्रतिलोम होने पर भी यात्रा नहीं करनी चाहिए ॥१॥२॥ वैधृति—व्यतीपात—नाग—शकुनि—चतुष्पाद और क्रिस्तुघ्न योगों में भी यात्रा को बर्जित कर देनी चाहिए ॥ ३ ॥ विपत्तार—नैधन—प्रत्यरि और जन्म के गण्ड में यात्रा न करे । तथा रिक्ता संज्ञा वाली तिथियों में यात्रा का करना निषिद्ध होता

है ॥४॥ उत्तर और पूर्व इन दोनों दिशाओं की एकता बताई गई है । तथा पश्चिम और दक्षिण इन दिशाओं का भी ऐक्य कहा गया है ॥५॥ वायु-अग्नि दिशाओं में होने वाले परिष का लङ्घन नहीं करना चाहिए । रवि-चन्द्र और सौर ये दिन भी यात्रा के लिए अच्छे नहीं होते हैं ॥६॥ कृत्तिका आदि पूर्व में तथा मघा आदि दक्षिण में—मैत्रादि पश्चिम में और वासवादि उत्तर में समस्त द्वार शोभन होते हैं । अब छाया मान को बताते हैं । आदित्य ने वीस जाननी चाहिए और चन्द्र में सोलह बताई गई हैं ॥७॥

भीमे पञ्चदशबोक्ताश्चतुर्दश तथा बुधे ।

त्रयोदश तथा जीवे शुके द्वादश कीर्तिताः ॥८॥

एकादश तथा सोरे सर्वकर्मसु कीर्तिताः ।

जन्मलग्ने शक्रचापे संमुखे न ब्रजेन्नरः ॥९॥

शकुनादौ शुभे यायाज्जयाय हरि स्मरन् ।

वक्ष्ये मण्डलचिन्तां ते कर्तव्यं राजरक्षणम् ॥१०॥

स्वाम्यमात्यस्तथा दुर्गः कोपो दण्डस्तथैव च ।

मित्रं जनपदश्चैव राज्यं सप्ताङ्गमुच्यते ॥११॥

सप्ताङ्गस्य तु राज्यस्य विघ्नकर्तृन्विनाशयेत् ।

मण्डलेषु च सर्वेषु वृद्धिः कार्या महीक्षिता ॥१२॥

आत्ममण्डलमेवात्र प्रथमं मण्डलं भवेत् ।

सामन्तास्तस्य विज्ञेया रिपवो मण्डलस्य तु ॥१३॥

उपेतस्तु मुहुर्ज्ञेयः शत्रुमित्रमतः परम् ।

मित्रमित्र ततो ज्ञेयं मित्रमित्ररिपुस्ततः ॥१४॥

एतत्पुरस्तात्कथित पश्चादपि निबोध मे ।

पाष्णिग्राहस्ततः पश्चात्ततस्त्वाक्रन्द उच्यते ॥१५॥

भीम में पन्द्रह तथा बुध में चौदह कही गई हैं । गुरु में तेरह और शुक्र में बारह हैं ॥१॥ अग्नि में बारह सभी कर्मों में बताई गई है । जन्म के लग्न में तथा राक्षसों में सम्मुख रहने पर मानव को कभी यात्रा नहीं करनी चाहिए ॥१०॥ अच्छे शत्रुन आदि के होने पर शुभ दिन में यात्रा हरि का

स्मरण करते हुए जय के लिए करनी चाहिए । अब मण्डल चिन्ता को बताया जाता है । राजरक्षण अवश्य ही करना चाहिए ॥ ११ ॥ राज्य का स्वामी (राजा)—अमात्य (मन्त्री)—दुर्ग (किला)—कोष (खजाना)—दण्ड-मित्र (राजा के हित चाहने वाले) और जनपद (देश तथा प्रजाजन) ये राज्य के स.त अङ्ग हुआ करते हैं ॥ १२ ॥ इन सातों राज्य के अङ्गों के जो भी विघ्न करने वाले हों उनका समूल विनाश करा देना चाहिए । राजा के द्वारा समस्त मण्डलों में वृद्धि करनी चाहिए ॥ १३ ॥ यहाँ पर सर्व प्रथम आत्म मण्डल ही होता है । उसके सामन्त गण ही शत्रु हुआ करते हैं ॥ १४ ॥ जो उपेत हो वह मुहुत् जानना चाहिए । इससे दूसरे नम्बर शत्रु का मित्र—फिर मित्र का मित्र इसके पश्चात् मित्र के मित्र का शत्रु जानना चाहिए ॥ १५ ॥ यह पहिले कह दिया गया है इसके पीछे मुझसे समझ लो । इसके अनन्तर पाणिग्राह (पीठ पीछे साथ में रहने वाला हल) और इसके अनन्तर आक्रन्द कहा जाता है ॥ १६ ॥

आसारस्तु ततोऽन्यः स्यादाक्रन्दासार उच्यते ।

जिगीषोः शत्रुयुक्तस्य विमुक्तस्य तथा द्विज ॥ १७

नात्रापि निश्चयः शक्यो वक्तुं मनुजपुंगव ।

निग्रहानुग्रहे शक्तो मध्यस्थः परिकीर्तितः ॥ १८

निग्रहानुग्रहेऽशक्तः सर्वेषामपि यो भवेत् ।

उदासीन स कथितो बलवान्पृथिवीपतिः ॥ १९

न कस्यचिद्रिपुमित्रं कारणाच्छत्रुमित्रके ।

मण्डलं तव संप्रोक्तमेतद्द्वादशराजकम् ॥ २०

त्रिविधा रिपवो ज्ञेयाः कुल्यानन्तरकृत्रिमाः ।

पूर्वपूर्वो गुरुस्तेषां दुश्चिकित्स्यतमो मतः ॥ २१

अनन्तरोऽपि यः शत्रुः सोऽपि मे कृत्रिसो मतः ।

पाणिग्राहो भवेच्छत्रोमित्राणि रिपवस्तथा ॥ २२

पाणिग्राहमुपायंश्च शमयेच्च तथा स्वकम् ।

मित्रेण शत्रोरुच्छेदं प्रशंसन्ति पुरातनाः ॥ २३

मित्रं च शत्रुतामेति सामन्तत्वादनन्तरम् ।

शत्रुं जिगीषुरुच्छिन्द्यात्स्वयं शक्नोति चेद्यदि ॥२४॥

प्रतापवृद्धौ तेनापि नामित्राज्जायते भयम् ।

यथाऽस्य नोद्विजेल्लोको विश्वासश्च यथा भवेत् ॥२५॥

जिगीषुर्धर्मविजयी तथा लोकं वशं नयेत् ॥२६॥

इसके अनन्तर आसार और फिर अन्य आक्रान्दासार कहा जाता है । जय की इच्छा रखने वाले, शत्रु से युक्त और विमुक्त के होते हैं ॥१७॥ हे मनुज पुङ्गव ! यहाँ पर भी निश्चय नहीं कहा जा सकता है । निग्रह (दण्ड देना) और अनुग्रह (कृपा कर छोड़ देना) में समर्थ मध्यस्थ कहा जाता है । ॥१८॥ जो सभी के निग्रह तथा अनुग्रह में प्रसक्त होता है वह बलवान् राजा भी उदासीन कहा गया है । १९॥ कोई किसी का शत्रु नहीं है और न कोई किसी का मित्र ही होता है । कुछ ऐसे कारण हुआ करते हैं जिनके वश मित्र और शत्रु यहाँ ससार में बन जाया करते हैं । मैंने तुम्हारे आगे मंडल बता दिया है । यह बारह राज मंडल होते हैं ॥२०॥ तीन प्रकार के शत्रु हुआ करते हैं जो कुल्य घनन्तर और कृत्रिम होते हैं । इन तीनों प्रकार के रिपुओं में जो पहिला पहिला होना है वही गुरु रिपु होता है । जिसकी कोई निवारण क्रिया नहीं होती है और हीतो भी है तो बहुत कठिन है ॥२१॥ अनन्तर भी जो शत्रु होता है वह भी कृत्रिम ही माना गया है । पाण्डिप्राह होता है । शत्रु के जो मित्र होते हैं वे भी शत्रु ही होते हैं ॥२२॥ अपने पाण्डिप्राह को उपायों के द्वारा दामन करना चाहिए । प्राचीन पुरुष मित्र के दान ही शत्रु का उन्मूलन करने की प्रशंसा करते हैं ॥२३॥ सामन्तत्व होने से जो मित्र होते हैं वे भी बाद में शत्रुता की प्राप्त कर लेते हैं । जीत प्राप्त करने की इच्छा वाले को यदि स्वयं शक्तिशाली हो तो शत्रु का उच्छेद कर देना चाहिये । प्रताप की वृद्धि होने पर उससे भी अमित्र से भय उत्पन्न होता है । जिस प्रकार से लोक की इसका उद्वेग न हो और विश्वास हो जावे । जय की इच्छा रखने वाले तथा धर्म की विजय रखने वाले को लोक की वश में कर लेना चाहिए । ॥२४॥२५॥२६॥

६४ रामोक्तनीतिः

नीतिस्ते पुष्करोक्ता तु रामोक्ता लक्ष्मणाय या ।
जयाय तां प्रवक्ष्यामि शृणु धर्मादिवर्धनीम् ॥१॥
न्यायेनर्जनमर्थस्य वर्धनं रक्षणं चरेत् ।
सत्पात्रप्रतिपत्तिश्चैतिवृत्तं चतुर्विधम् ॥२॥
नयस्य विनयो मूलं विनयः शास्त्रनिश्चयात् ।
विनयो हीन्द्रियजयस्तैर्युक्तः पालयेन्महीम् ॥३॥
शास्त्रं प्रज्ञा धृतिर्दाक्ष्यं प्रागल्भ्यं धारयिष्णुता ।
उत्साहो वाग्मिनीदायर्मापत्कालसहिष्णुता ॥४॥
प्रभावः शुचिर्ता मैत्री ह्यारः मृत्युं कृतञ्जता ।
कुलं शीलं दमश्चेति गुणा संपत्तिहेतवः ॥५॥
प्रकीर्णविषयारण्ये धावन्तं विप्रमायिनम् ।
जानाङ्कुशेन कुर्वीत वश्यमिन्द्रियदन्तिनम् ॥६॥
कामः क्रोधस्तया लोभो हर्षो मानो मदस्तथा ।
पङ्चवर्गमुत्सृजेदेनमस्मिंस्त्यक्ते सुखी नृपः ॥७॥

प्रब राम के द्वारा कही हुई नीति को बताते हैं । अग्नि-देव ने कहा—
पुष्कर के द्वारा कही हुई नीति श्रीराम ने लक्ष्मण के लिए नीति कही थी
उसे जय के लिये तुमको बतलाता हूँ जो कि धर्म आदि के वर्धन करने वाली
है । उपको ध्वरण करो ॥१॥ श्रीराम ने कहा—न्याय से धन की कमाई करना
उस न्यायाजित धन का बढ़ाना—प्रौर उस बड़े हुए धन की रक्षा करनी चाहिए ।
इसके पश्चात् उस धन का प्रयोग तथा दान किसी सत्पात्र में (योग्यता सम्पन्न
व्यक्ति में) करना चाहिए । धन का यही चार प्रकार का इति वृत्त है ॥२॥
नय (न्याय) का मूल विनय होता है । शास्त्र के निश्चय से विनय आता है ।
इन्द्रियों की जीत ही तो विनय है । इनसे युक्त होता हुआ मही का पालन
करे ॥३॥ सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए कुछ गुण हेतु हुमा करते हैं, बिना कारण

के कार्य कभी नहीं होता है। उन कारण स्वरूप गुणों को बतलाते हैं—वासना का ज्ञान, बुद्धि, धीरज, दक्षता (चतुराई), प्रागल्भ्य (भली प्रकार से खूब बात-चीत करना) धारण करने का स्वभाव, उत्साह, वाग्मिता (बोलने या भाषण की शक्ति), उदारता प्रापति के समय में सहन करने का स्वभाव प्रभाव, पवित्रता, मित्रता, त्याग, सच्चाई किये हुए उपकार को मानना, सुन्दर कुल, शान्त स्वभाव, इन्द्रियों का दमन ये गुण सम्पत्ति के लाभ में हेतु होते हैं। सम्पत्तिशाली होने को ये गुण होने चाहिए ॥४१॥ सर्वत्र खुले और फँले हुए विषयों के जङ्गल में दौड़ लगाते हुए विशेष रूप से प्रमादशील इन्द्रियों के हाथी को धर्मात् विभिन्न विषयों में एक दम भग्न एवं विभोर इन्द्रियों के बर्ष रूपी हाथी को ज्ञान रूपी घञ्जुष से भपने बशीभूत करना चाहिये ॥४॥ काम क्रोध, लोभ, हर्षातिरेक, मान, मद इन छः के समूह का त्याग कर देना चाहिए। इनके त्याग देने पर राजा सुखी होता है ॥७॥

आन्वीक्षिकीं त्रयीं वार्ता दण्डनीतिं च पार्थिवः ।

तद्विद्यैस्तत्क्रियोपेतैश्चिन्तयेद्विनयान्वितः ॥८॥

आन्वीक्षिक्याऽर्थाविज्ञानं धर्माधर्मौ त्रयीस्थितौ ।

अर्थानर्थौ तु वार्तायां दण्डनीत्यां नयानयो ॥९॥

अहिंसा सूनृता वाणी सत्यं शौचं दया क्षमा ।

वर्णिनां लिङ्गिनां चैव सामान्यो धर्म उच्यते ॥१०॥

प्रजाः समनुगृह्णीयात्कुर्यादाचारसंस्थितिम् ।

वाक्सूनृता दया दानं हीनोपगतस्त्रयम् ॥११॥

इति वृत्तं सतां साधुहितं सत्पुरुषव्रतम् ।

आधिब्याधिपरीताय अद्य श्वो वा विनाशिने ॥१२॥

को हि राजा शरीराय धमपितं समाचरेत् ।

न हि स्वमुखमन्विच्छन्पीडयेत्कृपणं जनम् ॥१३॥

अन्वीक्षिकी, त्रयीवार्ता, दण्डनीति इन विद्याओं से तथा क्रिया से युक्त विद्याओं से, विनय से अन्वित होकर राजा को चिन्तन करना चाहिए । ॥८॥

आन्विक्षिकी से भ्रम का विशेष ज्ञान और त्रयी में स्थित धर्म और मंधर्म, वार्त्ता और दण्ड नीति में नय और मन्त्र का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ॥६॥ महिषा, मधुर वाणी, सत्य, शौच, दया, क्षमा ये समस्त चारों वर्ण वालों तथा चारों आश्रम वाले लिङ्गियो का साधारण धर्म कहा जाता है ॥१०॥ राजा का कर्त्तव्य है कि प्रजा पर पूर्णतया अनुग्रह रखे और आचार की स्थिति मली-भाति कायम रखे । सूत वाणी, दया, दान-हीनता वालों की रक्षा करनी चाहिए । ११॥ साधु पुरुषों की भलाई और सत्पुरुषों का व्रत यही सज्जनों का इति वृत्त होता है । आधि (मन की व्याधा) और व्याधि (शारीरिक रोग) से परीत अर्थात् पूर्ण तथा घिरे हुए एवं आज या बल को विनाश हो जाने वाले शरीर के लिए कौनसा ऐसा राजा है जो धर्म से युक्त कर्म का आचरण करता है । तात्पर्य यह है कि ऐसे शरीर के सुख का त्याग कर धर्म का ही आचरण राजा को करना चाहिए । अपने सुख की इच्छा न करते हुए कृपण जन को पीड़ा नहीं देनी चाहिए ॥१२॥१३॥

कृपणः पीड्यमानो हि मन्युना हन्ति पार्थिवम् ।
क्रियतेऽभ्यर्हणीयाय स्वजनाय यथाऽञ्जलिः ॥१४॥
ततः साधुतरः कार्यो दुर्जनाय शिवायिना ।
प्रियमेवाभिधातव्यं सत्सु नित्यं द्विपत्सु च ॥१५॥
देवास्ते प्रियवक्ताः पशवः क्रूरवादिनः ।
शुचिरास्तिक्यपूतात्मा पूजयेद्देवताः सदा ॥१६॥
देवतावदगुरुजनमात्मवच्च सुहृज्जनम् ।
प्रणिपातेन हि गुरुं सतोऽभृषानुचेष्टितः ॥१७॥
कुर्वीताभिमुखान्भृत्यर्देवान्सुकृतकर्मणा ।
सद्भावेन हरेन्मित्रं सभ्रमेण च बान्धवान् ॥१८॥
स्त्रीभृत्यान्प्रेमदानाम्यां दाक्षिण्येनेतरं जनम् ।
अनिन्दा परकृत्येषु स्वधर्मपरिपालनम् ॥१९॥
कृपणेषु दयालुत्वं सर्वत्र मधुरा गिरः ।

- प्राणैरप्युपकारित्वं मित्रायाव्यभिचारिणे ॥२०॥
- गृहागते परिष्वङ्गः शक्त्या दानं सहिष्णुता ।
- म्यसमृद्धिष्वनुत्सेकः परवृद्धिष्वमत्सरः ॥२१॥
- अपरोपतापि वचनं मौनव्रतचरिष्णुता ।
- बन्धुभिर्वन्द्यसंयोगः स्वजने चतुरस्रता ॥
- उचितानुविधायित्वमिति वृत्तं महात्मनाम् ॥२२॥

कृपण जब सताया हुआ होता है तो अपने हृदय के क्रोध से राजा का हनन कर देता है । जो स्वजन अभ्यर्हणीय हो उसके लिए भञ्जलि ही की जाया करती है ॥१४॥ जो कल्याण के चाहने वाला है उसे दुर्जन के लिए अधिक अच्छा कार्य करना चाहिए । चाहे सत्पुरुष हों या द्वेष रखने वाले हों सभी के प्रति नित्य प्रिय वचन ही कहने चाहिये, तात्पर्य यह है कि द्वेषियों से भी कभी कटु एवं अप्रिय वचन नहीं बोलने चाहिए ॥१५॥ जो सर्वदा प्रिय वचन ही बोला करते हैं वे साक्षात् देवता के समान होते हैं । जो क्रूर वचन बोलने वाले हैं वे साक्षात् पशु होते हैं । शुचिता से युक्त और आस्तिकता पवित्र आत्मा वाले राजा को सर्वदा देवों का पूजन करना चाहिए ॥१६॥ देवता की भाँति गुरु-जन की पूजा करे और अपने भारकी भाँति मित्रजन की पूजा करे । प्रणिपात के द्वारा गुरु को और सत्य अनुचोषितों वाले भृत्यों के द्वारा सत्पुरुषों को अपने अभिमुख करना चाहिए । सुकृत् कर्म के द्वारा देवों को अपने अनुकूल करे । सद्भाव के द्वारा अपने मित्र के हृदय को वश में करना चाहिए । सम्भ्रम अर्थात् आदर-सत्कार से बान्धवों को, प्रेम और दान के द्वारा स्त्री तथा भृत्यों को और चातुर्य के द्वारा अन्य समस्त लोगों को अपने अनुकूल बना लेना चाहिए ॥१७॥ दूसरे के कृत्यों में अपने धर्म का परिपालन ही अनिन्दा है ॥१८॥ जो कृपण लोग हों उन पर दयालुता करे और सर्वत्र मधुर वाणी बोलनी चाहिए । जो अभ्यभिचारी मित्र हों अर्थात् ऐसे मित्र हों जो कभी भी धोखा नहीं दिया करते हैं, उनका प्राणपन से उपकार करना चाहिए । जब पर पर भावे तो मित्र के साथ प्रेमालिङ्गन करे । जितनी अपनी शक्ति हो

उज्जना उसे देवे और सहिष्णुता रखे । मननी तनूद्धि की दशा में धमक नहीं करना चाहिए । दूसरों की वृद्धि में कभी मत्नरता (डाह) का भाव नहीं रखे ॥ २०।२१॥ अपरोक्ष होने पर भी बचन और मोन व्रत की सहिष्णुता रखे । बन्धुगण के साथ संयोग को बाँधकर रखे जो माने जन हों उनमें अनुस्रता 'रखनी' चाहिए । चतुरस्रता का भर्ष सब प्रकार की चतुराई होता है । महान् आत्मा वालों का व्रत यही होता है कि वे उचित एवं अनुचित का विचार कर उचित जो होता है उसे ही किया करते हैं ॥२२॥

६५ राजधर्माः (३)

राम—

स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रं च दुर्गः कोपो बलं सुहृत् ।

परस्परोक्तारीदं सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥१॥

राज्याङ्गानां वरं राष्ट्रं साधन पालयेत्सदा ।

कुलं शीलं वयः सत्त्वं दाक्षिण्यं क्षिप्रकारिता ॥२॥

अविसंवादिता सत्यं वृद्धसेवा कृतज्ञता ।

दैवसंपन्नता बुद्धिरधुद्रपारिवारता ॥३॥

शक्यसामन्तता चैव तथा च दृढभूक्तिता ।

दीर्घदशित्वमुत्साहः शुचिता स्थूललक्षिता ॥४॥

विनीतत्व धार्मिकता साधोश्च नृपतेर्गुणाः ।

प्रख्यातवंशमक्रूरं लोकसंग्राहिणं शुचिम् ॥५॥

कुर्वीताऽऽत्महिताकाङ्क्षी परिचारं महीपतिः ।

वाग्मी प्रगल्भः स्मृतिमानुदग्रो बलवान्वशी ॥६॥

नेता दण्डस्य निपुणः कृतशिल्पपरिग्रहः ।

पराभियोगघ्नसहः सर्वदुष्टप्रतिक्रिया ॥७॥

परवृत्तान्तवेत्ता च संधिविग्रहतत्ववित् ।

गूढमन्त्रप्रचारज्ञो देशकालविभागवित् ॥८॥

इस अध्याय में राजधर्म के विषय में बतलाया जाता है । श्री राम बोले—राज्य के सात अंग होते हैं और इन सातों अंगों को ही राज्य कहा जाता है । वे सात अङ्ग, स्वामी, अमात्य (मन्त्री), राष्ट्र, दृग्यं, कोष, बल (सेना) मित्र ये होते हैं । ये सभी एक दूसरे के आपस में उपकार करने वाले होते हैं ॥ १ ॥ इन राज्य के अङ्गों में सबसे श्रेष्ठ साधन राष्ट्र होता है । इसलिये इसका सदा भली भाँति पालन करना चाहिए । राजा में, जो कि साधु भर्थात् बहुत अच्छा होता है उसमें कुछ विशेष गुण हुआ करते हैं । वे गुण ये हैं—कुल, शील, भवस्या, सत्त्व, दाक्षिण्य (कुशलता), क्षिप्रकारिता, (काम को शीघ्रता से पूरा कर देना), भविसंवादिता (जो एक बार मुख से स्वीकार किया है उसका पालन करना), सत्य, वृद्धों की सेवा, किये हुए उपकार का ज्ञान, दैव सम्पन्नता (भाग्यशाली होना), बुद्धि, बड़े परिणाम वाला होना, सव्य सामन्तता, इङ्ग भक्ति रखना, दीर्घदर्शिता (आगे-पीछे की ऊँची-नीची बात को सोचना), उत्साह, पवित्रता, स्थूल लक्षिता, विनीत भाव, धार्मिकता ये गुण अच्छे राजा में होने चाहिए । राजा को अपने पास वाले व्यक्ति भी ऐसे रखने चाहिए जो प्रसिद्ध वंश का हो क्रूरता से रहित हो, लोकसम्प्राही हो सुखी हो और आत्म हित की आकाङ्क्षा रखने वाला हो । राजा को दाम्नी, प्रगल्भ, स्मृति वाला, उदग्र, बलवान्, और वशी होना चाहिए ॥ २ ॥ ॥३॥४॥५॥६॥ दण्ड का नेता, निपुण, शिलर का परिग्रह करने वाला, पराये अभियोग को सहन न करने वाला, समस्त दुष्टों का प्रतिकार करने वाला, पराये वृत्तान्त को जानने वाला, संधि और विग्रह के तत्त्व को जानने वाला, गूढ़ मन्त्राणा के प्रचार का ज्ञाता और देव तथा समय के विभाग को समझने वाला राजा को होना चाहिए ॥७॥८॥

धादाता सम्यगर्थानां विन (नि) योस्ता च पात्रवित् ।

प्रोपसोभभयद्रोहदम्भचापलवजितः ॥९॥

परोपनापपंशु (शु) ग्यमात्सर्वेषां (र्था) नृतातिगः ।

वृढोपदेवगंपन्न दासो मधुरदर्शनः ॥१०॥

गुणानुरागस्थितिमानात्मसरद्गुणाः स्मृताः ।
 कुलीनाः शुचयः शूराः श्रुतवन्तोऽनुरागिणः ॥११॥
 दण्डनीतेः प्रयोक्तारः सचिवाः स्युर्महीपतेः
 सुविग्रहो जानपदः कुलशीलकलान्वितः ॥१२॥
 वाग्मी प्रगल्भश्चक्षुष्मानुत्साही प्रतिपत्तिमान् ।
 स्तम्भचापलहीनश्च मैत्रः क्लेशसहः शुचिः ॥१४॥
 दृढभक्तिरकर्ता च वैरागा सचिवो भवेत् ।
 स्मृतिस्तत्परताऽर्थेषु चित्तज्ञो ज्ञाननिश्चयः ॥१५॥
 दृढता मन्त्रगुप्तिश्च मन्त्रिसंपत्प्रकीर्तिता ।
 त्रय्यां च दण्डनीत्यां च कुशलः स्यात्पुरोहितः ॥१६॥

अच्छे धर्मों का आदर प्रदान करने वाला पात्र का ज्ञान रखने वाला
 धर्मों का मनी-भाँति विनियोग करने वाला तथा क्रोध, लोभ, भय, द्रोह,
 दम्भ और चपलता से रहित नृप को होना चाहिए ॥११॥ दूसरों के उपताप,
 पैशुन्य (चुगली या बुराई करना), मात्सर्य, ईर्ष्या और अनृत (मिथ्या) इन
 दोषों से दूर रहने वाला, वृद्धों के उपदेशों से सम्पन्न, शक्तिशाली होने पर भी
 मधुर दर्शन वाला राजा को रहना चाहिए ॥ १० ॥ गुणों में अनुराग, स्थिति
 वाला होना, आत्म सम्मदा ये सब राजा के गुण बताये गये हैं । राजा के
 मन्त्रीगण भी कुलीन शुचि, शूरवीर, शास्त्रों के ज्ञाता, अनुराग रखने वाले,
 दण्डनीति के प्रयोग करने वाले ऐसे राजा के मंत्री होने चाहिए ।

सुविग्रह जानपद, जो कुलशील और कला से मन्वित हो, वाग्मी,
 प्रगल्भ, नेत्रों वाला, उत्साह युक्त, प्रतिपत्ति से युक्त, स्तम्भता और चपलता
 से हीन, क्लेशों के सहन करने वाला और पवित्र राजा का मित्रमण्डल होना
 चाहिए ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ सत्य, सन्, धृति (धीरज), स्थिरता, प्रभाव,
 भारोग्य से युक्त शिल्पज्ञाता, दक्ष, बुद्धिवाला और धारण से युक्त, दृढभक्ति
 वाला, वैर का न करने वाला राजा का सचिव होना चाहिए । मन्त्रियों की
 सम्पत्ति यह बतनाई गई है कि उनमें पूर्ण दृढ़ता, मन्त्रणा की धियाकर रखना

संवासियों से बल मन्त्र, आग्नेय, शील स्वभाव, अस्तव्यता, अचलता, वरों का न करना ये सब बातें प्रत्यक्ष रूप से जान लेनी चाहिए । भद्रता और शुद्धता का भी ज्ञान प्राप्त करे । जो परोक्ष गुण वृत्तियाँ होती हैं ये फलों के द्वारा अनुमान करने के योग्य दृष्टा करती हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ भूमि अच्छे अच्छे धानारों वाली पवित्र, खान में उत्पन्न होने वाले अनेक द्रव्यों से युक्त, बहुत जल वाली और पवित्र देशों से युक्त भूमि हितकारिणी होती है । भूमि गोवंश की भलाई करने वाली होनी चाहिए ॥ २४ ॥

रम्या सकुञ्जरवला वारि थलपयान्विता ।

अदेवमातृका चेति शस्यते भूरिभूतये ॥२५॥

शूद्रकारुणिकप्रायो महारम्भः कृपीवलः ।

सानुरागो रिपुद्वेषी पीडासहकरः पृथुः ॥२६॥

नानादेश्यैः समाकीर्णो धार्मिकः पशुमान्वली ।

ईदृग्जनपदः शस्तोऽमूर्खव्यसनिनायकः ॥२७॥

पृथुसीमं महातमुच्चप्राकारतोरणम् ।

पुरं समावसेच्छैलसरिन्मरुतनाथयम् ॥२८॥

जलवद्धान्यघनवद्दुर्गं कालसहं महत् ।

औदकं पार्वतं वाक्षं मरिणं घन्विनं च पट् ॥२९॥

ईप्सितद्रव्यसंपूर्णः पितृपतामहोचितः ।

धर्माजितो व्ययसहः कोपो धर्मादिवृद्धये ॥३०॥

पितृपतामहो वदयः संहतो दत्तवेतनः ।

विरूपातपौरुषो जन्मः कुशलः शकुनवृत्तः ॥३१॥

रमणीय हाथियों के बल समुक्त, धारिके जो स्थान हों उनमें पठों वाली हो, अदेव मातृका भूमि ही विशेष विभूति के लिये प्रशस्त बही जाती है ॥ २५ ॥ राजा का जनपद शूद्र, कारीगर और बलिक्वर्णों से पूर्ण होना चाहिए । उसमें किसान भी ऐसे हों जो महान् भारम्भ धालें हों । कृषकों में पूर्ण अनुराग, राजा के शत्रु से द्वेष, पीडा का सहन करना, तथा अनेक उद्देश्यों से समाकीर्ण होना, धर्माजित, पशुपालन, इन ये सब गुण हों, ऐसा

होना चाहिए । राजा का जो पुरोहित हो वह भी त्रयी और दण्ड नीति में परम कुशल होवे ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथर्ववेदविहित कुर्याच्छान्तिकपोष्टिकम् ।

साधुतं याममात्यानां तद्विद्यैः सह बुद्धिमान् ॥ १७

चक्षुष्मत्तां च शिल्प च परीक्षेत गुणद्वयम् ।

स्वजनेभ्यो विजानीयात्कुलं स्थानमवग्रहम् ॥ १८

परिकर्मसु दक्षं च विज्ञान धारयिष्यताम् ।

गुणत्रयं परीक्षेत प्रागल्भ्यं प्रीतिं (त) तां तथा ॥ १९

कथायोगेषु बुध्येत वाग्मिभ्यः सत्यवादिताम् ।

उत्साहं च प्रभावं च तथा वलेशसहिष्णुताम् ॥ २०

धृतिं चैवानुरागं च स्थैर्यं चाऽऽपि लक्षयेत् ।

भक्तिं मंत्रीं च शौचं जानीयाद्व्यवहारतः ॥ २१

संवासिभ्यो बलं सत्वमारोग्यं शीलमेव च ।

अस्तव्यतामचापत्य वराणां चाप्यकीर्तनम् ॥ २२

प्रत्यक्षतो विजानीयाद्भद्रतां क्षुद्रतामपि ।

फलानुमेयाः सर्वत्र परीक्षगुणवृत्तयः ॥ २३

सस्याकरवती पुण्या संनिद्रप्यसमन्विता ।

गोहिता भूरिसलिता पण्यजंनपदैर्भुता ॥ २४

अथर्व वेद में बताई हुई पौष्टिक शान्ति को करे । अमात्यों की यही साधुता है कि उस विद्या वालों के साथ रहकर बुद्धिमान् चक्षुष्मत्ता के शिल्प का परीक्षण करे । अपने जनों के दो गुणों की भली-भाँति समझ ले एक तो उनका कुल और अवग्रह स्थान ॥ १७ ॥ १८ ॥ परिकर्मों में दक्षता, विशेष ज्ञान और धारण करने का स्वभाव इन तीन गुणों की जाँच करनी चाहिए प्रगल्भता प्रीति का भी परीक्षण करे ॥ १९ ॥ कथा के योगों में वाग्मिता और सत्यवादिता उत्साह, प्रभाव का परीक्षण करे । वलेशों के सहन करने का स्वभाव, धैर्य, अनुराग, स्थिरता इन गुणों की जाँच आगति के समय में की जानी चाहिए । भक्ति मंत्री, शौच इनका ज्ञान व्यवहार से करे ॥ २० ॥ २१ ॥

संवासियों से बल मन्त्र, आगोय, शील स्वभाव, अस्तव्यता, अचरलता, वीरों का न करना ये सब बातें प्रत्यक्ष रूप से जान लेनी चाहिए। भद्रता और शुद्धता का भी ज्ञान प्राप्त करे। जो परोक्ष गुण वृत्तियाँ होती हैं वे फलों के द्वारा अनुमान करने के योग्य दृष्टा करनी हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ भूमि अच्छे अच्छे आकारों वाली पवित्र, खान में उत्पन्न होने वाले अनेक द्रव्यों से युक्त, बहुत जल वाली और पवित्र देशों से युक्त भूमि हितकामिणी होती है। भूमि गोवंश की मलाई करने वाली होनी चाहिए ॥ २४ ॥

रम्या सकुञ्जरवला वारि थलपथान्विता ।

अदेवमातृका चेति शस्यते भूरिभूतये ॥२५

शूद्रकारुणिकप्रायो महारम्भः कृपीवलः ।

सानुरागो रिपुद्वेषी पीडासहकरः पृथुः ॥२६

नानादेश्यः समाकीर्णो धार्मिकः पशुमान्वली ।

ईदृज्जनपदः शस्तोऽमूर्खव्यसनिनायकः ॥२७

पृथुसीमं महातमुच्चप्राकारतोरणम् ।

पुरं समावसेच्छैलसरिन्मरुवनाश्रयम् ॥२८

जलवद्धान्यधनवद्दुर्गं कालसहं महत् ।

औदकं पार्वतं वार्षं मरिणं धन्विनं च पट् ॥२९

ईप्सितद्रव्यसंपूर्णः पितृपतामहोचितः ।

धर्माजितो व्ययसहः कोपो धर्मादिवृद्धये ॥३०

पितृपतामहो वश्यः संहतो दत्तवेतनः ।

विख्यातपौरुषो जन्यः कुशलः शकुनैर्वृतः ॥३१

रमणीय हाथियों के बल समुक्त, वारिके जो स्थान हों उनमें पथों वाली हो, अदेव मातृका भूमि ही विशेष विभूति के लिये प्रशस्त कही जाती है ॥ २५ ॥ राजा का जनपद शूद्र, कारीगर और बणिक्जनों से पूर्ण होना चाहिए। उसमें किसान भी ऐसे हों जो महान् भारम्भ करते हों। कृषकों में पूर्ण अनुराग, राजा के शत्रु से द्वेष, पीडा का सहन करना, तथा अनेक वद्देश्यों से समाकीर्ण होना, धर्मनिष्ठा, पशुपालन, बल ये सब गुण होयें, ॥

जो जानाद होना है परम प्रशस्त होता है । अब दुर्ग के विषय में बताते हैं, दुर्ग ऐसा होना चाहिए जिसका नायक व्यसनों से रहित एवं विद्वान् होवे । बड़ी सीमा वाला, महान् खाई वाला, ऊँचे प्रकार (चारदीवारी) और तोरण (प्रधान द्वार) वाला जिसमें पुर का समावेश हो सके तथा शैल, नदी और वन के अश्रय वाला हो, जल से और धान्य एवं धन से युक्त हो ऐसा काल सह दुर्ग महान् होना चाहिए । यह भीदक (जल से सम्बन्धित), पर्वत, वर्क्ष ऐरिण और धन्वि छंद प्रकार का होता है ॥२६॥२७॥२८॥२९॥ अब राजा के कोप के विषय में बताया जाता है, जितना भी धन इच्छित हो उस द्रव्य से सम्पूर्ण कोप होना चाहिए और बाप दादा के समय से चले आने वाला पुराना हो । जो धन भी राजा के कोप में सज्जित किया गया हो वह धर्म पूर्वक अर्पित होना चाहिए । इतना धन कोप में रहे जो राजकाज में व्यय होता है उसे सहन कर सके । ऐसा कोप धर्म आदि की वृद्धि करने वाला होता है । णितृ पैतामह वश्य होता है और वेतन जिसने दे दिया है वह संहन होता है । जो स्वयं उत्तराग्र करके बनाया जावे वह विष्णुपति भोक्ष्य तथा शकुनों से वृत्त कुशल नाम वाला कोप होता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

नानाप्रहरणोपेतो नानायुद्धविशारदः ।

नानायोधसमाकीर्णो नीराजितहयद्विपः ॥३२

प्रवासायासदुःखेषु युद्धेषु च कृतश्रमः ।

अर्द्धधक्षत्रियप्रायो दण्डो दण्डवतां मतः ॥३३

योगविज्ञानसत्त्वाद्धर्मं महापक्षं प्रियंवदम् ।

आयत्तिक्षममर्द्धधर्मं मित्रं कुर्वीत सत्कुलम् ॥३४

दूरादेवाभिगमनं स्पष्टार्थहृदयानुगा ।

वाक्सत्कृत्य प्रदानं च त्रिविधो मित्रसंग्रहः ॥३५

धर्मकामार्थसंयोगो मित्रास्तु त्रिविधं फलम् ।

औरस तत्र सनद्ध तथा वंशक्रमागतम् ॥३६

रक्षित व्यसनेभ्यश्च मित्रं ज्ञेयं चतुर्विधम् ।

मित्रे गुणाः सत्यतायाः समानसुखदुःखता ॥३७

वक्ष्येऽनुजीविनां वृत्तं सेवी सेवेत भूपतिम् ।
 दक्षता भद्रता दाढ्यं क्षान्तिः क्लेशसहिष्णुता ॥३८॥
 संतोषः शीलमुत्साहो मण्डयत्यनुजीविनम् ।
 यथाकालमुपासीत राजानं सेवको नयात् ॥३९॥

राजा का कोप अनेक प्रकार के प्रहरणों से युक्त होना चाहिए जो कि नाना प्रकार के युद्धों के परिणत हो । अनेक योधियों से घिरा हुआ तथा धीर और हस्तिधियों के समूह नीराजित हो ॥३८॥ प्रवास के आशय दुःखों में श्रम किया हुआ धीर क्षत्रिय प्रायः दण्ड दण्ड वालों का माना गया है ॥ ३९ ॥ योग, विज्ञान और सत्य से युक्त, महान् पक्ष वाला, प्रिय बोलने वाला तथा आयति (उत्तर काल) में समर्थ कुलवान् एवं ऋद्धि (दो तरह का भाव रखने वाला) मित्र राजा का होना चाहिए । ३४ ॥ मित्रों का संघ तीन प्रकार का होता है, दूर से ही अभिगमन, स्वयं धर्म वाली तथा हृदय में स्थान बनाने वाली वाली और सत्कार करके प्रदान ये तीन प्रकार हैं ॥ ३५॥ धर्म, काम और धर्म का संयोग ये तीन प्रकार का मित्र से फल होता है । धीरस, सबद्ध, वंश क्रम ये चला घाने वाला धीर व्यक्तियों से रक्षित चार प्रकार का मित्र जानना चाहिए । मित्र में मत्पता आदि समान दुःखता तथा सुखता गुण होते हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ जब जो राजा के अनुजीवी होते हैं उनका वृत्त बतलाया जाता है । जो सेवा करने वाला होना है उसे राजा की सेवा करनी चाहिए । दक्ष होना, भद्रता, दृढ़ता, क्षान्ति, क्लेश के सहन करने का स्वभाव का होना, सन्तोष, शान्त स्वभाव (शील), उत्साह ये गुण अनुजीवी को भूषित कर देते हैं । सेवक का कर्त्तव्य है समय के अनुसार राजा की सेवा या उपासना करे यही नियम (नीति) है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

परस्थानगमं क्रीयमीदृत्त्यं मत्सरं त्यजेत् ।
 विगृह्य कथनं भृत्यो न कुर्याज्ज्वायसा सह ॥४०॥
 गुह्यं धर्मं च मन्त्रं च न च भर्तुः प्रकाशयेत् ।
 रक्ताद् वृत्तिं समीहेत विरक्तं सत्यजेन्नृपम् ॥४१॥

अकार्ये प्रतिषेधश्च कार्ये चापि प्रवर्तनम् ।
 संक्षेपादिति सद्बृत्ति बन्धुमित्रानुजीविनाम् ॥४२॥
 आजीव्यः सर्वसत्त्वानां राजा पर्जन्यवद्भवेत् ।
 आयद्वारेषु चाऽऽप्त्यर्थं धनं चाऽऽददतीति च ॥४३॥
 कुर्यादुद्योगसंपन्नानध्यक्षान्सर्वकर्मसु ।
 कृपिर्वणिक्पथो दुर्गं सेतु कुञ्जरबन्धनम् ॥४४॥
 खन्याकरबलादानं शून्यानां च निवेशनम् ।
 अष्टवर्गमिमं राजा साधुवृत्तोऽनुपालयेत् ॥४५॥
 आमुक्तिकेभ्यश्चोरेभ्यः पौरेभ्यो राजवल्लभात् ।
 पृथिवीपतिलोभाच्च प्रजानां पञ्चधा भयम् ॥४६॥
 अवेध्यतद्भयं काल आददीत कर नृपः ।
 अभ्यन्तर शरीरं रवं वा (वा) ह्यं राष्ट्रं च रक्षयेत् ॥४७॥
 दण्ड्यास्तान्दण्डयेद्राजा स्व रक्षेच्च विपादितः ।
 ब्रियः पुत्रांश्च शत्रुभ्यो विश्वसेन कदाचन ॥४८॥

पराये स्थान में गमन करना क्रूरता, उद्धतपन और मत्सरता का
 सेवक को त्याग कर देना चाहिए । किसी के कथन को ग्रहण कर उसे बढ़ा
 या न करे । तात्पर्य यह है जैसा भी कोई बड़े उसे जतना ही कह देना
 चाहिए ॥ ४० ॥ कोई गुप्त बात हो उसे, भर्म, मन्त्र स्वाधी का किसी के आगे
 प्रकाशित न करे । जो राजा राग से मुक्त हो उससे ही अपनी रोजी कमावे
 तथा जो विरक्त राजा हो तो उसे अनुजीवी को त्याग देना चाहिए ॥ ४१ ॥
 जो अकार्य उसमें प्रतिषेध और जो करने के योग्य हो उसमें प्रवृत्ति रखना यह
 संक्षेप से बन्धु मित्र और अनुजीवियों की सद्बृत्तिता ही गई है ॥ ४२ ॥
 राजा समस्त प्राणियों का भेष की भाँति आजीव्य हुआ करता है । आय के
 द्वारों में प्रति के लिये धन को राजा भोग आदान किया करते हैं ॥ ४३ ॥
 राजा को चाहिए कि सभी कर्मों में अध्यक्ष ऐसे ही व्यक्तियों को बनावे जो
 उद्योग गुण में सम्पन्न हों । शृषी (सेती), वणिक्पथ, दुर्ग- सेतु, कुञ्जर
 बन्धन, खान, आकर, बल का आदान, शून्य स्थानों का निवेशन यह अष्ट वर्ग

होता है । राजा को इसका साधु चरित्र वाला होते हुए अनुसालन करना चाहिए ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ धामुक्तिक, चोर, पीर, राजा का शत्रु व्यक्ति, राजा का लालच से प्रजाजन को इन पाँच से भय रहा करता है धर्मात् यह पाँच प्रकार के प्रजा के लिये भय होते हैं ॥ ४६ ॥ राजा का कर्त्तव्य है कि इन भय को देख कर समय पर कर लेना चाहिए । अपने भीतरी शरीर की भीर बाहिरी राष्ट्र की राजा को रक्षा करनी चाहिए ॥ ४७ ॥ राजा को दण्ड के देने योग्य व्यक्तियों को दण्ड देना चाहिए और विप आदि से अपनी रक्षा करनी चाहिए । स्त्रियों तथा पुत्रों की रक्षा करे और शत्रुओं का कभी भी विश्वास राजा को नहीं करना चाहिए ॥ ४८ ॥

६६ पुरुषलक्षणम् ।

३

रामोक्तोक्ता मया नीतिः स्त्रीणां राजन्तृणां वदे ।

लक्षणं यत्समुद्रेण गीर्गयोक्तं यथा पुरा ॥१

पुंसां च लक्षणं वक्ष्ये स्त्रीणां चैव शुभाशुभम् ।

एकाधिको द्विशुक्लश्च त्रिगम्भीरस्तथैव च ॥२

त्रित्रिकस्त्रिप्रलम्बश्च त्रिभिर्व्याप्नोति यस्तथा ।

त्रिवलीमांस्त्रिविनतस्त्रिकालज्ञश्च सुव्रत ॥३

पुरुषः स्यात्सुलक्षणो विपुलश्च तथा त्रिपु ।

चतुर्लक्षस्तथा यश्च तथैव च चतुःसमः ॥४

चतुष्किष्कुश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुष्कृष्णस्तथैव च ।

चतुर्गन्धश्चतुर्हस्तः सूक्ष्मदीर्घश्च पञ्चमु ॥५

षड्व्रततोऽष्टवंशश्च सप्तस्नेहो नवामलः ।

दशपद्मो दशव्यूहो न्यग्रोधपरिमण्डलः ॥६

चतुर्दशसमद्वंद्वः षोडशाक्षश्च शस्यते ।

धर्मार्थकामसंयुक्तो धर्मो ह्येकाधिको मतः ॥७

तारकाम्यां विना नेत्रे शुक्लदन्ती द्विशुक्लकः ।

गम्भीरस्त्रिध्रुवो नाभिः सत्त्वं चैकं धिकं स्मृतम् ॥८

इमं अध्यायं मे पुरुष के लक्षणों के विषय में बताया जाता है।
अग्निदेव ने कहा—राम के द्वारा बही हुई नीति मैंने बताई है। अब हे
राजन् ! त्रिगों के और पुरुषों के लक्षण बताता हूँ। समुद्र ने गर्ग के लिये
जिस तरह पहिले बताया था वे वही मैं तुम्हें बतलाता हूँ ॥ १ ॥ समुद्र ने कहा—
पुरुषों के और स्त्रियों के शुभ और अशुभ लक्षण बताता हूँ। एकाधिक-द्विशुक्ल
तथा त्रिगम्भीर-त्रिविक्र और त्रिलम्ब जो इन तीनों से व्याप्त होता है। हे
सुव्रत ! त्रिवलीमान्-त्रिविन्त और त्रिकस्त्रज जो पुरुष होता है वह पुरुष
बहुत अच्छे लक्षणों वाला होता है और तीनों में विपुल होता है। जो चतु-
र्लोक तथा चतुःमम-चतुष्किष्कु-चतुर्दंष्ट्र-चतुष्कृष्ण-चतुर्गन्ध और चतुर्हस्त होता
है। जो पाँचों में मूढम दीर्घ होता है। पडुव्रत-प्रष्टवंश-सप्त स्नेह-नवामल-दश
पद्म-दशव्यूह-न्यषोड परिमण्डल-चतुर्दशपद्म और पौडशाक्ष पुरुष, प्रशस्त
कहा जाता है। धर्म-अर्थ और काम से संयुक्त धर्म एकाधिक माना गया है
॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ नेत्रों की पुतलियों को छोड़कर जिसके
नेत्र और दन्त शुक्ल होते हैं वह द्विशुक्लक होता है। गम्भीर त्रिधन्वा नाभि और
एक सत्त्व त्रिक कहा गया है ॥ ८ ॥

अनसूया दया क्षान्तिर्मङ्गलाचारयुक्ता ।

शौचं स्पृहा त्वकार्पण्यमनायासश्च शौर्यं (शूर) ता ॥९॥

त्रिविक्रस्त्रिलम्बः स्याद्वृषणो भुजयोर्नर ।

दिग्देशजातिवर्गाश्च तेजसा यशसा श्रिया ॥१०॥

व्याप्नोति यस्त्रिकव्यापी त्रिवलीमान्तरस्त्वसो ।

उदरे वलयस्तिष्ठो नरः त्रिविन्तं शृणु ॥११॥

देवतानां द्विजानां च गुरुणां प्रणतस्तु यः ।

धर्मार्थकामकालज्ञस्त्रिकालज्ञोऽभिधीयते ॥१२॥

उरो ललाट वक्त्रं च त्रिविस्तीर्णो विलेखवान् ।

द्वौ पाणी द्वौ तथा पादौ ध्वजच्छत्रादिभिर्युतो ॥१३॥

अङ्गुल्यो हृदयं पृष्ठं कटिः शस्तं चतुःसमम् ।

पणवत्यङ्गुलोत्सेधश्चतुष्किष्कुप्रमाणतः ॥१४॥

दंष्ट्राश्चतस्रश्चन्द्राभःश्चतुष्कृष्णं वदामि ते ।

नेत्रतारो भ्रुवोश्मथुः कृष्णाः केशास्तथैव च ॥१५॥

नासायां वदने स्वेदे कक्षयोर्वेदगन्धकः ।

ह्रस्व लिङ्गं तथा ग्रीवा जङ्घे स्याद्वेदह्रस्वकः ॥१६॥

अमूया न करना-दया-शान्ति-मङ्गल आचारों से युक्त होना शीघ्र स्पृहा-
कृपणता न करना-अनायास-गूरता ये तीन-तीन का त्रिक होकर कुल त्रित्रिक
होता है । वृषभ और दोनों भुजाओं में नर त्रिप्रलम्ब होता है । दिशा, देश,
जाति और वर्गों का जो तेज से-यश से और श्री से व्याप्त करता है वह त्रिक
व्यापी होता है । जिसके उदर में तीन बलि होती है वह नर त्रिवलीमान् होता
है । अब त्रिविन्नत के विषय में थवण करो ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ जो देव-
ताओं को-ब्राह्मणों को और गुरुवर्ग को प्रणति करने वाला होता है वह त्रिवि-
न्नत कहा जाता है । धर्म-अर्थ और काम के काल को जानने वाला त्रिकालज्ञ
कहा जाता है ॥ १२ ॥ उरःस्थल-ननाट और वक्त्र जिसके चौड़े होते हैं ।
वह त्रिविस्तीर्ण होता है । दो हाथ और दो पैर ध्वज और छत्र आदि से युक्त
होता है वह त्रिलेखवान् होता है ॥ १३ ॥ अंगुलिर्मा-हृदय-पृष्ठभाग और कटि
ये जिसके प्रशस्त हों वह चतुःसमः होता है । जिस पुरुष की ऊँचाई छिपानवे
अंगुल होती है वह प्रमाण से चतुष्किकू होता है ॥ १४ ॥ जिसकी चार
दाढ़ चन्द्र की सी आभा वाली होती है वह चतुर्दण्ड होता है । अब चतुष्कृष्ण
कहते हैं दोनों नेत्रों के तारे-भ्रू-श्मथु और केश ये चारों जिसके कृष्ण होते हैं
वह चतुष्कृष्ण नाम से कहा गया है । नासिका में-पपीना -वदन (मुख)
में और दोनों बगलों में गन्ध बाने को चतुर्गन्ध कहे हैं । जिसका लिङ्ग ह्रस्व
हो-ग्रीवा (गरदन) ह्रस्व (छोटी) हो और दोनों जाँघ ह्रस्व हों वह चतु-
ह्रस्वक कहा गया है ॥१५॥१६॥

सूक्ष्माण्यङ्गुलिपर्वणि नखकेशाद्विजत्वचः ।

हनु नेत्रे तलाटे च नासा दीर्घा स्तनान्तरम् ॥१७॥

वक्षःकक्षो नखा नासोन्नतं वक्त्रं कृकाटिका ।

स्निग्धास्त्वक्केशदन्ताश्च लोमदृष्टिर्नसाश्च वाक् ॥१८॥

जान्वोरुर्वोश्च पृष्ठस्थेर्वेशो द्वौ करेनासयोः ।

नेत्रे नासापुटी कर्णौ मेढ्रं पापुमुखेऽमलम् ॥१६

जिह्वौष्ठौ तालुनेत्रे तु हस्तपादौ नखास्तथा ।

शिशनाग्रवक्त्रं शस्यन्ते पद्माभा दश देहिनाम् ॥२०

पाणिपादं मुख ग्रीवा श्रवणौ हृदय शिरः ।

ललाटमुदरं पृष्ठं वृहन्तः पूजिता दश ॥२१

प्रसारितभुजस्येह मध्यमाग्रद्वयान्तरम् ।

उच्छ्रायेण समं यस्य न्यग्रोधपरिमण्डलः ॥२२

पादौ गुल्फौ स्फिचौ पाश्र्वा वङ्क्षणी वृषणी कुचौ ।

कर्णौष्टे (१०) सक्थिनी जङ्घे हस्तौ बाहू तथाऽक्षिणी ॥२३

चतुर्दशसमद्वंद्व एतत्सामान्यतो नरः ।

विद्याश्रतुर्दश व्यधीः पश्येद्य पोडशाक्षकः ॥३४

रुक्षं शिरातत गात्रमशुभं मांसवजितम् ।

दुर्गन्धिविपरीतं यच्छस्तं दृष्ट्या प्रसन्नया ॥२५

धन्यस्य मधुरा वाणी गतिर्मत्तभसंनिभा ।

एककूपभवं रोम भये रक्षा सकृत्सकृत् ॥२६

जिस पुरुष के अंगुलिषों के पर्व तो सूक्ष्म हो और नख-केस-दाँत और त्वचा- ठोड़ी-नेत्र और सलाट सूक्ष्म-नासा दीर्घ और स्तनों का अन्तर दीर्घ हो तथा दश और कस-नख और नाक तथा मुख ऊँचा हो, कृवाटिका स्निग्ध हो, त्वचा, वंश और दाँत स्निग्ध हों, क्षीम दृष्टि, जानु और ऊरुओं तथा कर और नासा के दो पृष्ठस्थ वंश हों-दोनों नेत्र नासिका के नथुने दोनों कान-मेढ्र और पापु मुख में कोई मल न हो ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ जीभ छोड़-तालु-नेत्र-हाथ-पंर-नाखून-शिखर का अग्रभाग और गुण ये दश देह धारियों के पक्ष की-भी प्राभा वाले प्रशस्त बताये जाते हैं ॥ २० ॥ हाथ-पाद-मुख-गरदन-कान-हृदय-शिर-सलाट-उदर और पीठ ये दश वृहत् हों तो पूजित बनाये गये हैं ॥ २१ ॥ भुजा प्रसारित करने वाले के माध्यमाग्रद्वय का अन्तर ऊँचाई से जिसका सम हो तो उसे न्यग्रोध एण्डल नामक सशस्त्र बताया

जाता है । पाद-गुल्फ-रिद्धि-मांस-वैक्षण-वृषण-कुच-कान-घोष्ठ-सक्थि-हाय-
बाहू मया नेत्र ये चौदह भङ्गों का द्वन्द्व समान होता यह नर सामान्य होता
है । दोनों नेत्रों से जो चौदह दिशाएँ जानता है वह षोडशाक्षक लक्षण जाता
कहा गया है ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ स्त्र्या भीर मांस से रहित शिरावत
गात्र भगुन कहा जाता है । जो दुर्गन्धि से विपरीत और प्रसन्न दृष्टि से मुक्त
हो वह प्रयस्त कहा गया है ॥ २५ ॥ वह पृथ्व परम धन्य है जिसकी बाएँ
मधुर हो और गति एक मस्त हाथी के समान हो । एक कूब में होने वाला
रोम एक-एक बार मय में रसा करता है ॥ २६ ॥

८७ स्त्रीलक्षणम् ।

यस्ता स्त्री चारुसर्वाङ्गी मत्तमातङ्गनामिनी ।

गुरुव्रजवना या च मत्तपारावतेक्षणा ॥१॥

सुनीलकेशी तन्वङ्गी विलोमाङ्गी मनोहरा ।

समभूमिस्पृशी पादौ संहती च तथा स्तनौ ॥२॥

नाभिः प्रदक्षिणावर्ता गुह्यमश्रत्यपत्रवत् ।

गुल्फौ निगूहौ मध्येन नाभिरङ्गुष्ठमानिका ॥३॥

जठरं न प्रलम्बं च रोमरक्षा न शोभना ।

नर्शवृक्षतदीनाम्नी न सदा कलहप्रिया ॥४॥

न लोलुपा न द्रुर्भाषा शुभा देवादिपूजिता ।

गण्डं मधूकपुष्पाभनं शिराला न लोमशा ॥५॥

न मंहतञ्ज कुटिला पतिप्राणा पतिप्रिया ।

अलक्षणाऽपि लक्षण्या यत्राऽकारस्ततो गुणाः ॥

भुवं कनिष्ठिका यस्या न स्पृगेन्मृत्युरेव सा ॥६॥

इन अध्याय में स्त्रियों के लक्षणों के विषय में बताया जाता है ।
समुद्र ने कहा—वह स्त्री शुभ-एवं प्रसन्न होती है जिसके मस्त भङ्ग सुन्दर
हों और मस्त हड्डियों के समान समन करने वाली हो । जिसके ऊपर (मन)

गुरु हों और मस्त पारावत (बबूतर) के समान नेत्र हों वह स्त्री भी प्रशस्त होती है । सुनील केशों वाली, कृश तनु अर्थात् पतले शरीरज्यों से युक्त बिना लोम वाले अङ्गों वाली—मन को हरण करने वाली—जिसके पाद भूमिपर समान रूप से स्पर्श करने वाले हों और स्तन संकुत हों वह स्त्री शुभ लक्षणा होती है ॥ १ ॥ २ ॥ जिसकी नाभि का आवर्त दक्षिण की ओर हो और गुह्य इन्द्रिय पीपल के पत्र के समान हो—गुल्फ निगूढ हों—मध्य से नाभि अंगुष्ठ के मान वाली हो वह स्त्री शुभ होती है ॥ ३ ॥ जिसका उदर लम्बा न हो और जो रोमों से रूक्ष न हो वह शुभ होती है । जो रोमों के कारण रूखे शरीर वाली होती है वह शुभ नहीं होती है । नक्ष-वृक्ष नदी के नाम वाली और सदा कलह से प्यार करने वाली स्त्री भी शुभ नहीं होती है ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ लोलुर और बुरी भापा या भापण कहने वाली शुभ नहीं होती है । वह देवादिभूजित नहीं कही जाती है । नक्षूक के फूलों की आभा के तुल्य आभा वाले गण्ड स्थलों से शिराला और लोपशा भी शुभ नहीं होती है ॥ ५ ॥ जिसकी भृकुटियाँ जुड़ी हुई और कुटिल हों वह स्त्री भी शोभन नहीं होती है । जो अपने पति को ही अपना प्राण समझती है और पति को प्यारी होती है वह शुभ लक्षणा न होने वाली भी सुलक्षणा होती है । जहाँ आकार होता है वहाँ पर गुण भी हुंसा करने हैं । जिसकी कनिष्ठिका अंगुली भूमिका स्पर्श नहीं किया करती है वह तो साक्षात् मृत्यु ही के समान होती है अर्थात् वह बहुत बुरा कुलक्षण स्त्री में होता है ॥ ६ ॥

६८ रत्नपरीक्षा ।

रत्नाना लक्षणं वक्ष्ये रत्नं धार्यमिदं नृपः ।

वज्र मरकत रत्न पद्मराग च मौक्तिकम् ॥

इन्द्रनीलं महानीलं वेदूर्यं गन्धशस्यकम् ।

चन्द्रकान्तं सूर्यकान्तं स्फटिकं पुलकं तथा ॥२॥

कर्कोतनं पुष्परागं तथा ज्योतीरसं द्विज ।

स्फटिकं राजपट्टं च तथा राजम् ॥ ३ ॥

सौगन्धिकं तथा गज्जं शङ्खब्रह्ममयं तथा ।
 गोमेदं रुधिराक्षं च तथा भत्तातकं द्विज ॥३॥
 घूली मरकतं चैव तुत्यकं सीसमेव च ।
 पिलुं प्रवालकं चैव गिरिवज्रं द्विजोत्तम ॥५॥
 भुजगममणिं चैव तथा वज्रमणिं शुभम् ।
 टिट्ठिमं च तथा पिण्ड भ्रामरं च तयोत्पलम् ॥६॥
 सुवर्णप्रतिवद्धानि रत्नानि श्रोजयादिके ।
 अन्तःप्रभत्व वैमल्यं सुसंस्थानत्वमेव च ॥७॥
 मुघार्या नैव धार्यास्तु निष्प्रभा मलिनास्तथा ।
 खण्डाः सगकंरा ये च प्रशस्तं वज्रधारणम् ॥८॥

इमं अध्याय मे रत्नों की परीक्षा का विषय कहा जाता है । अग्निदेव ने कहा—मैं अब रत्नों के लक्षण बताता हूँ । राजाओं को ये रत्न धारण करने चाहिए । वज्र (हीरा)-मरकत-रघराग और मोक्तिक (मोती)-इन्द्र नील महानील वैदूर्य-अन्य शस्यक-चन्द्र कान्त-सूर्यकान्त-स्फटिक-पुलक-वर्कनन-पुष्पराग तथा हे द्विज ! ज्योतीरम-स्फटिक-राजपट्ट और राजमय ये शुभ रत्न राजा के धारण के योग्य होते हैं । ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तम ! सौगन्धिक-क-गज्ज-शङ्ख ब्रह्ममय-गोमेद-रुधिराक्ष भत्तातक-घूली मरकत-तुत्यक-पिलु-प्रवाल (मूंगा) और गिरिवज्र तथा भुजगममणि (त्रिम रत्न को विषधर सर्व धारण करने में योग्य है)-वज्रमणि ये रत्न भी परम शुभ होते हैं । टिट्ठिम-पिण्ड और भ्रामर-उत्पल ये रत्न जय आदि के कार्य में मुग्धा में बाधे जाने चाहिए । रत्नों के भीतर प्रभा-विमलता और सुसंस्थानता होनी चाहिए । ऐसे ही रत्नों को धारण करना चाहिए । जो निष्प्रभा और मलिन हों या खण्ड के रूप में तथा गकंरा से युक्त हों उन्हें धारण नहीं करे । हीरा का धारण करना तो परम प्रशस्त होता है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

अम्भस्तरति यद्वज्रमभेद्य विमलं च यत् ।

पट्कोणं शक्रचापाभं लघु चार्कनिभं शुभम् ॥९॥

शुकपक्षनिभः स्निग्धः कान्तिमान्विमलस्तथा ।
 स्वर्णचूर्णनिभैः सूक्ष्मैर्मरकतश्च बिन्दुभिः ॥१०॥
 स्फटिकाः पद्मरागाः स्यू रागवन्तोऽतिनिर्मलाः ।
 जातरंगा भवन्तीह कुरुविन्दसमुद्भवाः ॥११॥
 सौगन्धिकोत्थाः कापाया मुक्ताफलास्तु शुक्तिजाः ।
 विमलास्तेभ्य उत्कृष्टा ये च शङ्खोद्भवा मुने ॥१२॥
 नागदन्तभवाद्याग्न्याः कुम्भसूकरमत्स्यजाः ।
 वेणुनागभवा श्रेष्ठा मोक्तिकं मेघजं वरम् ॥१३॥
 वृत्तत्वं शुक्लता स्वाच्छये महत्त्वं मोक्तिके गुणाः ।
 इन्द्रनीलः शुभः क्षीरे राजते भ्राजतेऽधिकम् ॥१४॥
 रञ्जयेत्स्वप्रभावेण तममूल्यं विनिदिशेत् ।

नीलरक्तं तु वैदूर्यं श्रेष्ठं हारादिकं भजेत् ॥१५॥

जिस हीरे में ये गुण हों वह बहुत ही शुभ होता है । देखकर ही धारण करे । जो हीरा अम्भ (पानी) की तरण करता है-अभेद्य होता है और विमल होता है तथा पट्कोण और शक्र घनुष की सी आभा वाला होता है एवं मूर्धे के समान कान्ति वाला हो वह शुभ होता है ॥ १० ॥ इन गुणों के विपरीत हीरा अशुभ होता है उसे नहीं धारण करना चाहिए । अब मरकत नाम वाले रत्न के लक्षण बताते हैं—शुक्ल पक्ष के तुल्य कान्ति वाला हो-स्निग्ध, कान्ति वाला तथा विमल मरकत होना चाहिए । मरकत पर स्वर्ण के चूर्ण के समान सूक्ष्म बिन्दु होते हैं वह मरकत परम शुभ होता है ॥ १० ॥ जो स्फटिक मणि के नाम से प्रसिद्ध रत्न है वे पद्मराग होने चाहिए तथा राग वाले होने हुए भी अत्यन्त निर्मल कुरु विन्द समुद्भव जात रङ्ग होते हैं ॥ ११ ॥ सौगन्धिक से उत्पन्न कापाय होते हैं और जो मुक्ता फल अर्थात् मोती हैं वे तो सीप से समुद्र में उत्पन्न हुमा करते हैं । हे मुने ! विमल उनसे भी उत्कृष्ट हुमा करते हैं जो शङ्ख से उत्पन्न होने वाले हैं ॥ १२ ॥ नागदन्त से उत्पन्न होने से व्याग्य हैं । कुम्भ सूकर और मत्स्य से भी मोती होते हैं । वेणु नाग से होने वाले श्रेष्ठ मोती होते हैं । जो मेघज मोती होता है वह भी श्रेष्ठ

होता है ॥ १३ ॥ मोती के विशेष गुणों का परीक्षण करने से ही उनकी श्रेष्ठता का ज्ञान होता है । गोलाई-मुक्लता-स्वच्छता और बड़ा होना ये मोती के विशेष गुण हैं । इसी से मोती के मूल्य की वृद्धि भी होती है । इन्द्रनील यह धुम होता है जो क्षीर (दूध) में घोभा देता है और अधिक चमकता है ॥ १४ ॥ जो अपनी दीप्ति के प्रभाव से उसको रञ्जित कर देता है उसे तो अमूल्य ही कहना चाहिए । नील रक्त तो बैदूर्य रत्न होता है जो कि हारादिक के लिये परम श्रेष्ठ होता है ॥ १५ ॥

८८ वास्तुलक्षणम्

वास्तुलक्ष्म प्रवक्ष्यामि विप्रादीनां च भूरिह ।
 श्वेता रक्ता तथा पीता कृष्णा चैव यथाक्रमम् ॥१॥
 घृतरक्तान्नमद्यानां गन्धाद्या रसतश्च भूः ।
 मधुरा च कषाया च अम्लाद्य परसा क्रमात् ॥२॥
 कुर्म शरैस्तथा काशैर्दूर्वाभिर्या च संश्रिता ।
 प्रार्च्य विप्रांश्च निःशल्यां खातपूर्वं तु कल्पयेत् ॥३॥
 चतुःपष्टिपदं कृत्वा मध्ये ब्रह्मा चतुष्पदः ।
 प्राक्तोपां वै गृहस्वामी कथितस्तु तयार्थमा ॥४॥
 दक्षिणेन विवस्वांश्च मित्रः पश्चिमतस्तया ।
 उदङ् महीधरश्चैव आपवत्सी च वह्निगे ॥५॥
 सावित्रश्चैव सविता जयेन्द्रो नैऋतेऽम्बुघो ।
 रुद्रव्याधी च वायव्ये पूर्वोदो कोणगादवहिः ॥६॥
 महेन्द्रश्च रविः सरयो भृशः पूर्वोऽय दक्षिणे ।
 गृहक्षतोऽयं मघूतो गन्धर्वाश्चाय वारुणे ॥७॥
 पुष्पदन्तोऽमुराश्चैव वरुणो यक्ष एव च ।
 सौम्ये भस्माटसोमौ च अदितिर्धनदस्तया ॥८॥
 नागः करग्रहश्चोने षष्ठी दिग्नि दिग्नि स्मृता ।
 आयन्तो तु तथोदौ शोक्तावत्र गृहेश्वरी ॥९॥

इस अध्याय में वास्तु का लक्षण बताया जाता है । श्री अग्निदेव ने कहा—यब वास्तु का लक्षण मैं बताता हूँ । यहाँ पर विप्र आदि की भूमि यथाक्रम से श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण होती है ॥१॥ धृतरक्त और मर्च्चों के और रस से गन्धयुक्त भूमि मधुर, कषाय और म्लान आदि उपरस वाली क्रम से होती है ॥२॥ जो भूमि कुश, शर, वाँस और दूध आदि से संप्रित है वहाँ विप्रों का पूजन करके खातपूर्वक (खोदने के साथ) निःशल्याक में कल्पित करना चाहिये ॥३॥ मध्य में चौसठ पद चतुष्पद ब्रह्मा करे । उनके पहिले गृह स्वामी कहा गया है । दक्षिण में अर्यमा, विवस्वान् मित्र पश्चिम में, महर्षि-घर उत्तर में, आयवसु वह्निदिशागत, सावित्र और सविता एवं जयेन्द्र वैश्वन्त अम्बुधि मे, रुद्र व्याधि वायव्य मे, कोण मे गमन करने वाले से बाहर, पूर्व आदि मे महेन्द्र, रवि, सत्य और भृश पूर्व में, इसके अनन्तर दक्षिण मे गृहक्षत और अर्यमा धृति तथा वारुण दिशा मे गन्धर्व, पुष्यशत, असुर, वरुण और यक्ष, सोम्य दिशा मे भल्लाट और सोम, अदिति, धनद, नाग और करगृह्ये आठ ऐश दिशा मे रखे । इस प्रकार से दिशाओं मे करे । उन दोनों के आदि-अन्त में गृहेश्वर देव बताये गये है ॥४ से ६॥

पर्जन्यः प्रथमो देवो द्वितीयश्च करग्रहः ।

महेन्द्ररविसत्याश्च भूतोऽथ गगनं तथा ॥१०

पवनः पूर्वतश्च अन्तरिक्षधनेश्वरो ।

आग्नेये चाथ नैऋत्ये मृगसुग्रीवको सुरो ॥११

रोगो मुख्यश्च वायव्ये दक्षिणे पुष्पवित्तदो ।

गृहक्षतो यमभृशो गन्धर्वो नागपतृकः ॥१२

आप्ये दीवारिकसुग्रीवो पुष्पदन्तोऽसुरो जलम् ।

यक्षमरोगश्च शेषश्च उत्तरे नाम राजकः ॥१३

मुख्यो भल्लाटशशिनी अदितिश्च कुवेरकः ।

नागो हुताशः श्रेष्ठो वै शक्रशूयो च गूर्वतः ॥१४

दक्षे गृहक्षतः पुष्प आप्ये सुग्रीव उत्तमः ।

पुष्पदन्तो ह्युद्वारि भल्लाटः पुष्पदन्तकः ॥१५

पञ्चम प्रथम देव है । दूसरा देव करग्रह होता है । महेन्द्र, रवि और सत्य, भृश और गगन एवं पवन देव पूर्व में होते हैं । अन्तरिक्ष और अनेश्वर आग्नेय में देव होते हैं और नैऋत्य दिशा में मृग सुग्रीवरु सुर हैं । रोग और मुख्य वायव्य में और दक्षिण में पुष्य वित्तद देव होते हैं । गृह क्षत, यम, मृश, गन्धर्व और नाग पतृक होते हैं ॥१०॥११॥१२॥ आप्य दिशा में दोवारिक, सुग्रीव, पुष्यदन्त, असुर, जल, यक्ष्मरोग और शेष है । उत्तर में नाराजक मुख्य है तथा भल्लाट, शशि, अदिति, कुबेर हैं । पूर्व में नाग, हुताश और शक्र एवं सूर्य श्रेष्ठ है । दक्षिण में गृह क्षत और पुष्य उत्तम हैं । आप्य दिशा में सुग्रीव उत्तम देव हैं । उत्तर द्वार में पुष्यदन्त, भल्लाट और पुष्यदन्त उत्तम देव होते हैं ॥१३॥१४॥१५॥

शिलेष्टकादिविन्यासं मन्त्रः प्राच्यं सुरांश्चरेत् ।

नन्दे नन्दय वासिष्ठे वसाभिः प्रजया सह ॥१६॥

जये भार्गवदायादे प्रजःतां जयमावह ।

पूर्णैर्ङ्गिरसदायादे पूर्णकामं कुरुष्व माम् ॥१७॥

भद्रे काश्यपदायादे कुरु भद्रां मति मम ।

सर्वंवीजसमायुक्ते सर्वरत्नोपध्वृते ॥१८॥

रुचिरे नन्दने नन्दे वासिष्ठे रम्यतामिह ।

प्रजापतिसुते देवि चतुरत्ने महीमये ॥१९॥

सुभगे सुव्रते भद्रे गृहे काश्यपि रम्यताम् ।

पूजिते परमाचार्ये गन्धमाल्यैरलङ्किते ॥२०॥

भवभूतिकरि देवि गृहे भार्गवि रम्यताम् ।

अव्यङ्ग्ये चाक्षते पूर्णे मुनेरङ्गिरसः सुते ॥२१॥

इष्टके त्वं प्रयच्छेष्टं प्रतिष्ठां कारयाम्यहम् ।

देशस्वामिपुरस्वामिगृहस्वामिपरिगृहे ॥२२॥

मनुष्यधनहस्त्यश्वपशुवृद्धिकरी भव ।

गृहप्रवेशेऽपि तथा शिलान्यासं समाचरेत् ॥२३॥

मन्त्रों के द्वारा देवों का अर्चन करके फिर शिला तथा ईंट आदि का

न्यास करना चाहिए। हे नन्दे ! आनन्द करो, हे वासिष्ठे ! प्रजा के साथ धन के साथ जय करो। हे जये ! हे काश्यपदायादे ! मेरी श्रेष्ठ वृद्धि करो। समस्त बीजों से समायुक्त रहने वाली और सम्पूर्ण रत्न एवं औषधियों से पूर्ण रहने वाली ! हैं रश्मिरे ! नन्दने ! नन्दे ! हे वासिष्ठे ! यहाँ पर रमण करो। हे प्रजापति मुते ! हे मेहीमये चतुरस्रे देवि ! सुभगे ! सुन्दर श्रत वाली ! हे भद्रे ! हे काश्यपि ! इस गृह में रमण करो। हे परम आचार्यों के द्वारा पूजित होने वाली ! गन्ध और मालाओं से भलकृत होने वाली ! भव की भूति को करने वाली, हे भार्गवे देवि ! आप यहाँ रमण करें। हे अश्वत्थाम्ये ! हे अशते ! पूर्यो ! हे अङ्गिरस मुनि की पुत्री ! हे इष्टके ! तुम मेरे इष्ट को प्रदान करो। मैं प्रतिष्ठा कराता हूँ। देश के स्वामी, पुर के स्वामी और गृह के स्वामी के परिग्रहे ! आप मनुष्य, धन, हस्ती, अश्व और अन्य पशुओं की वृद्धि करने वाली हो आओ। इसी प्रकार से गृह के प्रवेश करने में भी शिला का न्यास करना चाहिए ॥१६ से २३॥

उत्तरेण शुभः प्लक्षो वटः प्रावस्याद्गृहादितः ।

उदुम्बरश्च याम्येन पश्चिमेऽथ उत्तमः ॥२४॥

वामभागे तथोद्यानं कुर्याद्वासं गृहे शुभम् ।

सायं प्रातस्तु धर्माग्नी शीतकाले दिनान्तरे ॥२५॥

वर्षाकाले भुवः शोषे सेक्तव्या रोपितद्रुमाः ।

विडङ्गघृतसंयुक्तान्सेचयेच्छीतवारिणा ॥२६॥

फननाशे कुलत्यंदव मापैर्मुद्गैस्तिन्यैर्वैः ।

घृतशीतपयः सेकः फलपुष्पाय सर्वदा ॥२७॥

उत्तर दिशा में प्लक्ष का वृक्ष शुभ होता है। गृहादि से पूर्व में वट, याम्य दिशा में गूजर और पश्चिम दिशा में पीपल का वृक्ष उत्तम होता है। ॥२४॥ वाम भाग में उद्यान को रचना चाहिए। इस तरह से घर में वास करना शुभ होता है। धर्म की प्राप्ति में सायंकाल तथा प्रातःकाल में और शीत-काल के समय में, दिन के मध्य में तथा वर्षा काल में जब भूमि सूख जावे तब पारोपेय वृक्षों को सींचना चाहिये। विडङ्ग और घृत से संयुक्तों को शीतल

जल से सिञ्चन करे । फलों के नाश होने पर कुलत्थ, माप, मुद्ग, तिल, यवों के द्वारा धृत शीत जल का सेक सर्वदा फल और पुष्पों के लिए करना चाहिए ॥२५॥२६॥२७॥

१०० धनुर्वेदः

चतुष्पादं धनुर्वेदं धदे पञ्चविधं द्विज ।
 रथनागाश्वपत्तीनां योधांश्चाऽऽश्रित्य कीर्तितम् ॥१॥
 यन्त्रमुक्तं पाणिमुक्तं मुक्तसंधारितं तथा ।
 अमुक्तं बाहुयुद्धं च पञ्चधा तत्प्रकीर्तितम् ॥२॥
 तत्र शस्त्रास्त्रसंपत्त्या द्विविधं परकीर्तितम् ।
 ऋजुमायाविभेदेन भूयो द्विविधमुच्यते ॥३॥
 क्षेपणीचापयन्त्राद्यैः यन्त्रमुक्तं प्रकीर्तितम् ।
 शिलातोमरयन्त्राद्यैः पाणिमुक्तं प्रकीर्तितम् ॥४॥
 मुक्तसंधारितं ज्ञेयं प्रासाद्यमपि यद्भवेत् ।
 खड्गादिकममुक्तं च नियुद्धं विगतायुधम् ॥५॥
 कुर्याद्योग्यानि पात्राणि योद्धुमिच्छुर्जितश्रमः ।
 धनुःश्रेष्ठानि युद्धानि प्राप्समध्यानि तानि च ॥६॥
 तानि खड्गजघन्यानि बाहुप्रत्यवराणि च ।
 धनुर्वेदे गुरुविप्रः प्रोक्तो वर्णद्वयस्य च ॥७॥
 युद्धाधिकारः शूद्रस्य स्वयं चाऽऽदि शिक्षया ।
 दशस्थीः शंकरे राज. कार्या युद्धे सहायता ॥८॥

इस अध्याय में धनुर्वेद का वर्णन किया जाता है । श्री अग्निदेव ने कहा—हे द्विज ! चतुष्पाद धनुर्वेद होता है अर्थात् धनुर्वेद के चार पाद हैं किन्तु मैं यहाँ उसे पाँच पाद बाना बताता हूँ । क्योंकि वह यहाँ पर रथ, हाथी, घोड़ा, पंढस और योद्धाओं का आश्रय लेकर कहा गया है ॥१॥ यन्त्र में मुक्त हाथ से मुक्त-मुक्त किये हुए की संधारण किया हुआ अमुक्त और बाहुयुद्ध इस तरह से यह पाँच प्रकार का कहा गया है ॥२॥ वहाँ पर शस्त्र और अस्त्रों

की सम्पत्ति के कारण यह पुनः दो प्रकार का होता है । ऋजु (मरल) और भाया के करने के भेद होने से फिर इसके दो भेद होते हैं ॥३॥ दोरण करने के योग्य जो चाप (धनुष) आदि यन्त्र से मुक्त होते हैं अर्थात् छोड़ जाया करते हैं वे यन्त्रमुक्त नाम से कहे गये हैं । शिला तथा नोमर यन्त्रादि जो होते हैं वे पाणिमुक्त से बताये गये हैं ॥४॥ मुक्त संधारित वह होता है जो प्रासाश भी होता है । खड्ग आदि जो शस्त्र हैं वे धनुष कह जाते हैं । जिस युद्ध में कोई भी आयुध (हथियार) नहीं होता है वह नियुद्ध होता है ॥५॥ शत्रु की जीतने वाले और युद्ध करने की इच्छा वाले को युद्ध करने के लिये योग्य पात्रों को ही नियुक्त करना चाहिए । धनुष के द्वारा श्रेष्ठ युद्ध-प्राप्त को मध्य में काम में लाने वाले युद्ध होते हैं । ये उत्तम श्रेणी के युद्ध हैं । खड्ग (तलवार) से जो युद्ध किये जाते हैं वे अधम्य (नीच) श्रेणी के युद्ध होते हैं । जो युद्ध बाहुयों से किये जाते हैं वे भी प्रत्यक्ष (तुच्छ) कोटि के युद्ध कहे जाते हैं । धनुर्वेद की शिक्षा देने के लिये विप्र को ही गुरु बताया गया है । तथा दो वर्ण का कोई हो । युद्ध को युद्ध का अधिकार और स्वयं युद्ध करना आपत्ति के समय में ही होता है । शिला के द्वारा देश में रहने वाले सङ्घों के द्वारा राजा को युद्ध में सहायता करनी चाहिये ॥६॥७॥८॥

अङ्गुष्ठगुल्फपाण्यङ्घ्र्यः शिलपाः स्फुः सहिता यदि ।

दृष्टं समपदं स्थानमेतल्लक्षणतस्तथा ॥६॥

बाह्याङ्गुलिस्थितौ पादौ स्तब्धजानुबलावुभौ ।

त्रिवितन्त्रन्तरास्थानमेतद्वं शास्त्रमुच्यते ॥७॥

हसपङ्क्तमकृतिसमे दृश्येते यत्र जानुनी ।

अनुचितस्तिविच्छिन्ने तदेतन्मण्डलं स्मृतम् ॥८॥

हलाकृतिमय यच्च स्तब्धजानूरुदक्षिणम् ।

वितस्तयः पञ्च विस्तारे तदालोढं प्रकीर्तितम् ॥९॥

तदेव विपर्यस्तं प्रत्यालोढमिति स्मृतम् ।

तिर्यग्भूतो भवेद्वामो दक्षिणोऽपि भवेद्वज्रः ॥१०॥

गुल्फौ पाणिग्राही च व स्त्रितौ पञ्चाङ्गुलान्तरी ।

स्थानं जातं भवेदेतद्द्वादशांगुलमायतम् ॥१४

ऋजुजानुर्भवेद्दामो दक्षिणः सुप्रसारितः ।

अथ वा दक्षिणं जानु कुब्ज भवति निश्चलम् ॥१५

दण्डायतो भवेदेव चरणः सह जानुना ।

एवं विकटमुद्दिष्टं द्विहस्तान्तरमायतम् ॥१६

अंगूठा, गुल्फ और हाथ तथा पैर सहित होकर यदि श्लिष्ट हों तो सक्षण से यह स्थान समपद देखा गया है ॥१६॥ बाह्य अंगुलिओं से स्थित रहने वाले पैर हों और दोनों जानुओं (घुटनों) के बल-स्तब्ध हों तो यह त्रिविध स्तम्भरा स्थान वैशाख नाम से कहा जाता है ॥१७॥ जिसमें हृन् पक्ति की आवृत्ति के समान जानु दिखनाई देते हैं और चार विलस्त विच्छिन्न हो वह मण्डल नाम वाला कहा गया है ॥१८॥ जिस गुड में हलकी सी आकृति वाले दक्षिण जानु तथा दोनों ऊरु स्तब्ध हों तथा विस्तार में पाँच विलस्त (बिलाँद) हो वह गुड आलीङ नाम वाला कहा गया है ॥१९॥ वह ही इसके विररीन स्थिति में हो तो प्ररगलीङ नाम से कहा गया है । वाम तिर्यग्भूत अर्थात् टेढ़ा हो और दाहिना सीधा हो एवं दोनों गुल्फ पाप्पिग्रह की स्थिति में हों तथा पाँच अङ्गुल के अन्तर वाले हों तो यह बाग्रह अङ्गुल आयत (चौ १) स्थान होता है ॥२०॥ बाया जानु (घुटना) सीधा हो और दाहिना जानु सुप्रसारित हो अथवा दाहिना घुटना कुब्ज (टेढ़ा) निश्चल हो तो जानु के साथ यह चरण दण्ड की भाँति आयत होता है । दो हाथ के अन्तर वाला आयत विकट नाम वाला गुड कहा गया है ॥२१॥

जानुना द्विगुणो त्यातामुत्तमो चरणावुभौ ।

अनेन विधियोगेन मंपटं परिधीतितम् ॥२२

किंचिद्विबतितो पादो ममदण्डायतो स्थिरी ।

दृष्टमेव यथान्यायं षोडशाङ्गुलमायतम् ॥२३

स्वस्तिकेनात्र कुर्वीत प्रणामं प्रथमं द्विज ।

कामुकं गृह्य वामेन वारुणं दक्षिणेन नृ ॥२४

वंगामे यदि वा जाते स्थितौ वाज्यय वाज्यतो ।

गुणान्तं तु ततः कृत्वा कामुंके प्रिय कामुंकः ॥२०

अधःकोटि तु धनुषः फलदेश तु पत्रिणः ।

धरण्यां स्थापयित्वा तु तालयित्वा तथैव च ॥२१

भुज्याभ्यामत्र कुब्जाम्भ्यां प्रकोष्ठाभ्यां शुभव्रत ।

तस्य बाणं धनुःश्रेष्ठं पुङ्खदेशे च पत्रिणः ॥२२

विन्यासो धनुषश्चैव द्वादशांगुलमन्तरम् ।

ज्यया विशिष्टः कर्तव्यो नातिहीनो न चाधिकः ॥२३

निवेश्य कामुंकं नाभ्यां नितम्बे शरसकरम् ।

उत्क्षिपेदुत्थितं हस्तमन्तरेणाक्षिकर्णयोः ॥२४

दोनों जानु द्विगुण हों और दोनों चरण उत्तान (ऊँचे उठे हुए) हों
इस विधि के योग से जो युद्ध होता है वह सम्बट नाम वाला बताया गया है ।
॥ १७ ॥ पैर कुछ निर्वर्तित और समान दण्ड के तुल्य धायत होकर स्थिर हों
और न सोलह अंगुल धायत यथा न्याय जो देखा गया है । हे द्विज ! यहाँ पर
पहिले स्वस्तिक के द्वारा प्रणाम करना चाहिए । बाँये हाथ से धनुष को ग्रहण
करके दाहिने हाथ से बाण ग्रहण करे ॥ १८ ॥ १९ ॥ यदि वैशाख के होने
पर दोनों स्थित हो भयवा धायत हों तो धनुष पर प्यार करने वाले योधा को
कामुंक में गुणान्त करे ॥ २० ॥ धनुष की कोटि को और पत्री को फल भाग
को भूमि से रखकर तथा सन्तुलन करके रखे ॥ २१ ॥ हे शुभव्रत ! इसमें
भुजाओं से और टेढ़े प्रकोष्ठों से उसके श्रेष्ठ धनुष वाले बाण को पत्री के पुङ्ख
भाग में विन्यास करे और धनुष का बारह अंगुल का विस्तार रखे । धनुष
की डोरी से उसे विशिष्ट करे जो न तो अत्यन्त कम हो और न ज्यादा ही
होवे ॥ २२ ॥ २३ ॥ कामुंक को नाभि में रख कर और नितम्ब और शरों
के समूह को ऊपर करके प्रक्षिप्त करे । नेत्र और कानों का अन्तर एक हाथ
होना चाहिए ॥ २४ ॥

पूर्वेण मुष्टिना ग्राह्यः स्तनाग्रे दक्षिणे शरः ।

हरणं तु ततः कृत्वा शीघ्रं पूर्वं प्रसारयेत् ॥२५

नाऽऽभ्यन्तरा नैव बाह्या मोर्ध्वका नाधरा तथा ।

न च कुब्जा न चोत्ताना न चला नातिवेष्टिता ॥२६॥

समा स्थैर्यगुणोपेता पूर्वदण्डमिव स्थिता ।

छादयित्वा ततो लक्ष्यं पूर्वैरणानेन मुष्टिना ॥२७॥

उरसा तूत्थितो यन्ता त्रिकोणविनतस्थितः ।

सस्तांसो निश्चलग्रीवो मयुराञ्चितमस्तकः ॥२८॥

ललाटनांसावक्त्रांसकूर्परेषु समो भवेत् ।

अन्तरं त्र्यंगुलं ज्ञेयं चिबुकस्यांशु (स) कस्य च ॥२९॥

प्रथमं त्र्यंगुलं ज्ञेयं द्वितीये घंगुलं स्मृतम् ।

तृतीयेऽङ्गुलमुद्दिष्टमायतं चिबुकांसयोः ॥३०॥

पूर्व मुष्टि से उसे ग्रहण करना चाहिए जो कि शर दक्षिण स्तन के धप्र भाग में रखे और इसके पश्चात् हरण करके पहिले शीघ्र प्रसारित करे । ॥ २५ ॥ जो अभ्यन्तरा न हो, बाह्य भी न हो, न ऊपर को रहने वाली हो ही और न नीचे की ओर ही रहे । न टेढ़ी हो और न उत्तान (ऊँची) हो । न उत्तानमान हो और न अत्यन्त वेष्टित ही होवे । ऐसी स्थिति में रहे कि सम हो और स्थिरता के गुण से युक्त होवे । जो कि पूर्व दण्ड की भांति स्थित रहे । इस प्रकार से छादन करके इसके अनन्तर पूर्व मुष्टि से लक्ष्य को यन्ता उरःस्थल से उठा हुआ होकर त्रिकोण विनत स्थित होवे । सस्त कन्धे वाला निश्चल गरदन से युक्त तथा मयुराञ्चित मस्तक वाला एवं ललाट, नाभिका, मुख, घंश और कूर्परी सम होना चाहिए । चिबुक (ठोड़ी) और घंगुल का तीन घंगुल का अन्तर जानना चाहिए ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ प्रथम तीन घंगुल, द्वितीय में दो घंगुल, और तृतीय में चिबुक और अस्त का एक घंगुल आयत कहा गया है ॥ ३० ॥

गृहीत्वा सायकं पुङ्ख्वात्तर्जन्याऽङ्गुलैः तु ।

अनामया पुनर्गृह्य तथा मध्यमयाऽपि च ॥३१॥

तावदाकर्षयेद्देगाद्यावद्वाणः सुपूरितः ।

एवंविधमुपक्रम्य मोक्तव्यं विधिवत्सगम् ॥३२॥

हृष्टिमुष्टिहतं लब्धं भिन्नादघाणेन मुप्रत ।
 मुक्त्वा तु पश्चिमं हस्तं क्षिपेद्वेगेन पृष्ठतः ॥३३॥
 एतदुच्छेदमिच्छन्ति ज्ञातव्यं हि त्वया द्विज ।
 कूर्पूरं तदधः कार्यमाकृत्य तु धनुष्मता ॥३४॥
 ऊर्ध्वं विमुक्तके कार्यमक्षिद्विलष्टं तु मध्यमम् ।
 श्रेष्ठं प्रकृष्टं विज्ञेयं धनुःशास्त्रविशारदः ॥३५॥
 ज्येष्ठस्तु सायको ज्ञेयो भवेद्द्वादश मुष्टयः ।
 चतुर्हस्त धनुः श्रेष्ठं त्रयः साधं तु मध्यमम् ॥३६॥
 कनीयस्तु त्रयः प्रोक्तं नित्यमेव पदातिनः ।
 अश्वे रथे गजे श्रेष्ठे तदेव परिकीर्तितम् ॥३७॥

धनुष को ग्रहण कर पुच्छ से तर्जनी से और अंगुष्ठ से और फिर अना-
 मिका तथा मध्यमा से ग्रहण करके तब तक उसे वेग के साथ खींचे जबकि
 बाण अच्छी तरह से पूरित हो जावे । इस रीति से उपक्रम करके विधि के
 साथ खग पर छोड़ना चाहिए ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ हे व्रत ! हृष्टि मुष्टि से
 हन लक्ष्य को बाण से भेदन करे । पीछे के हाथ को छोड़ कर पीछे से वेग के
 साथ धोषण करना चाहिए ॥ ३३ ॥ यह उच्छेद को चाहते हैं हे द्विज ! तुमको
 यह जान लेना चाहिए । कूर्पूर को उसके नीचे करना चाहिए धनुष धारी को
 पहिले खीचना चाहिए ॥ ३४ ॥ धनुर्विद्या के परिहर्ता को जान लेना चाहिए
 कि विमुक्त में ऊपर को करना चाहिए । जो अक्षि (नेत्र) विलष्ट होता है
 वह मध्यम तथा प्रकृष्ट श्रेष्ठ होता है ॥ ३५ ॥ सबसे बड़ा सायक वह होता
 है जो बारह मुट्ठी का होता है । चार हाथ का धनुष श्रेष्ठ द्वाधा करता है ।
 साढ़े तीन का जो होता है वह मध्यम श्रेणी का कहा गया है । जो तीन हाथ
 का होता है वह धनुष सबसे बलिष्ठ श्रेणी का कहा गया है । यह धनुष जो
 सर्वदा पदाति (पैदल) रहता है उसके लिये ही होता है । अश्व, रथ, यज
 र सो वह ही श्रेष्ठ कहा गया है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

१०१ धनुर्वेदकथनम्

पूरयितं द्विजः कृत्वा ततो मांसैर्गदायुधान् ।
 सुनिघोतं धनुः कृत्वा यज्ञभूमौ विधापयेत् ॥१॥
 ततो बाणं समागृह्य दशितः सुसमाहितः ।
 तूणमासाद्य बध्नीयाद्दृढांकक्षां च दक्षिणाम् ॥२॥
 विलक्ष्यमपि तद्बाणं तत्र चैव सुसस्थितम् ।
 ततः समुद्धरेद्बाणं तूणादक्षिणपाणिना ॥३॥
 तेनैव सहितं मध्ये शरं संगृह्य धारयेत् ।
 वामहस्तेन च कक्षां धनुस्तस्मात्समुद्धरेत् ॥४॥
 अविपण्यमतिभूत्वा गुरो पुच्छं निवेशयेत् ।
 संपीड्य सिंहकर्णेन पुच्छेनापि समे दृढम् ॥५॥
 वामकर्णोपविष्टं च फल वामस्य धारयेत् ॥६॥
 मनो लक्ष्यगतं कृत्वा मुष्टिना च विधानावित् ।
 दक्षिणो गात्रभागे तु कृत्वा वरुणं विमोक्षयेत् ॥७॥
 तैलाटपटसंस्थानं दण्ड लक्ष्ये निवेशयेत् ।
 आकृष्य ताडयेत्तत्र चन्द्रकं पौडशाङ्गलम् ॥८॥

इध अध्याय मे भी धनुर्वेद का कथन है । अग्निदेव ने कहा—द्विज को
 पूरण से घायत (विस्तृत) धनुष को करके इसके पश्चान् मर्निों से गदायुधों को
 करे । धनुष को भनी भाँति निघोत करके यज्ञ धूमि में रखे ॥१॥ इसके उप-
 रान्त बाण को लेकर दशित एव सुसमाहित होते हुए तूणीर (तरबज) लेवे
 और दक्षिण भाग में दृढ़ बन्धा को बाँधे । वह बाण विलक्ष्य होने हुए भी वहाँ
 पह भनी प्रकार से संस्थित रहता है । इसके अनन्तर उमी तूणीर से दाहिने
 हाथ से बाण को निकालना चाहिए ॥ २।३ ॥ उमी के गाय मध्य में शर का
 संप्रह करके धारण करे । बाँधे हाथ में बन्धा को और उममें धनुष को निकाले
 ॥४॥ विषाद से रहित मूर्ति वाला होकर धनुष की डोरी में पुच्छ को रखे ।
 सिंह कर्ण से संपीडित कर पुच्छ को भी दृढ़ता से सम करे ॥५॥ बाँधे बाण

पर उपविष्ट और वाम के फल को धारण करना चाहिए । वहाँ पर मध्यमा से और वाम अंगुलि से वर्णों को धारण करे ॥६॥मन को एकदम लक्ष्य पर लगाये जाने वाली करके विधान के ज्ञाता को दाहिने शरीर के भाग में करके वर्णों को छोड़ना चाहिए ॥७॥ ललाट पर संस्थान दण्ड को लक्ष्य में निवेशित करे और वहाँ पर खींचकर ताड़ित करे । चन्द्रक योड्य अंगुल का होना चाहिए ॥८॥

मुक्त्वा वारुणं ततः पश्चाद्वर्णाक्षिक्यं तदा तथा ।

निगृह्णीयान्मध्यमया ततोऽङ्गुल्या पुनः पुनः ॥९॥

अक्षिलक्ष्यं क्षिपेत्तूणाञ्चतुरस्रं च दक्षिणम् ।

चतुरस्रगतं वेध्यमभ्यसेत्तस्मादितः स्थितः ॥१०॥

तस्मादनन्तरं तीक्ष्णं परावृत्तं मतं च यत् ।

निम्नमुन्नतवेधं च अभ्यसेत्क्षिप्रक ततः ॥११॥

वेध्यस्थानेष्वर्थतेषु सत्त्वस्य पुटकाद्भुजः ।

हस्तावापशतंश्चित्रैस्तर्जयेद्दुस्तरैरपि ॥१२॥

तस्मिन्वेध्यगते विप्र द्वे वेध्ये दृढसंज्ञके ।

द्वे वेध्ये दुष्करे वेध्ये द्वे तथा चित्रदुष्करे ॥१३॥

न तु निम्नं च तीक्ष्णं च दृढवेध्ये प्रकीर्तिते ।

निम्नं दुष्करमुद्दिष्टं वेध्यमूर्ध्वगतं च यत् ॥१४॥

मस्तकायनमध्ये तु चित्रदुष्करसंज्ञके ।

एवं वेध्यगणं कृत्वा दक्षिणेनेतरेण च ॥१५॥

आरोहेत्प्रथमं वीरो जितलक्ष्यस्ततो नरः ।

एष एव विधिः प्रोक्तस्तत्र दृष्टः प्रयोवतृभिः ॥१६॥

अधिकं भ्रमणं तस्य तस्माद्वेध्यात्प्रकीर्तितम् ।

लक्ष्यं स योजयेत्तत्र पत्रपत्रगतं दृढम् ॥१७॥

भ्रान्तं प्रचलितं चैव स्थिरं यच्च भवेदति ।

समन्तात्ताडयेद्भिद्याच्छेदयेद्द्व्यथयेदपि ॥१८॥

बाण को छोड़कर फिर उस समय उस मध्यमा अंगुलि से बार-बार वर्णों में दिक्का का प्रहार करे ॥ ६ ॥ अक्षिलक्ष्य और चतुर्दश दक्षिण का क्षेप

करे । चतुरस्रगत वेध्य (वेधन करने के योग्य को) आदि से स्थित हुआ अभ्यास करे ॥१०॥ इसके उपरान्त उससे तीक्ष्ण और जो परावृत्त माना गया हो—निम्न तथा उन्नत वेध ही उसे शिघ्र अर्थात् शीघ्रता करने वाले का अभ्यास करना चाहिए ॥ ११ ॥ इन जीव के वेधन करने के योग्य स्थानों में हस्तों को दुस्तर भी अपशत चित्रों के द्वारा पुटक से धनुष को तर्जित करे ॥१२॥ न तो निम्न- (नीचा-गहरा) और न तीक्ष्ण ये दृढ़ वेध्य कहे गये हैं । निम्न दुष्कर तथा ऊर्ध्वगत वेध्य जो होता है वह भी दुष्कर कहा गया है । ये दोनों वेध्य दुष्कर तथा चित्र दुष्कर बताये गये हैं ॥१३॥१४॥ मस्तकायन के मध्य में चित्र और दुष्कर संज्ञा वाले वेध्य होते हैं । इस रीति से वेध्यगण को करके दक्षिण से और वाम से वीर को पहिले आरोहण करना चाहिए तब मानव लक्ष्य को जीतने वाला होता है । यह ही विधि कही गई है वहाँ पर प्रयोक्तारों के द्वारा देखी गई है ॥ १५ ॥ उस वेध्य में उसका अमण अधिक बताया गया है । उस वीर को पत्रिभ्रगत लक्ष्य का दृढ़ योजन करना चाहिए ॥१७॥ भ्रान्त (भ्रमण किया हुआ)—प्रचलित तथा स्थिर जो ह वे तो उसे चारों ओर से वेधन करने वाले को उसका ताड़न-भेदन-व्यधन और छेदन भी करना चाहिए ॥१८॥

१०२ व्यवहारकथनम् (१)

व्यवहारं प्रवक्ष्यामि नयानयविवेकदम् ।
 स चतुष्पाच्चतुःस्यानश्रुतुःमाधन उच्यते ॥१॥
 चतुर्हितश्चतुर्व्यापी चतुष्कारो च कीर्त्यते ।
 अष्टाङ्गोऽष्टादशपदः शतशाखस्तथैव च ॥२॥
 त्रियोनिद्वयभियोगश्च द्विद्वारो द्विगतस्तथा ।
 धर्मश्च व्यवहारश्च चरित्रं राजशासनम् ॥३॥
 चतुष्पाद्व्यवहाराणामुत्तरः पूर्वसाधकः ।
 सत्र सत्ये स्थितौ धर्मो व्यवहारस्तु साक्षिणु ॥४॥

चरित्रं सग्रहे पुंसां राजाज्ञायां तु साधनम् ।
 सामा द्युपायसाध्यत्वाच्चतुःसाधन उच्यते ॥१॥
 चतुर्णामाश्रमाणां च रक्षणात्स चतुर्हितः ।
 कर्तारं साक्षिणश्चैव सम्भ्यां चाजानमेव च ॥६॥
 व्याप्नोति पादशो यस्माच्चतुर्व्यापी ततः स्मृतः ।
 धर्मस्यार्थस्य यशसो लोकपङ्क्तेस्तथैव च ॥७॥
 चतुर्णां करणादेप चतुष्कारी प्रकीर्तितः ।
 राजा सपुरुषः सम्भ्याः शास्त्रं गणकलेखकौ ॥८॥
 हिरण्यमग्निरुदकमष्टाङ्गः समुदाहृतः ।
 कामात्क्रोधाच्च लोभाच्च त्रिम्यो यस्मात्प्रवर्तते ॥९॥
 त्रियोनिः कीर्त्यते तेन त्रयमेतद्विवादकृत् ।
 द्वध्मभियोगस्तु विज्ञेयः शङ्कातत्त्वाभियोगतः ॥१०॥

इस अध्याय में व्यवहार के कथन का वर्णन है । अग्नि देव ने कहा—
 नय और धनय के विवेक को प्रदान करने वाले व्यवहार को मैं बताता हूँ । वह
 विवेक चार पाद वाला—चार स्थान वाला तथा चार साधन वाला कहा जाता
 है ॥१॥ वह चतुर्हित—चतुर्व्यापी और चतुष्कारी बताया जाता है । आठ भ्रंशों
 वाला—मठारह पद वाला और सौ शाखा वाला भी कहा गया है ॥ २ ॥ तीन
 योनि वाला—दो अभियोग वाला—दो द्वागों से युक्त और दो गति वाला होता
 है । धर्म और व्यवहार—चरित्र और राज साधन ये होते हैं ॥ ३ ॥ चतुष्पाद
 व्यवहारों का उत्तर पूर्व का साधक होता है । वहाँ पर सत्य में धर्म स्थित होता
 है और साधियों में व्यवहार होता है ॥४॥ पुरुषों के संग्रहमें चरित्र और राजाज्ञा
 में साधन होता है । गाम—दाम आदि उपायों के द्वारा साध्य होने के कारण
 यह चार साधन वाला कहा जाता है ॥५॥ चार प्रदायार्थों आश्रमों की रक्षा
 करने के कारण यह चतुर्हित भी कहा जाया करता है । करने वाला—माही-
 मण्ड-मण्ड्य लोग और राजा इन चारों को पाद से व्याप्त रहता है । सतएव यह
 चतुर्व्यापी कहा गया है । धर्म वा—यश वा—धर्म का और लोकपङ्क्ति का इन
 चारों के करने से इसे चतुष्कारी कहा गया है । राजा वह पुरुष के साथ—

सम्यगण-शास्त्र-गणक-लेखक-हिरण्य-अग्नि और जल इन घाट भग्नों के रहने के कारण यह अष्टांग बताया गया है । काम-क्रोध और लोभ इन तीनों से यह प्रवृत्त होता है । इसलिये इसे त्रियोनि कहते हैं । यह तीनों विवादकृत हैं । शङ्का और तत्त्व के अभियोग से यह दो अभियोग वाला जानना चाहिए ॥६॥७॥८॥९॥१०॥

शङ्का सदभिस्तु संसर्गात्तत्त्वं पोद्गाभिदर्शनात् ।

पक्षद्वयाभिसंबन्धाद्द्विद्वारः समुदाहृतः ॥११॥

पूर्ववादस्तयोः पक्षः प्रतिपक्षस्त्वनन्तरः ।

भूतच्छलानुसारित्वाद्द्विगतिः सत्ताहृतः ॥१२॥

ऋण देयमदेयं च येन यत्र यथा च यत् ।

दानग्रहणधर्मश्च ऋणादानमिति स्मृतम् ॥१३॥

स्वद्रव्यं यत्र विश्रम्भान्निक्षिपत्यविशङ्कितः ।

निक्षेप नाम तत्प्रोक्तं व्यवहारपदं बुधैः ॥१४॥

वणिकप्रभृतयो यत्र कर्म संभूय कुर्वन्ते ।

तत्संभूय समुत्थानं व्यवहारपदं विदुः ॥१५॥

दत्त्वाद्रव्यं च सम्यग्यः पुनरादातुमिच्छति ।

दत्त्वाप्रदानिकं नाम तद्विवादपदं स्मृतम् ॥१६॥

सद पुरुषों के संसर्ग होने से शङ्का होती है और छे के अभिदर्शन से तत्त्व होता है । दोनों पक्षों के सम्बन्ध होने से दो द्वार वाला (द्विद्वार) कहा गया है ॥११॥ उन दोनों का एक पक्ष पूर्ववाद होता है और दूसरा प्रतिपक्ष होता है । प्राणियों के छेदों का अनुसरण करने वाला होने के कारण वह द्विगति बनाया गया है ॥ १२ ॥ जहाँ जिसके द्वारा जिस प्रकार से जो ऋण है वह देने के योग्य है या अदेय है और दान ग्रहण धर्म है इसलिये ऋण दान यह कहा गया है ॥ १३ ॥ अपने द्रव्य को विश्राम होने के कारण धरोहर रख देता है और कोई भी शङ्का वाला नहीं रहता है । बुध लोगों ने उसे व्यवहार का स्थान निक्षेप यह कहा है ॥१४॥ वस्तु प्रभृति लोग जिनमें होकर कर्म किया करते हैं । उसे भन्तों भीति करके उठ जाना व्यवहार का स्थान जाना जाना

है ॥१५॥ अच्छी तरह धन को देकर जो फिर उसे लेने की इच्छा किया करता है उसे दत्ता प्रदानिक नाम वाला विवाद का स्थान कहा गया है ॥१६॥

अभ्युपेत्य च शुश्रूषां यस्तां न प्रतिपद्यते ।

अशुश्रूषामुपेत्यतद्विवादपदमुच्यते ॥१७

भृत्यानां वेतनस्योक्तो दानादानविधिश्च यः ।

वेतनस्यानपाकर्म तद्विवादपदं स्मृतम् ॥१८

निक्षिप्तं वा परद्रव्यं नष्टं लब्ध्वाऽपहत्य वा ।

विक्रीयते परोक्ष यत्स ज्ञेयोऽस्वामिविक्रयः ॥१९

विक्रीय पण्यं मूल्येन क्रेत्रे यच्च न दीयते ।

विक्रियासंप्रदानं तद्विवादपदमुच्यते ॥२०

कृत्वा मूल्येन यः पण्यं क्रेता न बहु मन्यते ।

कृत्वा मूल्यं तु यः पण्यं दुष्क्रीतं मन्यते क्रयी ॥२१

पापण्डनेगमादीनां स्थितिः समय उच्यते ।

समयस्यानपाकर्म तद्विवादपदं स्मृतम् ॥२२

सेतुकैदारमर्यादा विकृष्टाकृष्टनिश्चयाः ।

क्षेत्राधिकारे यत्र स्युर्विवादः क्षेत्रजरतु सः ॥२३

वंवाहिको विधिः स्त्रीणां यत्र पुंसा च कीर्त्यते ।

स्त्रीपुंसयोगसंज्ञं तु तद्विवादपदं स्मृतम् ॥२४

जो शुश्रूषा करके उसे प्राप्त नहीं करता है । अनुश्रूषा को प्राप्त होकर यह विवाद का स्थान कहा जाता है ॥१७॥ भृत्यों के वेतन के देने और न देने की जो विधि बही गई है वह वेतन का अनपाकर्म है और विवाद का पद कहा जाता है ॥१८॥ अथवा पराया द्रव्य धरोहर रक्खा गया है । अथवा प्राप्त करके नष्ट हो गया हो अथवा अपहृत्य करके परोक्ष में (पीठ पीछे) यह वेश दिया जाता है तो हे वरम ! वह अस्वामि विक्रय वाला जानना चाहिए । अर्थात् बिना ही घन के स्वामी के किसी दूसरे द्वारा वेश जाना माना जाता है ॥ १९ ॥ वेश्वर (जो मूल्य के द्वारा खरीदने वाले को पण्य नहीं दिया जाता है अर्थात् मूल्य ग्रहण कर वस्तु नहीं दी जाती है वह वेश्वर नहीं देना विवाद का एक

स्थान कहा जाता है) ॥२०॥ खरीद कर और मूल्य देकर फिर खरीदने वाला उस पण्य को भर्थात् खरीदी हुई वस्तु को अच्छी नहीं मानता है । मूल्य करके जो पण्य को क्रम करने वाला दुष्टीत मानता है भर्थात् उस खरीददारी को बुरी समझता है ॥२१॥ पापशब्द नैगम आदि की स्थिति समय कही जाती है । समय का जो धनपाकर्म है वह विवाद का स्थान होता है ॥२२॥ सेतु-केदार मर्यादा विप्रकृष्टाकृष्ट निश्चय वाली जहाँ क्षेत्र के अधिकार में हों वह क्षेत्रज विवाद होता है ॥२३॥ जहाँ पर स्त्रियों की और पुरुषों की विवाद सम्बन्धी विधि कही गई है वह स्त्री और पुरुष दोनों के योग के नाम वाला विवाद का स्थान कहा गया है ॥२४॥

विभागोऽयस्य पत्रस्य पुत्र्येस्तु प्रकल्प्यते ।

दायभागमिति प्रोक्तं तद्विवादपदं बुधः ॥२५॥

सहसा क्रियते कर्म यत्किञ्चिद्वलदपितः ।

तत्साहसमिति प्रोक्तं विवादपदमुच्यते ॥२६॥

देशजातिकुलादीनामाक्रोशाच्च वृद्धसयुतम् ।

यद्वचः प्रतिकूलार्थं वाक्पारुष्यं तदुच्यते ॥२७॥

परगात्रेष्वभिद्रोहो हस्तपादायुधादिभिः ।

अग्न्यादिभिश्चोपघातैर्दण्डपारुष्यमुच्यते ॥२८॥

अक्षवज्रशलाकाद्यैर्देवनं द्यूतमुच्यते ।

पशुक्रीडा वयोमिश्र प्राणिद्युतं समादिशेत् ॥२९॥

प्रकीर्णकः पुनर्जयो व्यवहारी निराश्रयः ।

राजामाजाप्रतीघातस्तत्कर्माकरणं तथा ॥३०॥

व्यवहारो दण्डपदस्तेषां भेदोऽयं वै शतम् ।

क्रियाभेदान्मनुष्याणां शतशाखो निगद्यते ॥३१॥

व्यवहारान्पुः पश्येज्जानिविप्रैरकोपनः ।

शत्रुमित्रंममा सन्या अनोभाः श्रुतिवेदिनः ॥३२॥

पिता के धन का विभाजन जो पुत्रों के द्वारा किया जाता है वह लय काय १५ नाम से विद्वानों के द्वारा विवाद (लय) का स्थान बताया गया है

॥२५॥ देश-जाति और कुल आदि का आश्रय (चुराई) से ध्यंग्य से मुक्त
 अर्थात् ध्वनित अर्थ वाला जो वचन विपरीत अर्थ वाला हो वह वागपारस्य
 अर्थात् वाणी की कठोरत्व कहा जाता है ॥२७॥ दूसरों के शरीरों पर हाथ-
 पैर और शास्त्रास्त्र आदि से जो अभिद्रोह है चोर आदि का करना है तथा भौच
 आदि के उपघातों से किया जाता है वह दण्ड पारस्य (कठोरता) कहा जाता
 है ॥२८॥ भक्ष (पाले) वज्र और शलाका आदि के द्वारा जो खेन किया
 जाता है वही छूत (जूझा) इस नाम से कहा जाता है । पशु के द्वारा और
 पक्षियों के द्वारा जो फ्रीडा की जाती है अर्थात् पशु तथा पक्षियों को साधन
 बनाकर जो जूझा खेला जाता है वह प्राणिछूत इस नाम से कहना चाहिए
 ॥ २९ ॥ जो व्यवहार बिना किसी आश्रय के होता है वह प्रकीर्णक जानना
 चाहिए । राजाओं की आज्ञाओं का प्रतिघात अर्थात् राजा लोग जो आज्ञा देते
 हैं उसके विरुद्ध करना तथा उनके काम का न करना यह व्यवहार स्थान दश
 प्रकार का होता है और उसके भेद सौ प्रकार के होते हैं । मनुष्यों की क्रिया
 (काम का करना) के भेद से वह सैकड़ों ही शाला वाला कहा जाता है ॥३०-
 ३१॥ ज्ञान वाले ब्राह्मणों के द्वारा व्यवहार से बिना क्रोध दिये हुए राजा को
 देखना चाहिए । सभा (सभा के सदस्य) शत्रु और मित्र को समभाव से बरतने
 वाले तथा लोभ-लालच से रहित और वेद के ज्ञाता होने चाहिए ॥३२॥

अपश्यता कार्यवशात्सम्यैविप्रं नियोजयेत् ।

रागाल्लोभादभयाद्वापि श्रुत्यपेतादिकारिणः ॥३३॥

सम्याः पृथक्पृथग्दण्ड्या विवादादद्विगुणो दमः ।

स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेणार्घपितः परैः ॥३४॥

आवेदयति यद्राज्ञं व्यवहारपदं हि तत् ।

प्रत्ययिनोऽग्रतो लेख्य यथावेदितमथिना ॥३५॥

समामासतदर्धाह्नमिजात्यादिचिन्हितम् ।

श्रुतार्थस्योत्तरं लेख्यं पूर्ववेदकसंनिधौ ॥३६॥

ततोऽर्थो लेख्येत्सद्यः प्रणिज्ञातार्थसाधनम् ।

तत्सिद्धौ सिद्धिमाप्नोति विपरीतमतोऽन्यथा ॥३७॥

चतुष्पाद्व्यवहारोऽयं विवादेषूपदर्शितः ।

अभियोगमनिस्तोयं नैनं प्रत्यभियोजयेत् ॥३८॥

अभियुक्तं च नान्येन त्यक्तं विप्रकृति नयेत् ।

कुर्यात्प्रत्यभियोग तु कलहे साहसेषु च ॥३९॥

उभयोः प्रतिभूग्राह्यः समर्थः काम्यनिर्णये ।

निन्हेवे भादिती दद्याद्धन राज्ञे तु तत्समम् ॥४०॥

काम्य वश से राजसभा के सदस्यों के द्वारा न देखे तो उसे किसी ब्राह्मण को नियोजित कर देना चाहिए । किसी राग द्वेष में—लोभ—लासच में अथवा भय में श्रुति के अभाव के करने वाले जो मन्थ हों उन्हें धलण—धलण दण्ड देना चाहिए । विवाद में दुगुना दम होना चाहिए । स्मृति तथा आचार में रहित मार्ग के द्वारा जो दूसरों में आघात होता हुआ प्रायश्ना करता है वह राजा के व्यवहार का स्थान कहा जाना है प्रायों के द्वारा जो कुछ भी आवेदित किया गया है वह प्रत्यर्थी के सामने ही लिखाना चाहिए । उसमें वर्ष—मास—वस घोर दिन—नाम घोर जाति आदि सबसे युक्त लिखा जाना चाहिए । पहिले जिसने राजा से प्रायश्ना की है उस आवेदक की सन्निधि में ही जो भी कुछ मुना गया है उस सबका जवाब भी लिखाना चाहिए ॥३८ मे ३९॥ इसके अनन्तर प्रायों जो हो उससे जाने हुए अर्थ (विषय) का माघन लिखाना चाहिए । उसके सिद्ध हो जाने पर अर्थान् पूर्णतया माघित होने पर ही वह सिद्धि को प्राप्त होता है अर्थान् माघित होता है कि यह सब कुछ अनुकूल है या विपरीत है ॥३७॥ विवादों के विषय में यह चार पाद (चरण) वाला व्यवहार कहा गया है । अभियोग (मुकदमा) को पूरा न देखकर अर्थान् पूर्णतया मामले को न समझते हुए इसका प्रत्यभि योजन नहीं करना चाहिए ॥३८॥ हमारे के द्वारा जो अभि-युक्त बनाया गया हो उसे छोड़ना नहीं चाहिए प्रत्युत उसे विप्रकृत (दोषारण्य से युक्त) किया जाना चाहिए । कलह में घोर माहम के कर्मों में उस पर विरुद्ध मुकदमा लगाना चाहिए ॥३९॥ दोनों, जिसने अभियोग बणाया है घोर दिन पर अभियोग लगाना गया है, इन तीं चाहे गये विषय का निर्णय करने में समर्थ

॥२५॥ देश-जाति और कुल आदि का आक्रोश (बुराई) से व्यग्र मे युक्त अर्थात् ध्वनित अर्थ वाला जो वचन विपरीत अर्थ वाला हो वह वाक्पाठ्य अर्थात् वाणी की कठोरत्व कहा जाता है ॥२७॥ दूसरों के शरीरों पर हाथ-पैर और शास्त्रास्त्र आदि से जो अभिद्रोह है चोर आदि का करना है तथा भ्रातृ आदि के उपघातों से किया जाता है वह दण्ड पाठ्य (कठोरता) कहा जाता है ॥२८॥ अक्ष (पाँसे) वज्र और शलाका आदि के द्वारा जो खेल किया जाता है वही धूम (जूझा) इस नाम से कहा जाता है । पशु के द्वारा और पक्षियों के द्वारा जो फीडा की जाती है अर्थात् पशु तथा पक्षियों को साधन बनाकर जो जूझा खेला जाता है वह प्राणिधूम इस नाम से कहना चाहिए ॥ २९ ॥ जो व्यवहार बिना किसी आश्रय के होता है वह प्रकीर्णक जानना चाहिए । राजाओं की आज्ञाओं का प्रतिपात अर्थात् राजा लोग जो आज्ञा देते हैं उसके विरुद्ध करना तथा उनके काम का न करना यह व्यवहार स्थान दश प्रकार का होता है और उसके भेद सौ प्रकार के होते हैं । मनुष्यों की क्रिया (काम का करना) के भेद से वह सैकड़ों ही शाला वाला कहा जाता है ॥३०-३१॥ ज्ञान वाले ब्राह्मणों के द्वारा व्यवहार से बिना क्रोध दिये हुए राजा को देखना चाहिए । सभा (मन्त्र के सदस्य) शत्रु और मित्र को समभाव से बरतने वाले तथा लोभ-लालच से रहित और वेद के ज्ञाता होने चाहिए ॥३२॥

अपश्यता कार्यवशात्सम्यग्निप्रं नियोजयेत् ।

रागाल्लोभाद्भयाद्वापि श्रुत्यपेतादिकारिणः ॥३३॥

सम्याः पृथक्पृथग्दण्ड्या विवादाद्विगुणो दमः ।

स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेणार्घपितः परेः ॥३४॥

आवेदयति यद्राज्ञे व्यवहारपदं हि तत् ।

प्रत्ययिनोऽप्रतो लेख्य यथावेदितमयिना ॥३५॥

समामासतदर्घाहर्निमजात्यादिचिन्हितम् ।

श्रुतार्थस्योत्तरं लेख्यं पूर्वविदकसंनिधौ ॥३६॥

तन्नोऽर्थो लेख्येत्सद्यः प्रणिज्ञातार्थसाधनम् ।

तस्मिन्मो सिद्धिमाप्नोति विपरीतमतोज्ञयथा ॥३७॥

चतुष्पाद्व्यवहारोऽयं विवादेषूपदर्शितः ।

अभियोगमनिस्तोर्यं नैनं प्रत्यभियोजयेत् ॥३८॥

अभियुक्तं च नान्येन त्यक्तं विप्रकृतिं नयेत् ।

कुर्यात्प्रत्यभियोगं तु कलहे साहसेषु च ॥३९॥

उभयोः प्रतिभूग्राह्यः समर्थः काम्यनिर्णये ।

निन्हेवे भाविती दद्याद्धनं राज्ञे तु तत्समम् ॥४०॥

काम्यं वश से राजसभा के सदस्यों के द्वारा न देखे तो उसे किसी ब्राह्मण को नियोजित कर देना चाहिए । किसी राग द्वेष से—लोभ—लालच में अथवा भय से श्रुति के अभाव के करने वाले जो मन्थ हों उन्हें भलग—भलग दण्ड देना चाहिए । विवाद से दुगुना दम होना चाहिए । स्मृति तथा आचार से रहित मार्ग के द्वारा जो दूसरों से आघातित होता हुआ प्रार्थना करता है वह राजा के व्यवहार का स्थान कहा जाता है प्रार्थी के द्वारा जो कुछ भी आवेदित किया गया है वह प्रत्यर्थी के सामने ही लिखाना चाहिए । उनमें वर्ष—मास—पक्ष घोर दिन—नाम घोर जाति आदि सबसे युक्त लिखा जाना चाहिए । पहिले जिसने राजा से प्रार्थना की है उस आवेदक की सन्निधि में ही जो भी कुछ सुना गया है उन सबका जवाब भी लिखाना चाहिए ॥३३ से ३६॥ इसके अनन्तर प्रार्थी जो हो उससे जाने हुए अर्थ (विषय) का साधन लिखाना चाहिए । उसके सिद्ध हो जाने पर अर्थात् पूर्णतया साबित होने पर ही वह निष्पत्ति को प्राप्त होता है अर्थात् साबित होता है कि यह सब कुछ अनुकूल है या विपरीत है ॥३७॥ विवादों के विषय में यह चार पाद (चरण) वाला व्यवहार कहा गया है । अभियोग (मुकदमा) को पूरा न देखकर अर्थात् पूर्णतया मामले को न समझते हुए इसका प्रत्यभि योजन नहीं करना चाहिए ॥३८॥ दूसरे के द्वारा जो अभि-युक्त बनाया गया हो उसे छोड़ना नहीं चाहिए प्रत्युत उसे विप्रकृत (दोषानुराग से युक्त) किया जाना चाहिए । कलह में घोर माहल के कर्मों में उस पर विरुद्ध मुकदमा लगाना चाहिए ॥३९॥ दोनों, जिसने अभियोग लगाया है और जिन पर अभियोग लगाया गया है, इनकी चाहे गये विषय का निर्णय करने में समर्थ

को जमानत ले लेनी चाहिए । अनुचित करने वाला उसके समान राजा को धन देवे ॥४०॥

मिथ्याभियोगाद्विगुणमभियोगाद्धनं हरेत् ।

साहसस्तेयपारुष्येध्वभिशपात्यये स्त्रियाः ॥४१॥

विचारयेत्सद्य एव कालोऽन्यत्रेच्छया स्मृतः ।

देशाद्देशान्तरं याति सृक्किणी परिलेढि च ॥४२॥

ललाटं स्विद्यते चास्य मुखवैवर्ण्यमेव च ।

स्वभावाद्विकृतं गच्छेन्मनोवाक्कायकर्मभिः ॥४३॥

अभियोगेऽथ वा साक्ष्ये वाग्दुष्टः परिकीर्तितः ।

सदिग्धार्थं स्वतन्त्रो यः साधयेद्यश्च निष्पतेत् ॥४४॥

न चाऽऽहूतो वदेत्किंचिद्दीनो दण्ड्यः स स्मृतः ।

साक्षिपूज्यतः सत्सु साक्षिणः पूर्ववादिनः ॥४५॥

पूर्वपक्षेऽधरीभूते भवन्त्युत्तरवादिनः ।

सपणश्चेद्विवादः स्यात्तत्र हीन तु दापयेत् ॥४६॥

दण्डं पणं वसुं चैव धनिनो धनमेव च ।

द्युलं निरस्य दूतेन व्यवहारान्नयेन्नुपः ॥४७॥

भूतमप्यनुपन्यस्त हीयते व्यवहारतः ।

निहनुते निखिला ता? नेकमेकदेशविभावितम् ॥४८॥

यदि अभियोग विरुद्ध भूटा ही साबित हो जावे तो जितने धन का अभियोग किया गया है उसमें दुगुना धन उससे ले लेना चाहिए । स्त्री के विषय में साहस-चोरी-तारुष्य (बटोर व्यवहार)—अभिज्ञाप धीर अत्यय (नाश) के उपस्थित होने पर सुगुन ही विचार करना चाहिए अर्थात् मुकदमे की मुताई तथा निर्णय उभी समय शीघ्र करना चाहिए । इनके अतिरिक्त मामलों में दृष्टानुसार समय रखते । जो देश में अग्य देश को जाता है और जो अपने शोर्टों को पाटता रहता है—जिसके ललाट रर पगीना छायाता है—जिसके चेहरे का रंग पीला पड़ जाता है—जो स्वभाव में मन, बाली और काया के द्वारा विह्वल (विगडा हुआ) स्थिति में जाता है, चाहे उसका कोई अपराध अभि-

योग (मुहदमा) हो या उसकी किसी अभियोग में गवाही हो, यदि उपर्युक्त लक्षण हों तो वह दुष्ट बताया गया है । सन्देह से युक्त अर्थ को जो स्वतन्त्र होते हुए साधन करे और जो निष्पत्ति हो जाता है ॥ ४१ से ४४ ॥ जो बुलाया जावे और बुलाये जाने पर भी कुछ भी न कहे और दीन बन जावे वह दण्ड देने के योग्य कहा गया है । साक्षियों के दोनों ओर से हो जाने पर पूर्व वादी के साक्षी पूर्व पक्ष के घघरीभूत होने पर उत्तरवादी होते हैं । विवाद यदि समता हो तो वहाँ पर दीन को दिवाना चाहिए ॥ ४५।४६ ॥ दण्ड पण और वसु तथा घनी का घन छल का निरसन करके राजा को दूत के द्वारा व्यवहार से लेना चाहिए ॥ ४७ ॥ अनुग्रह्यस्त भूत भी अर्थान् जिसका उपन्यास नहीं किया गया ऐसा पहिला भी व्यवहार में होयमान होजाता है । एक देश में विभावित एक सवका हनन कर देता है ॥ ४८ ॥

दाप्यः सर्वो नृपेणार्थो न ग्राह्यस्त्रनिवेदितः ।

स्मृत्योर्विरोधे न्यायस्तु बलवान्व्यवहारतः ॥ ४९

अर्थशास्त्राद्धि बलवद्धर्मशास्त्रमिति स्थितिः ।

प्रमाणं लिखितं भक्तिः साक्षिणश्चेति कीर्तितम् ॥ ५०

एषामन्यतमाभावे दिव्यान्यतममुच्यते ।

सर्वेष्वेव विवादेषु बलवत्युत्तरा क्रिया ॥ ५१

आघो प्रतिग्रहे कृते पूर्वा तु बलवत्तरा ।

पश्यतो ब्रुवतो भूमेर्हानिविशतिवापिकी ॥ ५२

परेण भुज्यमानाया धनस्य दशवापिकी ।

अधिसोमोपनिःश्रेयजडबालधनैर्विना ॥ ५३

तथोपनिधिराजश्चोपनिधियाणां धनैरपि ।

आध्यादीनां विह्वर्तारं धनिने दापयेद्धनम् ॥ ५४

दण्डं च तत्समं राजे शक्यपेक्ष्यमथापि वा ।

आगमोऽप्यधिको भुक्तिं विना पूर्वक्रमागताम् ॥ ५५

आगमोऽपि बलं नैव भुक्तिस्तोकाऽपि यत्र न ।

आगमेन विमुद्धेन भोगो याति प्रमाणताम् ॥ ५६

असंबद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिध्यति ।
 प्रनष्टाधिशतं देयं नृपेण घनिने घनम् ॥६१॥
 विभावयेन चेल्लिङ्गं स्तरसमं दातुमर्हति ।
 देयं चौरहृतं द्रव्यं राज्ञा जनपदाय तु ॥६२॥
 अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासि मासि सवन्धके ।
 वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिचतुष्पञ्चकमन्यथा ॥६३॥
 सप्ततिस्तु पशुस्त्रीणां रसस्याष्टगुणा परा ।
 वस्त्रधान्यहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणा तथा ॥६४॥
 ग्रामान्तरात्तु दशकं सामुद्रादपि विशतिम् ।
 दद्याद्वा स्वकृतां वृद्धिं सर्वे सर्वासु जातिषु ॥६५॥
 प्रपन्नं न साधयन्नर्थं न वाच्यो नृपतिर्भवेत् ।
 साध्यमानो नृप गच्छेद्दण्ड्यो दाप्यश्च तद्धनम् ॥६६॥

अभिमुक्त भ्रातृवत् भोग प्रमाण नहीं होता है । जिसने भ्रातृवत् किया है वह ही अभिमुक्त होता है और उसीसे उसको लेना चाहिए ॥५७॥ वहाँ पर उसका पुत्र या पुत्र का भी पुत्र अभिमुक्त नहीं हो सकता है क्योंकि वहाँ तो भोग ही बलवान् माना जाता है । यदि जो भी कोई अभिमुक्त (अभियोग अर्थात् मुकुदमा चलाये जाने वाला) हो वह मृत होजावे तो उसका जो उत्तराधिकार का धन हो उससे उसका उद्धार करना चाहिए ॥५८॥ भ्रातृवत् के बिना की हुई भुक्ति वहाँ पर कारण नहीं होता है । बल और उपाधि से विनिवृत्त व्यवहारों को निवृत्त कराना चाहिए ॥५९॥ स्त्री-रात्रि-प्रन्तरागार (घर के भीतर) — बाहिर और शत्रु के द्वारा किया हुआ — मत्त-उन्मत्त-भ्रातृ-व्यसनी-बालक-दरा हुआ शक्ति के द्वारा प्रयोजित तथा जो अमम्बद्ध किया हुआ हो ऐसा व्यवहार सिद्ध नहीं होता है । राजा के द्वारा जो धन प्रनष्ट हो गया हो उसको सो गुना धन धनी के लिये देना चाहिए ॥६०॥६१॥ चिह्नों के द्वारा विभावित न होवे तो उसके समान देने के योग्य होता है । जो धन चोरों ने हरण कर लिया है वह राजा को जनपद के लिए देना चाहिए क्योंकि जनपद की रक्षा का सारा उत्तरदायित्व राजा पर ही होता है ॥ ६२ ॥ जो बन्धक हो अर्थात्

राजा के द्वारा समस्त धर्म दिला देना चाहिए और जो अग्नि वेदित हो वह नदी ग्रहण करना चाहिए । स्मृतियों के विरोध होने पर व्यवहार से न्याय बलवान् होता है ॥ ४६ ॥ निश्चय ही अर्थशास्त्र से धर्म शास्त्र बलवान् होता है, ऐसी स्थिति होती है । प्रमाण के (सबूत में) रूप में लिखित (लिखे पड़े हुए कागजात)—भक्ति और साक्षी लोग बताये गये हैं ॥ ५० ॥ यदि इन उक्त प्रकार के समस्त प्रमाणों में से कोई भी प्रमाण न हो तो अन्य तम दिव्य प्रमाण कहा जाता है । समस्त प्रकार के विवादों में जो उत्तर क्रिया बतलाई गई है वही बलवती मानी जाती है ॥ ५१ ॥ आधि-प्रतिग्रह और क्रीत में पूर्व क्रिया बलवत्तरा होती है । देखने और बोलने वाले की भूमि की हानि बीस वर्ष की होती है । ॥ ५२ ॥ दूसरे के द्वारा भोग की हुई के धन की हानि दश वर्ष की हुआ करती है । अधिसीम-उपनिक्षेप और जड़ तथा बालक के धन के बिना यह हानि मानी जाती है ॥ ५३ ॥ इसी प्रकार से उपनिधि राजा-स्त्री और श्रोत्रियों के धन के बिना भी होनी है । आधि (मानसीव्यथा) आदि के विशेष रूप से हर्ण करने वाले को धनी के लिये धन को दिलवाना चाहिए ॥ ५४ ॥ राजा को उनके बराबर दण्ड अथवा शक्ति को अपेक्षानुकूल होना चाहिए । पूर्वक्रम से आगम भुक्ति (भोग करना) के बिना आगम भी अधिक होता है । जहाँ पर भुक्ति थोड़ी-सी भी न हो वहाँ आगम भी बल नहीं होता है । विशुद्ध आगम से भोग प्रमाणता को प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

अविशुद्धागमो भोगः प्रामाण्यं नाधिगच्छति ।

आगमस्तु कृतो येन सोऽभियुक्तस्तमद्वरेत् ॥५७

न तत्सुतस्तत्सुतो वा भुक्तिस्तत्र गरीयसी ।

योऽभियुक्तः परेतः स्यात्तस्य ऋक्यात्तमुद्वरेत् ॥५८

न तत्र कारणं भुक्तिसगमेन विना कृता ।

बलोपाधिविनिवृत्तान्वयवहारान्नवर्तयेत् ॥५९

स्त्रीनक्तमन्तरागारवह्निशत्रुकृतस्तथा ।

मत्तोन्मत्तार्तव्यसनिबालभीतप्रयोजितः ॥६०

असंबद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिध्यति । (
 प्रनष्टाधिगतं देयं नृपेण घनिने घनम् ॥६१
 विभावयेन्न चेल्लिङ्गंस्तत्समं दातुमर्हति ।
 देय चौरहतं द्रव्य राज्ञा जनपदाय तु ॥६२
 अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासि मासि सवन्धके ।
 वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिचतुष्पञ्चकमन्यथा ॥६३
 समतिस्तु पशुस्त्रीणां रसस्याष्टगुणा परा ।
 वस्त्रवान्यहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणा तथा ॥६४
 ग्रामान्तरात्तु दशकं साम्द्रादपि विसतिम् ।
 दद्युर्वा स्वकृतां वृद्धिं सर्वे सर्वासु जातिषु ॥६५
 प्रपन्नं न साधयन्नर्थं न वाच्यो नृपतिर्भवेत् ।
 साध्यमानो नृप गच्छेद्दण्ड्यो दाप्यश्च तद्धनम् ॥६६

अभिभुङ्क्ष्य भ्रातृभ्यो भोगं प्रमाणं नह्येति । जिसने भ्रातृभ्यो भोगं प्रमाणं किया है वह ही अभिभुक्त होता है और उसीसे उसको लेना चाहिए ॥५७॥ बन्नी पर उपका पुत्र या पुत्र का भी पुत्र अभिभुक्त नहीं हो सकता है क्योंकि वही तो भोग ही बलवान् माना जाता है । यदि जो भी कोई अभिभुक्त (अभिभोग्य धर्मान् मुकुदमा चलाये जाने वाला) हो वह मृत होजावे तो उसका जो उत्तराधिकार का धन हो उसने उसका उद्धार करना चाहिए ॥५८॥ भ्रातृभ्यो के बिना की हुई मुक्ति वही पर कारण नहीं होता है । बल और उपाधि से विनिवृत्त व्यवहारों को निवर्तन कराना चाहिए ॥५९॥ स्त्री-पुत्रि-अन्तरागार (घर के भीतर) — बाहिर और शत्रु के द्वारा किया हुआ — मत्त-उन्मत्त-मातृ-व्यसनी-बालक-दरा हुआ व्यक्ति के द्वारा प्रयोजित तथा जो अमम्बद्ध किया हुआ हो ऐसा व्यवहार विद्ध नहीं होता है । राजा के द्वारा जो धन प्रनष्ट हो गया हो उनको सो गुना धन धनी के लिये देना चाहिए ॥६०॥६१॥ बिल्हों के द्वारा विभावित न होवे तो उसके समान देने के योग्य होता है । जो धन चोरों ने हररा कर लिया है वह राजा को जनपद के लिए देना चाहिए क्योंकि जनपद की रक्षा का सारा उत्तरदायित्व राजा पर ही होता है ॥ ६२ ॥ जो बन्धक हो धर्मान्

गिरवी हो उस पर प्रत्येक मास में अगसी भाग की वृद्धि होती है। वरुणों के क्रम से शत-दो-तीन-चार-पाँच है। धन्यया पशु घोर स्त्रियों का सत्तर तथा रस का घाठगुनी होती है। वस्त्र-धान्य घोर सुवर्ण की चोगुनी-तिगुनी घोर दुगुनी वृद्धि हुआ करती है ॥ ६३।६४ ॥ धन्य ग्राम से दश तथा समुद्र से भी बीस गुनी वृद्धि सब समस्त जातियों में देवे ॥ ६५ ॥ प्रत्येक धर्म का साधन करते हुए राजा से जाकर नहीं कहना चाहिए। जो साध्यमान हो वह राजा के निकट जावे और वह धन दिलाया जाना चाहिए तथा दण्ड भी देने के योग्य भी होवे ॥६६॥

१०३ व्यवहारकथनम्(२)

गृहीतार्थः क्रमाद्दाप्यो धनिनामधर्मणिकः ।
 दत्त्वा तु ब्राह्मणायाऽऽदौ नृपतेस्तदनन्तरम् ॥१
 राजाऽधर्मणिको दाप्यः साधिताद्दशकं स्मृतम् ।
 पञ्चक तु शत दाप्यः प्राप्तार्थो ह्युत्तमर्णिकः ॥२
 हीनजातिं परिक्षीणमृणार्थं कर्म कारयेत् ।
 ब्राह्मणस्तु परिक्षीणः शनैर्दाप्यो यथोदयम् ॥३
 दीयमानं न गृह्णाति प्रयुक्तं यः स्वकं धनम् ।
 मध्यस्यस्थापितं तस्माद्वर्धते न ततः परम् ॥४
 ऋक्थग्राहं ऋणं दाप्यो योपिद्ग्राहस्तथैव च ।
 पुत्रोऽनन्याश्रितद्रव्यः पुत्रहीनस्य ऋक्थिनः ॥५
 भविभक्तः कुटुम्बार्थं यदणं तु कृतं भवेत् ।
 दद्यात्तद्विधिनः प्रेते प्रोपिते वा कुटुम्बिनि ॥
 न योपिस्वतिपुत्राभ्यां न पुत्रेण कृतं पिता ।
 दद्याद्वै कुटुम्बार्थान्नं पतिः स्त्रीकृतं तथा ॥७
 गोपशौण्डिकशूलपरजकव्याधं योपिताम् ।
 ऋणं दद्यात्पतिस्त्वासां यस्माद्वृत्तिस्तदाश्रया ॥८

इस अध्याय में भी व्यवहार का वर्णन किया जाता है । श्री अग्निदेव ने कहा—जो अर्थ गृहीत हो वह धनियो को क्रम से अधर्माणिक को दिलाना चाहिए (अधर्माणिक—कर्जा लेने वाला व्यक्ति) देकर सबसे आदि में ब्राह्मण के लिये उसके उपरान्त नृपति का है ॥ १ ॥ राजा के द्वारा अधर्माणिक दिलाने के योग्य होता है । साधित से दस गुना बताया गया है । अर्थ प्राप्त उत्तर्माणिक (कर्जा देने वाला) पाँच सौ दिलाने के योग्य होता है ॥ २ ॥ जो हीन जाति वाला हो उससे यदि क्षीण होने पर ऋण के लिये कर्म करना चाहिए । ब्राह्मण यदि परिशीण हो तो उससे धीरे-धीरे दिलाना चाहिए जैसे-जैसे वह दे सके ॥ ३ ॥ जो प्रभु अपने धन को दीयमान होने पर भी ग्रहण नहीं करता है उसे किसी मध्यस्थ के पास रख देना चाहिए फिर उससे भागे उस की कोई वृद्धि नहीं होती है ॥ ४ ॥ जो किसी ऋक्य (मृत पुरुष के उत्तर सम्पत्ति) को ग्रहण करने वाला है वह ऋण दिलाने के योग्य होता है । इसी प्रकार से स्त्री के धन का ग्रहण करना भी होता है । धनन्यायित द्रव्य वाला पुत्र, अर्थात् जिसका धन किसी अन्य के आश्रय में नहीं हो, पुत्र हीन (बिना पुत्र वाला) ऋक्यी (उत्तराधिकार में रहने वाली सम्पत्ति को ग्रहण करने वाला) का बिना वटवारा होने वालों के द्वारा कुटुम्ब के लिये जो किया जावे उसे ऋक्यी के मर जाने पर अथवा कुटुम्बी के परदेश चले जाने पर दे देना चाहिए ॥ ५ ॥ ६ ॥ पति तथा पुत्र के द्वारा किये हुए ऋण को स्त्री को नहीं देना चाहिए अर्थात् स्त्री के पति तथा पुत्र का ऋण स्त्री से नहीं लिया जाता है । इसी तरह पुत्र के किये हुए ऋण का पिता से लेने का भी कोई अधिकार नहीं होता है । कुटुम्ब के लिये हुए ऋण के प्रतिरिक्त स्त्री के द्वारा किये हुए ऋण को देने का पति भी हकदार नहीं होता है ॥ ७ ॥ गोप (ग्वाला)-शोण्डक (शराब बनाने या बेचने वाला)-शैलूप (नट)-रजक (घोड़ी) और व्याघ (शिकारी) की स्त्रियों का कर्जा पति को देना चाहिए क्योंकि उनके ही आश्रय वाली उसकी जीविका हुमा करती है ॥ ८ ॥

प्रतिपन्नं स्त्रिया देयं पत्या वा सह यत्कृतम् ।

स्वयंकृतं वा यदृणं (नान्यस्त्री(स्त्री) दातुमर्हेति ॥९

पितरि प्रोपिते प्रेते व्यसनाभिप्लुतेऽथ वा ।
 पुत्रपौत्रैश्च देवं निह्वये साक्षिभावितम् ॥१०॥
 सुराकामद्युतकृत दण्डशुल्कावशिष्टकम् ।
 वृथाऽऽदानं तथैवेह पुत्रो दद्यान्न पंतृकम् ॥११॥
 भ्रातृणामथ हंपत्योः पितुः पुत्रस्य चैव हि ।
 प्रातिभाव्यमृणं साक्ष्यमविभक्तेन च स्मृतम् ॥१२॥
 दर्शने प्रत्यये दाने प्रातिभाव्य विधीयते ।
 आधौ तु वितथे दाप्या वितथस्य सुता अपि ॥१३॥
 दर्शनप्रतिभूयंश्च मृतः प्रात्यधिकोऽपि वा ।
 न तत्पुत्रा धनं दद्युर्दानाय समुपस्थिताः ॥१४॥
 वहवः स्युर्यदि स्वांशंदद्युः प्रतिभुवो धनम् ।
 एकच्छायाश्रितेष्वेपु धनिकस्य यथारुचि ॥१५॥
 प्रतिभूदापितो यत्र प्रकाश धनिनो धनम् ।
 द्विगुणं प्रतिदातव्यमृणिकैस्तस्य तद्भवेत् ॥१६॥

स्त्री के द्वारा अथवा पति के साथ अथवा स्वयं किया हुआ जो ऋण है वह स्त्री को देना चाहिए ॥ ६ ॥ पिता के प्रोपित (परदेश में गया) होने पर-मर जाने पर अथवा व्यसनों में अभिप्लुत होने पर पुत्र और पौत्रों के द्वारा ऋण (कर्जा) देना चाहिए जो कि निहव में साक्षियों के द्वारा भावित हो गया हो ॥ १० ॥ मदिरा पान में-काम वासना की तृप्ति में-दण्ड तथा शुल्क के अवशिष्ट रह जाने में व्यर्थ ही लिया हुआ पिता का भी ऋण पुत्र को नहीं देना चाहिए ॥ ११ ॥ भाइयों का-दम्पति का (स्त्री पुरुष के जोड़े को दम्पति कहते हैं) पिता का और पुत्र का प्रतिभाव्य ऋण (वह ऋण जो प्रतिभू (जमानत देने वाला) होने से हुआ हो अविभक्त होने से साक्षी के योग्य कहा गया है ॥ १२ ॥ दर्शन में-प्रत्यय (विश्वास) में दान में प्रातिभाव्य होता है । वितथ (मिट्टी) आधि (मन की व्यथा) में वितथ के पुत्र भी दिलाने के योग्य हैं ॥ १३ ॥ जहाँ पर दर्शन प्रतिभू अर्थात् केवल देख लेने का जमानत देने वाला हो अथवा केवल विश्वास दिलाने वाला हो और वह मृत्यु गत हो

जावे तो उसके पुत्रों को वह धन नहीं देना चाहिए । यदि देने के लिये बहुत से हों और सब वहाँ उपस्थित हो गये हों तो प्रतिभू का धन उन्हें अपने-अपने हिस्सों से दे देना चाहिए । यदि ये एक ही छाया के छात्र में रहने वाले हों तो धनिक की जैसी भी रुचि हो ले लेवे । जहाँ धनिक पुरुष का धन प्रकाश में हो वहाँ ही प्रतिभू को धन दिलाना चाहिए । ऋणिकों के द्वारा उसका दुगुना प्रतिदान करना चाहिए ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

ससततिस्त्रीपशव्य धान्यं द्विगुणमेव च ।
 वस्त्रं चतुर्गुणं प्रोक्तं रसश्चाष्टगुणस्तथा ॥१७
 आधिः प्रणश्येद्विगुणे धने यदि न मोक्ष्यते ।
 काले कालकृतो नश्येत्फलभोग्यो न नश्यति ॥१८
 गोप्याधिभोगिनो वृद्धिः सोपकारेऽथ भाविते ।
 नष्टो देवो विनष्टश्च देवराजकृतादृते ॥१९
 आधेः स्वीकरणात्सिद्धौ रक्षमाणोऽन्यसारताम् ।
 यातश्चेदन्य आधेयो धनभावा धनी भवेत् ॥२०
 चरित्रं बन्धककृतं सवृद्धं दापयेद्धनम् ।
 सत्यंकारकृतं द्रव्यं द्विगुणं प्रतिदापयेत् ॥२१
 उपस्थितस्य मोक्तव्य आधिदण्डोऽन्यथा भवेत् ।
 प्रयोजके सति धन कुलेऽन्यस्याऽऽधिमाप्नुयात् ॥२२
 तत्कालकृतमूल्यो वा तत्र तिष्ठेद्वृद्धिधकः ।
 विना धारणाकादाऽपि विक्रीणीते सप्ताक्षिकम् ॥२३
 यदा तु द्विगुणीभूतमृणमाधौ तदा खलु ।
 मोक्षश्चाऽऽधिस्तुदुत्पादयः प्रविष्टे द्विगुणे धने ॥२४
 व्यसनस्यमनाख्याय हस्तेऽन्यस्य तदपयेत् ।
 द्रव्य तदौपनिधिकं प्रतिदेयं तथैव तत् ॥२५
 न दाप्योऽग्रहृतं तत्तु राजदेवततत्स्करः ।
 प्रेषश्चेन्मागिते दत्ते दाप्यो दण्डश्च तत्समः ॥२६

आजीवन्स्वेच्छया दण्डघो दाप्यस्तच्चापि सोदयम् ।

याचितावाहितन्यासनिक्षेपेऽप्ययं विधिः ॥२७॥

सन्तति-स्त्री-पशव्य के साथ दुगुना धान्य-वस्त्र चीगुना-और रस घ्राठ गुना कहा गया है ॥ १७ ॥ द्विगुण धन पर आधिका नाश हो जाता है । यदि मोक्ष नहीं होता है तो समय होने पर काल कृत नाश होता है । फल का भोग कभी नाश को प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥ १८ ॥ गुप्त आधि के भोग करने वाले की वृद्धि होती है । उपकार से युक्त के भावित हो जाने पर जो नष्ट हो गया हो वह दे देना चाहिए और जो देव तथा राजा के द्वारा विशेष रूप से नष्ट किया हो उसे छोड़ देवे ॥ १९ ॥ आधि के स्वीकार करने से सिद्धि है । रक्ष माण यदि अपसारित हो गया हो तो जो अन्य आधिके धन का भागी धनी हो वे ॥ २० ॥ बन्धक किया हुआ (गिरवी रहन हुआ) चरित्र वृद्धि के सहित धन दिलाना चाहिए । सत्यं कार किया हुआ धन दुगुना प्रतिदान करना चाहिए ॥ २१ ॥ उपस्थित की आधि छोड़ देने के योग्य है । अन्यथा दण्ड होना है । प्रयोजक के होने पर धन अन्य के कुल में आधि को प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ उषी समय मूल्य किया हुआ वहाँ पर बिना ही वृद्धि के रहता है । धारण करने वाले के बिना भी साक्षी के सहित जब कोई वेच देता है उस समय आधि में दुगुना हुआ ऋण हो तो आधि का त्याग कर देना चाहिए क्योंकि धन दुगुने प्रविष्ट होने पर वह उस से उत्पादन के योग्य हो जाता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ व्यसनों में स्थित को न कह कर उसे अन्य के हाथ में अर्पण कर देना चाहिए । उस समय वह औपनिधिक द्रव्य उसी प्रकार से प्रतिदान करना चाहिए ॥ २५ ॥ जो राजा-देव और तत्करों के द्वारा अपहरण किया गया हो वह धन नहीं दिलाने के योग्य होता है । यदि मागित के देने पर प्रेष हो तो उसके बराबर दण्ड दिलाना चाहिए ॥ २६ ॥ स्वेच्छया से आजीवन दण्ड देने के योग्य है और वह उदय के सहित दिलाने के योग्य होता है । याचित-आवाहित-न्यास और निक्षेप किये हुएों में यह ही विधि होती है ॥ २७ ॥

विशेष रूप से कामना को पूर्ण किया करती है ॥३॥ गायत्री मन्त्र का दश सहस्र जप करके जो रात्रि में भोजन किया करता है, हे द्विज ! और बहुत बार स्नान करने वाला जो है उसका वहाँ पर ही पापों का नाश हो जाता है ॥४॥

दश अयुत (दश सहस्र) अर्थात् एक लक्ष गायत्री का जप करके जो होम करता है वह मुक्ति प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है । प्रणव निश्चय ही परब्रह्म का स्वरूप है । उसका जप समस्त पापों का हनन करने वाला है । ॥५॥ नाभि मात्र जल में स्थित होकर ओङ्कार का अर्थात् “ओ३म्” इसका सो बार जप के द्वारा अभिमन्त्रित किया हुआ जल का पान करना चाहिए । इस प्रकार से करने वाला सब तरह के पापों से मुक्त हो जाता है ॥६॥ तीन मात्रा हैं—तीन वेद, तीन अग्नि तथा सात महाव्याहृतियाँ, सात लोक और होम यह समस्त अधो का नाश करते हैं ॥७॥ हे राम ! गायत्री सबसे श्रेष्ठ जप करने के योग्य है । इसी प्रकार से सात महाव्याहृतियाँ भी जपने के योग्य होती हैं । जल के अन्दर यह जाप अघमर्षण कहा गया है ॥८॥

अग्निमीले पुरोहितं सूक्तोज्यं बन्धिर्देवतः ।

शिरसा धारयन्बन्धि यो जपेत्परिवत्सरम् ॥९॥

होम त्रिपवणं भक्ष्यमनग्निज्वलनं चरेत् ।

अतः परमृचः सप्त वाय्वाद्या याः प्रकीर्तिताः ॥१०॥

ता जपन्प्रयतो नित्यमिष्टान्कामान्समश्नुते ।

मेघाकामो जपेन्नित्य सदसस्पमिति श्रुचम् ॥११॥

अन्वयो यन्निमाः प्रोक्ता नवर्चो मृत्युनाशनाः ।

गुनःशेषमृषिं वद्धः संनिरुद्धोऽथ वा जपेत् ॥१२॥

मुच्यते सर्वपापेभ्यो गदी वाज्यगदी भवेत् ।

य इच्छेच्छाश्रितं कामं मित्रं प्राज्ञं पुरदरम् ॥१३॥

शृग्भिः पोडशभिः कुर्यादिन्द्रस्येति दिने दिने ।

हिरण्यस्त्रूपमित्येतज्जपञ्चशतं नृन्प्रवाधते ॥१४॥

क्षेमी भवति चाध्वनि ये ते पन्था जपन्तरः ।

रोद्रीभिः पङ्क्तिरीशानं स्तुमाद्यो ये दिने दिने ॥१५॥

चरुं वा कल्पयेद्गोद्र तस्य शान्तिः परा भवेत् ।

उदित्युद्यन्तमादित्यमुपतिष्ठन्दिने दिने ॥१६

“अग्निमीले पुरोहितम्”—इस सूक्त का वह्नि देवता होता है । मस्तक पर वह्नि को धारण करके जो इसका जाप पूरे एक वर्ष तक करता है ॥६॥ होम, शिषवण, भैक्ष्य और अग्निसि ज्वलन किया करता है । इससे परम वाय्वादि सात ऋचाएँ बतर्ई गई हैं । उनको प्रयत्न होते हुए नित्य जप करता हुआ पुरुष अपनी इष्ट कामनाओं को प्राप्त कर लेता है । जो पुरुष मेधा (बुद्धि) की कामना रखता है उसे नित्य ही ‘सहस्रस्पम्’—इन तीन ऋचाओं का जाप करना चाहिए ॥१०॥११॥ “अन्वयोयन्” ये कही गई हैं । “न वचो” ये मृत्यु के नाश करने वाली हैं । धुनः शेष ऋषि से बद्ध अथवा सनिष्ठ होकर जप करे ॥१२॥ ऐसा करने से सभी पापों से मुक्त हो जाता है । रोगी भी नीरोग होता है । जो शाश्वत कामना चाहता है उसे ‘मित्रं प्राज्ञं पुरन्दरम्’ इन सो बह ऋचाओं से प्रतिदिन “इन्द्रम्य” इसके द्वारा हिरण्य स्तूप करना चाहिए । इसका जप करने वाला अपने शत्रुओं का वाधा पहुँचाता है ॥१३॥१४॥ ‘ये ते पन्था’ इसका जाप करने वाला मार्ग में क्षेम वाला रहता है । छः रौद्री ऋचाओं के द्वारा जो प्रतिदिन ईशान का स्तवन करता है अथवा रौद्र चरु की कल्पना करता है उसको परम शान्ति होती है ॥१६॥

क्षिपेज्जलाञ्जलोन्मत्त मनोदुःखविनाशनम् ।

द्विपन्तमित्यथार्धचं यद्विप्रान्तं जपन्स्मरेत् ॥१७

आगतकृत्स्नसरात्रेण विद्वेपमधिगच्छति ।

आरोग्यकामा रोगी वा पुष्कर्यारयोभयं जपेत् ॥१८

उत्तमस्तम्य चाधर्चो जपेद्वरिविनाशने ।

उदयत्यागुरध्व्यं तेजो मध्यदिने जपेत् ॥१९

अस्तं प्रति गते सूर्ये द्विपन्तं प्रतिवाधते ।

न वयश्चेति सूक्तानि जपञ्चशत्रून्त्रियच्छति ॥२०

एकादश सुप्रणस्य सर्वकामान्विनिदिशेत् ।

आध्यात्मिकीः क इत्येता जपन्मोक्षमवाप्नुयात् ॥२१

आ नो भद्रा इत्यनेन दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।
 त्वं सोमेति च सूक्तेन नवं पश्येन्निशाकरम् ॥२२॥
 उपतिष्ठेत्समिन्पाणिर्वासांस्याप्नोत्यसंशयम् ।
 आयुरीप्सन्निममिति कीत्सं सूक्तं सदा जपेत् ॥२३॥

“अदिति” के द्वारा उदय होते हुए सूर्य की जो प्रतिदिन उपस्थान करता हुआ जो सात जलाञ्जलियों का क्षेपण करता है उसके मन के दुःख का विनाश हो जाता है । जो ‘द्विपन्तम्’ इस आधी ऋचा का विधान्त तक स्मरण करता हुआ जप करता है । आगस्कृत् सात रात्रि में विद्वेष को प्राप्त हो जाता है । आरोग्य की कामना रखने वाला भयवा रोगी पृष्कर्षारय दोनों का जप करे ॥१७॥१८॥ उसकी आधी ऋचा का जाप करना उत्तम है जो कि बैरियों के विनाश करने के लिए जपना चाहिये । “उदयत्यायु रक्षय्य तेजः” इसका मध्य दिन में जाप करना चाहिये ॥१९॥ जब सूर्य अस्ताचलगामी हो उस समय में जप करने से द्वेष करने वाले को प्रतिवाधित करता है । “न वयश्च” इन सूक्तों का जप करता हुआ शत्रुओं का नाश करता है ॥२०॥ “एकादश सुपर्णस्य” का जाप समस्त कामनाओं को पूर्ण करता है । “आध्यात्मिकीः क” इनका जप करने वाला मोक्ष की प्राप्ति किया करता है ॥२१॥ “आ नो भद्रा” इसके जाप से दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है । “त्व सोम” इस सूक्त के जाप के साथ जो नवीन चन्द्र का दर्शन करता है और समिन्पाणि होकर उपस्थान किया करता है वह बिना किसी संशय के वस्त्रों का लाभ किया करता है । ‘आयु रीप्सन्निममिति’ इस कीत्स सूक्त का सदा जप करना चाहिए ॥ २२॥२३ ॥

अप नः शोनुचदिति स्तुत्या मध्ये दिवाकरम् ।
 यथा मुञ्चति चेपीकां तथा पापं प्रमुञ्चति ॥२४॥
 जातवेदस इत्येतज्जपेत्स्वस्त्ययनं पथि ।
 भयैधिमुच्यते गर्वैः स्वस्तिमानाप्नुयाद् गृहान् ॥२५॥
 व्युष्टायां च तथा रात्र्यामेतद्दु स्वप्ननाशनम् ।

प्रमन्दिनेति सूयन्त्या जपेद्गर्भविमोचनम् ॥२६॥
जपन्निन्द्रमिति स्नातो वैश्वदेवं तु सप्तकम् ।
मृञ्चत्याज्यं तथा जुहुवत्सकलं कित्वपं नरः ॥२७॥
इमामिति जपञ्चश्वत्कामानाप्नोत्यभीप्सितान् ।
मा नस्तोक इति द्वाभ्यां त्रिरात्रोपोषितः शुचिः ॥२८॥
श्रीदुम्बरोश्च जुहुयात्समिधश्चाऽऽज्यसस्कृताः ।
धित्वा सर्वान्मृत्युपाशाञ्जीवेद्रोगविवर्जितः ॥२९॥

“अथ नः शोमुचन्” इससे स्तवन मध्य में दिवाकर का करके जैसे ही चेपीका का मोचन करता है वैसे ही पाप से छूट जाता है ॥२४॥ “जातवेदम्” हवन स्वस्त्ययन का मार्ग में जाप करे तो समस्त प्रकार के भयों से विमुक्त हो जाता है और स्वस्तिमान् (कल्याण वाला) होते हुए अपने घर को प्राप्त हो जाता है ॥२५॥ तथा द्यूष्ट रात्रि में इसका जाप करने से बुरे स्वप्नों का नाश होता है । प्रसव करती हुई स्त्री “प्रमन्दिन” इसका जाप करे तो गर्भ का विमोचन हो जाता है ॥२६॥ स्नान करके “इन्द्रम्” इसका जप करता हुआ सप्तक वैश्वदेव को घृत छोड़ता है तथा हवन करता है तो मनुष्य अपने समस्त कित्वप (पाप) का त्याग कर देता है ॥२७॥ “इमाम्” इसका निरन्तर जाप करने वाला अपने इच्छित कामों का लाभ किया करता है । ,‘मानस्तोक” इन दो श्रुवाप्रों के द्वारा तीन रात्रि उपोषित रहकर शुद्ध होते हुए गूलर कं. समिधा घृत से संस्कार की हुई करके जो हवन करता है वह समस्त मृत्यु के पाशों को काटकर रोग से रहित होते हुए जीवित रहता है ॥२८॥२९॥

ऊर्ध्वंवाहुरनेनैव स्तुत्वा शंभुं तथैव च ।

मा नस्तोकेति च श्रुवा शिखाबन्धे कृते नरः ॥३०॥

अधृष्यः सर्वभूतानां जायते संशय विना ।

चित्रमित्युपतिष्ठेत् त्रिसंव्यं भास्करं तथा ॥३१॥

समित्ताणिनरो नित्यमीप्सितं धनमाप्नुयात् ।

अथः स्वप्नेति च जपन्प्रातर्मध्यंदिने दिने ॥३२॥

दुःस्वप्न चादयेत्कृत्स्नं भोजनं चाऽऽप्नुयाच्छुभम् ।
 उभे पुमानिति तथा रक्षोघ्नः परिकीर्तितः ॥३३॥
 उभे वासा इति ऋचो जपन्कामानवाप्नुयात् ।
 तमागन्निति च जपन्मुच्यते चाऽऽततायिनः ॥३४॥
 कया शुभेति च जपञ्जातिश्रेष्ठमवाप्नुयात् ।
 इमं नु सोममित्येतत्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥३५॥
 पितरित्युपतिष्ठेत नित्यमर्थमुपस्थितम् ।
 अग्ने नयेति सूक्तेन घृतहोमश्च मार्गगः ॥३६॥
 वीरान्नयनवाप्नोति सुश्लोकं यो जपेत्सदा ।
 कङ्कतो नेति सूक्तेन विपान्सर्वान्व्यपोहति ॥३७॥
 यो जात इति सूक्तेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
 गणानामिति सूक्तेन स्निग्धमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥३८॥

ऊर्ध्वबहु (ऊपर की ओर अपनी बाहुओं को करने वाला) भगवान्
 शम्भु को इषी मन्त्र के द्वारा स्तुति करके और "मानसोरु" इस ऋचा से
 शिखा बन्ध करने पर मनुष्य निस्मन्देह समस्त प्राणियों में अधुष्य (असह तेज
 वाला) हो जाता है । "चित्रम्" इससे सीने सन्ध्याओं के समय में भगवान्
 सूर्य का उपस्थान करे और समिदयाणि होते हुए नित्य करे तो इच्छित धन की
 प्राप्ति किया करता है । "अघः स्वप्न" इसका प्रातःकाल में तथा दिन के मध्य
 काल में प्रति दिन जो जाप किया करता है वह पूर्ण दुःस्वप्न का नाश करता
 है और शुभ भोजन का लाभ किश करता है । "उभेपुमान्" यह राक्षसों का
 नाश करने वाला है ऐसा बताया गया है ॥३०॥३१॥३२॥३३॥ "उभे वासा"
 इस ऋचा का जाप करते हुए कामनाओं की प्राप्ति होती है । "तमागन्" इसका
 जाप करते हुए अततायिता के महापाप से मुक्त हो जाता है ॥३४॥ "कया
 शुभ"—इसका जाप करने से अपनी जाति की श्रेष्ठता प्राप्त होती है । "इमं नु
 सोमम्" इसके जाप से समस्त कामनाओं का लाभ होता है ॥३५॥ "पितः"
 इससे उपस्थान करना चाहिये । "नित्यमर्थमुपस्थित-प्रानेनर्ष" इस सूक्त से

धून के द्वारा हवन करे—मार्ग में गमन करने वाला जो सदा जप करता है वह लोगों को मुरलीक प्राप्त करा देता है । “कङ्कुतोन्”—इस मूक्त से समस्त विषय को दूर कर देता है ॥३६॥३७॥ ‘गेजान्’—इस मूक्त के अपादि के द्वारा मानव ममस्त कामों की प्राप्ति कराता है । “गलानाम्”—इस मूक्त के जप से सर्व श्रेष्ठ स्नेही का लाभ किया करता है ॥३८॥

यो मे राजप्रितीमां तु दुःस्वप्नगमनीमृचम् ।

अध्वनि प्रस्थितो यस्तु पश्येच्छत्रुं समुत्थितम् ॥३९॥

अप्रगस्तं प्रगस्तं वा कुविदं इमं जपेत् ।

द्वाविंशकं जपन्मूक्त नाध्यात्मिकमनुत्तमम् ॥४०॥

पर्वमु प्रयतो नित्यमिष्टान्कामान्समस्तुते ।

कृणुष्वेति जपन्मूक्तं जुह्वदाज्य समाहितः ॥४१॥

अरातीनां हरेत्प्राणान् रक्षांस्यपि विनाशयेत् ।

उपतिष्ठेत्स्वयं बन्धि परि (री) तृचा दिनेदिने ॥४२॥

तं रक्षति स्वयं बन्धिर्विश्वतो विश्वतोमुखः ।

हंसः शुचिपदित्येतच्छुचिरीर्ज्ञे दिवाकरम् ॥४३॥

कृपि प्रपद्यमानस्तु स्यात्प्रीतिपाकं यथाविधि ।

जुहुयात्क्षेत्रमध्ये तु मुनिः स्वाहान्त पञ्चभिः ॥४४॥

इन्द्राय च मरुद्भ्यस्तु पञ्चन्याय भगाय च ।

यथाशितं तु विहरेत्स्नाङ्गलं तु कृषीबलः ॥४५॥

युक्तो धान्याय सौताय शुनासीरभयोत्तरम् ।

गन्धमाल्यैर्नमस्कारैर्यजेदेताञ्च देवताः ॥४६॥

“यो मे राजन्” —इन दुःस्वप्नों के गमन करने वाली श्रुता को मार्ग में प्रस्थान करता हुआ जो कोई अपने उपस्थित शत्रु को देखे । तो उन ममय ‘अप्रगस्तं प्रगस्तं वा कुविदं’—इसका जप करना चाहिए । सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक मूक्त को वाईस बार प्रदत्त होकर पर्वों पर हो जप करने वाला नित्य ही अपनी धर्मोप कामनाओं की प्राप्ति करता है । “कृणुष्व” इस मूक्त का जान करता हुआ समाहित होकर धून की मादृतिग देवों को शत्रुओं के शत्रुओं

दुःस्वप्न चादयेत्कृत्स्न भोजन चाऽऽप्नुयाच्छुभम् ।
 उभे पुमानिति तथा रक्षोघ्नः परिकीर्तितः ॥३३॥
 उभे वासा इति ऋचो जपन्कामानवाप्नुयात् ।
 तमागन्निति च जपन्मुच्यते चाऽऽततायिनः ॥३४॥
 कथा शुभेति च जपञ्जातिथ्रं षष्ठमवाप्नुयात् ।
 इमं नु सोममित्येतत्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥३५॥
 पितरित्युपतिष्ठेत नित्यमर्थमुपस्थितम् ।
 अग्ने नयेति सूक्तेन घृतहोमश्च मार्गगः ॥३६॥
 वीरान्नयनवाप्नोति सुश्लोक यो जपेत्सदा ।
 कङ्कतो नेति सूक्तेन विपान्सर्वान्व्यपोहति ॥३७॥
 यो जात इति सूक्तेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
 गणानामिति सूक्तेन स्निग्धमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥३८॥

ऊर्ध्वं बहु (ऊपर की ओर अपनी बाहुओं की करने वाला) भगवान्
 शम्भु को इसी मन्त्र के द्वारा स्तुति करके और “मानसोक्त” इस ऋचा से
 शिखा बन्ध करने पर मनुष्य तस्मिन्देह समस्त प्राणियों में अध्वर्यु (असह्य तेज
 वाला) हो जाता है । “चित्रम्” इससे तीनों सन्ध्याओं के समय में भगवान्
 सूर्य का उपस्थान करे और समित्प्राणि होते हुए नित्य करे तो इच्छित धन की
 प्राप्ति किया करता है । “अधः स्वप्न” इसका प्रातःकाल में तथा दिन के मध्य
 काल में प्रति दिन जो जप किया करता है वह पूर्ण दुःस्वप्न का नाश करता
 है और शुभ भोजन का लाभ किश करता है । “उभेपुमान्” यह राक्षसों का
 नाश करने वाला है ऐसा बताया गया है ॥३०॥३१॥३२॥३३॥ “उभे वासा”
 इस ऋचा का जप करते हुए कामनाओं की प्राप्ति होती है । “तमागन्” इसका
 जप करते हुए अततायिता के महापार से मुक्त हो जाता है ॥३४॥ “कथा
 शुभ”-इसका जप करने से अपनी जाति की श्रेष्ठता प्राप्त होती है । “इमं नु
 सोमम्” इसके जप से समस्त कामनाओं का लाभ होता है ॥३५॥ “पितः”
 इसमें उरस्वयं करना चाहिये । “नित्यमर्थमुपस्थित-प्राप्तेनय” इस सूक्त से

घृण के द्वारा हवन करे—मार्गों में गमन करने वाला जो सदा जप करता है वह वीरों को सुरलोक प्राप्त करा देता है । "कङ्कनोन्"—इस सूक्त से समस्त विषय को दूर कर देता है ॥३६॥३७॥ 'गेजान्'—इस सूक्त के अपादि के द्वारा मानव गमस्त कामों की प्राप्ति कराता है । "गणानाम्"—इस सूक्त के जप से सर्व श्रेष्ठ स्नेही का लाभ किया करता है ॥३८॥

यो मे राजन्नितीमां तु दुःस्वप्नशमनीमृचम् ।

अध्वनि प्रस्थितो यस्तु पश्येच्छत्रुं समुत्थितम् ॥३९॥

अप्रशस्तं प्रशस्तं वा कुविदंग इम जपेत् ।

द्वाविंशकं जपन्सूक्त माध्यात्मिकमनुत्तमम् ॥४०॥

पर्वसु प्रयतो नित्यमिष्टान्कामान्समश्नुते ।

कृणुष्वेति जपन्सूक्तं जुह्वदाज्य समाहितः ॥४१॥

अरातीनां हरेत्प्राणान् रक्षांस्यपि विनाशयेत् ।

उपतिष्ठेत्स्वयं बन्धि परि (री) त्वृचा दिनेदिने ॥४२॥

तं रक्षति स्वयं बन्धिविश्वतो विश्वतोमुखः ।

हंसः शुचिपदित्येतच्छुचिरीक्षेद्दिवाकरम् ॥४३॥

कृपि प्रपद्यमानस्तु स्थालीपाकं यथाविधि ।

जुहुयात्क्षेत्रमध्ये तु मुनिः स्वाहान्त पञ्चभिः ॥४४॥

इन्द्राय च मरुद्भ्यस्तु पर्जन्याय भगाय च ।

यथालिङ्गं तु विहरेत्लाङ्गलं तु कृपीवलः ॥४५॥

युक्तो धान्याय सीताय शुनासीरमयोत्तरम् ।

गन्धमाल्यैर्नमस्कारैर्यजेदेताश्च देवताः ॥४६॥

"यो मे राजन्" —इस दुःस्वप्नों के शमन करने वाली ऋचा को मार्ग में प्रस्थान करता हुआ जो कोई अपने उपस्थित शत्रु को देखे । तो उस समय 'अप्रशस्तं प्रशस्तं वा कुविदंग'—इसका जप करना चाहिए । सर्वश्रेष्ठ माध्यात्मिक सूक्त को बारंबार प्रयत्न होकर पर्वों पर ही जप करने वाला निरप ही अपनी सभी कामनाओं की प्राप्ति करता है । "वृणुष्व" इस सूक्त का जप करता हुआ समाहित होकर घृण की पाहूतियाँ देवे तो शत्रुओं के प्राणों

का हरण करता है और राक्षसों का भी विनाश कर देता है । 'बह्नि परि" इस ऋचा से प्रतिदिन स्वयं उपस्थान करे तो विश्वतो मुख बह्नि स्वयं विश्व से उसकी रक्षा किया करता है । "हंप शुचिपद" इस ऋचा की शुचि होकर सूर्य का ईक्षण करे ॥ ३६ । ४० । ४१ । ४२ । ४३ ॥ कृषि के कार्य में प्रपद्यमान व्यक्ति विधि पूर्वक क्षेत्र (खेत) के मध्य में स्थाली पाक का मुनि स्वाहान्त पाँचों के द्वारों हवन करे । इन्द्र के लिये, मरुद्गण के लिये, पर्जन्य के लिये और भग के लिये यथालिग किसान हल का विहरण करे । युक्त धान्य के लिये, सीता के लिये और इसके अनन्तर शुनासीर को गन्ध, माल्यो एवं नमस्कारों द्वारा इन देवों का उसे याजन करना चाहिए ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

प्रवापने प्रलवने खलसीतापहारयोः ।

अमोघं कर्म भवति वर्धते सर्वदा कृषिः ॥ ४७

समुद्रादिति सूक्तेन कामानाप्नोति पावकात् ।

विश्वानि न इति द्वाभ्यां य ऋग्भ्यां बन्हिमर्हति ॥ ४८

स तरत्यापदः सर्वा यशः प्राप्नोति चाक्षयम् ।

विपुलां श्रियमाप्नोति जयं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ४९

अग्ने स्वमिति च स्तुत्वा धनमाप्नोति वाञ्छितम् ।

प्रजाकामो जपेन्नित्यं वरुणदेवतत्रयम् ॥ ५०

स्वस्त्या त्रयं जपेत्प्रातः सदा स्वस्त्ययनं महत् ।

स्वस्ति पन्था इति प्रोच्य स्वस्तिमान्प्रजतेऽध्वनि ॥ ५१

विजिहीष्व धनस्पते शत्रूणां व्यापितं भवेत् ।

स्त्रिया गर्भप्रमूढाया गर्भमोक्षणमुत्तमम् ॥ ५२

अच्छा वदेति सूक्तं च वृष्टिकामः प्रयोजयेत् ।

निराहारः क्लिन्नवासा नचिरेण प्रवर्पति ॥ ५३

मनसः काम इ (मि) त्येतां पशुकामो नरो जपेत् ।

कर्दमेन इति स्नायात्प्रजाकामः शुचिन्नतः ॥ ५४

अश्वपूर्वा इ (र्णामि) ति स्नायाद्राज्यकामस्तु मानवः ।

रोहिते चर्मणि स्नायाद्ब्राह्मणस्तु यथाविधि ॥ ५५

राजा चर्मणि वैयाघ्रे ह्यागे वैश्यस्तथैव च ।

दशसाहस्रिको होमः प्रत्येकं परिकीर्तितः ॥१६॥

वीथों के प्रवर्तन के समय में तथा प्रवर्तन के कालों में घोर खन मोता के अपहार में प्रमोघ होना है तथा कृपी की सर्वदा वृद्धि होती है ॥१७॥
 “नमुद्रान्”—इस मूक्त से पावक ने कामनाओं की प्राप्ति किया करता है । जो
 “विश्वानि ग”—इन दो श्रुचाओं में बलि का यजन करता है वह समस्त
 आपदाओं से उद्धार प्राप्त किया करता है और उसे अक्षय यश का लाभ होता
 है । बहुत ही अधिक लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और परम श्रेष्ठ जप का लाभ
 होता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ “अग्नित्वम्” इसमें स्तुति करके वाञ्छित धन प्राप्त
 करता है । जो प्रजा धर्मान् मन्त्रति की कामना रखता हो ‘वसुदंभवतयम्’ का
 नित्य जप करना चाहिए ॥ १० ॥ प्रातःकाल के समय में ‘स्वस्त्या त्रय’ का
 जप करे इससे मेषा महान् स्वस्त्ययन होता है । “स्वस्ति पन्था” इसका
 उच्चारण करना चाहिए तो मार्ग में स्वास्तिमान् होकर गमन किया करना है ।
 ॥ ११ ॥ “विजहीष्व वनस्पते”—शत्रुओं से व्यापित होता है । गर्भ में प्रमूढ
 स्त्री के गर्भ के मोक्षण के लिये यह उत्तम है ॥ १२ ॥ “मच्छावसेन्”—यह
 मूक्त वृष्टि की कामना वाले के लिये है उसे इसका प्रयोग करना चाहिए ।
 निराहार होकर क्लिन्न वस्त्र धारण करके करे तो अत्यन्त शीघ्र वर्षा होती
 है । ‘मनमः कामः’—इस श्रुचा का पशु की कामना रखने वाले मनुष्य को
 जाय करना चाहिए । ‘कर्दमेन’—इन श्रुचा के द्वारा प्रजा की कामना वाले
 को शुचि व्रत होकर स्नान करना चाहिए ॥ १३ ॥ १४ ॥ जो मानव राज्य
 पाने की कामना रखता हो उसे “अश्वपूर्वाम्”—इस श्रुचा के द्वारा स्नान
 करना चाहिए । बाह्यण को रोहित चर्म में स्नान यथाविधि करना चाहिए ।
 ॥ १५ ॥ शान्त्य को व्याघ्र के चर्म में तथा वैश्य को याग के चर्म में उभी
 विधि से स्नान करना चाहिए । प्रत्येक के लिये दश महर्षि की सख्या का हवन
 बताया गया है ॥ १६ ॥

घागार इति नूक्तेन गोष्ठे गां लोकमातन्म् ।

उपतिष्ठेद्ब्रजेच्चैव यदीच्छताः नदाज्जयाः ॥१७॥

का ध्यान करे । उससे पूरी सी आहुतियाँ देकर हवन करे । “अम्बक”—
इम ऋचा से महादेव को उद्देश्य करके हवन करना चाहिए । ऐसा करने में
सौ वर्ष तक सुख पूर्वक जीवित रहता है । “तच्छुः”—इम ऋचा से स्नान
करके सूर्य का उपस्थान करे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

उद्यन्तं मध्यगं चैव दीधमायुजिजीविषुः ।

न हीति च चतुष्केण मुच्यते महतो भयात् ॥६५॥

सूक्ताभ्यां पर एवाऽऽभ्यां हुताभ्यां भूतिमाप्नुयात् ।

इन्द्रासोमेति सूक्तं तु कथितं शत्रुनाशनम् ॥६६॥

यस्य लुप्तं व्रत मोहाद्ब्राह्मण्यं समृजेत्सह ।

उपोऽप्राऽज्य स जुहुयात्त्वमग्ने व्रतपा इति ॥६७॥

आदित्येत्यृक्च (चं) सभ्राजं जप्त्वा वादे जयी भवेत् ।

महीति च चतुष्केण मुच्यते महतो भयात् ॥६८॥

ऋच जप्त्वा यदि ह्येतत्सर्वकामानवाप्नुयात् ।

द्वाचत्वारिंशत् चैन्द्रं जप्त्वा नाशयते रिपून् ॥६९॥

वाच महीति जप्त्वा च प्राप्नोत्यारोग्यमेव च ।

न नो भवेति द्वाभ्यां तु भुक्त्वाग्नें प्रयतः शुचिः ॥७०॥

हृदयं पाणिना स्पृष्ट्वा व्याधिभिर्नाभिभूयते ।

उत्तमेदमिति स्नातो हुत्वा शत्रुं प्रमापयेत् ॥७१॥

उदय होने हुए और मध्याह्नवर्ती दिवाकर का उपस्थान करने से
जीवित रहने की इच्छा वाला दीर्घ आयु की प्राप्ति करता है । “न ही”—
इन चार ऋचाओं से उपस्थान करने पर महान भय से मुक्ति प्राप्त किया करता
है ॥ ६५ ॥ इन दोनों सूक्तों से पर काल में हवन करने में भूति का लाभ
होता है । “इन्द्र सोम”—इम सूक्त के कहने से शत्रु का नाश होता है ॥ ६६ ॥
विसका व्रत मोह के कारण लुप्त हो गया हो यह ब्राह्मणों के साथ संसर्ग हो गया
हो, उसे उपवास करके “अम्बके व्रत” इसने धृति का हवन करना चाहिए ।
“आदित्य सभ्राज”—इम ऋचा का जार करके बाद में विजयी होता है ।
“मही”—इन चार ऋचाओं के जप करने में बड़े भारी भय से छुटकारा मिल

उपेतितिसृभी राज्ञो दुन्दुभीनभिमन्त्रयेत् ।
 तेजो वलं च प्राप्नोति शत्रुं चैव नियच्छति ॥५८॥
 तृणपाणिजं पेतसूक्तं रक्षोघ्नं दस्युभिवृत्तः ।
 ये के च ज्मेत्यृचं जप्त्वा दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥५९॥
 जीमूतसूक्तेन तथा सेनांगान्यभिमन्त्रयेत् ।
 यथालिङ्गं ततो राजा विनिहन्ति रणे रिपून् ॥६०॥
 प्राग्गयेति त्रिभिः सूक्तैर्धनमाप्नोति चाक्षयम् ।
 अमीवहेति सूक्तेन भूतानि स्थापयेन्निशि ॥६१॥
 सवाघे विपमे दुर्गे, बद्धो व निर्गतः क्वचित् ।
 पलायन्वा गृहीतो वा सूक्तमेतत्तथा जपेत् ॥६२॥
 त्रिरात्रं नियतोपोष्य श्रपयेत्पायसं चरुम् ।
 तेनाऽऽहुतिशतं पूर्णं जुह्यात्त्र्यम्बकेत्यृचा ॥६३॥
 समुद्दिश्य महादेवं जीवेदब्दशतं सुखम् ।
 तच्चक्षुरित्यृचा स्नात उपतिष्ठेद्दिवाकरम् ॥६४॥

'आगार'—इस सूक्त से गोष्ठ में लोकों की माता गो का उपस्थान करे । यदि उनको सदा प्रक्षय रहने की इच्छा रखता है तो उनके पाम भी जाना चाहिए ॥ ५७ ॥ 'उपेति'—इन तीनों से राजा की दुन्दुभियों का अभिमन्त्रणा करे । ऐसा करने वाला तेज, वल को प्राप्त किया करता है और शत्रुओं का नाश करता है ॥ ५८ ॥ हाथ में तृण लेकर दस्युओं से घिरा हुआ होकर राक्षसों का नाश करने वाले को सूक्त का जप करना चाहिए । 'ये के च ज्मे'—इस ऋचा का जप करने से दीर्घ आयु की प्राप्ति हुआ करती है । ॥ ५९ ॥ जीमूत सूक्त के द्वारा सेना के अङ्गों का अभिमन्त्रण करना चाहिए । राजा को निद्रानुमार ऐसा करने से वह रात्रि भूमि में शत्रु का हनन किया करता है ॥ ६० ॥ 'प्राग्गय'—इन तीन सूक्तों के द्वारा प्रक्षय धन का लाभ किया करता । "अमीवह" इन सूक्त से रात्रि में भूतों को स्थपित करे । गवाघ में, विपम दुर्ग में बद्ध भयवा कही निबला हुआ, भागता हुआ इन सूक्त का जाप करे । तीन रात्रि पर्यन्त नियत रूप से उपवाग करके क्षीर के घट

का श्रान करे । उससे पूरी सी आहुतिर्था देकर हवन करे । “श्रम्वक” — इस ऋचा से महादेव को उद्देश्य करके हवन करना चाहिए । ऐसा करने में सी वर्ष तक सुख पूर्वक जीवित रहता है । “तद्यथुः” — इस ऋचा से स्नान करके सूर्य का उपस्थान करे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

उच्यन्तं मध्यगं चैव दीधमायुजिजीविपुः ।

न हीति च चतुष्केण मुच्यते महतो भयात् ॥६५॥

सूक्ताभ्यां पर एवाऽऽभ्यां हुताभ्यां भूतिमाप्नुयात् ।

इन्द्रासोमेति सूक्तं तु कथितं शत्रुनाशनम् ॥६६॥

यस्य लुप्तं व्रत मोहाद्व्रात्यैर्वा समृजेत्सह ।

उपोऽप्राऽऽज्य स जुहुयात्त्वमग्ने व्रतपा इति ॥६७॥

आदित्येत्यूक्च (च) सम्राजं जप्त्वा वादे जयी भवेत् ।

महीति च चतुष्केण मुच्यते महतो भयात् ॥६८॥

ऋच जप्त्वा यदि ह्येतत्सर्वकामानवाप्नुयात् ।

द्वाचत्वारिंशत चैन्द्रं जप्त्वा नाशयते रिपून् ॥६९॥

वाच महीति जप्त्वा च प्राप्नोत्यारोग्यमेव च ।

य नो भवेति द्वाभ्यां तु भुक्त्वाऽर्जं प्रयतः शुचिः ॥७०॥

हृदयं पाणिना स्पृष्ट्वा व्याधिभिर्नाभिभूयते ।

उत्तमेदमिति स्नातो हुत्वा यत्रुं प्रमापयेत् ॥७१॥

उदय होते हुए और मध्याह्नवर्ती दिवाकर का उपस्थान करने से जीवित रहने की इच्छा वाला दीर्घ आयु की प्राप्ति करता है । “न ही” — इन चार ऋचाओं में उपस्थान करने पर महान भय से मुक्ति प्राप्त किया करता है ॥ ६५ ॥ इन दोनों सूक्तों में पर काल में हवन करने में भूति का लाभ होता है । “इन्द्र सोम” — इस सूक्त के कहने में शत्रु का नाश होता है ॥ ६६ ॥ जिसका व्रत मोह के कारण लुप्त हो गया हो वह यदर्थों के साथ संलग्न हो गया हो, उसे उन्नाम करके “त्वम्वने व्रात” इसने धृन का हवन करना चाहिए । “आदित्य मग्न ज” — इस ऋचा का जार करके बाद में विजयी होता है । “मही” — इन चार ऋचाओं के जप करने में बड़े भारी भय में सुदृक्ता मिल

जाता है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ यदि इस ऋचा का जाप करे तो समस्त कामनाओं की उपलब्धि हुआ करती है । बयालीन चन्द्र का जप करके शत्रुओं का नाश किया करता है ॥ ६९ ॥ “वाचं मही”—इसका जप करने से भारोग्ध का लाभ होता है । “शनो भव”—इन दो ऋचाओं से अन्न को खाकर प्रयत्न एवं शुचि होकर हाथ से हृदय का स्पर्श करे तो व्याधियों से अभिभूत नहीं होता है । “उत्तमेदम्” इससे स्नान करके हवन करे तो शत्रु को द्रभावित किया करता है ॥ ७० ॥ ७१ ॥

शं नोऽन्न इति सूक्तेन हुतेनार्थमवाप्नुयात् ।

कन्यावारितिसूक्तेन दिग्दोषाद्विप्रमुच्यते ॥७२

यदद्य क्रन्वेत्युदिते जप्ते वश्य जगद् भवेत् ।

यद्वागिति च जप्तेन वाणी भवति संस्कृता ॥७३

वा (व) चोविदमिति स्वेतां जपन्वाच समश्नुते ।

पवित्राणां पवित्रं तु पावमान्यो ह्यृचो मताः ॥७४

वैखानसा ऋचस्त्रिशत्पवित्राः परमा मताः ।

ऋचो द्विपष्टिः प्रोक्ताश्च परस्येत्यृपिसत्तम ॥७५

सर्वकल्मषनाशाय पावनाय शिवाय च ।

स्वादिष्येति सूक्तानां सप्तपष्टिरुदाहृता ॥७६

दशोत्तराण्यृचश्चैताः पावमान्यः शतानि पट् ।

एतजपंश्च जुह्वंश्च घोर मृत्युभयं जयेत् ॥७७

आपो हि एते वारिस्थो जपेत्पापभयादने ।

प्रदेवत्रेति नियतो जपेच्च मरुघन्वसु ॥७८

प्राणान्तिके भये प्राप्ते क्षिप्रमायुस्तु विन्दति ।

प्रावेपामित्यचमेकां जपेच्च मनसा निशि ॥७९

व्युष्टायामुदिते सूर्ये हूते जयमवाप्नुयात् ।

मा प्रगामेति मूढश्च पन्थानं पथि विन्दति ॥८०

“शनोऽने”—इस सूक्त से हवन करने पर अर्थ की प्राप्ति होती है ।

“कन्या वार”—इस सूक्त से द्वारा दिशाओं के दोष से मुक्ति होती है ॥७२॥

“यदद्य कच्च” — इसके उदय काल में जाप करने के समस्त जगत् वक्ष्य होजाता है । “यद्वाग्” — इसके जप से वाणी अच्छे सुस्कार वाली होती है ॥ ७३ ॥
 “वाचो विदम” — इस ऋचा का जप करने वाला वाचा को प्राप्त कर लेता है । पवित्रों में पवित्र पावमानी ऋचा मानी गई हैं ॥ ७४ ॥ तीस वैखानश ऋचाएँ परम पवित्र मानी गई हैं । हे ऋषि सत्तम ! परस्य ये वासठ ऋचाएँ कही गई हैं ॥ ७५ ॥ स्वादिष्ट्य — इन सूक्तों की सङ्गठ ऋचाएँ ममस्त कल्मषों के नाश करने के लिए, पावन करने के लिए और कल्याण के लिये कही गई हैं ॥ ७६ ॥ ये छँ सो दश ऋचाएँ पावमानी हैं । इनका जप तथा हवन करने वाला मानव धीर मृत्यु के भय पर जय प्राप्त किया करता है ॥ ७७ ॥ पापों के भय के भर्दन करने के लिए जल में स्थित होकर “भापो हिष्ठा” — इस ऋचा का जप करना चाहिए । प्राणान्तक भय प्राप्त होने पर ‘प्रदेवश्च’ इसका तथा मरुघन्वसु का — जप करना चाहिए इसके जाप से शीघ्र ही आपु का लाभ होता है । ‘प्रावेपाम्’ इस एक ऋचा को रात्रि के समय में मान्मिक जप करे । व्युष्टा में सूर्य के उदय होने पर धूत क्रीडा (जुग्रा) में जीत हुआ करती है । जो मूढ हो और ‘माप्रगाम’ — इस ऋचा का जप करे तो मार्ग में सही मार्ग प्राप्त हो जाता है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥

क्षीणायुरिति मन्येत यं कंचित्सुहृदं प्रियम् ।

यत्ते यममिति स्नातस्तस्य मूर्धानमालभेत् ॥८१

सहस्रकृत्वः पञ्चाहं तेनाऽऽयुर्विन्दते महत् ।

इदमित्येति जुहुयाद् घृतं प्राज्ञः सहस्रशः ॥८२

पशुकामो गवां गोष्ठे अयंकामश्चतुष्पथे ।

वयः सुपर्णा इत्येतां जपन्वे विन्दते श्रियम् ॥८३

हविष्यन्तीयमभ्यस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

तस्य रोगा विनश्यन्ति कायाग्निर्वर्धते तथा ॥८४

या ओषधयः स्वस्त्ययन सर्वव्याधिविनाशनम् ।

वृहस्पते अतीत्येतद्वृष्टिकामः प्रयोजयेत् ॥८५

सर्वत्रेति परा शान्तिर्ज्ञेयाऽप्रतिरथस्तथा ।

सूक्तं सांकश्यप नित्यं प्रजाकामस्य कीर्तितम् ॥८६॥

अहं रुद्रेभिरित्येतद्वाग्मी भवति मानवः ।

न योनौ जायते विद्वान्जपन्रात्रौति रात्रिषु ॥८७॥

रात्रिसूक्त जपन्रात्रौ रात्रि क्षेमी नयेत्तरः ।

कल्पयन्तीति च जपान्नित्य कृत्वाऽरिताशनम् ॥८८॥

जिम किसी अपने मित्र को या प्रिय को क्षीण आयु वाला समझले तो स्नान करके “यत्तैयम्”—इससे उसके मूर्द्धा का आलभन करे । पाँच दिन तक एक सहस्र बार करे । इससे महान् आयु का लाभ होता है । परिडत मनुष्य को ‘इदमित्यम्’ इससे एक सहस्र बार धृत की आहूतियाँ देनी चाहिए ॥८१॥८२॥ जो पशुघो की कामना करने वाले को गौघो के गोष्ठ में करना चाहिए और जो अथ की कामना रखता हो उसे चतुष्पथ (चौराहे) पर जाप आदि करना चाहिए । ‘वयः सुपर्णा’—इस ऋचा का जप करने वाला श्री का लाभ किया करता है ॥८३॥ “हविष्यन्तीयम्”—इसका जप करने से मानव समस्त पापों से प्रमुक्त हो जाता है । उसके समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं तथा शरीर की अग्नि की वृद्धि होती है ॥ ८४ ॥ ‘या ओषधव’ यह स्वस्त्ययन समस्त व्याधियों का विनाश करने वाला होता है । ‘वृहस्पते अति’—यह उसे प्रयोजित करना चाहिए जो वृद्धि की कामना रखता हो ॥ ८५ ॥ ‘सर्वत्र’—इससे परम शान्ति का होना जानना चाहिए । अप्रतिरथ—यह सूक्त तथा सांकश्यप को नित्य करने से प्रजा की कामना की पूर्ति कही गई है ॥ ८६॥८७ ॥ ‘अहं रुद्रेभिः’—इसके करने से मनुष्य वाग्मी होता है । ‘रात्रि’—इसका रात्रि में जप करने वाला विद्वान् फिर योनि में जन्म नहीं लिया करता है । रात्रि सूक्त का रात्रि में जाप करने वाला मनुष्य रात्रि की शोक करने वाली बना देता है । ‘कल्पयन्ति’ इसका जप करने वाला शत्रुघो का नाश कर देता है ॥८८॥

आयुष्यं चैव वर्चस्यं सूक्तं दाक्षायण महत् ।

उत देवा इति जपेदामयघ्नं धृतव्रतः ॥८९॥

अयमग्ने जरीत्येतज्जपेदग्निभये सति ।

अरण्यानीत्यरण्येषु जपेत्तद्भूयनाशनम् ॥६०॥

ब्राह्मीमासाद्य मूक्ते द्वे ऋचं ब्राह्मी शतावरीम् ।

पृथग्दग्भिर्घृतैर्वाऽथ मेघां लक्ष्मीं च विन्दति ॥६१॥

शास इत्या सपत्नघ्नं सङ्ग्रामं विजिगीषतः ।

ब्रह्मणाऽग्निः संविदानं गर्भमृत्युनिवारणम् ॥६२॥

अपेहीति जपेत्सूक्तं शुचिर्दुःस्वप्ननाशनम् ।

येनेदमिति वै जप्त्वा समाधिं विन्दते परम् ॥६३॥

मयोभूर्वात इत्येतद्गवां स्वस्त्ययन परम् ।

शाम्बरीमिन्द्रजालं वा मायामेतेन वारयेत् ॥६४॥

दाक्षायण सूक्त महान् आयु और वचंम् का प्रदान करने वाला है ।

“उतदेवा” इसका जप व्रत धारण करने वाला आमय को नाश किया करता है ॥६६॥ अग्नि के भय होने पर “अयमग्ने जरि” इसका जप करना चाहिए ।

अरण्यों में ‘अरण्यानि’—इसको भय के नाश करने के लिए जपना चाहिए ॥६०॥ ‘ब्राह्मीमासाद्य’—ये दो मूक्त और ब्रह्मा शतावरी—इन ऋचा को पृथक् जल से अथवा घृत में करने पर मानव मेघा और लक्ष्मी का लाभ प्राप्त किया करता है ॥६१॥ सग्राम के जीतने की इच्छा रखने वाले को ‘शास इत्या’ यह सपत्नों (वैरियों) के नाश करने वाला होता है । ‘ब्रह्मणाऽग्निः संविदान’—

यह गर्भ मृत्यु के निवारण करने वाला है ॥६२॥ शुद्ध-विविध होकर दुःस्वप्नों के नाश करने के लिए ‘अपेहि’—इन सूक्त का जप करे । ‘येनेदम्’—इसके जप से निश्चय ही परम समाधि की प्राप्ति हुआ करती है ॥६३॥ ‘मयोभूर्वात’

यह गायों के लिए परम बल्याण कारक होता है । शाम्बरी अथवा इन्द्रजाल—

इसस माया का वारण करना चाहिए ॥६४॥

महित्रीणामंबोऽस्तिवति पयि स्वस्त्ययनं जपेत् ।

प्राग्नये विद्विपन्देप्य जपेच्च रिपुनाशनम् ॥६५॥

वास्तोष्पतेन मन्त्रेण यजेच्च गृहदेवताः ।

जपस्यैव विधि प्रोक्तो हूते ज्ञेयो विशेषतः ॥६६॥

होमान्ते दक्षिणा देया पापशान्तिर्हुं तेन तु ।
 हुत शम्यति चान्नेन अन्नं हेमप्रदानतः ॥६७
 विप्राशिपस्त्वमोघाः स्युर्वहिः स्नानं तु सर्वतः ।
 सिद्धार्थका यवा धान्यं पयो दधि घृतं तथा ॥६८
 क्षीरवृक्षास्तथेध्म तु होमे वै सर्वकामदाः ।
 समिधः कष्टकिन्यश्च राजिका रुधिरं विपम् ॥६९
 अभिचारे तथा शैलमशनं सक्तवः पयः ।
 दधि भैक्ष्यं फलं मूलमृग्विधानमुदाहृतम् ॥१००

‘महित्रीणामवोऽस्तु’—इसका मंत्र में कल्याण के लिए जप करे ।
 ‘प्राग्नये विद्विषन् द्वेष्ट्यम्’—इसका जप शत्रु करने वाला होता है अतः रिपु
 नाश के लिए जप करना चाहिए ॥ ६५ ॥ ‘वास्तोष्पत’ मन्त्र के द्वारा गृह देवों
 का यजन करे । यह जप की विधि बताई गई है । हवन करने पर विशेष रूप
 से जानना चाहिए ॥६६॥ होम करके अन्त में दक्षिणा देवे । हवन से पापों की
 शान्ति होती है । हवन की शान्ति अन्न से होनी है और अन्न का शमन हेम
 (सोना) के दात देने से होता है ॥ ६७ ॥ विप्रों के आशीर्वाद तो अमोघ होते
 हैं । बाहिर स्नान करना सब प्रकार से उत्तम है । जो का धान्य सिद्धार्थक होता
 है—पय-दधि-घृत-क्षीर वाले वृक्ष की समिधा होम में सब प्रकार की काम-
 नाशों के देने वाले होते हैं । काटे वाली समिधा—राजिक (राई)—रुधिर—विष्ट-
 तथा शैल ये अभिचार कर्म में ग्रहण किये जाते हैं । सक्तु (सतुआ)—पय-दधि-
 भिक्षा से प्राप्त वस्तु—फल और मूल अशन (भोजन) होता है । इस प्रकार से
 यह श्रृंगविधान बताया गया है ॥६८॥६९॥१००॥

१०५ सामविधानम्

यजुर्विधानं कथितं वक्ष्ये साम्नां विधानकम् ।
 संहितां वैष्णवीं जप्त्वा हृत्वा स्मात्सर्वकामभाक् ॥१
 संहितां छान्दसीं साधु जप्त्वा प्रीणाति शङ्करम् ।
 स्कान्दीं पेश्यां संहितां च जप्त्वा स्यात्तु प्रसादवान् ॥२

यत इन्द्र भयामहे हिंसादोषविनाशनम् ।
 अवकीर्णी मुच्यते च अग्निस्तिग्मेति वै जपन् ॥३॥
 सर्वपापहरं ज्ञेयं परितोषं च तासु च ।
 अविक्रेयं च विक्रीय जपेद्घृतवतीति च ॥४॥
 अद्या नो देव सवितर्ज्ञेयं दुःस्वप्ननाशनम् ।
 अवोध्यग्निरिति मन्त्रेण घृतं राम यथाविधि ॥५॥
 अभ्युक्ष्य घृतशेषेण मेखलाबन्ध इष्यते ।
 स्त्रीणां यासां तु गर्भाणि पतन्ति भृगुसत्तम ॥६॥
 मणिं जातस्य बालस्य बद्धीयात्तदनन्तरम् ।
 सोमं राजानमेतेन व्याधिभिर्विप्रमुच्यते ॥७॥
 संपंसाम प्रयुञ्जानो नाऽऽप्नुयात्संपंजं भयम् ।
 माघ त्वा वाद्यतेत्येतद्घृत्वा विप्रः सहस्रशः ॥८॥
 शतावरिमणिं बद्ध्वा नाऽऽप्नुयाच्छस्त्रतो भयम् ।
 दीघंतमसोर्ज इति हृत्वाऽन्नं प्राप्नुयाद्बहु ॥९॥

पुष्कर ने कहा—मैंने यजुर्वेद का विधान तो बतला दिया है अब साम-
 वेद का विधान बताता हूँ । सामवेद की वैष्णवी संहिता का जप करके और
 हवन करके समस्त कामनाओं की सिद्धि प्राप्त करने वाला हो जाता है । जो
 छान्दसी इसकी संहिता है, उसका भली भाँति जाप करके भगवान् शंकर की
 प्रसन्नता प्राप्त किया करता है । स्कान्दी पेश्या संहिता का जप करके प्रसाद
 वाला होता है ॥१॥२॥ “यत इन्द्रभया महे”—यह हिंसा के दोषों को विनाश
 करने वाली है । “अग्निस्तिग्मे”—इसका जाप करने वाला अवकीर्णी मुक्त हो
 जाता है ॥३॥ “परितोषं च तासु च”—यह समस्त पापों के हरण करने वाला
 जानना चाहिए । जो वस्तु विक्रय करने के योग्य नहीं है उसका विक्रय करके
 “घृतवती”—इसका जाप करना चाहिए ॥४॥ “अध्यानादेव सवितः”—यह
 दुःस्वप्नों का नाश करने वाला है । “अवोध्यग्निः”—इस मन्त्र से हे राम !
 विधिपूर्वक घृत का अभ्युक्षण करे और घृत शेष से मेखलाबन्ध इष्ट होता है ।
 हे भृगुसत्तम ! जिन स्त्रियों के गर्भों का पात हो जाता है । उनके उत्पन्न हुए

बालक की मणि का बन्धन कर देना चाहिए । इसके अनन्तर “सोमं राजानम्” —इस मन्त्र के द्वारा व्याधियों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है ॥१।६।७॥ ‘सर्पमात्र’ का प्रयोग करने वाला कभी सर्प से उत्पन्न होने वाले भय को प्राप्त नहीं होता है । “माऽपत्वा वाद्यत” —इससे वाह्यण को सहस्र बार हवन करके सतावरी मणि को बांधे तो सस्त्र से कोई भय नहीं होता है । “दीपंतमसोऽर्क” —इस मन्त्र से हवन करने से बहुत धन की प्राप्ति होती है ॥८।९॥

समध्यायन्तीति जपन्न त्रियेत पिपासया ।
 त्वमिमा ह्योपधीत्येतज्जप्त्वा व्याधिं न चाऽऽप्नुयात् ॥१०॥
 पथि देवव्रतं जप्त्वा भयेभ्यो विप्रमुच्यते ।
 यदिन्द्रो मुनये त्वेति हुतं सौभाग्यवर्धनम् ॥११॥
 भगो न चित्र इत्येवं नेत्रयोरञ्जनं हितम् ।
 सौभाग्यवर्धनं राम नात्र कार्यं विचारणा ॥१२॥
 जपेदिन्द्रेति वर्गं च तथा सौभाग्यवर्धनम् ।
 परि प्रिया हि वः कारिः काम्यां संस्त्रावयेत्स्त्रियम् ॥१३॥
 सा तं कामयते राम नात्र कार्या विचारणा ।
 रथतरं वामदेव्यं ब्रह्मवर्चसवर्धनम् ॥१४॥
 प्राशयेद्बालकं नित्यं वचाक्षूणं घृतप्लुतम् ।
 इन्द्रमिदं गाथिनं जप्त्वा भवेच्छ्रुतिधरस्त्वसौ ॥१५॥
 हुत्वा रथंतरं जप्त्वा पुत्रमाप्नोत्यसंशयम् ।
 मयि श्रीरिति मन्त्रोऽयं जप्तव्यः श्री विवर्धनः ॥१६॥
 वरुणस्याष्टकं नित्यं प्रयुञ्जानः श्रियं लभेत् ।
 सप्ताष्टकं प्रयुञ्जानः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥१७॥

“समध्यायन्ति”—इस मन्त्र का जप करने वाला प्यास (पिपासा) से र्थात् जल के अभाव में कभी नहीं मरता है । “त्वमिमा ह्योपधी”—इसका जप करने से किसी भी व्याधि की प्राप्ति नहीं होती है ॥१०॥ मार्ग में “देव-यतम्”—इसका जाप करके भयों से विप्र मुक्त होता है । “यदिन्द्रो मुनयेत्वा”

एतत्कृत्वा बुधः कर्म सङ्ग्रामे जयमाप्नुयात् ।

गारुडं वामदेव्यं च रथंतरवृहद्रथौ ।

सर्वपापप्रशमनाः कथिताः सशयं विना ॥२४॥

जो तन्त्रा रहित होकर सायकाल और प्रातःकाल नित्य 'गवैपुणा'—इस मन्त्र से गौओं का उपस्थान करता है उसके घर में सदा गौएँ रहा करती हैं । ॥१८॥ 'वात आवानु भेषजम्'—इस मन्त्र से घृत भक्त यवद्रोण का विधिवत् हवन करके सम्पूर्ण मांसा को दूर कर देता है ॥१९॥ 'प्रदेवो दासेन'—इस मन्त्र से तिलों का हवन करे और कामंण कृन्ननं—अभित्वा दूरनोनुमो—इसे वषट्-कार समन्वित वामदेव्य का एक सहस्र हवन करे तो युद्ध में जयप्रद होता है । पण्डित पुरुष को पिष्टमय अर्थात् चून के हाथी-घोड़े और सुन्दर पुरुषों को बनावे और परकीय (दूसरे पक्ष वाले) प्रधान पुरुषों को उद्देश्य करके सुस्विन्न पिष्ट कवरों के भाग छुरा से काट-काट कर अभित्वा दूर नो नुमो—इस मन्त्र से मन्त्र के वेत्ता को उन्हें सरसों के तेल में भिगोकर क्रोध पूर्वक हवन करना चाहिए । बुध पुरुष इस कर्म को करके सग्राम में जय का लाभ करता है । गारुड—वामदेव्य और रथन्तर तथा वृहद्रथ ये समस्त पापों के शमन करने वाले बताये गये हैं । इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२०॥२१॥२२॥२३॥२४॥

१०६—अथर्वविधानम्

साम्नां विधानं कथितं वक्ष्ये चाथर्वणमथ ।

शान्तातीर्य गणं हुत्वा शान्तिमाप्नोति मानवः ॥१॥

भैषज्यं च गणं हुत्वा सर्वात्रोगान्व्यपोहति ।

त्रिसप्तीयं गणं हुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२॥

क्वचिन्नाऽऽप्नोति च भयं हुत्वा चैवाभयं गणम् ।

न क्वचिज्जायते राम गणं हुत्वाऽपराजितम् ॥३॥

आयुष्यं च गणं हुत्वा ह्यपमृत्युं व्यपोहति ।

स्वस्तिमाप्नोति सर्वत्र हुत्वा स्वस्त्ययनं गणम् ॥४॥

देने वाली है । “यस्त्वां मृत्युः”—इस मन्त्र का जप करने से मृत्यु का विनाश होता है ॥ ६ ॥

सपर्णस्त्वेति हुत्वा च भुजर्गनैव बाध्यते ।

इन्द्रेण दत्तामित्येतत्सर्वकामकर भवेत् ॥१०

इन्द्रेण दण्डमित्येतत्सर्वबाधाविनाशनम् ।

इमां देवीति मन्त्रश्च सर्वशान्तिकरः परः ॥११

देवा मरुत इत्येतत्सर्वकामकरं भवेत् ।

यमस्य लोकादित्येतद्दुःस्वप्नशमन परम् ॥१२

इन्द्रश्च पञ्च वाणिज्यं पुण्यलाभकरं परम् ।

कामो मे वाजीति हुतं स्त्रीणां सौभाग्यवर्धनम् ॥१३

तुम्यमेव जपन्नित्यमयुतं सु हुतं भवेत् ।

अग्ने गोभिर्न इत्येतन्मेघावृद्धिकरं परम् ॥१४

ध्रुव ध्रुवेणेति हुतं स्थानलाभकरं भवेत् ।

अलक्तजीवेति शुना कृपिलाभकरं भवेत् ॥१५

अह ते भग्न इत्येतद्भवेत्सौभाग्यवर्धनम् ।

ये मे पाशास्तथाऽप्येतद्वन्धनान्मोक्षकारकम् ॥१६

शपत्वहन्निति रिपून्नाशयेद्धोमजाप्यतः ।

त्वमुत्तर्पमितीत्येतद्यशोबुद्धिविवर्धनम् ॥१७

सौभाग्य की वृद्धि होती है ॥ १३ ॥ “तुङ्गमेव”—इस मन्त्र का नित्य जप और दस हजार का हवन करना चाहिए । “अग्ने गोमिनं”—यह मन्त्र मेघा (वृद्धि) की परम वृद्धि करने वाली है ॥ १४ ॥ “ध्रुवं ध्रुवेण”—इस मन्त्र से हवन करने पर स्थान का लाभ होता है । “मलत्तत्रीव”—इस मन्त्र से शुभा (शान के द्वारा) कृषि का लाभ होता है ॥ १५ ॥ “अहं तेनम्”—इस मन्त्र से सौभाग्य का वर्धन होता है । “ये मे पाशास्तयापि”—यह मन्त्र बन्धन से मोक्ष कराने वाला है ॥ १६ ॥ “शपत्त्वहन्”—यह मन्त्र जाप और हवन करने पर शिष्टों का नाश कर देता है । “त्वमुत्तमम्”—इस मन्त्र से यश और वृद्धि की बढ़ोतरी होती है ॥ १७ ॥

यथा मृगमतीत्येतस्त्रोणां सौभाग्यवध नम् ।
 येन चेह दिशं चैव गर्भलानकरं नवेत् ॥१८॥
 अयं ते योनिरित्येतत्पुत्रलानकरं नवेत् ।
 शिवः शिवानिरित्येतद्भवेत्सौभाग्यवधं नम् ॥१९॥
 बृहस्पतिर्नः परिपातु पयि स्वस्थयनं नवेत् ।
 मुञ्चामि त्वेति कथितमपमृत्युनिवारणम् ॥२०॥
 अथर्वशिरसोऽप्येता सर्वपापैः प्रमृच्यते ।
 प्राधान्येन तु मन्त्राणां किञ्चित्कर्म तवेरितम् ॥२१॥
 वृक्षाणां यज्ञियानां तु समिधः प्रथमं हविः ।
 आर्घ्यं च ब्रौह्मयज्वं च तथा वै गौरसर्पपाः ॥२२॥
 अश्वतानि तिलाद्वं च दधिसोरे च भार्गव ।
 दन्तास्तयैव दूर्वाश्च विल्वानि कमलानि च ॥२३॥
 शान्तिपुष्टिकराप्साहृद्वाप्येतानि सर्वशः ।
 तैर्न करणानि धर्मज्ञ राजिका रुधिरं विषम् ॥२४॥
 समिधः कष्टकोपेता अभिचारेषु योजयेत् ।
 आपं वै देवतं छन्दो विनियोगज्ञ आचरेत् ॥२५॥

“यथा मृगमती”—यह मन्त्र स्त्रियों के सुख, सौभाग्य के होता है । “येन चेह दिशं च”—यह गर्भ के लाभ करने वाला

“अथ ते योनिः”—यह मन्त्र पुनः के लाभ करने वाला होता है । “शिवः शिवाभिः” यह मन्त्र भी सौभाग्य वर्द्धक होता है ॥ १६ ॥ “वृहस्पति नमः परिवातु”—इससे मार्ग में स्वास्थयन होता है । “मुञ्जामित्वा इसके कहने पर अथमृत्यु (कुमोत) से निवारण हुआ करता है ॥ २० ॥ अथर्व सिरसः—इसका अध्ययन करने वाला पुरुष समस्त पापों से प्रमुक्त हो जाता है । यहाँ पर तुमको प्रधानस्य से कुछ थोड़े से कर्म जो मन्त्रों द्वारा होते हैं बतला दिये गये हैं ॥ २१ ॥ यज्ञिय जो वृक्ष होते हैं अर्थात् यज्ञ में जिन वृक्षों को काम में लाया जाता है उनकी समिधाएँ सबसे प्रथम हवन में हवि होती हैं । फिर घृत, अहि, सफेद सरसो, अक्षत, दिल, दधि और दूध, तर्भ, दूर्वा (दूम), विल्व (वेल पत्र तथा वेल के फल), कमल के दल ये धस्तुएँ हे भार्गव ! हवन में सब प्रकार से शान्ति तथा पुष्टि के करने वाली कही गई हैं । तेल, कण, राजि का (राई) रुधिर, विप और वाँटों से युक्त समिधा इनका प्रयोग अभिचार (मारणादि) कर्म में करना चाहिए । विनिधोग के ज्ञान को प्राप्त्य दैवत छन्द का आचरण करना चाहिए ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

॥ समाप्त ॥